भारतीय संविधान

तथा

नागरिक जीवन

भारतीय संविधान तथा नागरिक जीवन

लेखक

राजनारायण गुप्त एम० ए० (राजनीति व अर्थशास्त्र)

रचियता 'नागरिक-शास्त्र के सिद्धांत,'
'आदर्श नागरिकता,' 'हमारा
नया विधान,' 'भारतीय
नागरिकता'
इत्यादि !

किताब महल

इलाहाबाद बंबई

भारतीय संविधान तथा नागरिक जीवन

लेखक

राजनारायण गुप्त एम० ए० (राजनीति व अर्थशास्त्र)

रचियता 'नागरिक-शास्त्र के सिद्धांत,'
'आदर्श नागरिकता,' 'हमारा
नया विधान,' 'भारतीय
नागरिकता'
इत्यादि !

कि ता ब म ह ल

इलाहाबाद बंबई

प्रस्तावना

भारत की संविधान परिषद् ने २ वर्ष ११ मास तथा १७ दिन के अकथ तथा निरंतर परिश्रम के पश्चात स्वतंत्र भारत के जिस प्रथम संविधान का निर्माण किया है उस पर संसार का कोई भी देश गर्व कर सकता है। ऐसे संविधान के संबंध में, अपनी ही राष्ट्र भाषा में, एक पुस्तक लिखने का अवसर प्राप्त करना, बड़े ही सौभाग्य की बात है। हमारा नव संविधान स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व तथा न्याय के उन सिद्धान्तों पर अवलम्बित है जिन के आधार पर ही समस्त विश्व में शांति और सत्य का साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है। हमारे इस संविधान में हमें अपने प्रिय बापू राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के उच्च सिद्धान्तों की स्पष्ट झलक दृष्टि गोचर होती है।

इस संविधान में नागरिकों को कौन से मूल अधिकार प्रदान किये गये हैं, इस की क्या विशेषताएं हैं, किस प्रकार यह संविधान संसार के सभी संविधानों में अनूठा है, किस प्रकार इस संविधान में भारत की प्राचीन सभ्यता एंव संस्कृति से प्रेरणा ली गई है, तथा किस प्रकार हमारे प्रचीन आदर्शों का राजनीति शास्त्र के आधुनिक सिद्धान्तों के साथ समन्वय किया गया है, विरोधियों द्वारा संविधान के विरुद्ध क्या क्या आरोप लगाये गये हैं, उन आरोपों में कितना तथ्य है, जनता का अपने नव संविधान के प्रति क्या कर्तव्य है तथा किस प्रकार यह संविधान पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है ?—यह कुछ

प्रश्न हैं जिनका प्रस्तुत पुस्तक में विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। पुस्तक की भाषा अत्यन्त ही सरल रक्खी गई है जिससे वह पाठक भी जिनका हिंदी का ज्ञान अभी सीमित है, इसे पढ़ कर अपने संविधान के संबंध में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकें। पुस्तक को क़ानून की जटिल भाषा एवं कठिन संवैधानिक शब्दों की भर मार से भी बचाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है।

अंत में ऐसे सभी अंग्रेज़ी के शब्दों का हिंदी अनुवाद दे दिया गया है जिनका इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर प्रयोग किया गया है।

पुस्तक के दूसरे भाग में भारतीय नागरिक जीवन के संबंध में आठ अध्याय जोड़ दिये गये हैं। इन अध्यायों की सहायता से पाठकों को अपने देश के नागरिक जीवन का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जायगा। हमारे सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक जीवन की क्या विशेषताएं हैं, हमारी शिक्षा की क्या समस्याएं हैं, हमारे जीवन में धर्म का क्या स्थान है, हमारी समाज में स्त्रियों तथा हरीजनों को क्या अधिकार प्रदान किये गये हैं, हम अपने दैनिक जीवन से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में कहाँ तक सफल हुवे हैं—इन तथा दूसरे अनेक प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक के दूसरे भाग में विस्तृत रूप से देने का प्रयत्न किया गया है।

इंटरमीजियेट की कक्षाओं के विद्यार्थी इस पुस्तक को विशेष रूप से उपयोगी पायेंगे। इस पुस्तक में नये पाठय क्रम के अनुसार सभी विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। लेखक को पूर्ण आशा है कि जिस प्रकार भारत के सभी प्रांतों, विशेष कर उत्तर प्रदेश के अध्यायपकों तथा विद्यार्थियों ने, उसकी संविधान संबंधी अंग्रेज़ी पुस्तक का स्वागत किया था, उससे कहीं अधिक वह प्रस्तुत पुस्तक का स्वागत करेंगे। इस पुस्तक में सुधार करने के लिये यदि कोई भी रचनात्मक सुझाव पाठकों ने प्रस्तुत करने की कृपा की तो लेखक ऐसे सभी व्यक्तियों का आभारी होगा।

राजनारायण गुप्त

विषय-सूचि

अध्याय १

भारतीय विधान का ऐतिहासिक विकास

ईस्ट इन्डिया कम्पनी की स्थापना

भारतवर्ष में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना का इतिहास ही इस देश में वैधानिक साधनों का विकास है। ब्रिटेन निवासी हमारे देश की अतुल धन संपत्ति की चर्चाओं से आकर्षित हो कर सन् १६०० ईस्वी के पहले ही भारत में आ चुके थे। वे यहाँ के नागरिकों से व्यापारिक नाता जोड़ना चाहते थे। शताब्दियों से भारतवर्ष की अति कोमल तथा सुन्दर वस्तुओं जैसे दरेस, महीन कपड़े, रत्न, जवाहिरात, कसीदे और जरदोसी के काम, ऊनी और रेशमी वस्त्र, धातु के बर्तन, हाथी दाँत की बनी हुई वस्तुएँ, इत्र, फुलेल, रंगों की सामग्री, तथा इसी प्रकार की न जाने कितनी चीजों ने लन्दन, पैरिस, रोम, तथा योरोपियन देशों की दूसरी राजधानियों में तहलका मचाया हुआ था। योरोप की विभिन्न जातियाँ इन भारतीय वस्तुओं का लेन-देन करने, और मुगल सम्राटों से व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिये अत्यन्त इच्छुक थीं। वह एक दूसरे के विरुद्ध आपस में लड़ती थीं और भारतीय राजाओं से प्रार्थना करती थीं कि उन्हींको उनके देश से व्यापार करने की सुविधाएँ प्रदान की जायँ। इसी उद्देश्य को सामने रखते हुए सन् १६०० ई० में महारानी एलिजाबेथ के काल में एक रौयल चार्टर के आधीन ईस्ट इंडिया कम्पनी का जन्म हुआ। कम्पनी के संचालन के लिये २ गवर्नर तथा २४ संचालक नियुक्त किये गये। इन संचालकों का चुनाव कम्पनी के हिस्सेदारों द्वारा इंगलैंड में ही किया जाता था। इस कम्पनी को पार्लियामेंट द्वारा पूर्व में व्यापार करने की आज्ञा दे दी गई।

इसके बदले में कम्पनी को अपने लाभ का एक भाग सरकार को देना पड़ता था ।

कम्पनी की शक्ति में वृद्धि

आरम्भ में तो कम्पनी के प्रयत्न केवल व्यापार को बढ़ाने में ही लगे, उस समय उसे कोई राजनैतिक लालसा न थी । उसका उद्देश्य केवल व्यापार को बढ़ाना और भारत में फैक्टरियाँ और डीपो स्थापित करना ही था । उसने पहली फैक्टरी सूरत में सन् १६०० में, दूसरी मसूली-पट्टम में सन् १६१६ में, और तीसरी और चौथी, मद्रास और कलकत्ते में क्रमशः सन् १६६० और १६९० में स्थापित कीं । प्रारम्भ में कम्पनी को डच, पुर्तगाली, तथा फ्रांसिसी कम्पनियों का कड़ा सामना करना पड़ा । परन्तु इसने उन सब को परास्त कर दिया और अन्त में कर्नाटक के युद्ध के फलस्वरूप फ्रांसीसी कम्पनी का भी अन्त हो गया ।

कम्पनी ने अब-तक राजनैतिक मामलों में केवल तटस्थ नीति का ही पालन किया था । उसने सन् १७०७ तक, जब भारत में सम्राट औरंगजेब के शासन का अन्त हुआ, भारतीय राजनीति में कोई भाग नहीं लिया था । परन्तु इस महान् सम्राट् की मृत्यु के साथ ही साथ मुगल साम्राज्य पर मानों काठ टूट पड़ा । उसके अनेक टुकड़े हो गये और मुगल सत्ता का वह महान् भवन जिसका निर्माण करने के लिए ४०० वर्षों का निरन्तर प्रयत्न करना पड़ा था, ताश के पत्तों की भाँति गिरने लगा । भीतरी कलह और बाहरी आक्रमणों ने उसकी जड़ें हिला दीं । आधीन नवाबों और सरदारों ने इस राजनैतिक हल चल से लाभ उठा कर अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दीं और इस प्रकार सम्राट् के प्रति राजभक्ति से मुँह मोड़ लिया । दक्षिण में मरहठों ने अपनी सीमा को बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया और अनेक हिन्दू राजाओं ने अपनी खोई हुई स्वतंत्रता फिर से प्राप्त कर ली । विरोधी दलों में मुठभेड़ होने लगी और देश में खून की नदियाँ बहने लगीं । ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इस समय तक भारत के लोगों को ही अपने आधीन

नौकर रख कर तथा उन्हें सैनिक शिक्षा प्रदान कर के एक बड़ी सुसंगठित तथा सशस्त्र सेना का अपनी फैक्टरियों तथा दूसरी सम्पत्ति की रक्षा के लिए, निर्माण कर लिया था। भारतीय राजनीति के विरोधी दलों ने इस विदेशी सेना के पास सहायता के लिये पहुँचना प्रारम्भ कर दिया। इसके बदले में उन्होंने कम्पनी की सेवा में जमीन, अधिकार, और वहुत सी व्यापारिक सुविधाएँ देने का वचन दिया। कम्पनी ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया और इस प्रकार वह साम्राज्य स्थापना के मधुर स्वप्न देखने लगी। उसने कभी एक राजा को सहायता दी तो कभी दूसरे को। वह सदा उस ओर का ही पक्ष लेती थी जिधर उसे जीत की आशा होती और इस प्रकार उसे धीरे-धीरे विजेता राजाओं द्वारा अनेक गाँव तथा नगरों का अधिकार मिल गया। इस योजना के आधीन उसका अधिकार क्षेत्र इतना बढ़ा कि सन् १७५६ की प्लासी की लड़ाई के पश्चात् वह पूरे बंगाल की ही स्वामिनी बन गई। सन् १७६५ ई० में इलाहाबाद की संधि के फलस्वरूप उसे दीवानी का हक भी मिल गया। वैलेजली की सहायक सन्धि की नीति से उसका अधिकार क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो गया। लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने इस काम को और आगे बढ़ाया और लार्ड डलहौज़ी ने तो इसे अन्तिम सीमा तक पहुँचा दिया। १८५७ ई० के भारतीय विद्रोह ने मुगल सम्राट् की सत्ता को सदा के लिए भारत से लुप्त कर दिया और उसके स्थान पर ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत की भाग्य विधात्री बन गई। कम्पनी के व्यापारी अब हमारे देश के शासक बन गये। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इसके पश्चात् कम्पनी के हाथों में भारतीय शासन की बागडोर सौंपना ठीक न समझा और उसने स्वयं कम्पनी के नौकरों को बिदा कर अपने हाथों में ही हमारे देश का शासन सँभाल लिया।

पार्लियामेंट का कम्पनी के कार्य में हस्तक्षेप

जिस समय धीरे-धीरे ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रभुत्व भारतीय शासन पर निरन्तर बढ़ता ज़ा रहा था तो आरम्भ में, बहुत काल तक ब्रिटिश

सरकार ने उसके काम में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करना उचित न समझा। कम्पनी का संचालक बोर्ड भारत का शासन प्रबन्ध करने के लिये पूर्ण रूप से स्वतंत्र था। वह जैसे भी चाहता शासन का कार्य चलाता था परन्तु जिस समय कम्पनी का अधिकार क्षेत्र बहुत अधिक बढ़ गया और कम्पनी के व्यापारियों ने शासन के कार्य को भी एक व्यापार का ही रूप दे दिया, खूब यहाँ की जनता का शोषण किया, दिन दहाड़े लोगों को लूटा, उनसे दिल खोलकर रिश्वतें लीं, खूब अपने खजानों को भरा, सरकारी नौकरी के साथ साथ स्वतंत्र व्यापार किया, व्यापारियों से चीज़े खरीदीं; परन्तु उनको उनका मूल्य नहीं दिया, कारीगरों से अच्छी-अच्छी चीज बनवाई, परन्तु उन्हें वेतन नहीं दिया, और इस जुल्म, दमन तथा निर्लज्ज व्यवहार की कहानियाँ ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों तक पहुँची तो उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काम में हस्तक्षेप करने की ठानी। एक ओर तो कम्पनी के नौकर बेईमानी, लूट, रिश्वत तथा व्यापार से अपने घर का खजाना भर रहे थे और इंगलैंड लौट कर बड़े बड़े आलीशान महल तथा सम्पत्ति खरीद कर अपने प्रतिद्वन्दियों के हृदय में जलन तथा ईर्ष्या की ज्वाला को भड़का रहे थे, दूसरी ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का स्वयं का दिवाला निकला जा रहा था और सन् १७७० में वह पार्लियामेंट से कह रही थी कि उसकी गिरती हुई आर्थिक स्थिति को सँभालने के लिये उसे कर्ज़ दिया जाय। पार्लियामेंट ने यह सारे वृतांत सुन कर कम्पनी की हालत का सही पता लगाने के लिये एक गुप्त कमैटी की नियुक्ति की। इस कमैटी ने बतलाया कि कम्पनी के नौकरों के हाथ किस प्रकार जुल्म, बेईमानी, रिश्वत तथा लूट के रँग में रँगे थे और किस प्रकार सभ्य संसार में अंग्रेज़ शासकों तथा ब्रिटिश पार्लियामेंट का नाम बदनाम हो रहा था। इस वृतांत को सुन कर तथा ब्रिटेन की जनता के स्वयं कम्पनी के विरुद्ध आन्दोलन से प्रभावित हो कर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् १७७४ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रबन्ध को सुधारने के लिये "रैग्यूलेटिंग ऐक्ट" (Regulating Act) पास करने का निश्चय किया।

१. १७७४ का रैग्यूलेटिंग ऐक्ट

भारत के वैधानिक इतिहास में इस ऐक्ट का पास करना एक बड़े महत्व की बात थी, क्योंकि यह प्रथम अवसर था जब ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने भारत की संरक्षता की घोषणा की । भारतीय शासन में पार्लियामेंट के सीधे हस्तक्षेप का यह पहला ही उदाहरण था ।

इस ऐक्ट के द्वारा भारतवर्ष में एक दोहरी सरकार की स्थापना की गई । व्यापारिक तथा आर्थिक क्षेत्र में तो कम्पनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर को ही सारा काम सौंपा गया; परन्तु शासन की बागडोर बंगाल के गवर्नर-जनरल तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा चुने हुये चार ऐक्जीक्यूटिव कौंसिलरों के हाथ में दे दी गई । अब तक बम्बई और मद्रास के प्रान्त वहाँ के गवर्नरों तथा उनकी काउन्सिल द्वारा शासित होते थे । इस ऐक्ट के पास होने के पश्चात् वह बंगाल के गवर्नर-जनरल के आधीन कर दिये गये । इन गवर्नरों से गवर्नर जनरल के पूछे बिना किसी राज्य के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा करने अथवा किसी राज्य से संधि आदि करने की आज्ञा भी ले ली गई। इस ऐक्ट के द्वारा एक प्रधान न्यायालय स्थापित करने का आयोजन भी किया गया, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश, और चार सहायक न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई । इस न्यायालय का अधिवेशन कलकत्ते के फोर्ट विलियम किले में होता था । ऐक्ट के आधीन प्रथम गवर्नर जनरल वारेन-हेस्टिंग्ज को बनाया गया ।

रैग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष—रैग्यूलेटिंग ऐक्ट की धाराएँ संतोष-जनक सिद्ध नहीं हुई । कारण, इसके आधीन एक दोहरी सरकार की स्थापना की गई थी और गवर्नर जनरल तथा बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के अलग-अलग अधिकारों का स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया गया था । इस प्रकार इन दोनों अधिकारियों में संघर्ष रहने लगा । मुख्य न्यायालय के अधिकारों की सीमा भी ठीक-ठीक नहीं बतलायी गयी थी ।

ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल के सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार भी अपर्याप्त समझा गया। इन दोषों को दूर करने के लिए पार्लियामेंट ने एक और ऐक्ट पास किया जिसे 'पिट्स इंडियां ऐक्ट' कहते हैं।

२. १७८४ का पिट का इंडिया ऐक्ट

इस ऐक्ट के द्वारा गवर्नर जनरल की नियुक्ति का अधिकार पार्लियामेंट के हाथों से लेकर एक बार फिर, पहले की भाँति बोर्ड के संचालकों के हाथ में ही सौंप दिया गया। लंदन में एक 'बोर्ड आफ कंट्रोल' की नियुक्ति की गयी जिसके तीन सदस्य थे। इस बोर्ड का सभापति आगे चलकर 'भारत मंत्री' कहलाया। इस ऐक्ट के आधीन ईस्ट इंडिया कम्पनी के सब कार्य बोर्ड के निरीक्षण में होने लगे। बोर्ड आफ कंट्रोल की एक विशेष गुप्त कमेटी बनायी गयी जो भारत से संबंध रखनेवाले सब कार्यों की देखभाल करती थी। कम्पनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स को आज्ञा दी गयी कि वे अपने कार्यक्रम का ब्यौरा इस गुप्त कमेटी के द्वारा भेजा करें। इसी ऐक्ट के आधीन गवर्नर जनरल की कौउन्सिल के सदस्यों की संख्या ४ से घटाकर ३ कर दी गयी।

शासन की यह प्रणाली पहले से अधिक सफल हुई, और छोटे-मोटे परिवर्तनों को छोड़कर १९वीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत का शासन इसी प्रकार चलता रहा। सन् १७८५ ई० में जब लार्ड कार्नवालिस भारत में गवर्नर जनरल होकर आये तो उन्होंने ब्रिटिश सरकार से अपनी काउन्सिल के निर्णयों को रद्द करने की शक्ति अपने हाथ में माँगी। यह शक्ति उन्हें दे दी गयी।

३. १७९३ का चार्टर ऐक्ट

इस ऐक्ट के आधीन भारत में कम्पनी के कार्यकाल की अवधि और

बढ़ा दी गयी। साथ ही भारत में प्रथम बार इंडियन सिविल सर्विस का आयोजन किया गया।

४. १८१३ का चार्टर ऐक्ट

सन् १६०० ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी को पूर्वी देशों में व्यापार करने का जो एकाधिपत्य दिया गया था उस पर अब ब्रिटिश पत्रों में कड़ी आलोचना होने लगी। जनता ने कहा कि स्वतंत्र व्यापार के क्षेत्र में एकाधिपत्यिक (Monopoly) व्यापार का अधिकार दिया जाना उचित नहीं। सन् १८१३ के चार्टर ऐक्ट ने इसलिए कम्पनी से चाय को छोड़कर और सब चीजों में व्यापार करने का एकाधिपत्य छीन लिया। इसी ऐक्ट के अधीन, कम्पनी को प्रथम बार अधिकार दिया गया कि वह भारतीयों की शिक्षा पर एक लाख रुपया व्यय कर सके।

५. १८५३ का चार्टर ऐक्ट

इस ऐक्ट ने कम्पनी के व्यापारिक कार्यों की इतिश्री कर दी और उसे केवल एक राजनैतिक संस्था का स्वरूप प्रदान कर दिया। इस ऐक्ट के आधीन बंगाल का गवर्नर भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया और सन् १८५४ में बंगाल प्रान्त के लिए एक अलग गवर्नर की नियुक्ति कर दी गई। गवर्नर जनरल का कार्य अब सब प्रान्तों के शासन की देखभाल करना रह गया। उसे अपने काउन्सिल के साथ सारे प्रान्तों की सरकार के लिए कानून बनानें का अधिकार भी दे दिया गया। बम्बई और मद्रास प्रान्तों के गवर्नरों की कौंसिल के हाथ से अपने प्रान्त के शासन के लिए भी कानून बनाने का अधिकार छीन लिया गया। इसके अतिरिक्त एक और सदस्य (लॉ मैंबर) गवर्नर जनरल की कौंसिल में बढ़ा दिया गया। आरम्भ में इस नये सदस्य को कौंसिल के निर्णयों में, दूसरे सदस्यों की भाँति, राय देने का अधिकार नहीं दिया गया। वह केवल कानून संबंधी मामलों में ही राय दे सकता था। भारत की कौंसिल का प्रथम कानूनी सदस्य लार्ड

मैकौले को बनाया गया। उसी की प्रधानता में प्रथम बार सारे भारत के लिए एक से कानून बनाने के लिए एक ला कमीशन की नियुक्ति की गयी।

६. सन् १८५३ का चार्टर ऐक्ट

कम्पनी का चार्टर जब सन् १८५३ में फिर एक बार पार्लियामेंट के सम्मुख मंजूरी के लिए आया तो ब्रिटिश सरकार ने उसे दस वर्ष के लिए स्वीकार नहीं किया वरन् यह कहा कि उसका कार्यकाल केवल उस समय तक रहेगा जब तक पार्लियामेंट उसके विरुद्ध कानून न बनाये। इस ऐक्ट के आधीन और भी बहुत से परिवर्तन किये गये, उदाहरणार्थ, कम्पनी के संचालकों के हाथ से उच्च सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार छीन लिया गया। 'इंडियन सिविल सर्विस' की भर्ती प्रतियोगिता के आधार पर कर दी गयी। गवर्नर जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल के शासन तथा कानून संबंधी कामों में भेद कर दिया गया। अब तक यह दोनों काम एक ही सभा द्वारा किये जाते थे। नये ऐक्ट के आधीन कानून बनाने का कार्य करने के लिए, गवर्नर जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में ६ और सदस्य जोड़ दिये गये, साथ ही ला मेम्बर को ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल का, दूसरे सदस्यों की भाँति, साधारण सदस्य भी घोषित कर दिया गया।

सन् १८५७ में भारत की स्वाधीनता का प्रथम युद्ध प्रारम्भ हुआ। भारतीय जनता के इस विद्रोह की सारी जिम्मेदारी कम्पनी के दूषित प्रबंध पर लगायी गयी। इस विद्रोह ने कम्पनी के भाग्य पर सदा के लिए ताला डाल दिया। भारतीय जनता ही नहीं; अंग्रेजी जनता ने भी इस विद्रोह के पश्चात् कम्पनी को उठा लेने के लिए भारी आंदोलन किया और पार्लियामेंट को जनता की पुकार के सामने झुकना पड़ा। अतः सन् १८५८ में संपूर्ण भारत ब्रिटिश सरकार के आधीन हो गया।

७. १८५८ का ऐक्ट

इस ऐक्ट द्वारा भारत वर्ष की सरकार का सारा शासन प्रबंध सीधा

ब्रिटिश पार्लियामेंट को सौंप दिया गया। ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक मंत्री 'सैक्रेटरी आफ स्टेट' को वह सभी अधिकार सौंप दिये गये जो अब तक बोर्ड आफ कंट्रोल के हाथ में थे। सेक्रेटरी आफ स्टेट की सहायता के लिए एक १५ सदस्यों की कौंसिल बना दी गयी जिसमें कम से कम ९ सदस्य ऐसे होने थे, जो दस वर्ष तक भारत में रह चुके हों अथवा नौकरी कर चुके हों। इन सदस्यों को पार्लियामेंट में बैठने अथवा राय देने का अधिकार नहीं दिया गया। 'भारत मंत्री' अपनी कौंसिल का सभापति होता था। कौंसिल की राय को मानना उसके लिए अनिवार्य न था। वह केवल उन्हीं मामलों में अपनी कौंसिल की राय पर चलता था जिसमें भारतीय खजाने से रुपया खर्च करने का प्रश्न हो या इंडियन सिविल सर्विस संबंधित कोई विषय हो। बाकी सभी मामलों में कौंसिल की राय उसके लिए बाध्य नहीं थी। इस प्रकार १८५८ के ऐक्ट ने भारत के शासन में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया।

८. महारानी विक्टोरिया की घोषणा

इस ऐक्ट के पास होने के पश्चात् महारानी विक्टोरिया की ओर से एक घोषणा की गई, जिसमें ब्रिटिश सरकार की नीति के आवश्यक सिद्धान्तों को खोल कर समझाया गया और भारत की जनता और राजाओं को संतुष्ट करने का प्रयत्न किया गया।

इस घोषणा में कहा गया कि "ईश्वर के आशीर्वाद से जब देश में आन्तरिक शान्ति स्थापित हो जायेगी तो हमारी हार्दिक इच्छा है कि भारत की सर्वोत्मुखी उन्नति के लिये फिर से प्रयत्न किया जाय। जनता के हित के लिये सार्वजनिक सुविधाएँ प्रदान की जाय"। सरकार का प्रबंध सारी जनता के हित की भावना से किया जाय। जनता का हित ही हमारा हित हो, उसकी संतुष्टि में ही हम अपनी सुरक्षा और उसकी कृतज्ञता में ही हम आपना गौरव अनुभव करें। हमारी यह भी इच्छा है कि जहाँ तक हो

हमारी सारी प्रजा चाहे वह किसी भी वंश अथवा धर्म से सम्बन्ध रखती हो, विना किसी भेद भाव के हर प्रकार की सरकारी नौकरी अपनी शिक्षा तथा योग्यता के अनुसार प्राप्त कर सके। हमारी सारे सरकारी कर्मचारियों को कड़ी आज्ञा है कि वह हमारी प्रजा के धार्मिक विचारों अथवा विश्वास में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। हमारी यह इच्छा नहीं है कि हम अपने साम्राज्य की और अधिक सीमा बढ़ायें। हम देशी राजाओं की मान-मर्यादा का उतना ही आदर करेंगे जितना अपना"।

महारानी की यह घोषणा एक बहुत बड़ा महत्त्व रखती थी। इसमें केवल एक ही दोष था और वह यह कि भारतवासियों को कोई राजनैतिक अधिकार प्रदान करने की घोषणा नहीं की गई ना ही उन्हें देश के शासन में कोई उत्तरदायी भाग ही दिया गया। भारतीय जनता में शनैः शनैः राजनैतिक जाग्रति फैल रही थी। वह साधारण मन बहलाव की सुविधाओं से संतुष्ट नहीं हो सकती थी। वह चाहती थी कि उसे कुछ ठोस राजनैतिक अधिकार प्रदान किये जायँ। इसीलिये जब १८६१ में प्रथम कौंसिल ऐक्ट बना जिसका वर्णन आगे किया जायगा और उसमें केवल मुट्ठी भर भारतवासियों को कौंसिल में बैठ कर प्रश्न आदि पूछने की सुविधा प्रदान की गई, तो इससे जनता को किसी प्रकार का सन्तोष नहीं हुआ। अनेक कारणों से भारतीय जनता में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लहर दौड़ रही थी। इन कारणों में भारतीय एकता की स्थापना, पश्चिमी शिक्षा प्रणाली, यूरुप के देशों के इतिहास का ज्ञान, स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के नये आदर्शों का भान, तथा सन् १८८५ में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना मुख्य थीं।

६. १८६१ का इंडियन कौंसिल ऐक्ट

भारत में ब्रिटिश राज्य के इतिहास में १८६१ का वर्ष बड़े महत्त्व का है। इस वर्ष में ही भारतवासियों को प्रथम वार कौंसिल के कार्यक्रम में भाग लेने की आज्ञा दी गई। १८६१ के ऐक्ट का उद्देश्य १८५३ के चार्टर

ऐक्ट के दोषों को दूर करना था, जिसके द्वारा प्रांतीय विधान सभाओं को तोड़ कर केन्द्र में मिला दिया गया था।

इस ऐक्ट के द्वारा १८६१ में बम्बई और मद्रास में, १८६२ में बंगाल में, और १८८६ और १८९७ में क्रमशः पश्चिमोत्तरी प्रांत और पंजाब के लिये स्थानीय विधान सभाएँ बना दी गईं। इन विधान सभाओं में चार से आठ तक सदस्य थे जिसमें कम से कम आधे गैर सरकारी भारतीय होते थे, जिनकी नियुक्ति गवर्नर महोदय द्वारा की जाती थी। स्थानीय विधान सभाओं को ऐसे विषयों पर कानून बनाने का अधिकार नहीं था जिन पर सारे भारतवर्ष के लिये एक सी ही व्यवस्था की आवश्यकता थी जैसे कर लगाना, सिक्का चलाना, दंड विधान बनाना आदि। प्रांतीय सभा में कोई भी बिल प्रस्तुत करने के लिये गवर्नर जनरल की 'पूर्व' आज्ञा आवश्यक थी। इसके पश्चात्, बिल पास हो जाने के पश्चात् भी वह उस समय तक कानून का रूप धारण नहीं कर सकता था जब तक गवर्नर जनरल उस पर हस्ताक्षर न कर दें। इस प्रकार १८६१ के ऐक्ट के अनुसार स्थानीय विधान सभाओं को कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये, उन्हें केवल शासन के कार्य का अनुभव प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया गया।

इसी ऐक्ट के आधीन केन्द्र में एक पाँचवाँ अर्थ सदस्य गवर्नर जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में बढ़ा दिया गया। व्यवस्थापिका सभा में भी कुछ और सदस्य बढ़ाये गये। ऐक्ट में कहा गया कि जिस समय गवर्नर जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल कानून बनाये तो उसमें कम से कम ६ और अधिक से अधिक १२ और सदस्य जोड़े जायँ। इन सदस्यों में कम से कम आधे ऐसे होने चाहिए जो गैर सरकारी सदस्य हों। गैर सरकारी सदस्यों में कुछ सदस्यों का भारतीय होना भी आवश्यक कर दिया गया। ऐसे सभी सदस्यों को जो गवर्नर जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में कानून बनाने के कार्य में सहायता देते थे, दो वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता था। सभी कानूनों के लिए गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक रक्खी गई। भारत

मंत्री को भी अधिकार दिया गया कि वह यदि चाहें तो गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत कानूनों को रद्द कर सकते हैं।

आलोचना—इस ऐक्ट की धाराओं को ध्यान से समझने पर प्रतीत होता है कि भारतवासियों के हाथ में कोई महत्त्वपूर्ण अधिकार नहीं दिये गये। व्यवस्थापिका सभा कोई अलग संस्था नहीं बनायी गयी, गवर्नर जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में ही कुछ थोड़े से मनोनीत सदस्यों को जोड़कर, जिनमें अधिकतर अभारतीय थे, वह संस्था बना दी गयी। इस सभा में एक भी निर्वाचित भारतवासी न था और इसलिए वह सरकार की मनमानी कार्यवाही पर किसी भी प्रकार की रोक नहीं लगा सकती थी।

१८६१ के सुधारों ने भारतीयों के किसी भी वर्ग को संतुष्ट नहीं किया। अतः दस वर्ष पश्चात् समस्त भारतीय जनता द्वारा अँगरेज़ों के हाथों से अधिकार प्राप्त करने के लिये व्यवस्थित आन्दोलन किया गया। इस आंदोलन में बहुत सी हिन्दुस्तानी संस्थाओं, जैसे ब्रिटिश इंडियन एसोशियेशन, बंगाल नेशनल लीग, बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसियेशन, इत्यादि ने भाग लिया। सन् १८८५ में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना भी कर दी गयी। इन अलग-अलग संस्थाओं के आंदोलनों के फलस्वरूप सन् १८९२ में एक नया ऐक्ट पास किया गया जिसका नाम लार्ड क्रास का इंडियन कौंसिल ऐक्ट आफ १८९२ (Lordcross's Indian Council Act of 1892) था।

१०. १८९२ का इंडियन कौंसिल ऐक्ट

इस ऐक्ट के द्वारा इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल की सदस्यता और बढ़ा दी गयी। सन् १८६१ के ऐक्ट के मातहत इस कौंसिल में नामजद प्रतिनिधियों की अधिक से अधिक संख्या १२ थी। यह संख्या अब बढ़ाकर १६ कर दी गयी। स्थानीय विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या

बढ़ा दी गई । बम्बई और मद्रास प्रान्तों में सदस्यों की संख्या २०, संयुक्त प्रान्त में १५, और पंजाब और बर्मा में ९ कर दी गयी। इस ऐक्ट ने गैर सरकारी सदस्यों के सरकार की आलोचना करने के अधिकारों में भी बढ़ोतरी कर दी । उन्हें कौंसिल में प्रश्न पूछने का अधिकार दे दिया गया । वार्षिक वजट भी कौंसिल के सामने रक्खा जाने लगा । परन्तु, गैर सरकारी सदस्य उस पर केवल अपनी सम्मति ही प्रगट कर सकते थे, उसमें न किसी प्रकार की घटत-बढ़त ही कर सकते थे और न वोट ही दे सकते थे । 'काम रोको प्रस्ताव' प्रस्तुत करने का अधिकार भी सदस्यों को नहीं दिया गया । चुनाव की प्रणाली इस ऐक्ट के आधीन भी स्वीकार नहीं की गई । केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं—दोनों में ही, सदस्यों को विभिन्न संस्थाओं जैसे चैम्बर्स आफ कामर्स, कार्पोरेशन, जिला बोर्ड, विश्व-विद्यालय, ज़मींदार सभा, इत्यादि की सिफारिश पर नामजद किया जाता था । यह सिफारिशें भी गवर्नर जनरल मानने के लिए बाध्य नहीं था । वह उनके विरुद्ध भी सदस्यों को नामजद कर सकता था ।

आलोचना-व्यवस्थापिका सभाओं के ये मनोनीत सदस्य जिनके हाथ में किसी भी प्रकार के वास्तविक अधिकार नहीं थे भारत की जनता के किसी भी भाग को संतुष्ट नहीं कर सके । अत: ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीय जनता में असंतोष बढ़ने लगा। इस समय तक कांग्रेस भी पूरी शक्ति के साथ काम करने लगी थी । लार्ड करजन द्वारा किये गये बंगाल विभाजन ने असंतोष की आग को और भी भड़का दिया । ब्रिटिश सरकार ने इस असंतोष को गोली, बन्दूक और वर्वरतापूर्ण व्यवहार से दबाना चाहा; परन्तु इसका फल विपरीत ही हुआ । स्थान-स्थान पर आतंककारी घटनायें घटने लगीं । बम और पिस्तौल की संस्थाओं ने जन्म लिया । जब स्थिति सँभाल में न आयी तो ब्रिटिश सरकार ने सोचा कि भारतवर्ष के उदार दलों को संतुष्ट करने के लिए उन्हें थोड़े से सुधार और दे दिये जायँ । इसी समय भारतवर्ष के सौभाग्य से सन् १९०५ के अन्त में इंगलैंड की सरकार में एक

परिवर्तन हुआ जिससे टोरियों के स्थान पर उदार-दलीय (Liberal) सरकार की स्थापना हो गई। इस सरकार में लार्ड मोर्ले भारत मंत्री बने। वायसराय भी बदल दिये गये, उनके स्थान पर लार्ड मिंटो को गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया। वह एक वयोवृद्ध, उदार हृदय राज-नीतिज्ञ थे। इनके शासन में एक कमैटी बिठाई गई जिसको भारतीय शासन में सुधार पेश करने का काम सौंपा गया। इस कमैटी की सिफा-रिशों पर भारत में मिन्टो मोर्ले सुधारों (Minto Morley Reforms) की घोषणा की गई।

११. १९०९ का इंडियन कौंसिल ऐक्ट

इस ऐक्ट ने केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं का पुनर्संगठन किया, और उनमें गैर सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी। इम्पीरियल कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ६० कर दी गई जिसमें ३३ मनोनीत और २७ निर्वाचित रक्खे गये। मनोनीत सदस्यों में २८ सरकारी और ५ गैर सरकारी होते थे। निर्वाचिन की प्रणाली प्रत्यक्ष नहीं वरन् अप्रत्यक्ष (Indirect) रक्खी गई। बम्बई, बंगाल तथा मद्रास के बड़े प्रान्तों की विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या ५० और शेष सबकी ३० नियत कर दी गई। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की भाँति प्रान्तों की विधान सभाओं में सरकारी सदस्यों का बहुमत नहीं रक्खा गया। गवर्नर जनरल की ऐक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल तथा बंगाल, मद्रास, और बम्बई की गवर्नर की कौंसिल में एक भारतवासी को नियुक्त करने की अनुमति दे दी गई। गबर्नर जन-रल की कार्यकारिणी समिति के सबसे पहिले भारतीय सदस्य, लार्ड सिनहा नियुक्त किये गये। दो भारतवासियों को भारत मंत्री की कौंसिल का भी सदस्य नियुक्त किया गया।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के अधिकारों की सीमा बढ़ा दी गई। उसे बजट पर बहस करने का अधिकार दे दिया गया। सदस्यों को पूरक

प्रश्न करने की भी अनुमति प्रदान कर दी गई। जनता के हित की बातों पर पूरे विचार विमर्श की भी आज्ञा दे दी गई।

आलोचना--परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इस ऐक्ट के द्वारा भी कोई वास्तविक शक्ति भारतवासियों के हाथ में नहीं दी गयी। गवर्नर जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल का व्यवस्थापिका सभा पर अब भी पहिले जैसा ही नियंत्रण था। इसके अतिरिक्त इस ऐक्ट द्वारा भारत में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली की वह दूषित प्रथा लागू कर दी गई जिसके कारण भारत के दो टुकड़े हुए और सारे देश का सामाजिक जीवन अस्तव्यस्त हो गया।

१२. महायुद्ध और मौन्टेग्यू की घोषणा

सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। इस समय ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि वह प्रजातंत्र, न्याय, आत्मनिर्धारण के सिद्धान्त तथा स्वतंत्रता की रक्षा के लिए युद्ध कर रही है। इस समय भारतवासियों ने कहा, "इस महायुद्ध में हम भी अपना बहुमूल्य रक्त बहा रहे हैं, हमारे देश में भी वही सिद्धान्त लागू किये जायँ जिसके लिए युद्ध लड़ा जा रहा है, अर्थात् हमें स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त हो," भारतवासियों की इस माँग को ध्यान में रखकर और साथ ही भारतीय जनता के उस बलिदान को देखते हुए जो इसने महायुद्ध में किया था, तत्कालीन भारत मंत्री ने २० अगस्त, १९१७ को हाउस आफ कौमन्स में, ब्रिटिश सरकार की ओर से एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने भारत के प्रति अंग्रेजी शासन की नीति को स्पष्ट करके बतलाया। यह घोषणा इस प्रकार थी :—

"ब्रिटिश सरकार की नीति जिससे भारत सरकार पूर्ण रूप से सहमत है, यह है कि भारतवासियों को शासन के हरएक विभाग में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ भाग दिया जाय, और ऐसी संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाय

जो स्वायत्त शासन के कार्य में लगी हुई हैं, जिससे भारत में शनैः शनैः एक उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की नींव रक्खी जा सके और वह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहकर स्वतंत्र रूप से काम कर सके।"

इस घोषणा को देखने से प्रतीत होगा कि यद्यपि यह घोषणा ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण में एक भारी परिवर्तन की परिचायक थी; परन्तु फिर भी इससे भारत के शासन में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा। कारण, इस घोषणा में केवल ब्रिटिश सरकार का भारत के प्रति क्या ध्येय है यह बतलाया गया था, और इस ध्येय की पूर्ति में कितना समय लगेगा, यह कुछ नहीं कहा गया। इस घोषणा के फलस्वरूप भारतीय विधान में कुछ सुधारों की घोषणा तो अवश्य की गयी; परन्तु वह सुधार जनता की दृष्टि से पूर्ण-रूप से अपर्याप्त थे।

सन् १९१७ के शीतकाल में मौन्टैग्यू भारत में आये और उन्होंने लार्ड चैम्सफोर्ड के साथ मिलकर समस्त भारत का भ्रमण किया। उनसे बहुत से शिष्टमंडलों ने भेंट की और उन्हें बहुत से मानपत्र दिये गये। सन् १९१८ ई० में उन्होंने मिलकर ब्रिटिश पार्लियामेंट को एक रिपोर्ट पेश की जिसका नाम 'मौंट-फोर्ड रिपोर्ट' पड़ा, और इसी के आधार पर सन् १९१९ का गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट पास किया गया।

१३. सन् १९१९ का गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट

इस ऐक्ट द्वारा केन्द्रीय सरकार की आकृति बिलकुल बदल दी गयी, और प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली (Dyarchy) का आरम्भ किया गया। इस कानून के मुख्य अंगों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :—

गृह सरकार (Home Government)

(१) लन्दन स्थित भारत मंत्री (Secretary of State for India) का वेतन अभी तक भारत के कोष से दिया जाता था, परन्तु इस ऐक्ट के द्वारा वह भार अब इंगलैंड के कोष पर डाल दिया गया। उसकी परिषद् (Council) के सदस्यों की संख्या ८ से लेकर १२ तक कर दी गई।

भारत सरकार पर उसके शासनाधिकार वैसे ही रहे, परन्तु उसे अपने अधिकार केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के हवाले करने की शक्ति दे दी गई।

(२) भारत के हाई कमिश्नर का एक नया कार्यालय लन्दन में खोल दिया गया और उसका वेतन तथा व्यय भारत सरकार पर डाला गया।

केन्द्रीय शासन

(३) केन्द्र में एक भवन वाली इम्पीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल के स्थान पर द्विभवनीय व्यवस्थापिका सभा बना दी गई। उच्च भवन का नाम राज्य परिषद (council of state) और निम्न भवन का नाम विधान सभा (legislative Assembly) रक्खा गया। परिषद के ६० और विधान सभा के १४५ सदस्य नियत किये गये। इन सभाओं के अधिकार भी बढ़ा दिये गये। उन्हें कानून बनाने, प्रश्न करने, तथा प्रस्ताव पास करने की शक्ति दे दी गई। कुछ प्रतिबन्धों के आधीन उन्हें बजट के कुछ अंशों पर भी मत देने का अधिकार दे दिया गया, यद्यपि राजस्व संबंधी अन्तिम शक्ति वायसराय के हाथ में ही रही। विधान सभा की अवधि ३ वर्ष और राज्य परिषद की ५ वर्ष रक्खी गई।

(४) गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ८ कर दी गई। इनमें से ३ सदस्य भारतीय और ३ सदस्य ऐसे रक्खे गये जो कम से कम १० वर्ष तक किसी उच्च सरकारी पद पर काम कर चुके हों और एक सदस्य इंगलैंड या भारत के हाईकोर्ट का बैरिस्टर रह चुका हो।

गवर्नर जनरल को अधिकार दिया गया कि विशेष परिस्थितियों में वह अपने विशेषाधिकारों से कार्यकारिणी के सदस्यों की सम्मति को अस्वीकार कर सके। गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों में कार्य का विभाजन इस प्रकार किया गया:—

(१) राजनीतिक सदस्य (गवर्नर जनरल) (२) रक्षा सदस्य (सेनापति) (३) राजस्व सदस्य (४) व्यापार सदस्य, (५) न्याय सदस्य (६) उद्योग तथा श्रम सदस्य (७) यातायात सदस्य तथा (८) शिक्षा और स्वास्थ्य सदस्य ।

प्रान्तीय शासन

(५) प्रान्तीय विधान सभाओं में भी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई औरयह निश्चित किया गया कि कम से कम ७० प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होंगे। उत्तर प्रदेश (यू० पी०) में १२३ सदस्य नियुक्त किये गये जिनमें से १०० चुनाव द्वारा और २३ गवर्नर द्वारा नामजद होते थे। विधान सभाओं के अधिकार भी बढ़ा दिये गये और मतदाताओं की संख्या भी।

(६) गवर्नर की कार्यकारिणी (Executive) में आंशिक उत्तर-दायी शासन अर्थात् द्वैध शासन (Dyarchy) प्रारम्भ किया गया। इसके अनुसार प्रशासन के दो भाग किये गये। (१) रक्षित (Reserved) विभाग और (२) हस्तान्तरित (Transferred) विभाग। रक्षित विभागों का शासन तो राज्यपाल (गवर्नर) अपनी कार्यकारिणी की सहायता से करते रहे। उस विभाग में राजस्व (Revenue), न्याय (Justice) कारावास (Jail), नहर (Irrigation) तथा जंगलात (Forest) संबंधी महकमे थे। हस्तान्तरित विभाग में शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन, ग्राम सुधार, कृषि आदि का प्रबंध मंत्रिमंडल के आधीन कर दिया गया। यह मंत्री निर्वाचित सदस्यों में से लिये जाते थे। रक्षित विभागों में भी आधे के लगभग सदस्य भारतीय ही रक्खे जाते थे।

स्थानीय स्वशासन

नगरपालिकाओं (Municipalities) और जिला मंडलियों (District Board) को अधिक अधिकार दे दिये गये। उनमें भी

निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और प्रधान भी निर्वाचित नियत किये गये। मतदाताओं की भी संख्या बढ़ा दी गई।

विधान की आलोचना—मान्टफोर्ड के सुधारों को समस्त भारतवासियों ने असंतोषजनक और अपर्याप्त पाया। युद्ध में सहायता के बदले जो भारतवासी अंग्रेजों से बहुत कुछ अधिकार पाने की आशा लगाये बैठे थे उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। क्षोभ और क्रोध की ज्वाला रौलट एक्ट पास होने और जलियाँवाला बाग की हत्याओं से और भी भड़क उठी। पंजाब में मार्शल ला और खिलाफत आंदोलन ने जलती आग पर तेल का काम किया। इस प्रकार कांग्रेस ने व्यवस्थापिका सभाओं का बहिष्कार कर के देशव्यापी 'असहयोग आंदोलन' आरम्भ कर दिया। इसके शान्त होने पर श्री मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास की अध्यक्षता में स्वराज्य पार्टी बनायी गई जिससे व्यवस्थापिका सभाओं के अन्दर से भी विरोध की नीति पर काम किया जा सके। तदनन्तर स्वतंत्र उपनिवेश (Dominion Status.) की माँग की गई।

१४. साइमन कमीशन

सन् १९१९ के ऐक्ट में १० वर्ष के पश्चात् एक शाही कमीशन की नियुक्ति का आयोजन किया गया था जो कि भारत जाकर नये शासन के हानि लाभ की जाँच करता और शासन विधान में परिवर्तन के साधन रखता। सन् १९२७ में अर्थात् निश्चित समय से दो वर्ष पहले ही सर जान साइमन की अध्यक्षता में यह कमीशन भेजा गया। परन्तु, इस कमीशन का कोई भी सदस्य भारतीय नहीं था, इसलिए भारतवासियों ने इसका पूर्ण रूप से वहिष्कार किया।

१५. प्रथम गोलमेज सम्मेलन (१२ नवम्बर १९३० से जनवरी सन् १९३१ तक

इसी समय इंगलैंड के शासक मंडल में परिवर्तन हुआ। अनुदार पार्टी (Conservative) के स्थान पर मजदूर (Labour) दल के हाथ

में राज्य सत्ता आ गई। उसने भारतीयों से विचार विनिमय करने के लिए लंदन में एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया। परन्तु सम्मेलन बुलाते समय यह घोषणा नहीं की गई कि भारत को स्वतंत्र उपनिवेश बना दिया जायगा। इसलिये कांग्रेस ने इसका बहिष्कार करके देश-व्यापी असहयोग आंदोलन आरम्भ कर दिया।

यह आंदोलन बड़ा सफल हुआ और सहस्रों सत्याग्रही जेलों में गये। तो भी लंदन में नवम्बर १९३० में सम्मेलन हुआ जिसमें १३ प्रतिनिधि राजवाड़ों के और ५७ ब्रिटिश भारत के सम्मिलित हुए। कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि इस सम्मेलन में शामिल नहीं हुआ। सम्मेलन ने निर्णय किया कि भारत में संघ शासन (Federation) बनाया जाय और विशेष प्रतिबन्धों के साथ केन्द्र में उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय।

सम्मेलन के अनन्तर श्री जयकर और सर तेज बहादुर सप्रू के प्रयास से कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच एक संधि कराई गई जिसे 'गांधी-इरविन समझौता' कहते हैं। इस संधि द्वारा सब सत्याग्रही जेल से मुक्त कर दिये गये और गांधी जी ने सितम्बर सन १९३१ में दूसरी गोलमेज सभा में भाग लेने का निश्चय किया।

१६. दूसरा गोलमेज सम्मेलन (७ सितम्बर से १८ दिसम्बर १९३१ तक)

जब दूसरा सम्मेलन आरम्भ हुआ तो इंगलैंड में मजदूर दल की सरकार के स्थान पर एक मिलीजुली सरकार बन गई थी जिसमें प्रधान मंत्री तो पूर्ववत् रैमजे मैकडानल्ड ही थे परन्तु मंत्रियों की अधिकतर संख्या अनुदार (Conservative) दल के सदस्यों की थी। भारत सचिव के पद पर भी उदार दलीय सर वैजवुड बैन के स्थान पर एक कट्टरपंथी अनुदार दलीय सर सैम्बुल होर नियत हो गये थे। महात्मा गांधी के उपस्थित होने पर भी यह सम्मेलन सफल न हो सका; कारण, चालाक अंग्रेजों ने अपने मनमाने चुने हुए भारतीय प्रतिनिधियों के सम्मुख साम्प्रदायिक

समस्या रख दी और उनसे कहा कि पहिले तुम इसे सुलझा लो, फिर और बातों पर विचार होगा। फल यह हुआ कि साम्प्रदायिक नेता अंग्रेजों की पट्टी पढ़कर किसी भी समझौते पर न पहुँच सके और सम्मेलन असफल रहा।

महात्मा गांधी अति निराश होकर भारत लौटे। यहाँ उन्होंने देखा कि समस्त भारत में लार्ड विलिंगडन की पुलिस, फौज और गोलियों का शासन चल रहा है और हजारों देशभक्त जेलों में ठूँस दिये गये हैं। कुछ काल पश्चात् महात्मा गांधी को स्वयं भी कारागार में धकेल दिया गया।

१७. साम्प्रदायिक निर्णय (अगस्त १९३२)

जब गोलमेज सम्मेलनों में साम्प्रदायिक नेता आपस में किसी प्रकार का समझौता न कर सके तो प्रधान मंत्री श्री रैमजे मैकडानल्ड ने साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा करने का कार्य स्वयं सँभाला। श्री मसानी ने लिखा है कि "इस निर्णय को पंचाट (Award) कहना अशुद्ध है। पंचाट तो पंचायत के फैसले को कहते हैं और वह भी तब जब झगड़ेवाले दल स्वयं पंचायत का निर्माण करें। इस मामले में तो झगड़े का निर्णायक अंग्रेजी प्रधान मंत्री को किसी ने बनाया ही नहीं था। और, न गोलमेज सभा के साम्प्रदायिक नेता ही सम्प्रदायों के चुने हुए प्रतिनिधि थे। वह तो ब्रिटिश सरकार द्वारा ही चुने हुए उनके पिट्ठू थे। इसलिये यदि वह कोई सरपंच-नामा प्रधान मंत्री के नाम लिख भी देते तो भी उसका निर्णय भारत को मान्य न होता। परन्तु यहाँ तो ऐसा भी कोई सरपंचनामा रैमजे मैकडानल्ड के लिए नहीं लिखा गया था।"

साम्प्रदायिक पंचाट ने भारतीयों को मतों के आधार पर विभक्त करके आपस में लड़ने-भिड़ने को प्रोत्साहित किया और धर्मान्धिता तथा मिथ्या जातीयता के प्रदर्शन को भारी उत्तेजना दी।

पंचाट द्वारा विधान सभाओं में सीटों का विभाजन इस प्रकार किया गया:

साधारण ७०५, हरिजन ७१, पिछड़े हुए क्षेत्र ७०, सिख ३५, मुसलमान ४८९, ईसाई २१, एंग्लो इंडियन १२, योरुपियन २५, व्यापार व उद्योग के प्रतिनिधि ५४, जमींदार ३५, विश्वविद्यालय ८, तथा श्रमिक ३८।

१८. पूना का समझौता (१९३२)

साम्प्रदायिक पंचाट ने अछूतों को पृथक निर्वाचन का अधिकार देकर उन्हें हिन्दू समाज से विभक्त कर दिया था। महात्मा गांधी ने इस अन्याय का मुकाबिला करने के लिये आमरण व्रत धारण करने का निश्चय किया। व्रत धारण करने के पश्चात् जब उनकी दशा अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई तो हिन्दू और अछूत नेताओं ने मिलकर पूना में एक समझौता किया जिसके द्वारा अछूतों को ७१ स्थानों के बजाय १४८ स्थान दे दिये गये परन्तु उनको हिन्दुओं से अलग रहकर नहीं उनके साथ मिलकर राय देने का अधिकार दिया गया।

इस समझौते से अछूतों के स्थान दुगुने से भी अधिक हो गये; परन्तु बंगाल के हिन्दुओं के साथ इससे बड़ा अन्याय हुआ। वहाँ हिन्दुओं की समस्त सीटें ८० थीं। इसमें से ३० अछूतों के लिए सुरक्षित हो गयीं और शेष के लिये भी निर्वाचन लड़ने का अधिकार उन्हें दे दिया गया। इस प्रकार विधान सभा के २५० स्थानों में से हिन्दुओं को केवल ५० से भी कम सीटें प्राप्त हुईं, अर्थात् १९ प्रतिशत, जब कि उनकी जनसंख्या ४० प्रतिशत थी और वह ८० प्रतिशत कर देते थे।

१९. तीसरा गोलमेज सम्मेलन (१६ नवम्बर से २४ दिसम्बर १९३२ तक)

साम्प्रदायिक पंचाट के घोषित होने के पश्चात लंदन में तीसरी गोलमेज कांफ्रेंस हुई। इसमें भी कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं

हुआ। पहिले के सम्मेलनों की अपेक्षा यह एक छोटी सी बैठक थी जिसमें कि पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कुछ काम किया गया।

श्वेत पत्र (White Paper) १८ मार्च १९३२

तीसरे गोलमेज सम्मेलन की समाप्ति पर भारत में वैधानिक सुधारों के विषय में ब्रिटिश सरकार ने मार्च सन १९३३ में एक 'श्वेत पत्र' प्रकाशित किया। इसमें वर्णित योजनाओं ने देशभर में एक निराशा तथा क्षोभ की लहर दौड़ा दी और सब पक्षों ने निश्चय किया कि वह इस योजना को स्वीकार नहीं करेंगे।

२०. संयुक्त पार्लिमेंटरी कमेटी और १९३५ का विधान

श्वेत पत्र एक बिल के रूप में ब्रिटिश पार्लियामेंट के सम्मुख रक्खा गया और उसकी जाँच के लिए सब ब्रिटिश पार्टियों की ओर से एक संयुक्त समिति बना दी गई। इस कमेटी के सम्मुख राय देने तथा अपने सुझाव पेश करने के लिए कुछ भारतीय भी नियुक्त किये गये। इन भारतीय संस्थाओं ने एक मैमोरेंडम में कमेटी के सम्मुख कुछ न्यूनतम माँगे रक्खीं जिनसे कि भारतवासियों को कुछ संतोष हो सकता था। परन्तु भारत के गोरे शासकों को यह माँगें भी स्वीकार न हुईं और अपने अन्तिम रूप में बिल और भी कलुषित बना दिया गया। २ अगस्त सन १९३५ को पार्लियामेंट ने भारतीय विधान पास कर दिया। इसमें विशेष बात यह थी कि कहीं भी इस विधान में भारत को स्वतंत्र उपनिवेश (Dominion Status) बनाने का जिक्र तक न किया गया था।

इस विधान में ४७८ धाराएँ तथा १६ परिशिष्ट थे। ४५५ पृष्ठों पर छपे हुए इस विधान की मुख्य-मुख्य बातें यह थीं :—

(१) **गृह सरकार**—इंगलैंड में स्थित गृह सरकार के स्वरूप में इस विधान के अन्तर्गत समुचित परिवर्तन किया गया। भारत मंत्री की कौंसिल तोड़ दी गई और उसके स्थान पर एक परामर्शदाताओं की सभा बना दी

गई। भारत मंत्री के अधिकारों में भी काफी कमी कर दी गई जिससे नये विधान के अन्तर्गत प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण और केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी शासन का आरम्भ हो सके ।

(२) **संघ विधान**—ऐक्ट के अन्तर्गत सारे सूबों तथा रियासतों को मिलाकर एक संघ स्थापित करने की योजना रक्खी गई। इस योजना के आधीन केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए प्रान्तों तथा केन्द्र के आधीन कार्य का विभाजन इस प्रकार किया गया कि ५९ विषयों पर केन्द्रीय सरकार को कानून बनाने का अधिकार दिया गया, ५४ विषयों पर प्रान्तीय सरकारों को और ३६ विषय समवर्त्ती (concurrent) रक्खे गये जिन पर दोनों—प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारें कानून बना सकती थीं, परन्तु विरोध की दशा में केन्द्रीय कानून ही सर्वोपरि माना जाता था। बचे हुए अधिकार (Residuary powers) केन्द्र के आधीन ही रक्खे गये ।

(३) **केन्द्रीय शासन**—केन्द्रीय सरकार के आधीन एक द्वैध शासन प्रणाली (dyarchy) के आरम्भ की योजना रक्खी गई। रक्षा, विदेशों से संबंध, कबाइली इलाके तथा ईसाइयों के धर्म संबंधी विषय रक्षित (Reserve) रक्खे गये। शेष अधिकार मंत्रियों के हाथ में सौंपे जाने थे। परन्तु इन हस्तान्तरित (Transferred) विभागों में भी गवर्नर जनरल को मंत्रियों के काम में हस्तक्षेप करने के विशेष अधिकार प्रदान किये गये ।

(४) **प्रान्तीय शासन**—सूबों में द्वैध शासन प्रणाली का अन्त करके पूर्ण उत्तरदायी शासन की नींव रक्खी गई। सब अधिकार मंत्रियों के हाथ में सौंप दिये गये। परन्तु, केन्द्र की भाँति प्रान्तों में भी गवर्नरों के हाथ में विशेष अधिकार दिये गये जिससे वह मंत्रियों के काम में मनमाना हस्तक्षेप कर सकें। कुछ प्रान्तों में इस ऐक्ट के आधीन दो भवन बना दिये गये। नामज़द सदस्यों की संख्या बहुत कम कर दी गई।

(५) **मताधिकार**— १९१९ के विधान में भारत की केवल ३% जनता को मत देने का अधिकार दिया गया था। नये विधान में यह संख्या बढ़ा कर १३% कर दी गई और बहुत सी स्त्रियों को राय देने का अधिकार दे दिया गया।

(६) **नये प्रान्त**—ऐक्ट के आधीन बर्मा भारत से अलग कर दिया गया। सिंध तथा उड़ीसा के दो नये सूबे बना दिये गये और कुल प्रान्तों की संख्या ११ निश्चित कर दी गई।

(७) **फिडरल कोर्ट तथा रिजर्व बैंक की स्थापना**—संघ शासन होने के कारण नये विधान के अन्तर्गत भारत में एक संघीय न्यायालय तथा रिजर्व बैंक की स्थापना की गई। इन दोनों संस्थाओं का एक संघीय विधान के अन्तर्गत होना नितान्त आवश्यक है।

२१. १९३५ के संविधान पर कार्य

नये संविधान के अन्तर्गत सन् १९३७ में प्रान्तों में चुनाव हुवे। इन चुनावों में भारत के ७ प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। कांग्रेस १९३५ के विधान से बिलकुल असंतुष्ट थी और वह किसी भी दशा में उसे स्वीकार करना न चाहती थी; परन्तु विरोधी दलों को सरकार की सत्ता हड़प करने से रोकने के लिये उसने चुनावों में भाग लिया और फिर प्रान्तों के गवर्नरों के आश्वासन देने पर कि वह मंत्रियों के काम में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करेंगे उसने ८ प्रान्तों में अपने मंत्रि-मंडल बनाये। शेष प्रान्तों में स्वतंत्र दलों की सरकारें बन गईं। इस प्रकार १९३५ के विधान का प्रान्तीय भाग कार्यान्वित हो गया परन्तु संघीय भाग चालू न हो सका। इसके दो मुख्य कारण थे— एक तो यह कि केन्द्रीय शासन व्यवस्था इतनी असन्तोषजनक थी, और उसके अन्तर्गत मंत्रियों को इतने कम अधिकार सौंपे गये थे, कि भारत की प्रत्येक राजनीतिक पार्टी ने उसका विरोध किया और उसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, और दूसरे यह कि रियासतों ने भी संघीय शासन में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया। प्रान्तों में

कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया। उन्होंने किसानों की अवस्था सुधारने, कषि में उन्नति करने, उद्योग-धंधों को सहायता देने, शिक्षा प्रसार तथा मादक वस्तुओं की बिक्री को रोकने के लिये अनेक योजनाएँ बनाईं। उनका कार्य इतना अच्छा रहा कि न केवल भारतीयों ने वरन् बहुत से इंगलैंड और दूसरे देशों के राजनीतिक नेताओं ने उनके यकार्य की भूरिभूरि प्रशंसा की।

२२. दूसरा महायुद्ध और भारत का स्वतंत्रता संग्राम

सन् १९३९ में दूसरा योरूपीय युद्ध छिड़ा। ब्रिटिश सरकार ने भारत में केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों की राय लिये बिना ही हमारे देश को युद्ध की अग्नि में झोंक दिया। इस समय कांग्रेस ने कहा कि वह युद्ध में उस समय तक सम्मिलित होना नहीं चाहती जब तक वही सिद्धान्त जिनके लिये युद्ध लड़ा जा रहा है भारत में भी लागू न किये जाँय अर्थात् देश को स्वतंत्र न किया जाय। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की यह माँग स्वीकार नहीं की। फलत: कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने सब प्रान्तों से त्यागपत्र दे दिया और केवल पंजाब, बंगाल और सिंध में ही दूसरे दलों के मंत्रिमंडल काम करते रहे। शेष प्रांतों में गवर्नरों ने वैधानिक संकट की घोषणा करके शासनकार्य अपने हाथ में संभाल लिया। उसके कुछ दिन पश्चात् कांग्रेस ने वैयक्तिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया।

२३. ब्रिटिश सरकार की अगस्त सन् १९४० की घोषणा

इस आंदोलन से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने अगस्त १९४० में एक घोषणा की जिसमें कहा गया कि "ब्रिटिश सरकार का ध्येय भारत में युद्ध के पश्चात् शीघ्रातिशीघ्र स्वतंत्र औपनिवेशिक स्वराज्य कायम करना है। भारत का विधान भारतीयों द्वारा ही बनाया जायगा परन्तु यह विधान बनाते समय भारत सरकार को वह समस्याएँ ध्यान में रखनी पड़ेंगी जो भारत के इंगलैंड से एक दीर्घकालीन संबंध के कारण उत्पन्न

हो गई हैं ।" इस घोषणा के साथ गवर्नर जनरल ने एलान किया कि वह अपनी कार्यकारिणी में ऐसे नये सदस्यों की नियुक्ति करने के लिए तैयार हैं जो भारतीय हितों का प्रतिनिधित्व कर सकें ।

आलोचना—इस घोषणा से भारतवासियों को किसी प्रकार का भी संतोष नहीं हुआ, कारण गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में कुछ सदस्यों की नियुक्ति के अतिरिक्त उन्हें वर्तमान में कोई और अधिकार सौंपने की योजना नहीं रक्खी गई थी । स्वतंत्र औपनिवेशिक स्वराज्य देने का वचन युद्ध के पश्चात् दिया गया था । सब राजनीतिक दलों ने इसलिए गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में अपने प्रतिनिधि भेजने से इन्कार कर दिया । परन्तु, जुलाई सन् १९४१ में ब्रिटिश सरकार ने स्वयं युद्ध से बढ़े हुए कार्य को चलाने के लिए गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में ५ और सदस्यों की नियुक्ति कर दी । यह सदस्य किसी राजनीतिक दल का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे और उनकी नियुक्ति से जनता को किसी भी प्रकार का संतोष नहीं हुआ ।

२४. क्रिप्स योजना

नवम्बर सन् १९४१ में जापान महायुद्ध में शरीक़ हो गया । इससे युद्ध संचालन की दृष्टि से भारत की स्थिति में एक बड़ा भारी अन्तर उत्पन्न हुआ । भारतीय जनता के सहयोग के बिना अब जापान के विरुद्ध बलपूर्वक युद्ध नहीं लड़ा जा सकता था । जापानियों ने बहुत शीघ्र बर्मा और सिंगापुर पर अधिकार जमा लिया और वह भारत पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगे । ब्रिटिश सम्राट ने इस समय युद्ध में भारतीय जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए मार्च सन् १९४२ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स को कुछ योजनाओं के साथ भारत भेजा । सर स्टैफर्ड क्रिप्स जिस योजना को भारत में लाये उसके मुख्य रूप से दो भाग थे :—

(१) **युद्धोत्तर योजना**—इस योजना के आधीन भारतवासियों से कहा गया कि युद्ध के पश्चात् उन्हें अपना विधान स्वयं अपनी ही चुनी हुई

संविधान सभा द्वारा बनाने की आज्ञा दे दी जायगी। इस संविधान सभा में प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा सदस्य चुने जायेंगे जिनकी संख्या प्रान्तीय विधान सभा की कुल संख्या का $\frac{१}{१०}$ भाग होगी। रियासतों को भी इस संविधान सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जायगा, जिनकी संख्या उनकी जनसंख्या के अनुपात से उतनी ही होगी जितनी प्रान्तों की। इस संविधान सभा को भारत के लिए मनचाहा विधान बनाने की स्वतंत्रता होगी। केवल उसमें अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा तथा ब्रिटिश सरकार से एक प्रकार के समझौते का आयोजन होगा। इस योजना में यह भी कहा गया कि यदि कोई सूबे या देशी रियासतें संविधान सभा में भाग लेने के पश्चात् यह अनुभव करेंगी कि उन्हें प्रस्तावित विधान स्वीकार नहीं है तो उन्हें इस बात की स्वतंत्रता होगी कि वह भारतीय यूनियन से अलग रहकर अपना एक अलग स्वतंत्र उपनिवेश बना सकें। इस प्रकार प्रथम बार ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग से प्रभावित होकर अपनी योजना में मुसलमानों को खुश करने के लिये भारत के टुकड़े किये जाने के लिए अपनी स्वीकृति प्रगट की।

अल्पकालीन योजना—उपरोक्त योजना पर केवल युद्ध के उपरान्त कार्य होना था। वर्तमान में भारत सरकार में परिवर्तन करने के लिए क्रिप्स योजना में केवल इतना कहा गया कि वायसराय स्वयं अपनी कार्यकारिणी के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। कांग्रेस चाहती थी कि वायसराय की कार्यकारिणी एक कैबिनेट के रूप में काम करे और गवर्नर जनरल कार्यकारिणी के केवल एक वैधानिक अध्यक्ष हों वह देश की रक्षा संबंधी समस्याओं में भी समुचित भाग चाहती थी।

कांग्रेस की यह दोनों माँगें सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने स्वीकार नहीं कीं। फलतः समझौते की बातें भंग हो गईं और सर स्टैफर्ड क्रिप्स इंगलैंड वापिस चले गये।

कांग्रेस ने अपनी ओर से राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिए क्रिप्स योजना के युद्धोत्तर भाग के अत्यन्त असंतोषजनक होने पर भी उसे स्वीकार करने का प्रयत्न किया और केवल यह माँग ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रखी कि वायसराय की कार्यकारिणी एक कैबिनेट के रूप में कार्य करे। आरम्भ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने इस प्रकार का आश्वासन दे दिया। परन्तु, फिर न जाने किन कारणों से, ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० चर्चिल की कोई आज्ञा न मिलने से, या किसी और कारण, वह अपने वचन से फिर गये। युद्धोत्तर योजना में भारतीय रियासतों की जनता को विधान परिषद में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं दिया गया था। यह अधिकार केवल रियासतों के राजाओं को दिया गया था जो ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू थे और स्वतंत्र इच्छा से कार्य न कर सकते थे। युद्धोत्तर योजना का दूसरा सबसे बड़ा दोष यह था कि इसके द्वारा असंतुष्ट प्रान्तों तथा रियासतों को भारत के टुकड़े करने की आज्ञा दे दी गई। इतना होने पर भी कांग्रेस ने प्रयत्न किया कि ब्रिटिश सरकार से किसी प्रकार का समझौता हो जाय। परन्तु, मि० चर्चिल की अनुदार दलीय सरकार भारतीयों को किसी प्रकार के अधिकार देना नहीं चाहती थी। उसने तो केवल संसार की जनता की आँखों में धूल झोकने और यह बतलाने के लिए कि वह तो भारतवासियों को संपूर्ण अधिकार देने के लिए तैयार हैं; परन्तु भारतवासी स्वयं इतने निकम्मे हैं कि वह आपस में किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सकते, सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा था। इस समझौते की बातें टूटने का फल यह हुआ कि भारत में राजनीतिक क्षोभ दिन प्रतिदिन बढ़ता गया और अन्त में अगस्त सन् १९४२ में भारत में प्रसिद्ध राजनीतिक क्रांति हुई।

२५. 'भारत छोड़ो' आन्दोलन

८ अगस्त सन् १९४२ को 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी' ने अपने बम्बई के अधिवेशन में प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया। इसके पश्चात् देश में पाशविक अत्याचार, दमन, तथा हिंसा का सरकार की ओर

से वह तांडव नृत्य रचा गया जिसके कारण प्रस्ताव पास होने के तुरन्त पश्चात् लाखों देशभक्त नर और नारी, जेल की कालकोठरियों में ठूँस दिये गये और हजारों नवयुवकों को गोलियों का शिकार बनाकर मौत के घाट उतार दिया गया। अपने ८ अगस्त के प्रस्ताव में कांग्रेस ने सरकार के विरुद्ध अवज्ञा आंदोलन की घोषणा नहीं की थी, वरन् प्रस्ताव में कहा गया था कि महात्मा गांधी पहिले वायसराय से मिलकर समझौते की बातचीत करेंगे। इस बातचीत के असफल होने पर ही अवज्ञा आंदोलन आरम्भ होना था। परन्तु सरकार ने गांधी जी की मुलाकात की प्रतीक्षा किये बिना ही देश भर में पुलिस और फौज की गोलियों का राज्य कायम कर दिया। जनता ने भी उत्तेजित होकर सरकार की दमन नीति का हिंसा से मुकाबिला किया और हजारों पुलिस के थाने, रेलवे स्टेशन, डाक व तार-घर तथा सरकारी इमारतें आग की भेंट हो गईं।

२६. महात्मा गांधी का ऐतिहासिक व्रत

ब्रिटिश सरकार ने इन उपद्रवों की सारी ज़िम्मेदारी कांग्रेस के मत्थे मँढ़नी चाही और एक पुस्तक निकाल कर उसने कांग्रेस के उच्च नेताओं के विरुद्ध अनेक हिंसा सम्बन्धी आरोप लगाये। महात्मा गांधी को जिस समय जेल के अन्दर इस हिंसा के नग्न दृश्य का पता चला तो उन्होंनें १० फरवरी सन् १९४३ से सरकार की हिंसक नीति में परिवर्तन लाने के लिये २१ दिन तक व्रत रखने का निश्चय किया। इस समाचार ने देश के अन्दर फिर एक बार राजनीतिक चेतना की लहर फूँक दी और देशके कोने-कोने में सभाओं, जुलूसों, तथा प्रस्तावों द्वारा सरकार से प्रार्थना की जाने लगी कि वह महात्मा गांधी को तुरन्त जेल से मुक्त कर दे। जिस समय महात्मा गांधी ने पूना की आगा खाँ जेल में अपने जीवन का चौदहवाँ व्रत धारण किया था तो उनकी आयु ७३ वर्ष की थी और उनके कमजोर स्वास्थ्य को देखते हुये किसी को भी यह आशा न थी कि वह २१ दिन की घोर तपस्या से निकल कर जीवित रह सकेंगे। इस लिये

सरकार पर दबाव डालने के लिये न केवल जनता न ही आन्दोलन किया वरन् वायसराय की कार्यकारिणी के ३ सदस्यों ने भी अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। परन्तु इस सब आन्दोलन से सरकार के सर पर जूँ तक न रेंगी। वह तो चाहती थी कि गांधीजी परलोक सिधार जाँय और सदा के लिये उनकी मुसीबत का अन्त हो जाय। परन्तु ईश्वर की कुछ और ही इच्छा थी। महात्मा गांधी इस अग्नि परीक्षा में पूरे उतरे और ३ मार्च सन् १९४३ को उनका व्रत सफलतापूर्वक समाप्त हो गया।

२७. गांधी जी की जेल से रिहाई

मई सन् १९४४ में महात्मा गांधी आगा खाँ जेल में सख्त बीमार पड़े। इस डर से कि कहीं इस बीमारी मे गांधीजी के उसी प्रकार प्राणान्त न हो जाँय, जिस प्रकार उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तुरबा गांधी और महादेव भाई के उसी जेल में हुये थे, सरकार ने उन्हें जेल से मुक्त कर दिया। अगस्त सन् १९४४ मे भारत के गवर्नर जनरल लार्ड लिनलियगो इगलैंड वापस चले गये और उनके स्थान पर लार्ड वैवेल की नियुक्ति की गई। इस सैनिक राजनीतिज्ञ ने भारत आकर तुरन्त बिगड़ी हुई स्थिति को सुधारने के लिये कदम उठाया और १४ जून सन् १९४५ को उसने ब्रिटिश सरकार से से बात चीत करने के पश्चात् देश के राजनीतिक नेताओं के सम्मुख एक सुझाव रक्खा 'जो वेवल सुझाव' के नाम से प्रसिद्ध है।

२८. वेवल सुझाव (Wavell Offer)

लार्ड वेवल ने इस योजना में अपनी कार्यकारिणी के पुनर्संगठन की बात कही। उन्होंने कहा कि वह अपनी कार्यकारिणी में सेनापति को छोड़ कर शेष सभी सदस्य भारतीय रखने को तैयार हैं, और वह भी ऐसे भारतीय जो राजनीतिक दलों के नुमाइन्दे हों और जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकें। इस प्रकार उन्होंने कहा कि प्रथम बार भारतीयों

को राजस्व, गृह तथा विदेशी नीति सम्बन्धी भागों पर अधिकार प्राप्त हो सकेगा और वायसराय की कार्यकारिणी एक मंत्रिमंडल के समान कार्य कर सकेगी। परन्तु इन सुझावों में कई दोष थे:--

(१) प्रथम यह कि इस योजना के आधीन यह कहा गया था कि सवर्ण हिंदुओं तथा मुसलमानों को गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में बराबर के स्थान दिये जायँगे। इसका अर्थ यह हुआ कि ७० प्रतिशत हिंदुओं को देश के शासन में उतना ही भाग मिलना था जितना कि ३६ प्रतिशत मुसलमानों को।

(२) दूसरे, लार्ड वेवल ने कहा कि उनकी कार्यकारिणी व्यवस्थापिका सभा के प्रति नहीं वरन् उनके स्वयं के प्रति उत्तरदायी होगी। वह स्वयं कार्य- कारिणी के प्रधान रहेंगे, और यद्यपि दिन प्रति दिन के काम में कार्यकारिणी के निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, परन्तु विशेष परिस्थितियों में ऐसा करने का उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त होगा।

(४) तीसरे, कार्यकारिणी के सदस्यों की नियुक्ति किसी एक राजनीतिक दल के नेता द्वारा नहीं वरन् गवर्नर जनरल द्वारा स्वयं की जानी थी। ऐसी दशा में कार्यकारिणी एक संयुक्त मन्त्रिमंडल की भाँति कार्य नहीं कर सकती थी।

इन दोषों के होते हुए भी काँग्रेस ने अपनी ओर से इस बात का पूरा प्रयत्न किया कि वह मुस्लिम लीग के साथ मिल कर वायसराय की कार्यकारिणी में सम्मिलित हो जाय। परन्तु, मुसलिम लीग चाहती थी कि वायसराय की कौंसिल में केवल वही मुस्लिम सदस्य शामिल किये जाँय जो लीग के सदस्य हों। काँग्रेस इस बात के लिए तो तैयार हो गयी कि मुस्लिमलीग अपनी ओर से कौंसिल के १४ सदस्यों में से अपने हिस्से के पाँच सदस्य मुसलिम लीगी ही चुन लें, परन्तु उसने यह बात नहीं मानी कि वह अपने हिस्से में से भी किसी राष्ट्रीय मुसलमान को

सरकार में प्रतिनिधित्व दें। काँग्रेस केवल हिंदुओं की ही जमायत नहीं थी। उसमें हजारों मुसलमान, ऐसे ईसाई तथा पारसी भी थे जिन्होंने उसके साथ मिलकर स्वतन्त्रता संग्राम में पूर्ण रूप से भाग लिया था और उसके प्रतीक रूप मौलाना आजाद उसके प्रधान थे। मुस्लिम लीग ने काँग्रेस की यह बात नहीं मानी और अंत में समझौते की बातें भंग हो गईं।

२९. आम चुनाव

शिमला सम्मेलन की असफलता के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान सभाओं के लिए आम चुनाव करने की घोषणा की। इन चुनावों को करने के पीछे ब्रिटिश सरकार का यह आशय था कि उसे मालूम हो सके कि देश में काँग्रेस, मुस्लिम लीग तथा दूसरे राजनीतिक दलों की कितनी मान्यता है। चुनावों में काँग्रेस को प्राय: सभी हिंदू सीटों पर विजय प्राप्त हुई। मुस्लिम सीटें, सीमा प्रांत तथा पंजाब को छोड़कर, अधिकतर लीग के हाथ में लगीं।

इन चुनावों के तुरन्त पश्चात् काँग्रेस ने आठ प्रांतों में अपने मन्त्रिमंडल बनाये। मुस्लिम लीग केवल बंगाल और सिंध में लीगी मन्त्रिमंडल बना सकी। पंजाब में सर खिजर हयात खां टिवाना की प्रधानता में एक मिले जुले मन्त्रिमंडल का निर्माण हुआ।

३०. भारत में ब्रिटिश शिष्ट-मंडल का आगमन

जिस समय भारत में आम चुनाव हो रहे थे तो इंगलैण्ड में भी पार्लयामेंट के लिये नये चुनावों की घोषणा की गई। इन चुनावों में मि० चर्चिल की अनुदार सरकार हार गई और उसके स्थान पर मि० एटली ने एक मजदूर दलीय सरकार बनाई। मजदूर दल के नेता भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम का सदा से पक्ष लेते आये थे। वह चाहते थे कि भारत स्वतन्त्र हो जाय। इसीलिये मि० एटली ने सरकार का कार्य-भार सँभालने के थोड़े ही दिन पश्चात् ९ दिसंबर सन् १९४५ को पार्लियामेंटरी सदस्यों का एक शिष्टमंडल

भारत भेजा। इस मंडल के सदस्यों में मि० सौरेन्सन और मेजर व्याट भी थे जो पार्लियामेंट में भारत संबंधी प्रश्नों पर विशेष रूप से रुचि लेते थे। डेढ़ महीने तक सारे भारत का दौरा करने के पश्चात्, आरंभ फरवरी सन् १९४६ में, शिष्टमंडल वापस इंगलैण्ड पहुँचा। वहाँ उसने पार्लियामेंट के सम्मुख अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट के फलस्वरूप मि० एटली ने १९ फरवरी सन् १९४६ को घोषणा की कि वह एक कैबिनेट-मिशन, जिसके सदस्य लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा मि० एलेक्जेंडर होंगे, भारत भेजेंगे। इस मिशन का कार्य यह होगा कि वह भारत के राजनीतिक नेताओं से बातचीत करके भारतीय समस्या का कोई संतोष-जनक हल निकाले।

३१. मि० एटली की घोषणा

जिस समय मि० एटली ने एक कैबिनेट मिशन भारत भेजने की घोषणा की तो उन्होंने दो और महत्वपूर्ण बयान भी पार्लियामेंट के सम्मुख दिये।

इनमें से पहले बयान में उन्होंने कहा कि "ब्रिटिश सरकार भारतवासियों की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग स्वीकार करती है। जहाँ तक राष्ट्रमंडल की सदस्यता का प्रश्न है भारतवासियों को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह उसका सदस्य रहना स्वीकार करें अथवा नहीं।"

दूसरे बयान में ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने कहा कि "किसी अल्पसंख्यक जाति को बहुसंख्यक जाति की राजनीतिक माँग पर अनियमित काल तक पानी फेरने का अधिकार नहीं दिया जा सकता।" इन दोनों बयानों से भारत के राजनीतिक क्षेत्रों को अत्यंत सांत्वना मिली और वह समझने लगे कि अब वास्तव में ब्रिटिश सरकार भारतवासियों के हाथों में राज्य-सत्ता सौंपने के लिए तत्पर है।

३२. कैबिनेट मिशन (मंत्री प्रतिनिधि-मंडल का भारत में आगमन)

३ मार्च सन् १९४६ को कैबिनेट मिशन के सदस्य भारत पहुँचे और उसके तुरन्त पश्चात् उन्होंने राजनीतिक दलों के नेताओं से बातचीत का कार्यक्रम

आरंभ कर दिया। ५ मई सन् १९४६ को उन्होंने काँग्रेस तथा मुस्लिम लीग के चार-चार प्रतिनिधियों का एक संयुक्त सम्मेलन शिमले में बुलाया। इस सम्मेलन में दोनों दलों के बीच किसी प्रकार का समझौता न हो सका। अन्त में १६ मई सन् १९४६ को कैबिनेट-मिशन ने स्वयं अपनी ओर से भारतीय राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिए कुछ सुझाव रखे। इन सुझावों का पूर्ण विवरण नीचे दिया जाता है :—

३३. ब्रिटिश मंत्री प्रतिनिधि मंडल की अखिल भारतीय संघ के लिए योजनाएँ

१—१५ मार्च को मंत्रि-प्रतिनिधि मंडल को भारत के लिए रवाना करते समय ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री एटली ने ये शब्द कहे थे :—

"मेरे सहयोगी इस विचार से भारत जा रहे हैं कि वे शीघ्र से शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने में भारत की सहायता करने के लिए अधिक से अधिक प्रयत्न कर सकें। वर्त्तमान सरकार की जगह किस प्रकार की सरकार बनाई जायगी इसका निर्णय भारत स्वयं करेगा लेकिन हमारी इच्छा है कि वे एक ऐसे संगठन को तत्काल स्थापित करने में उसकी सहायता करें जिससे वह निर्णय पर पहुँच सके।

"मुझे आशा है कि भारत और उसके निवासी ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत रहने का निर्णय करेंगे। मुझे विश्वास है कि ऐसा करना वे बहुत लाभदायक समझेंगे।

"लेकिन यदि वह ऐसा फैसला करें तो यह उनकी स्वेच्छा से ही होना चाहिये। ब्रिटिश राष्ट्रमंडल और साम्राज्य किसी बाहरी दबाव की श्रृंखला के परस्पर सम्बद्ध नहीं है। यह स्वतंत्र राष्ट्रों का स्वतन्त्र संगठन है। इसके विपरीत यदि उसने बिलकुल स्वतन्त्र होने का निर्णय किया तो हमारे दृष्टिकोण से उसे ऐसा करने का अधिकार है। हमारा यह कर्त्तव्य होगा कि इस शासन-परिवर्तन को अधिक से अधिक सरलता और निर्विघ्नता के साथ सम्पन्न करने में हम उसकी सहायता करें।

२—इन ऐतिहासिक शब्दों से प्रतिष्ठित होकर हमने—मन्त्रि-प्रतिनिधि-मंडल और वाइसराय ने—इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया कि भारत के दो प्रमुख राजनैतिक दलों में भारत की अखण्डता और विभाजन के आधारभूत प्रश्नों के सम्बन्ध में कोई समझौता हो सके। नयी दिल्ली में देर तक विचार-विनिमय के उपरांत हम कांग्रेस और मुस्लिम लीग को शिमले में एक सम्मेलन में एकत्रित करने में सफल हो गये। पूर्ण रूप से परस्पर विचार-विनिमय हुआ और दोनों दल समझौता पर पहुँचने के उद्देश्य से पर्याप्त रियायतें देने को तैयार थे। लेकिन अन्त में दोनों दलों के बीच जो अन्तर शेष रह गया वह दूर न किया जा सका। इस प्रकार कोई समझौता न हो सका। चूंकि कोई समझौता नहीं हो सका है, हम यह अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि भारत में शीघ्रता से नये विधान की स्थापना के लिए हम जिस व्यवस्था को श्रेष्ठतम समझें उसे प्रस्तुत करें। यह वक्तव्य ब्रिटेन में मौजूदा सम्राट् की सरकार की पूर्ण स्वीकृति के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है।

३—तदनुसार हमने निश्चय किया है कि तत्काल कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिसके द्वारा भारत के भावी विधान की रूपरेखा का निर्णय भारतीय ही कर सकें तथा जब तक कि नया विधान अमल में न आवे तब तक शासन कार्य के चलाने के लिए एक अन्तःकालीन सरकार की स्थापना की जाय। हमने छोटे और बड़े दोनों वर्गों के साथ न्याय करने और एक ऐसा हल प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जिसके अनुसार भारत का भावी शासन व्यावहारिक मार्ग का अनुसरण कर सकेगा तथा जिसके द्वारा भारत अपनी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रगति के लिए उत्तम अवसर प्राप्त कर सकेगा।

४—इस वक्तव्य में हम उस विशालकाय प्रमाण-समूह पर दृष्टिपात नहीं करना चाहते हैं जो मंत्री-प्रतिनिधि मंडल के समक्ष प्रस्तुत किया गया

है । लेकिन यह उचित है कि हम यह स्पष्ट कर दें कि मुस्लिम लीग को छोड़ कर शेष समस्त वर्गों में भारत की अखण्डता की देशव्यापी इच्छा विद्यमान है ।

३४. विभाजन की संभावना

५–लेकिन यह इच्छा हमें भारत के विभाजन की सम्भावना पर निष्पक्ष भाव से विचार करने से नहीं रोक सकी क्योंकि हम पर मुसलमानों की अत्यधिक उचित और उग्र चिन्तायुक्त इस भावना का बड़ा प्रभाव पड़ा है कि कहीं उन्हें अनन्तकाल के लिए हिन्दू बहुमत के शासन के नीचे न रहना पड़े।

यह भावना मुसलमानों में इतनी दृढ़ और व्यापक है कि इसे केवल कागजी संरक्षणों द्वारा शान्त नहीं किया जा सकता। भारत में आन्तरिक शान्ति के लिए यह आवश्यक है कि उसे ऐसी योजनाओं द्वारा स्थापित किया जाय जिनसे मुसलमानों को यह आश्वासन प्राप्त हो सके कि उनकी सभ्यता, धर्म और आर्थिक तथा अन्य हितों की दृष्टि से महत्वपूर्ण विषयों पर उनका नियन्त्रण रहेगा।

६–इसलिए हमने सर्वप्रथम एक पृथक् और पूर्ण स्वतंत्र पाकिस्तान राष्ट्र के प्रश्न पर विचार किया जिसका मुस्लिम लीग ने दावा प्रस्तुत किया है। इस पाकिस्तान में दो क्षेत्र होंगे। एक उत्तर-पश्चिम में जिसमें पंजाब सिंध, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त और ब्रिटिश बिलोचिस्तान होंगे। दूसरा उत्तर-पूर्व में जिसमें बंगाल और आसाम रहेंगे। लीग इस बात के लिए उद्यत थी कि आगे चलकर सीमा निर्धारण में आवश्यक परिवर्त्तन कर लिये जायँ लेकिन उसने इस बात पर जोर दिया कि पहले पाकिस्तान के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाय । पाकिस्तान का पृथक् राष्ट्रस्थापित करने का पहला तर्क इस आधार पर था कि मुस्लिम बहुमत को यह अधिकार है कि वह अपनी इच्छानुसार अपनी शासन प्रणाली

का निर्धारण कर सके। दूसरा तर्क यह था कि आर्थिक तथा शासनिक दृष्टि से पाकिस्तान को व्यवहार्य बनाने के लिए इसमें ऐसे पर्याप्त क्षेत्र को मिलाने की आवश्यकता है जहाँ मुसलमान अल्प संख्या में हैं।

उपर्युक्त ६ प्रान्तों के पाकिस्तान में गैरमुस्लिम अल्पमतों की जन-संख्या जैसा कि नीचे के आँकड़ों से स्पष्ट है, काफी अधिक होगी* :–

उत्तर पश्चिमी क्षेत्र	**मुसलमान**	**गैर-मुसलमान**
पंजाब	१,६२,१७,२४२,	१,२२,०१,५६७
उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त	२७,८८,७९७	२,४९,२७०
सिंध	३२,०८,३२५	१३,२६,६८३
ब्रिटिश बिलोचिस्तान	४,३८,९३०	६२,७०१
	२,२६,५३,२९४	१,३८,४०,२३१
	६२·०७%	३७·९३%
उत्तर पूर्वीय क्षेत्र	३,३०,०५,४३४	२७३,०१,९१
आसाम	३४,४२,४७९,	६७,६२,२५४
	३,६४,४७,९१३	३,४०,६३,३४५
	५१.६९%	४८.३१%

शेष ब्रिटिश भारत की १८,८०,००,००० जन-संख्या में फैले हुए मुस्लिम अल्पमत की संख्या प्रायः २ करोड़ है।

*इस वक्तव्य में जन संख्या सम्बन्धी समस्त आँकड़े १९४१ की नवीनतम जनगणना से लिये गये हैं।

३५. पाकिस्तान सम्भव नहीं

इन आँकड़ों से पता लगता है कि मुस्लिम लीग के दावे के अनुसार एक पूर्ण स्वतन्त्र पाकिस्तान राष्ट्र की स्थापना से साम्प्रदायिक अल्पमतों की समस्या हल न हो सकेगी। हम इस बात को भी न्यायसंगत नहीं समझते कि पंजाब, बंगाल व आसाम के उन जिलों को स्वतंत्र पाकिस्तान में सम्मिलित किया जाय, जहाँ की जन-संख्या में गैरमुस्लिमों का बहुमत है। जो भी तर्क पाकिस्तान की स्थापना के पक्ष में प्रस्तुत किये जा सकते हैं, हमारे दृष्टिकोण से वही गैर मुस्लिम बहुमत के क्षेत्रों को पाकिस्तान से पृथक् करने के पक्ष में प्रयोग किये जा सकते हैं। यह बात सिक्खों की स्थिति पर विशेष प्रभाव डालती है।

७—इसलिए हमने इस बात पर विचार किया कि क्या एक छोटा स्वतन्त्र पाकिस्तान जिसमें केवल वही क्षेत्र हो जहाँ मुसलमानों का बहुमत है, समझौते का आधार बनाया जा सकता है ? इस प्रकार के पाकिस्तान को मुस्लिम लीग बिलकुल अव्यवहारिक समझती है क्योंकि इससे पंजाब की अम्बाला और जालंधर की पूरी कमिश्नरियाँ (ख) जिला सिलहट को छोड़ कर सारा आसाम प्रान्त और (ग) पश्चिमी बंगाल का एक बड़ा भाग जिसमें कलकत्ता भी, जहाँ, मुसलमानों की संख्या २३·०६ प्रतिशत है, सम्मिलित है पाकिस्तान में से निकल जायँगे। हमारा स्वयं भी विश्वास है कि ऐसा कोई भी हल जिसके द्वारा बंगाल और पंजाब का विभाजन हो, जैसा कि इस पाकिस्तान से होगा, इन प्रान्तों की जन-संख्या के बहुत बड़े भागों की इच्छा और हितों के विरुद्ध होगा। बंगाल और पंजाब दोनों की अपनी अपनी-समान भाषाएँ हैं और दोनों के साथ लम्बा इतिहास और परम्पराएँ सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त पंजाब का विभाजन करने पर सिक्ख भी विभाजित हो जायँगे और दोनों भागों की सीमाओं पर पर्याप्त संख्या में सिक्ख रह जायँगे। इसलिए हम बाध्य होकर इस परिणाम पर पहुँचे हैं

कि पाकिस्तान का बड़ा या छोटा कोई भी स्वतंत्र राष्ट्र साम्प्रदायिक समस्या का स्वीकृत हल प्रस्तुत नहीं कर सकता।

८– उपरोक्त जोरदार तर्कों के अतिरिक्त महत्वपूर्ण शासनिक, आर्थिक और सैनिक प्रश्न भी हैं। समस्त यातायात और डाक व तार संगठन संयुक्तभारत के आधार पर स्थापित किया गया है। इसे छिन्न-भिन्न करना भारत के दोनों भागों के लिए अहितकर होगा। देश की संयुक्त रक्षा का प्रश्न और भी अधिक दृढ़ है। भारतीय सेनाएँ सामूहिक रूप से समस्त भारत की रक्षा के लिए संगठित की गयी हैं। सेना का दो भागों में बाँटना भारतीय सेना की उच्च योग्यता और दीर्घकालीन परम्पराओं पर आघात करेगा और उससे बड़ा खतरा उपस्थित हो सकता है। भारतीय नौ सेना और भारतीय हवाई सेना का प्रभाव बहुत घट जायगा। प्रस्तावित पाकिस्तान के दो भागों में सबसे अधिक आक्रमण के योग्य भारत की दो सीमाएँ सम्मिलित हैं और गहरे प्रदेश की रक्षा व्यवस्था के लिए पाकिस्तान का क्षेत्र अपर्याप्त सिद्ध होगा।

३६. अखण्ड भारत भी नहीं

९–एक अन्य महत्वपूर्ण विचारणीय विषय यह है कि विभाजित ब्रिटिश भारत के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ने में देशी रियासतों को अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

१०– सबसे अन्तिम बात यह भौगोलिक तथ्य है कि प्रस्तावित पाकिस्तान के दो हिस्से एक दूसरे से प्रायः ७०० मील की दूरी पर हैं और युद्ध तथा शान्ति दोनों ही कालों में इन दोनों के बीच यातायात की व्यवस्था भारत की सद्भावना पर निर्भर रहेगी।

११–इसलिए हम ब्रिटिश सरकार को यह सलाह देने में असमर्थ हैं कि जो शक्ति आज ब्रिटिश सरकार के हाथों में है वह बिल्कुल दो राष्ट्रों को सौंप दी जावे।

१२–लेकिन इस निश्चय के कारण हमने मुसलमानों के इस वास्तविक भय की ओर से आँखें बन्द नहीं कर ली हैं, कि एक विशुद्ध अखण्ड भारत में जिसमें अत्यधिक बहुमत के कारण हिन्दुओं का प्राधान्य रहेगा। उनकी सभ्यता और राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन अपना अस्तित्व खो वैठेंगे। इस भय के निवारणार्थ कांग्रेस ने एक योजना प्रस्तुत की है जिसके द्वारा प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्त शासन प्राप्त होगा और केन्द्रीय विषय न्यूनातिन्यून होंगे जैसे विदेशी मामले, रक्षा और यातायात।

यदि प्रान्त बड़े पैमाने पर आर्थिक और शासनिक योजना निर्माण में भाग लेना चाहें तो इस योजना के अनुसार प्रान्तों को यह अधिकार होगा कि बाध्य रूप से केन्द्रीय विषयों के अतिरिक्त वे अन्य किसी विषय को भी केन्द्रीय सरकार के अधीन कर सकें।

१३–हमारी दृष्टि में इस प्रकार की योजना में बहुत सी वैधानिक हानियाँ और विषमतायें रहेंगी। ऐसी केन्द्रीय शासन परिषद तथा धारा सभा का संगठन अत्यन्त कठिन होगा जिसके कुछ मन्त्री, जिनके हाथ में वह विषय हों जिन्हें अनिवार्य रूप से केन्द्रीय निर्धारित किया गया हो, समस्त भारत के प्रति उत्तरदायी हों तथा कुछ मंत्री जो ऐच्छिक केन्द्रीय विषयों के अधिकारी हों केवल उन प्रान्तों के प्रति जिम्मेदार हों जिन्होंने इस प्रकार के विषयों के सम्बन्ध में एक सूत्र से संगठित होकर कार्य करना स्वीकार किया हो। केन्द्रीय धारा सभा में यह कठिनाई और भी बढ़ जायगी जहाँ जब कोई ऐसा विषय प्रस्तुत हो जिससे किसी प्रान्त का सम्बन्ध न हो तो उस प्रान्त के सदस्यों को बोलने या राय देने से वंचित रखा जायगा।

३७. रियासतों की समस्या

इस योजना को अमल में लाने की कठिनाई के अतिरिक्त हम समझते हैं कि यह न्यायसंगत न होगा कि जो प्रान्त ऐच्छिक विषयों को छोड़ केन्द्र

के सुपुर्द न करना चाहें उन्हें यह अधिकार न दिया जाय कि वे इसी प्रकार के उद्देश्यों के लिए एक पृथक् प्रान्त समूह बना सकें। वस्तुतः इसका तात्पर्य इससे अधिक और कुछ न होगा कि वे अपने स्वतन्त्र अधिकारों का एक विशेष प्रकार से प्रयोग करते हैं।

१४– अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करने से पहले हम ब्रिटिश भारत के साथ देशी रियासतों के सम्बन्धों का विवेचन करना चाहते हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि ब्रिटिश भारत के स्वतन्त्र होने पर, चाहे वह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत रहे या बाहर, देशी रियासतें और सम्राट् के बीच वह सम्बन्ध नहीं रह सकता जो अभी तक रहा है। सर्वोच्चाधिकारों को न तो सम्राट् के हाथ में रखा जा सकता है और न उन्हें नई सरकार को सौंपा जा सकता है। देशी राज्यों की ओर से हमने जिनसे भेंट की उन्होंने इस बात को पूर्ण रूप से स्वीकार किया है। साथ ही उन्होंने हमें यह आश्वासन दिया है कि देशी राज्य भारत के नवीन विकास में सहयोग प्रदान करने के लिए इच्छुक और तत्पर है। उसके सहयोग का वास्तविक रूप क्या होगा, यह नये वैधानिक संगठन का ढाँचा तैयार करते समय पारस्परिक विचार-विनिमय से तय हो सकेगा और इसका तात्पर्य यह किसी प्रकार भी नहीं है कि प्रत्येक देशी राज्य के सहयोग का रूप एक ही होगा। इसलिए आगे हमने देशी रियासतों का उसी प्रकार विस्तार से उल्लेख नहीं किया है जिस प्रकार ब्रिटिश भारत के प्रान्तों का किया है।

१५– अब हम उस हल की रूपरेखा निर्दिष्ट करना चाहते हैं जो हमारी सम्मति में सब दलों की मूलभूत माँगों के प्रति न्याययुक्त होगा और साथ ही जिसके द्वारा समस्त भारत के लिए स्थायी और व्यावहारिक विधान की स्थापना की भी अधिकतम आशा की जा सकती है।

३८. वास्तविक हल

हमारी सिफारिश है कि विधान निम्नलिखित मूलरूप का होना चाहिये :—

(१) एक अखिल भारतीय संयुक्त-राष्ट्र होना चाहिये जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य दोनों सम्मिलित हों और इसके अधीन ये विषय रहने चाहियें : विदेशी मामले, रक्षा और यातायात । इस भारतीय संयुक्त राष्ट्र को अपने विषयों के व्यय के लिए आवश्यक धन उगाहने का भी अधिकार होना चाहिये ।

(२) भारतीय संयुक्त राष्ट्र में एक राज्य परिषद् तथा एक व्यवस्थापिका परिषद् होनी चाहिये जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधि रहें । व्यवस्थापिका परिषद् में कोई महत्वपूर्ण साम्प्रदायिक मामला प्रस्तुत होने पर उसके निर्णय के लिए दोनों प्रमुख वर्गों के जो प्रतिनिधि उपस्थित हों उनका पृथक् २ तथा समस्त उपस्थित सदस्यों का बहुमत आवश्यक होगा ।

(३) केन्द्रीय संगठन के लिए निर्धारित विषय को छोड़ कर अन्य समस्त विषय तथा समस्त अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों को प्राप्त होंगे ।

(४) देशी राज्य उन सब विषयों और अधिकारों को अपने अधीन रखेंगे जिन्हें वे केन्द्र को सुपुर्द नहीं कर देंगे ।

(५) प्रान्तों को अपने पृथक समूह बनाने का अधिकार होगा जिनकी अलग राज्य परिषद् तथा धारासभा होगी और प्रत्येक प्रान्त समूह यह तय करेगा कि कौन कौन से विषय समान रूप से सामूहिक शासन में रहें ।

(६) भारतीय राष्ट्र तथा प्रान्त समूहों के विधानों में इस प्रकार की धारा रहनी चाहिये जिसके द्वारा कोई भी प्रान्त अपनी धारा सभा के बहुमत से प्रथम १० वर्ष बाद और फिर प्रति दस वर्ष बाद विधान की शर्तों पर पुनर्विचार करने का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सके ।

१६– हमारा उद्देश्य यह नहीं है कि हम उपर्युक्त रूप-रेखा के अनुसार किसी विधान की विस्तृत बातें प्रस्तुत करें । हम तो केवल ऐसा संगठन

चालू करना चाहते हैं जिसके द्वारा भारतीय लोग भारतीयों के लिए विधान तैयार कर सकें।

लेकिन भावी विधान के स्थूल आधार के सम्बन्ध में हमें यह सिफारिश इसलिए करनी पड़ती है क्योंकि अपने विचार विनिमयों के सिलसिले में हमें यह स्पष्ट हो गया था कि जब तक हम इस प्रकार की सिफारिश नहीं करेंगे तब तक इस बात की कोई आशा नहीं की जा सकती कि विधान सभा की स्थापना के लिए दोनों प्रमुख वर्गों को एक सूत्र में बांधा जा सकेगा।

१७– अब हम विधान निर्माण के उस संगठन की ओर निर्देश करना चाहते हैं जिसके लिए हमारा प्रस्ताव है कि उसे तत्काल स्थापित करना चाहिये जिससे कि नया विधान तैयार किया जा सके।

३६. विधान सभा का संगठन

१८–किसी नये विधान को तैयार करने के लिए स्थापित की जाने-वाली परिषद् के संगठन के सम्बन्ध में सबसे पहली समस्या यह होती है कि समस्त जनता का अधिक से अधिक विस्तृत आधार पर ठीक प्रति-निधित्व प्राप्त किया जाय। स्पष्टतः सबसे अधिक संतोषजनक प्रणाली वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन करनी होगी लेकिन इस समय इस प्रकार की व्यवस्था करने का प्रयत्न करने से नये विधान के तैयार करने में ऐसा विलम्ब होगा जो किसी भी प्रकार स्वीकार्य न होगा। व्याव-हारिक रूप से इसका दूसरा उपाय केवल यह है कि हाल में ही निर्वाचित प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं का निर्वाचन संस्थाओं के रूप में प्रयोग किया जाय, लेकिन उनके संगठन में दो बातें ऐसी हैं जिनके कारण ऐसा करना कठिन है। प्रथम तो विभिन्न प्रान्तों की व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या प्रान्तों की कुल जन-संख्या के साथ अनुपात नहीं रखती है। उदा-हरणार्थ, आसाम में, जिसकी जन संख्या १ करोड़ है व्यवस्थापिका सभा

के सदस्यों की संख्या १०८ है जब कि बंगाल की व्यवस्थापिका सभा में केवल २५० सदस्य हैं यद्यपि उसकी जनसंख्या आसाम से छः गुनी है। दूसरे, साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार अल्प-संख्यक जातियों को अपनी जन-संख्या के अनुपात से जो अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया था, प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदों में विभिन्न समुदायों के प्रतिनिधियों की संख्या उनकी जनसंख्या के अनुपात से नहीं है। इस प्रकार बंगाल की व्यवस्थापिका सभा में मुसलमानों के लिए ४८ प्रतिशत स्थान सुरक्षित हैं जब कि प्रान्तीय जनसंख्या की दृष्टि से प्रान्त में उनकी संख्या ५५ प्रतिशत है। इन विषमताओं को दूर करने की विभिन्न प्रणालियों पर विचार करने के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सबसे अधिक न्याय और व्यावहारिक तरीका यह होगा कि :—

(क) प्रत्येक प्रान्त में जन-संख्या के अनुपात से उनके लिए अधिक से अधिक स्थान निश्चित कर दिये जाँय। स्थलरूप से प्रत्येक १० लाख व्यक्तियों के पीछे एक स्थान दिया जाँय । यह वयस्क मताधिकार के प्रतिनिधित्व का श्रेष्ठतम बदल है।

(ख) इस प्रकार निश्चित किये गये स्थानों को प्रत्येक प्रान्त के प्रमुख सम्प्रदायों के बीच उनकी जन-संख्या के अनुपात से बाँट दिया जाय।

(ग) यह व्यवस्था की जाय कि प्रत्येक समुदाय के लिए निश्चित स्थानों के प्रतिनिधि प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद के उसी समुदाय के सदस्यों द्वारा चुने जायँ।

हम समझते हैं कि इसलिए यह पर्याप्त होगा कि भारत में केवल तीन प्रमुख सम्प्रदाय माने जायँ:—साधारण, मुस्लिम और सिक्ख । चूँकि छोटी अल्पसंख्यक जातियाँ इस समय प्राप्त अधिक प्रतिनिधित्व को खो बैठेंगी और जन-संख्या के अनुपात से उनका प्रतिनिधित्व बहुत कम या नहीं के बराबर हो जायगा इसलिए हमने पैरा २० में निर्दिष्ट व्यवस्था की

है जिसके द्वारा उन्हें अपने सम्प्रदाय के विशिष्ट हितों के मामलों में पूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त रहेगा।

१९—इसलिए हमारा प्रस्ताव है कि प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् निम्न प्रकार निर्दिष्ट संख्या में अपने प्रतिनिधि चुने और व्यवस्थापिका सभा का प्रत्येक भाग अर्थात साधारण, मुस्लिम और सिख सदस्यों के वर्ग अपने अपने प्रतिनिधि आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार चुनें।

४०. प्रतिनिधित्व तालिका

क- विभाग

प्रान्त	जनरल	मुस्लिम	योग
मद्रास	४५	४	४९
बम्बई	१९	२	२१
संयुक्तप्रान्त	४७	८	५५
बिहार	३१	५	३६
मध्यप्रान्त	१६	१	१७
उड़ीसा	९	०	९
	१६७	२०	१८७

ख- विभाग

प्रान्त	जनरल	मुस्लिम	सिख	योग
पंजाब	८	१६	४	२८
उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त	०	३	०	३
सिन्ध	१	३	०	४
योग	९	२२	४	३५

ग–विभाग

प्रान्त	जनरल	मुस्लिम	योग
बंगाल	२७	३३	६०
आसाम	७	३	१०
योग	३४	३६	७०
ब्रिटिश भारत का योग			२९२
देशी रियासतों की अधिक से अधिक संख्या ९			९३
		योग	३८५

विशेष –(१) चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के प्रतिनिधित्व के लिए दिल्ली तथा अजमेर की ओर से निर्वाचित केन्द्रीय व्यवस्था परिषद् के सदस्यों को तथा कुर्ग व्यवस्थापिका कौंसिल द्वारा निर्वाचित एक प्रतिनिधि को (क) विभाग में जोड़ दिया जायगा।

ख– विभाग में ब्रिटिश बिलोचिस्तान का एक प्रतिनिधि जोड़ा जायगा।

(२) यह विचार है कि अन्तिम रूप से तैयार होने पर विधान निर्मात्री परिषद् में देशी रियासतों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। ब्रिटिश भारत के लिए स्वीकृत हिसाब के अनुसार देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या ९३ से अधिक न होगी। लेकिन उनके चुनाव की प्रणाली विचार-विनिमय द्वारा निर्धारित की जायगी। प्रारम्भिक काल में एक पारस्परिक चर्चा समिति देशी राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करेगी।

(३) इस प्रकार निर्वाचित प्रतिनिधि यथासम्भव शीघ्रता के साथ नई दिल्ली में एकत्रित होंगे।

(४) एक प्रारम्भिक बैठक होगी जिसमें कार्य का सामान्य क्रम निर्धारित किया जायगा, अध्यक्ष और अन्य अफसरों का निर्वाचन होगा और नागरिकों अल्पसंख्यकों तथा कबाइली और असम्मिलित क्षेत्रों के अधिकारों के सम्बन्ध में एक सलाहकार समिति (देखिये नीचे का पैरा २०) नियुक्त की जायगी। इसके बाद प्रान्तीय प्रतिनिधि क, ख और ग इन

तीन वर्गों में विभक्त हो जायँगे जैसा कि इस पैरा के उपपैरा १ में प्रतिनिधित्व तालिका में दिखाया गया है।

(५) ये विभाग अपने अपने समूह के प्रान्तों के विधान को तैयार करेंगे और यह भी तय करेंगे कि क्या उन प्रान्तों के लिए कोई सामूहिक विधान तैयार करना चाहिये और तैयार किया जाय तो कौन से विषय सामूहिक विधान के अन्तर्गत रहने चाहिये। नीचे की उपधारा ८ के अनुसार प्रान्तों को किसी समूह से पृथक् होने का अधिकार रहेगा।

(६) इन विभागों और देशी राज्यों के प्रतिनिधि संयुक्त भारत का विधान तैयार करने के लिए फिर एकत्रित होंगे।

(७) संयुक्त भारतीय विधान निर्मात्री परिषद में यदि कोई प्रस्ताव उपर्युक्त पैरा १५ की शर्तों में किसी प्रकार का परिवर्तन करना चाहेगा या यदि कोई महत्वपूर्ण साम्प्रदायिक प्रश्न उपस्थित करेगा तो इसकी स्वीकृति के लिए बैठक में उपस्थित तथा राय देने वाले दोनों प्रमुख सम्प्रदायों के सदस्यों का पृथक् पृथक् बहुमत आवश्यक होगा।

४१. विधान सभा का अध्यक्ष

विधान सभा का अध्यक्ष इस बात का निर्णय करेगा कि उपस्थित प्रस्तावों में से कौन सा (अगर कोई हो) ऐसा है जिसके द्वारा महत्वपूर्ण साम्प्रदायिक प्रश्न उपस्थित होता है। यदि दोनों में से किसी भी प्रमुख समुदाय के सदस्य बहुमत से अनुरोध करें तो अध्यक्ष अपना निर्णय देने से पहले संघ न्यायालय की सलाह ले लेगा।

(८) नई वैधानिक व्यवस्था के अमल में आते ही किसी भी प्रान्त को यह अधिकार होगा कि वह उस समूह से बाहर निकल जावे जिसमें उसे रखा गया है। नये विधान के अन्तर्गत पहला चुनाव होने के बाद नई प्रांतीय व्यवस्थापिका परिषद् इस प्रकार का निर्णय कर सकेगी।

२०. नागरिकों, अल्प-संख्यकों और कबाइली तथा असम्मिलित क्षेत्रों के अधिकारों के निर्धारण के लिए नियुक्त सलाहकार समिति में सम्बद्ध हितों का पूर्ण प्रतिनिधित्व होना चाहिये। इसका कार्य यह होगा कि नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सूची, अल्प-संख्यकों के संरक्षण की धाराओं और कबाइली तथा असम्मिलित क्षेत्रों के शासन की योजना के सम्बन्ध में संयुक्त भारतीय विधान निर्मात्री परिषद् के सम्मुख विवरण प्रस्तुत करे और इस विषय में सलाह दे कि ये अधिकार प्रान्तों के, समूहों के या सयुक्त भारत के विधान में सम्मिलित होने चाहिये ।

२१. वायसराय महोदय तत्काल ही प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदों से अपने प्रतिनिधियों को चुनने तथा देशी रियासतों से अपनी पारस्परिक चर्चा समिति की नियुक्ति के लिए अनुरोध करेंगे। आशा है कि कार्य की पेचीदगियों को ध्यान में रखते हुए विधान निर्माण का कार्य यथासम्भव शीघ्रता से सम्पन्न किया जायगा जिससे कि अन्तःकालीन अवधि जहाँ तक हो सके छोटी की जा सकेगी।

२२. शासन शक्ति के हस्तान्तरित होने के कारण उत्पन्न कुछ मामलों के सम्बन्ध में संयुक्त भारतीय व्यवस्थापिका परिषद् तथा ब्रिटेन के बीच किसी प्रकार की सन्धि आवश्यक होगी।

विधान निर्माण का कार्य

२३. विधान निर्माण का कार्य होने के साथ-साथ भारत का शासन चलाते रहना है। इसलिए हम एक ऐसी अन्तःकालीन सरकार की स्थापना को अत्यन्त महत्त्व देते हैं जिसे बड़े राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो। यह आवश्यक है कि अन्तः कालीन अवधि में भारत सरकार के सम्मुख उपस्थित कठिन कार्य को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक सहयोग प्रदान किया जाय। दैनिक शासन के कार्य भार के अतिरिक्त अकाल के खतरे का निवारण करना है, युद्धोत्तरकालीन उन्नति से सम्बद्ध बहुत से मामलों के विषय में निर्णय करना है जिनका भारत के भविष्य पर बड़ा

व्यापक प्रभाव पड़ेगा और कितने ही महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के लिए भारत के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करनी है। इन सब कार्यों के लिए एक ऐसी सरकार की आवश्यकता है जिसे जनता का समर्थन प्राप्त हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वायसराय महोदय ने विचार-विनिमय प्रारम्भ कर दिया है और उन्हें आशा है कि शीघ्र ही वे एक ऐसी अन्तःकालीन सरकार की स्थापना कर सकेंगे जिसमें युद्ध सदस्य के विभाग सहित समस्त विभाग जनता का पूर्ण विश्वास रखने वाले भारतीय नेताओं के हाथों में होंगे। भारत सरकार में होने वाले परिवर्तनों के महत्व को समझते हुए ब्रिटिश सरकार इस प्रकार स्थापित सरकार को अपना शासन सम्बन्धी कार्य पूरा करने और अन्तःकालीन अवधि को शीघ्रता के साथ निर्विघ्न रूप से समाप्त करने के लिए पूर्ण सहयोग प्रदान करेगी

२४. भारतीय जनता के नेताओं से, जिन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता का अवसर प्राप्त है हम अन्त में केवल यह कहना चाहते हैं कि हमें, हमारी सरकार को तथा हमारे देशवासियों को आशा थी कि यह संभव होगा कि भारत के लोग परस्पर एक मत होकर ऐसी प्रणाली निर्धारित करें जिसके द्वारा उनके देश का भावी विधान तैयार किया जाय। लेकिन हमारे और भारतीय दलों के संयुक्त श्रम तथा समस्त संबद्ध जनों के धैर्य और सद्-भावना के बावजूद यह संभव नहीं हो सका है। इसलिए हम आपके सम्मुख ये प्रस्ताव रखते हैं, जो सब दलों की बात सुनने और बहुत विचार करने के बाद हम विश्वास करते हैं कि न्यूनातिन्यून समय में बिना किसी आंतरिक उपद्रव और संघर्ष के आपको अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करा सकेंगे। यह सत्य है कि संभवतः यह प्रस्ताव सब दलों को पूर्ण संतुष्ट नहीं कर सकते लेकिन आप इस बात में हमारा समर्थन करेंगे कि भारतीय इतिहास में इस चरम महत्त्व के काल में राजनीतिज्ञता का तकाजा है कि हममें पारस्परिक आदान-प्रदान की भावना हो।

इन प्रस्तावों को स्वीकार न करने के दूसरे विकल्प पर विचार करने

का भी हम आप से अनुरोध करते हैं। हमने तथा भारतीय दलों ने समझौते के लिये जो प्रयत्न किये हैं उन्हें दृष्टि में रख कर हमें कहना पड़ता है कि भारतीय दलों में पारस्परिक समझौते द्वारा किसी निर्णय के होने की बहुत कम आशा है। इसलिए इसे स्वीकार करने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प हिंसा का भयानक खतरा, अव्यवस्था और नागरिक युद्ध का है। इस प्रकार का उपद्रव कब तक होगा और उसका क्या परिणाम होगा इस सम्बन्ध में पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह निश्चय है कि लाखों पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के लिए यह एक भयानक विनाशकारी संकट होगा। यह ऐसी सम्भावना है जिसे भारत के निवासियों, हमारे देशवासियों तथा समस्त संसार के लोगों को समान रूप से घृणा की दृष्टि से देखना चाहिए।

बिना उपद्रव के स्वतंत्रता

इसलिए हम यह प्रस्ताव आपके सम्मुख इस हार्दिक आशा के साथ रख रहे हैं कि ये उसी प्रकार पारस्परिक आदान-प्रदान और सदिच्छा की भावना से स्वीकार किये जायेंगे और अमल में लाये जायेंगे जैसे इन्हें प्रस्तुत किया जा रहा है। जिनके हृदय में भारत के भावी कल्याण की भावना है उनसे हम यह अनुरोध करते हैं कि वे अपनी दृष्टि को अपने सम्प्रदाय या हित से आगे ले जायँ, और भारत के समस्त ४० करोड़ नरनारियों के हित का ध्यान रखें।

हमें आशा है कि नया स्वतन्त्र भारत ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल का सदस्य बने रहना स्वीकार करेगा। कुछ भी हो हमें आशा है कि आप हमारे देशवासियों के साथ घनिष्ठ और मित्रता के सम्बन्ध बनाये रखेंगे। लेकिन ये आपके स्वतन्त्र निर्णय की बातें हैं। आप कुछ भी निश्चय करें आपके साथ हमें इस बात की आशा है कि संसार के महान् राष्ट्रों में आप निरन्तर अधिक फूले फले बनते जायँगे और आपका भविष्य आपके अतीत से भी अधिक गौरवपूर्ण होगा।

३४. कैबिनट-मिशन के सुझावों का संक्षिप्त विवरण

ऊपर कैबिनेट-मिशन के सुझावों का जो पूर्ण विवरण दिया गया है संक्षेप में हम उन्हें दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :— (१) दीर्घकालीन योजना और (२) अल्पकालीन योजना।

दीर्घकालीन योजना के अन्तर्गत भारत में एक ऐसे संघ की स्थापना करने का प्रस्ताव रक्खा गया जिसमें केवल तीन विषय अर्थात् रक्षा, विदेशों से सम्बन्ध तथा आने जाने के साधन, केन्द्रीय सरकार को सौंपे जायें और बाकी सभी विषय प्रान्तों के आधीन रहें। प्रान्तों को इस बात की भी स्वतंत्रता दी गई कि यदि वह चाहें तो आपस में मिल कर अपने अलग-अलग विभाग बना लें जैसे एक विभाग सिंध, पंजाब, सीमान्त और बिलोचिस्तान का, दूसरा विभाग बंगाल तथा आसाम का और तीसरा विभाग, दूसरे सारे प्रान्तों का। स्वतंत्र भारत का विधान बनाने के लिये कैबिनेट मिशन ने उस समय तक के लिये जब तक नया विधान बने, एक अन्तरिम सरकार बनाने की योजना भी रक्खी।

योजना के गुण तथा दोष

कैबिनेट-मिशन योजना को ध्यान से पढ़ने पर मालूम पड़ता है कि इस योजना में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की परस्पर विरोधी माँगों के बीच समझौता कराने का प्रयत्न किया गया था। इसलिये इस योजना में वह सभी दोष तथा गुण विद्यमान थे जो इस प्रकार के समझौते में हुआ करते हैं।

गुण—(१) योजना का सबसे बड़ा गुण यह था कि इसमें पाकिस्तान की माँग को एक दम अव्यवहारिक तथा अस्वीकृत घोषित कर दिया गया था।

(२) दूसरे, इस योजना के आधीन अल्पसंख्यक जातियों को अधिक प्रतिनिधित्व देने की बात नहीं मानी गई थी। इस प्रकार सब जातियों को बराबर का अधिकार दिया गया था।

(३) योजना में प्रान्तों तथा रियासतों को मिला कर एक संघ बनाने का निश्चय भी प्रशंसनीय था।

(४) एक और विशेषता योजना में यह थी कि विधान सभा में रियासतों के प्रतिनिधियों का राजाओं द्वारा चुना जाना आवश्यक नहीं ठहराया गया। इसमें कहा गया था कि प्रांतों तथा रियासतों के प्रतिनिधियों की एक कमेटी आपस में मिल कर इसका निश्चय करेगी।

(५) अन्त में अंग्रेजों को विधान सभा में किसी प्रकार का प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया।

दोष—योजना में उपरोक्त गुणों के होने पर भी अनेक दोष विद्यमान थे। इनका संक्षिप्त वर्णन हम नीचे देते हैं :—

(१) सर्वप्रथम, सिखों के साथ योजना में घोर अन्याय किया गया था। उनके अधिकारों की रक्षा के लिये किसी प्रकार का प्रबन्ध नहीं किया गया।

(२) विभागों के बनाने की बात और फिर विभागों द्वारा उनके अन्तर्गत प्रान्तों के विधान का निश्चय इस योजना की सबसे बड़ी खराबी थी। प्रान्तों को अपने विधान स्वयं बनाने की आज्ञा न देना प्रान्तीय स्वशासन के सिद्धान्त के विरुद्ध था।

(३) योजना के आधीन केन्द्रीय सत्ता को बहुत ही शक्तिहीन बना दिया गया था और उसे तीन विषयों को छोड़ कर और किसी विषय पर अधिकार प्रदान नहीं किया गया था।

(४) अन्त में योजना में कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार केवल उस दशा में विधान सभा द्वारा प्रस्तावित विधान को स्वीकार करेगी जब विधान सभा में सारे दल भाग लें। इस बात से मुस्लिम लीग को अवसर मिला कि वह विधान सभा के कार्य में भाग न ले और अपनी पाकिस्तान की माँग पर अडी रहे।

३५. मिशन का १६ जून का बयान

मिशन ने अपनी योजना के तीसरे भाग में कहा था कि वह भारत में वायसराय की कार्यकारिणी के स्थान पर एक अन्तरिम सरकार की स्थापना करना पसन्द करेगी। इस घोषणा को कार्यान्वित करने के लिये मिशन के सदस्यों ने १६ जून १९४६ को एक दूसरी घोषणा की जिसके द्वारा उन्होंने कांग्रेस के ६, मुस्लिम लीग के ५, तथा अल्पसंख्यक जातियोंके ३ सदस्यों को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का न्यौता दिया। मिशन ने कहा कि केवल उन्हीं दलों को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का अवसर दिया जायगा जो २६ जून से पहिले मिशन की योजना के दोनों दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन भागों को स्वीकार कर लेंगे। इस घोषणा के पश्चात् कांग्रेस तथा 'लीग' दोनों ही दलों ने अपनी अपनी सभाएँ की। लीग ने योजना मान ली। कांग्रेस ने योजना के दीर्घकालीन भाग को तो स्वीकार कर लिया परन्तु उसने अल्पकालीन योजना को मानने से इन्कार कर दिया। कारण, वह चाहती थी कि राष्ट्रीय मुसलमानों को भी सरकार में कुछ प्रतिनिधित्व मिल सके और मुस्लिम लीग इस बात के लिये राजी न होती थी। जब कैबिनेट मिशन को यह ज्ञात हुआ कि कांग्रेस और लीग दोनों ही मिशन की दीर्घकालीन योजना को स्वीकार करते हैं परन्तु, अल्पकालीन योजना की स्वीकृति के विषय में उनमें मतभेद है तो उसने केवल मुस्लिम लीग के सहयोग से अन्तरिम सरकार बनाने से इन्कार कर दिया।

मि० जिन्ना कैबिनेट मिशन के इस रवैये से आगबबूला हो गये। उन्होंने तो कैबिनेट मिशन की योजना को केवल इसलिये स्वीकार किया था कि उन्हें अन्तरिम सरकार बनाने का अवसर मिल सके। परन्तु जब, उनकी यह आशा पूरी न हुई तो उन्होंने कैबिनेट मिशन के सदस्यों को बुरा भला कहना आरम्भ किया और २९ जुलाई सन् १९४६ को एक सभा बुलाकर मिशन की योजना को पूर्ण रूप से अस्वीकृत ठहरा दिया। लीग के इसी

अधिवेशन में मि० जिन्ना ने सत्याग्रह (Direct action) की बात भी कही।

३६. संविधान सभा के लिये चुनाव

इस बीच १६ जून के ब्यान के पश्चात् वायसराय ने सब प्रान्तों की सरकारों को आदेश दिया कि वह संविधान सभा के लिये चुनाव करें। यह चुनाव जुलाई सन् १९४६ तक समाप्त हो गये। इन चुनावों में कुल ३८९ सीटों में से, कांग्रेस को २०५, तथा मुस्लिम लीग को ७३ सीटें प्राप्त हुईं, १८ सीटें स्वतंत्र उम्मीदवारों को मिलीं जिनमें ११ हिन्दू, ३ मुसलमान तथा ४ सिख थे। ९३ सीटों के लिये जो रियासतों के लिये सुरक्षित रक्खी गई थीं चुनाव नहीं किये गये। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वास्तव में २९६ सीटों में से कांग्रेस को २०५ सीटें प्राप्त हुईं।

३७. अन्तरिम सरकार की स्थापना

चुनावों के पश्चात् ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास हो गया कि कांग्रेस ही देश की सबसे शक्तिशाली राजनीतिक संस्था है। इसलिये अगस्त सन् १९४६ में लार्ड वेवल ने कांग्रेस के प्रधान पं० नेहरू से प्रार्थना की कि वह उनकी अन्तरिम सरकार बनाने में सहायता करें। २ सितम्बर सन् १९४६ को पं० नेहरू ने यह सरकार बना ली। इस सरकार में उन्होंने कुल १२ सदस्य शामिल किये जिनमें से ५ हिन्दू, ३ मुसलमान, १ हरिजन, १ सिख, १ पारसी, तथा १ ईसाई थे। अक्टूबर सन् १९४६ तक यह सरकार अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य करती रही। परन्तु, कांग्रेस द्वारा अन्तरिम सरकार बना लिये जाने से मि० जिन्ना के तन बदन में आग लग गई। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला कि मुस्लिम लीग के सदस्यों को भी अन्तरिम सरकार में शामिल किया जाय। इधर लार्ड वेवल भी यह अनुभव करने लगे थे कि कांग्रेस द्वारा सरकार बना लिये जाने से उनकी स्थिति एक वैधानिक अध्यक्ष की सी रह गई थी। उन्होंने इसलिये इसी में अपना भला समझा कि मुस्लिम लीग के सदस्यों को अन्तरिम सरकार में शामिल कर लिया जाय। अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में कांग्रेस के तीन सदस्य वायसराय

की कार्यकारिणी से अलग हो गये और उनके स्थान पर ५ मुस्लिम लीग के सदस्य सरकार में शामिल कर लिये गये। इन पाँच सदस्यों में मि० लियाकत अली खाँ, मि० गजनफर अली खाँ, सरदार अब्दुल रब निश्तर, मि० चुन्द्रीगर तथा मि० मंडल थे।

अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने के पश्चात् मुस्लिम लीग के सदस्यों ने कांग्रेस के साथ सहयोग की नीति का अवलम्बन नहीं किया वरन् वह अपने आप को एक अलग दल का सदस्य समझने लगे। वह सरकार के प्रत्येक काम में अड़चन डालते रहे। उन्होंने विधान सभा के कार्य में भी भाग लेने से इन्कार कर दिया ।

३८. ६ दिसम्बर की घोषणा

मुस्लिम लीग ने संविधान सभा की बैठकों में सम्मिलित होने से यह कह कर इन्कार किया कि कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन योजना के विभाग सम्बन्धी भाग का ठीक अर्थ नहीं निकाला है। कांग्रेस का कहना था कि प्रान्तों को विभागों में सम्मिलित होने तथा अपना विधान बनाने की स्वतंत्रता होगी। मुस्लिम लीग का कहना था कि प्रान्त स्वतंत्र नहीं होंगे । उनके विधान का निश्चय सब विभाग के सदस्यों द्वारा किया जायगा। कांग्रेस और लीग के बीच का यह मतभेद ब्रिटिश सरकार के फैसले के लिये पेश किया गया। ६ दिसम्बर सन् १९४६ को ब्रिटिश सरकार ने अपना फैसला मुस्लिम लीग के हक में दे दिया। साथ ही कांग्रेस पर दबाव डालने के लिये ब्रिटिश सरकार ने कहा कि यदि कोई राजनीतिक दल विधान सभा में भाग नहीं लेगा तो जो विधान विधान-सभा बनायेगी उसको मानने के लिये सभा में भाग न लेने वाला दल बाध्य नहीं होगा।

ब्रिटिश सरकार की घोषणा से कांग्रेस को अत्यन्त क्षोभ हुआ। परन्तु फिर भी मुस्लिम लीग का सहयोग प्राप्त करने के लिये कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के फैसले को स्वीकार कर लिया। पर जिन्ना साहब को खुश करना तो देवताओं के वश की भी बात न थी। कांग्रेस के इतना करने पर भी मुस्लिम

लीग ने विधान सभा में सम्मिलित होना उचित न समझा । उसका कहना था कि मुस्लिम जाति किसी भी दशा में एक विधान-सभा में भाग न लेगी। उसने यह माँग रक्खी कि पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान के भागों के लिये अलग-अलग दो विधान परिषदें बुलाई जायँ ।

इधर केन्द्रीय शासन का कार्य मुस्लिम लीग की विरोधी नीति के कारण इतना कठिन होता जा रहा था कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने लार्ड वेवल से प्रार्थना की कि वह या तो मुस्लिम लीग के सदस्यों को सरकार से निकाल दें अन्यथा उन्हें विधान सभा में भाग लेने तथा केन्द्रीय सरकार के काम में सहयोग देने को कहें । परन्तु लार्ड वेवल तो मुस्लिम लीग के सदस्यों को केन्द्रीय सरकार में इसीलिये लाये थे, जिससे कांग्रेस के काम में बाधा पड़े और भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति का स्वप्न शीघ्र पूरा न हो सके । इसलिये उन्होंने पं० नेहरू की इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया ।

३६. २० फरवरी का ब्यान

इधर २० फरवरी सन् १९४६ को ब्रिटेन के प्रधान-मंत्री ने एक और घोषणा की जिसका आशय यह था कि अंग्रेज सन् १९४८ तक भारत छोड़ देंगे । यह घोषणा इस आशय से की गई थी कि जिससे कांग्रेस और लीग के सदस्य स्थिति को समझें और आपस में समझौता करने के लिये कोई व्यवहारिक कदम उठाएँ । इस घोषणा के साथ ही लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउंटबैटन के वायसराय नियुक्त किये जाने का एलान किया गया ।

४०. लार्ड माउंटबैटन का भारत में आगमन

लार्ड माउंटबैटन ने भारत आकर मुस्लिम लीग के नेताओं को सलाह दी कि वह कैबिनेट मिशन की १६ जून वाली घोषणा को स्वीकार कर लें । परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला । अन्त में लार्ड माउन्टबैटन ने बंगाल और पंजाब के विभाजन की बात कही । उन्होंने मुस्लिम लीग के

नेताओं से कहा कि यदि वह पाकिस्तान बनाना चाहतें हैं तो उन्हें उन इलाकों की जनता को जिनमें हिन्दू बहुमत में हैं हिन्दुस्तान के साथ रहने की स्वतंत्रता देनी होगी। मुस्लिम लीग को यह बात स्वीकार करनी पड़ी। अन्त में कांग्रेस ने भी यह समझ कर कि आए दिन के झगड़ों से देश का विभाजन अच्छा है, विभाजन की बात मान ली। दोनों राजनीतिक दलों की इस प्रकार सम्मति प्राप्त कर के, लार्डमाउंटबैटन अपनी भारत विभाजन योजना के प्रति ब्रिटिश सरकार की सहमति प्राप्त करने के लिये इंगलैंड गये।

४१. लार्ड माउन्टबैटन की भारत के विभाजन के लिए योजना

पहली जून को वह भारत वापिस आ गये और ३ जून सन् १९४७ को उन्होंने आल इण्डिया रेडियो के दिल्ली स्टेशन से वह ऐतिहासिक भाषण प्रसारित किया जिसमें उन्होंने भारत को दो स्वतंत्र राज्यों में बाँट देने की योजना जनता के सम्मुख रक्खी। इस भाषण का पूरा विवरण नीचे दिया जाता है :—

१. २० फरवरी, १९४७ को सम्राट् की सरकार ने घोषणा की थी कि उसका इरादा जून, १९४८ तक ब्रिटिश भारत की सत्ता भारतीयों के हाथों में सौंपने का है। सम्राट् की सरकार ने आशा की थी कि मंत्रिमंडल मिशन के १६ मई, १९४६ की योजना को कार्यान्वित करने में और भारत के लिये सर्वमान्य विधान बनाने के कार्य में प्रमुख राजनीतिक दलों का सहयोग सम्भव होगा। यह आशा पूरी नहीं हुई।

२. मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रांत, बिहार, मध्य प्रान्त, तथा बरार, आसाम, उड़ीसा, तथा उत्तर पश्चिमी सीमान्त-प्रान्त के बहुसंख्यक प्रतिनिधि तथा दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा और कुर्ग के प्रतिनिधि नया विधान बनाने के कार्य में आगे ही प्रगति कर चुके हैं। दूसरी ओर, मुस्लिम लीग पार्टी ने जिसमें बंगाल, पंजाब, और सिंध के बहुसंख्यक प्रतिनिधि तथा ब्रिटिश बिलोचिस्तान का प्रतिनिधि शामिल है, विधान परिषद् में शामिल न होने का निश्चय किया है।

३. सम्राट् की सरकार की सदा यह इच्छा रही है कि सत्ता स्वयं भारतीयों के मतानुसार ही हस्तान्तरित की जाए। यदि भारतीय राजनीतिक दलों में मतैक्य होता तो यह कार्य बहुत सरल था। मतैक्य के अभाव में ऐसी कार्य-प्रणाली ढूंढ़ निकालने का भार जिसके द्वारा जनता के मत का पता लग सके, सम्राट् की सरकार पर आ पड़ा है। भारतीय नेताओं में पूरी तरह विचारविमर्श के बाद सम्राट् की सरकार ने निश्चय किया है कि एतदर्थ नीचे दी हुई योजना को ग्रहण किया जाए। सम्राट् की सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि उसका इरादा भारत के लिए अन्तिम अथवा सम्पूर्ण विधान बनाने का प्रयास करने का नहीं है। वह काम तो स्वयं भारतीयों को करना है। न ही इस योजना में कोई ऐसी बात है जिससे कि विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा अखण्ड भारत के आधार पर बात के मार्ग में बाधा पड़े।

४. सम्राट् की सरकार मौजूदा विधान परिषद् के कार्य में किसी प्रकार की रुकावट नहीं डालना चाहती। अब जब कि निम्नांकित प्रान्तों के लिये पृथक् व्यवस्था कर दी गई है, सम्राट् की सरकार को विश्वास है कि इस घोषणा के परिणाम-स्वरूप उन प्रान्तों के मुस्लिम लीगी प्रतिनिधि जिनके बहुसंख्यक प्रतिनिधि विधान परिषद में पहले ही से भाग ले रहे हैं, इस परिषद् की कारंवाई में हिस्सा लेंगे। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इस परिषद् द्वारा बनाया हुआ विधान देश के उन प्रदेशों पर लागू नहीं हो सकता जो इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं। सम्राट् की सरकार को विश्वास है कि जो कार्यप्रणाली नीचे दी जा रही है इस विषय पर वही उन प्रदेशों के लोगों का मत जानने का सर्वोत्तम व्यवहारिक साधन है कि वे अपना विधान (अ) मौजूदा परिषद् में बैठ कर बनाना चाहते हैं, अथवा (ब) एक नई विधान परिषद् द्वारा जिसमें उन प्रदेशों के प्रतिनिधि शामिल हों जो मौजूदा परिषद् से पृथक् रहना चाहते हैं।

जब इस बात का फैसला हो चुकेगा, तब यह निश्चय करना सम्भव होगा कि शासन अधिकार किस सत्ता अथवा किन सत्ताओं को सौंपे जाने चाहिए ।

५. इसलिये बंगाल और पंजाब की धारा सभाओं को (यूरोपियन सदस्यों को छोड़ कर) अलग-अलग दो भागों में बैठने को कहा जायगा एक भाग में मुस्लिम बहुसंख्यक जिलों के प्रतिनिधि होंगे और दूसरे में गैर-मुस्लिम ज़िलों के । ज़िलों की जनसंख्या का आधार १९४१ की जन-संख्या के आँकड़े होंगे । इन दोनों प्रांतों के मुस्लिम बहुसंख्यक ज़िले इस घोषणा के परिशिष्ट में दिये गये हैं ।

६. दो भागों में बैठे हुए प्रत्येक धारा सभा के सदस्यों को अलग से यह अधिकार होगा कि वे प्रांत के विभाजन के सम्बन्ध में अपना मत दें । यदि किसी भी भाग ने साधारण बहुमत से यह निर्णय किया कि विभाजन होना चाहिए, तब विभाजन हो जायगा और इस सम्बन्ध में आवश्यक प्रबन्ध किया जायगा ।

७. विभाजन के प्रश्न का फैसला करने से पहले यह वांछनीय होगा कि प्रत्येक भाग के प्रतिनिधि पहले से ही यह जान लें कि अन्त में दोनों भागों द्वारा अविभाजित रहने के पक्ष में निर्णय करने की दशा में समस्त प्रांत किस विधान परिषद् में शामिल होना चाहेगा । इसलिए, दोनों धारा सभाओं का यदि कोई सदस्य भी ऐसा चाहेगा तो धारा सभा के सब सदस्यों के सम्मिलित अधिवेशन का (यूरोपियनों को छोड़ कर) आयोजन किया जायगा जिसमें यह निश्चय किया जायगा कि धारा सभा के दोनों भागों द्वारा अविभाजित रहने का निर्णय करने पर समस्त प्रांत कौन सी संविधान सभा में शामिल होगा ।

८. विभाजन के पक्ष में निर्णय होने पर, धारा सभा का प्रत्येक भाग अपने-अपने प्रदेश की ओर से फैसला करेगा कि उपर्युक्त पैरा ४ में दिये गये विकल्पों में से वह कौन सा विकल्प ग्रहण करेगा।

९. विभाजन के प्रश्न पर तात्कालिक निर्णय के उद्देश्य से, बंगाल और पंजाब की धारा सभाओं के सदस्य दो भागों में बैठेंगे---एक भाग में मुस्लिम बहुमत वाले ज़िलों के सदस्य (जैसा कि परिशिष्ट में कहा गया है, और दूसरे में शेष जिलों के सदस्य बैठेंगे। यह कार्रवाई केवल प्रारम्भिक और अस्थायी है, क्योंकि निश्चय ही इन प्रांतों के अन्तिम विभाजन के लिये सीमा निर्धारण सम्बन्धी प्रश्नों के बारे में विस्तृत जानकारी आवश्यक होगी। और जैसे ही इनमें से किसी भी प्रांत के विभाजन का निर्णय हुआ वैसे ही गवर्नर जनरल द्वारा एक सीमा निर्धारण कमीशन के सदस्यों तथा कार्यक्षेत्र का फैसला सम्बद्ध व्यक्तियों से विचार-विमर्श के बाद किया जायगा। कमीशन को आदेश दिया जायगा कि वह पंजाब के मुस्लिम और गैर-मुस्लिम बहुमत वाले प्रदेशों की सीमा निर्धारित करे। कमीशन को साम्प्रदायिक बहुमत के अतिरिक्त, कई और बातों को ध्यान में रखने के लिये भी कहा जायगा।

१०. सिंध--पैरा ४ में दिये गये विकल्पों पर निर्णय करने के लिये सिंध की धारासभा की (यूरोपियन सदस्यों को छोड़ कर) बैठक बुलायी जायगी।

११. पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की स्थिति असाधारण है। इस प्रांत के तीन प्रतिनिधियों में से दो तो मौजूदा संविधान सभा में भाग भी ले रहे हैं। किन्तु इसकी भौगोलिक स्थिति तथा अन्य कारणों से स्पष्ट है कि यदि समस्त पंजाब अथवा इसका कोई भाग मौजूदा संविधान सभा में न बैठने का निश्चय करता है, तो यह आवश्यक है कि सीमा प्रान्त को अपनी स्थिति पर फिर से विचार करने का अवसर दिया जाय। इसलिए ऐसी अवस्था में, सीमा प्रांत की मौजूदा धारा सभा के निर्वाचकों का मत लिया जायगा कि पैरा ४ में दिये गये विकल्पों में से वे किसे ग्रहण करना

चाहते हैं। यह जनमत गवर्नर जनरल के तत्वावधान में और प्रांतीय सरकार के परामर्श से लिया जायगा।

१२. ब्रिटिश बिलोचिस्तान ने एक सदस्य चुना है किन्तु वह विधान सभा की बैठकों में शामिल नहीं हुआ है। इसकी भौगोलिक स्थिति के कारण बिलोचिस्तान प्रान्त को भी अपनी स्थिति पर पुर्नविचार का और पैरा ४ में दिये गये किसी भी विकल्प को ग्रहण करने का अवसर मिलेगा। गवर्नर जनरल विचार कर रहे हैं कि यह किस प्रकार सर्वोत्तम रीति से किया जा सकता है।

१३. **आसाम**– यद्यपि आसाम मुख्यत: गैर मुस्लिम प्रांत है, सिलहट जिला जो बंगाल से मिला है मुख्यत: मुस्लिम है। यह माँग की गई है कि बंगाल के विभाजन किये जाने की दशा में सिलहट को मुस्लिम बंगाल के साथ मिला देना चाहिये। तदनुसार, यदि बंगाल का बँटवारा हुआ तो यह जानने के लिये कि सिलहट आसाम के साथ रहे या उसे पूर्वी बंगाल के नये प्रांत के साथ मिला दिया जाय, गवर्नर जनरल के तत्वावधान में और आसाम सरकार के परामर्श से सिलहट जिले का जनमत लिया जायगा। यदि जनमत ने पूर्वी बंगाल के साथ मेल के पक्ष में निर्णय दिया, तो सिलहट के तथा पड़ोसी जिलों के मुस्लिम बहुमत वाले प्रदेशों को जिन्हें पूर्वी बंगाल से मिला दिया जायगा, सीमा निर्धारित करने के लिए, पंजाब और बंगाल की तरह और उन्हीं आदेशों के साथ एक और सीमा निर्धारण कमीशन नियुक्त किया जायगा। शेष आसाम प्रत्येक दशा में मौजूदा विधान परिषद् की कार्रवाई में भाग लेता रहेगा।

१४. यदि पंजाब और बंगाल को विभाजित करने का निश्चय हुआ तो मन्त्रिमंडल मिशन की १६ मई, १९४६ की योजना में दिये गये सिद्धान्त के अनुसार इन प्रांतों में प्रतिनिधि निर्वाचित करने के लिये नये चुनाव होंगे। प्रति दस लाख व्यक्तियों के पीछे एक प्रतिनिधि चुना जायगा

इसी प्रकार यदि यह फैसला हुआ कि सिलहट को पूर्वी बंगाल के साथ मिलाया जाय, वहाँ भी फिर से चुनाव होगा। प्रत्येक प्रांत निम्न संख्या में प्रतिनिधि चुनेगा :—

प्रान्त	जनरल	मुस्लिम	सिख	कुल
सिलहट जिला	१	२	...	३
पश्चिमी बंगाल	१५	४	...	१९
पूर्वी बंगाल	१२	२९	...	४१
पश्चिमी पंजाब	३	१२	२	१७
पूर्वी पंजाब	६	४	२	१२

शासन सम्बन्धी मामले—यथाशीघ्र विभाजन के शासन सम्बंधी परिणामों के बारे में परस्पर वार्त्ता आरंम्भ करनी होगी :

(क) उन सब विषयों के बारे में जिनका संचालन केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है सम्बद्ध उत्तराधिकारिणी सत्ताओं के बीच।

(ख) उन मामलों के बारे में जो सत्ता हस्तांतरण से पैदा हों, संधियों के लिये विभिन्न उत्तराधिकारिणी तथा सम्राट् की सरकार के बीच।

(ग) उन प्रान्तों के सम्बन्ध में जिनका विभाजन होगा, सब प्रांतीय विषयों के बारे में, जैसे देना और पावना का बँटवारा, पुलिस तथा अन्य सर्विस, हाई कोर्ट, प्रांतीय संस्थाएँ आदि।

१७. पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के कबीलों के साथ उत्तराधिकरिणी सत्ता को व्यवस्था के सम्बन्ध में बातचीत करनी होगी।

१८. सम्राट् की सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि उपर्युक्त निर्णयों का सम्बन्ध केवल ब्रिटिश भारत से है और रियासतों के प्रति उनकी नीति वही है जो मंत्रिमंडल मिशन के १२ मई, १९४६ के मैमोरेंडम में दी गई थी।

१९. ताकि उत्तराधिकारिणी सत्ताओं को अधिकार ग्रहण करने के लिये समय मिल जाय, यह आवश्यक है कि उपर्युक्त सब प्रक्रियाएँ शीघ्र से शीघ्र सम्पन्न हो जायँ। विभिन्न प्रांत या प्रान्तों के भाग यथासम्भव इस योजना की शर्तों के अन्तर्गत स्वतंत्र रूप से आवश्यक कार्रवाई करेंगे। इससे समय में बचत होगी। मौजूदा संविधान सभा और नई संविधान सभा (यदि वह बनी) सम्बन्धित प्रदेशों के विधान तैयार करने का काम हाथ में लेगी। निश्चय ही नियमादि बनाने में उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

२०. सत्ता का तात्कालिक हस्तांतरण प्रमुख राजनीतिक दलों ने बारबार इच्छा प्रकट की है और इस बात पर जोर दिया है कि भारत में शीघ्र से शीघ्र सत्ता भारतीयों को सौंप दी जाय। सम्राट् की सरकार इस इच्छा से पूर्ण सहानुभूति रखती है और वह स्वतन्त्र भारत की सरकार या सरकारों की स्थापना द्वारा १९४८ से पहले ही सत्ता हस्तान्तरण के लिये तैयार है। अतः इस इच्छा को यथाशीघ्र और व्यवहारिक रूप से पूरा करने के लिये सम्राट् की सरकार का इरादा है कि पार्लियामेंट के हाल के अधिवेशन में ही एक या दो उत्तराधिकारिणी सत्ताओं को, जैसा कि इस घोषणा के परिणाम-स्वरूप फैसला हो, सत्ता सौंपने के लिये, औपनिवेशिक पद के आधार पर व्यवस्था पेश की जाय। इस कार्रवाई का भारतीय संविधान सभा द्वारा कालान्तर में यह फैसला करने के अधिकार पर कि वह प्रदेश जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में रहेगा अथवा नहीं, कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

२१. उपर्युक्त व्यवस्था को कार्यान्वित करने के लिये, अथवा कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में या किसी और बात के सम्बन्ध में समय-समय पर जब आवश्यक होगा गवर्नर जनरल घोषणाएँ करते रहेंगे।

परिशिष्ट—१९४१ की जन-संख्या के अनुसार पंजाब और बंगाल के मुस्लिम बहुमत जिले ये हैं:—

१. पंजाब

लाहौर डिवीजन : गुजरावाला, गुरदासपुर, लाहौर, शेखूपुरा, स्यालकोट

रावलपिंडी डिवीजन: अटक, गुजरात, जेहलम, मियांवाली, रावल पिंडी, शाहपुर।

मुल्तान डिवीजन : डेरा गाजी खाँ, झंग, लायलपुर, मिंटगुमरी, मुल्तान, मुजफ़्फ़रगढ़ ।

२. बंगाल

चटगाँव डिवीजन: चटगाँव, नोआखली, तिप्परा।

ढाका डिवीजन : बाकरगंज, ढाका, फरीदपुर, मेमन सिंह।

प्रेसिडेंसी डिवीजन : जेसोर, मुर्शिदाबाद, नदिया ।

राजशाही डिवीजन : बोगरा, दीनाजपुर, माल्दा, पाब्ना, राजशाही रंगपुर।

४२. माउन्टबैटन योजना की स्वीकृति

वायसराय के रेडियो भाषण के पश्चात् पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस की ओर से, मि० जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से तथा सरदार बलदेवसिंह ने सिखों की ओर से रेडियो पर भाषण दिये। इन तीनों नेताओं ने अपने भाषणों में कहा कि उन्हें लार्ड माउन्टबैटन की योजना स्वीकार है। इसके पश्चात् कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के सदस्यों ने अपने नेताओं के फैसलों का अनुमोदन किया। मुस्लिम लीग की आल इंडिया कौंसिल का एक अधिवेशन ९ जून सन् १९४७ को दिल्ली में हुआ, इस अधिवेशन में ८ के विरुद्ध ४०० रायों से लीग ने विभाजन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। कांग्रेस ने भी १४ जून को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन दिल्ली में ही बुलाया और उसमें २९ के विरुद्ध १५७ रायों के बहुमत से विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार दोनों राजनीतिक दलों की स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात् लार्ड मांउटबैटन ने विभाजन के कार्य को पूरे वेग के साथ सम्पन्न करने के लिये कदम उठाया। उन्होंने प्रान्तों की विधान सभाओं से कहा कि वह तुरन्त भारत या पाकिस्तान के

साथ मिलने का अपना निश्चय प्रगट करें। २० जून को बंगाल और २३ जून को पंजाब की विधान सभाओं ने पाकिस्तान में सम्मिलित होने का निश्चय कर लिया। इस के कुछ दिन पश्चात् सिंध तथा बिलोचिस्तान के सूबों ने भी पाकिस्तान के साथ रहने की इच्छा प्रकट की।

४३. १६४७ का भारतीय स्वाधीनता का कानून

४ जुलाई सन्१९४७ को लार्ड माउन्टबैटन की भारत विभाजन की योजना को कार्यान्वित करने के लिये ब्रिटिश पार्लियामेंट में एक बिल पेश किया गया जिसे भारत की स्वाधीनता का बिल कहते हैं। इस बिल द्वारा भारत को दो स्वतंत्र उपनिवेशों में विभक्त कर दिया गया— एक भाग का नाम पाकिस्तान रक्खा गया और दूसरे का नाम इंडिया। वह बिल १५ जुलाई को पास हो गया।

इस कानून के पास होने के पश्चात् १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत के दो टुकड़े कर दिये गये। सरकार की सारी सम्पत्ति रेल, कारखाने, डाकखाने, तारघर, फौज का सामान, तथा, रिजर्व बैंक का समस्त धन दो हिस्सों में बाँट दिया गया और १५ अगस्त से ही दो स्वतंत्र सरकारें, एक दिल्ली में और दूसरी करांची में, कार्य करने लगीं। इतना शीघ्र सारा कार्य सम्पन्न करने का सारा श्रेय लार्ड मांउटबैटन को ही प्राप्त है। विभाजन के पश्चात् भारत को अच्छे दिन देखने नसीब नहीं हुये। कुछ ही दिनों पश्चात् भारत के लाखों नर और नारियों को साम्प्रदायिकता की भीषण ज्वाला का शिकार होना पड़ा। लाखों हिन्दू और मुसलमानों को अपना घर और बार छोड़ कर दूसरे स्थानों की शरण लेनी पड़ी और ३० जनवरी सन् १९४८ को भारत को वह दिन भी देखना पड़ा जब शान्ति के देवता, युग पुरुष, राष्ट्र पिता महात्मा गांधी को अपनी ही कौम के एक कातिल ने गोली का शिकार बना डाला। फिर भी इन मुसीबतों का सामना करती हुई हमारी संविधान सभा अपना कार्य बराबर करती रही और अन्त में २६ नवम्बर सन् १९४९ को भारत का एक आदर्श विधान पास करके उसने अपना काम समाप्त कर दिया।

३४. हमारा नया विधान

हमारे इस नये विधान के संबंध में कुछ तथ्य और आँकड़े नीचे दिये जाते हैं: —

संविधान सभा के सदस्यों की संख्या — ३०८

सभा की पहली बैठक — ९ दिसम्बर, १९४६

विधान स्वीकृति की अन्तिम बैठक २६ नवम्बर १९४९

विधान बनाने में जो समय लगा— २ वर्ष, ११ महीने, १८ दिन

कितने अधिवेशन हुए— ११

अधिवेशनों में दर्शकों की संख्या — ५३,०००

संविधान सभा पर कुल व्यय — ६३,९६,७२९ रुपये

वैधानिक सलाहकार द्वारा तैयार किये गये संविधान के मसविदे की विषय-सूची } २४३ धाराएँ और १३ परिशिष्ट

मसविदा समिति द्वारा विधान परिषद के सम्मुख प्रस्तुत किये गये विधान के मसविदे की विषय-सूची } ३१५ धाराएँ और ८ परिशिष्ट

विधान के मसविदे में कितने संशोधनों का नोटिस मिला—७,६३५ (लगभग)

वास्तविक संशोधनों की संख्या — २,४७३

अन्तिम रूप में स्वीकृत विधान की आकृति—३९५ धाराएँ और ८ परिशिष्ट

संसार के कुछ और बड़े देशों ने अपना विधान बनाने में कितना समय लगाया इसके तुलनात्मक आँकड़े नीचे दिये जाते हैं :—

अमरीका ४ महीने ७ धाराओं के लिए

कनाडा २ वर्ष ५ महीने १४७ धाराओं के लिए

आस्ट्रेलिया ९ वर्ष १२८ धाराओं के लिए

दक्षिणी अफ़्रीका १ वर्ष १५३ धाराओं के लिए

भारत २ वर्ष ११ महीने १८ दिन ३९५ धाराओं, ८ परिशिष्ट और २४७३ संशोधनों के लिये ।

अध्याय २

भारत के नये संविधान की कुछ विशेषताएँ

हमारे विधान निर्माताओं ने गण राज्य भारत के लिये जिस संविधान की रचना की है वह संसार में अनूठा है। यह एक ऐसा संविधान है जिस पर आने वाली पीढ़ियाँ गर्व कर सकेंगी, जिसे स्वयं इतिहास गर्व की दृष्टि से देखेगा। यह संविधान एक युग का पटाक्षेप तथा दूसरे युगका आरम्भ है। भारत से असमानता, साम्प्रदायिकता, दमन, अत्याचार तथा अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर कर यह संविधान हमारे गौरव सम्पन्न देश में स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व तथा न्याय के आदर्शों की नींव रखता है। संसार के दूसरे देश अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, इंगलैंड तथा आयरलैंड के संविधानों से उनके सर्वोच्च गुण ग्रहण कर, हमारा संविधान संसार के राजनीतिक इतिहास में एक नई परिपाटी को जन्म देता है।

इंगलैंड के संविधान से मंत्रिमंडलात्मक शासन-प्रणाली को अपना कर, अमरीका के विधान से नागरिकों के मौलिक अधिकार, उच्चतम् न्यायालय, तथा उपराष्ट्रपति की पद्धति ग्रहण कर, आयरलैंड के संविधान से नियात्मक सद्धान्त तथा उच्च भवन का स्वरूप अपना कर, आस्ट्रेलिया के संविधान से समवर्ती विषयों की ग्रहित कर, तथा कैनाडा के संविधान से केन्द्रीयकरण की भावना को अपना कर, हमारा नया संविधान संसार के सभी विधानों के गुणों की खान बन गया है। और इतना होने पर भी

वह अपना एक अलग अस्तित्व रखता है। संघात्मक होते हुये भी यह विधान संघ शासनों की जटिलता तथा उनके अवगुणों से बचा हुआ है। भारत की विशेष परिस्थितियों का विचार करके यह विधान एक विशेष साँचे में ढाला गया है। यह हमारे ऋषियों की प्राचीन थाती 'न्याय' के सिद्धान्त को पुनर्जीवित कर भारत में एक आदर्श लोकतंत्रात्मक समाज की स्थापना करता है। नीचे हम इस संविधान की कुछ मुख्य विशेषताओं का वर्णन करते हैं :-

१. जनता का अपना विधान

हम केवल एक ऐसे विधान को अच्छा कहते हैं जो प्रजातंत्रवाद के सिद्धान्त पर 'जनता का, जनता द्वारा, तथा जनता के हित के लिये, विधान हो। जो विधान केवल कुछ थोड़े से उच्च श्रेणी के धनिक लोगों द्वारा बनाया जाता है, उस विधान में जनता के हित का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा जाता और विधान निर्माता इस बात का ही प्रयत्न करते हैं कि राज्य की अन्तिम शक्ति उनके ही हाथों में केन्द्रित रहे, और देश की गरीब शोषित, तथा अधिकारहीन जनता को ऊपर उठने का अवसर नहीं मिले। यह सच है कि हमारा नया विधान किसी प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने हुये प्रतिनिधियों द्वारा नहीं बनाया गया है। परन्तु, जिस समय और जिस परिस्थिति में हमारे देश की संविधान सभा का निर्माण हुआ, उस समय संविधान सभा के प्रतिनिधियों का प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा चुने जाने के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही नहीं था। प्रान्तीय चुनाव कुछ ही समय पहिले हो कर चुके थे और उनमें केवल उन्हीं लोगों का बहुमत था जिन्होंने वर्षों की तपस्या तथा कठिन जन सेवा के पश्चात् जनता के हृदय में एक अनोखा स्थान प्राप्त कर लिया था। यदि संविधान सभा का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर भी होता तो भी उस में वही प्रतिनिधि चुने जाते जो प्रान्तीय धारा सभाओं द्वारा चुने गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी संविधान सभा का संगठन जन संतात्मक था। संविधान में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि भारतीय संघ तथा उसकी सारी इकाइयों में अन्तिम सत्ता जनता के हाथ में रहेगी। भारतीय जनता को इस बात का पूर्ण अधिकार होगा कि वह जब चाहे अपने संविधान को बदल सके। इस प्रकार हमारा नया संविधान पूर्णरूप से जनतंत्रीय है और उसको सारी शक्ति एवं स्त्रोत केवल जनता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि, "हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिये तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता, सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्प हो कर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख २६ नवम्बर, १९४९ ई० मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छै विक्रमी, को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित, और आत्मार्पित करते हैं।"

२. राष्ट्रीय भावना का पोषक—एक राष्ट्र, एक नागरिकता, एक संविधान

हमारे संविधान की दूसरी सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत के इतिहास में यह पहला अवसर है जब देश की ३३ करोड़ जनता तथा उसके १,२००,००० वर्गमील के विस्तृत क्षेत्र के लिये एक ऐसे शासन की नींव रक्खी गई है जिसके अन्तर्गत भारत का प्रत्येक प्रान्त तथा रियासत एक ही प्रकार के प्रजातंत्रीय शासन का अंग होगी, सब का एक ही प्रकार का संविधान होगा, सब नागरिकों को एक ही प्रकार के सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त होंगे तथा सब स्थानों पर एक ही प्रकार की सरकारी व्यवस्था होगी। हर्ष वर्धन, अशोक, गुप्त वंश तथा अकबर के काल में पहिले भी भारत के साम्राज्य का विस्तार चाहे इतना रहा हो परन्तु इन राज्यों में

विभिन्न प्रान्त और रियासतें अपनी किसी भी प्रकार की शासन व्यवस्था रखने के लिये स्वतंत्र थीं और केन्द्रीय सत्ता का इस विषय में उन पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं था। विभिन्न प्रान्तों में राजाओं के अच्छे या बुरे होने पर जनता की भलाई तथा उनके अधिकार अवलम्बित थे। परन्तु आज प्रथम बार भारत में एक ऐसे शासन की नींव रक्खी गई है जिसके अन्तर्गत काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और आसाम से लेकर द्वारिका तक प्रत्येक नागरिक को एक ही प्रकार के अधिकार प्राप्त होंगे और वह केवल एक ही अविछिन्न तथा सुसंगठित भारत का घटक होगा।

३. देश की अखंड एकता का द्योतक

अगस्त सन् १९४७ में अँग्रेजी सत्ता समाप्त होने से पहिले हमारे देश में ५६२ स्वतंत्र रियासतें थीं। उनके राजा मनमाने तरीके से अपनी प्रजा पर शासन करते थे। स्वतंत्र रूप से विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करके, वह जनता का निर्दयतापूर्वक शोषण करते थे। उनके राज्य में जनता को किसी भी प्रकार के नागरिक या राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। हमारे नये संविधान में भारत की इन ५६२ स्वतंत्र रियासतों को या तो प्रान्तों में विलीन कर दिया गया है, या उनके संघ बना दिये गये हैं या उन्हें केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत चीफ कमिश्नर के सूबों में बाँट दिया गया है। इस प्रकार नये विधान के अन्तर्गत सारे भारत का एकीकरण कर दिया गया है।

४. साम्प्रदायिकता का शत्रु

अंग्रेजों के काल में हिन्दू और मुसलमानों में लड़ाई कराना, उन्हें एक दूसरे से अलग रखना, तथा उनके लिये धारा सभा तथा सरकारी नौक-रियों में अलग-अलग स्थान सुरक्षित रखना, सरकार की नीति का एक अंग था। उस काल में हिन्दू और मुसलमानों के चुनाव के लिये अलग-अलग निर्वाचिन-क्षेत्र बनाये जाते थे। हिन्दू हिन्दुओं को और मुसलमान मुसलमानों को राय देते थे। इस प्रथा के कारण हमारे देश में सदा हिन्दू और मुसल-

आनों का झगड़ा चला आता था। वह प्रत्येक प्रश्न पर साम्प्रदायिक दृष्टि-कोण से विचार करते थे। इसी विषैली भावना के कारण ही हमारे देश के दो टुकड़े हुये। नये संविधान के अन्तर्गत पृथक् निर्वाचन प्रणाली तथा सुरक्षित स्थानों की प्रथा का अन्त कर दिया गया है। आगे से हिन्दू और मुसलमान मिल कर एक दूसरे को राय देंगे। एक दूसरे के सहयोग, विश्वास तथा प्रेम के कारण ही वह धारा सभाओं में चुने जा सकेंगे। मुसलमानों के लिये कोई सीटें सुरक्षित नहीं होंगी। इस प्रकार भारत से साम्प्रदायिक भावना का कुछ काल के पश्चात् पूर्ण रूप से अन्त हो जायगा।

हरिजनों तथा कुछ पिछड़ी हुई जातियों को छोड़ कर जिसमें मजहबी, रामदासी, कबीर पंथी सिख शामिल होंगे, बाकी सभी जनता के लिये नये संविधान में एक से ही निर्वाचन क्षेत्र रक्खे गये हैं। किसी अल्प-संख्यक जाति के लिये धारा सभा या सरकारी नौकरियों में सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था नहीं की गई है। हिन्दू और मुसलमान, सिख और ईसाई, ऐंग्लो इंडियन और पार्सी सब मिल कर एक दूसरे को राय देंगे और इस प्रकार भारत में एक संगठित, दृढ़ तथा शक्ति शाली राष्ट्र का निर्माण हो सकेगा।

५. सामाजिक जन-तंत्र का हामी

नये विधान में छूत-छात तथा ऊंच नीच के भेद-भाव को भी मिटा दिया गया है। विधान के अन्तर्गत अस्पृश्यता को एक भीषण अपराध घोषित कर दिया गया है। कोई भी मनुष्य छुआ-छूतके आधार पर किसी दूसरे व्यक्तिपर रोक न लगा सकेगा। वह उन्हें किसी दुकान, सार्वजनिक रेस्ट्राँ, होटल, सिनैमा, तालाब, कुआँ या सड़क का उपयोग करने से न रोक सकेगा। उनके किसी भी प्रकार का स्वतंत्र व्यवसाय, व व्यापार करने में भी बाधा न डाल सकेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि अस्पृश्यता के उसी

भूत का जिसे नष्ट करने के लिये हमारे देश के समाज-सुधारकों ने सदियों से प्रयत्न किये तथा जिसका अन्त करने के लिये, हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कई बार अपने प्राणों की बाजी लगाई, नये संविधान के अन्तर्गत जड़ मूल से अन्त कर दिया गया है।

६. स्त्री और पुरुषों की समानता का पोषक

नये विधान के अन्तर्गत सदियों से शोषित तथा अधिकारहीन स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार प्रदान किये गये हैं। उन्हें समान कार्य के लिये समान वेतन तथा चुनावों में पुरुषों के समान ही राय देने का अधिकार दिया गया है। विधान में कहा गया है कि सरकारी नौकरियों के क्षेत्र-में भी पुरुषों और स्त्रियों में भेद-भाव नहीं बरता जायगा।

७. राजनीतिक लोकतंत्र का पालक

इसके अतिरिक्त विधान में प्रत्येक वयस्क स्त्री और पुरुष को राय देने का अधिकार दे दिया गया है। हिसाब लगाया गया है कि इस कानून के अन्तर्गत भारत की १८ करोड़ जनता सरकार के काम में भाग ले सकेगी। इतनी बड़ी जनसंख्या को भारत में राजनीतिक अधिकार पहिली ही बार प्राप्त होंगे। इस कानून के अन्तर्गत हमारी उन रियासतों की प्रजा को विशेष लाभ होगा जो अँग्रेजों के काल में एक दोहरी गुलामी की शिकार थीं — एक रियासती राजाओं की और दूसरी अँग्रेजी सरकार की।

कुछ लोगों का विचार है कि वयस्क मताधिकार का अधिकार दे कर सरकार ने अच्छा नहीं किया, क्योंकि भारत की अशिक्षित जनता अपने मत का उचित उपयोग न कर सकेगी। परन्तु जो लोग ऐसा कहते हैं उनका प्रजातंत्र शासन व्यवस्था में पूर्ण विश्वास नहीं है। जनता को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करने के लिये मताधिकार सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। इसके अतिरिक्त पिछले चुनावों का अनुभव हमें बतलाता है कि भारतीय

जनता में इतनी सामान्य बुद्धि अवश्य है कि वह अपना भला-बुरा अच्छी प्रकार समझ सके ।

८. जनता के मौलिक अधिकारों का रक्षक

हमारे नये संविधान में प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा की गई है । इन अधिकारों में वैयक्तिक स्वतंत्रता का अधिकार, समानता का अधिकार, धार्मिक विश्वास का अधिकार, सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, भाषण देने, सभा करने, संघ बनाने, तथा समाचार पत्र प्रकाशित करने के अधिकार सम्मिलित हैं । इन अधिकारों पर केवल वही रोक लगाई गई है जिनके द्वारा नागरिक अपने अधिकारों का दुरुपयोग न कर सकें । ऐसी रोक संसार के प्रत्येक देश में ही लगाई जाती है । कारण, अधिकारों का अर्थ होता है 'अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये कुछ विशेष सुविधाओं की प्राप्ति' । भारत के नये संविधान में यह सभी सुविधाएँ प्रत्येक नागरिक को प्रदान की गई हैं । विधान में यह भी कहा गया है कि यदि राज्य का कोई विशेष क़ानून नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात करेगा, तो ऐसा क़ानून रद्द समझा जायगा । प्रत्येक नागरिक को इस बात का भी अधिकार प्रदान किया गया है कि यदि वह चाहे तो मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये संघ की सर्वोच्च अदालत अर्थात् सुप्रीम कोर्ट में प्रार्थना पत्र दे सकता है ।

९. अल्प-संख्यकों के अधिकारों का समर्थक

नये विधान में केवल बहुसंख्यक जातियों के अधिकारों की ही रक्षा नहीं की गई, वरन् प्रत्येक अल्प-संख्यक जाति के धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक अधिकारों की रक्षा भी की गई है । संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को धर्म, जाति, वर्ण, मत, लिंग के विचार के बिना बराबर के अधिकार प्रदान किये जायेंगे । प्रत्येक नागरिक को अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म में विश्वास रखने

की स्वतंत्रता होगी । सरकार धार्मिक आधार पर किसी के साथ पक्षपात नहीं करेगी । अल्प-संख्यक जातियों के सांस्कृतिक तथा धार्मिक अधिकारों की रक्षा करना उसका परम धर्म होगा ।

१०. धर्म निर्पेक्ष (लौकिक) शासन का महा पुजारी

इसी कारण से विधान में भारतीय सरकार को धर्मनिर्पेक्ष, लौकिक या असाम्प्रदायिक राज्य (Secular state) कह कर पुकारा गया है । लौकिक सरकार का अर्थ यह नहीं होता कि सरकार धर्म विरोधी है या उसके सदस्य नास्तिक हैं या ईश्वर या किसी धर्म में विश्वास नहीं रखते । इसका अर्थ केवल इतना होता है कि सरकार स्वयं किसी नागरिक को किसी एक विशेष धर्म में विश्वास रखने के लिये बाध्य नहीं करती । वह किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष के मंदिरों, मस्जिदों, पूजा स्थानों, या शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं इत्यादि को विशेष सुविधाएँ प्रदान नहीं करती । वह इस सिद्धान्त में विश्वास रखती है कि धर्म प्रत्येक मनुष्य का वैयक्तिक प्रश्न है, सरकार का उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं । इसलिये सरकार प्रत्येक नागरिक को बराबर के ही धार्मिक अधिकार प्रदान करती है । सरकार किसी संघ, समुदाय या व्यक्ति विशेष के धार्मिक कार्य में हस्तक्षेप नहीं करती । धार्मिक संस्थाएं अपने धर्म का स्वतंत्र रूप से प्रचार कर सकती हैं । परन्तु, धर्म के नाम पर वह जनता का शोषण, सामाजिक कुरीतियाँ, हिंसा, मारकाट, द्वेष तथा भेद-भाव का प्रचार नहीं कर सकतीं । प्रत्येक धर्म के लोगों को इस बात की पूर्ण स्वतंत्रता होती है कि वह अपने ईश्वर की जिस प्रकार भी चाहें आराधना करें. जिस प्रकार की चाहें शिक्षा प्राप्त करें, जिस प्रकार चाहें मंदिरों, मस्जिदों या गिरजा घरों में पूजा करें । सरकार इन कामों में हस्तक्षेप नहीं करती ।

बहुत से लोगों को ऐसा भ्रम हो गया है कि लौकिक सरकार में केवल वही लोग सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकेंगे जो या तो नास्तिक होंगे या किसी धर्म में विश्वास नहीं रक्खेंगे । स्कूल और कौलिजों में भी वह सम-

कते हैं कि धार्मिक शिक्षा बन्द कर दी जायगी, परन्तु इस प्रकार के विचार निर्मूल हैं। सरकार केवल इतना करेगी कि वह अपने स्कूल और कौलिजों में धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करेगी, क्योंकि, उसकी दृष्टि में सब धर्म बराबर हैं। यदि वह हिन्दू धर्म की शिक्षा का प्रबन्ध करे तो भारत के ४ करोड़ मुसलमान कहेंगे कि हमारे धर्म की शिक्षा का प्रबन्ध क्यों नहीं किया गया ? ईसाई, सिख, जैन, पारसी, और शेष सब लोग भी इसी प्रकार की माँग रक्खेंगे। इसलिये सरकार ने यह निश्चय किया है कि वह अपनी ओर से संचालित संस्थाओं, स्कूल या कालिजों में धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करेगी। परन्तु, यदि स्वतंत्र नागरिक अपना कोई विशेष स्कूल या कालिज चलाना चाहें, तो उन्हें ऐसा करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। हाँ, इतना अवश्य है कि ऐसे स्कूल और कौलिजों में किसी भिन्न धर्म में विश्वास रखने वाले विद्यार्थियों को धार्मिक शिक्षा या ईश्वर स्तुति में भाग लेने के लिये वाध्य नहीं किया जायगा। लौकिक राज्य की पहिचान केवल इतनी है कि इस प्रकार के राज्यों में धर्म या विश्वास के आधार पर किसी एक और दूसरे नागरिकों में भेद-भाव नहीं बरता जाता।

पाकिस्तान को हम लौकिक राज्य न कह कर धर्मतंत्र राज्य या इस्लामी राज्य कहते हैं। यह केवल इसलिये कि उस राज्य के अन्तर्गत हिन्दुओं के साथ भेद-भाव की नीति बरती जाती है। पाकिस्तान रेडियो पर प्रतिदिन क़ुरान की तलावत होती है, परन्तु हिन्दुओं के लिये वेदों या गीता का पाठ नहीं। मुसलमान जहाँ चाहें ज़मीन या जायदाद ख़रीद सकते हैं, परन्तु हिन्दुओं को उनकी अपनी ज़मीन या ज़ायदाद से भी निकाल कर भगाया जा रहा है। सरकारी नौकरियों में भी हिन्दुओं के साथ भेद-भाव किया जाता है। इसलिये हम उस राज्य को धर्मतंत्र राज्य कहते हैं। ऐसा राज्य संसार के प्रगतिशील देशों में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और वह राष्ट्र कभी भी संसार के स्वतंत्र तथा उच्चतम् राष्ट्रों की श्रेणी में सम्मान नहीं पाता। तंगदिली, संकुचित विचार, छोटी बातें, भेद-भाव, द्वेष की भावना और धार्मिक असहिष्णुता किसी राष्ट्र के नागरिकों को ऊपर

उठने से रोकती है। संसार में केवल वह देश उन्नति करता है जहाँ की जनता का हृदय विशाल हो, उसमें किसी भी प्रकार की क्षुद्र भावना न हो और प्रत्येक सार्वजनिक विषय पर उसमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से विचार करने की क्षमता हो।

११. एक राष्ट्र-भाषा का जन्मदाता

भारतीय विधान की एक और बड़ी विशेषता यह है कि प्रथम बार भारत की ३२ करोड़ जनता के लिये एक भाषा तथा एक लिपि का सिद्धांत स्वीकार किया गया है। संसार के दूसरे देशों को देखने से पता चलता है कि आयर-लैंड, कैनाडा तथा स्वीटजरलैंड जैसे छोटे देशों में भी एक नहीं वरन् दो-दो और तीन-तीन भाषाएँ राज्य भाषा का कार्य करती हैं। हमारे देश में १४ प्रान्तीय भाषाएँ हैं जो साहित्यिक दृष्टि-कोण से पूर्णरूपेण समुन्नत हैं। इनमें दक्षिण भारत की भाषाएं भी हैं जो उत्तर प्रान्तों की भाषाओं से बिलकुल भिन्न हैं। ऐसी अवस्था में विधान सभा द्वारा सारे राष्ट्र के लिये एक ही भाषा की स्वीकृति, भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण क़दम है। भारत की प्राचीन संस्कृति के इतिहास में यह पहला ही अवसर होगा जब १५ वर्ष के पश्चात्, हमारे देश की प्रत्येक प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार राष्ट्र भाषा हिन्दी में ही अपना कार्य करेगी।

१२. देश की नव-प्राप्त-स्वतंत्रता का प्रहरी

हमारे संविधान की एक और बड़ी विशेषता यह है कि उसका स्वरूप संघात्मक होने पर भी उसमें वह सारे गुण विद्यमान हैं जिनके द्वारा विशेष परिस्थितियों में केन्द्रीय सरकार उसी प्रकार कार्य कर सकेगी जैसा वह एकात्मक रूप रखने पर कर सकती थी। हमारा इतिहास हमें बतलाता है कि जब जब भारत में केन्द्रीय सत्ता ढीली पड़ी तभी तब भारत की स्वतंत्रता को विदेशियों के आक्रमण का सामना करना पड़ा। हमारे विधान निर्मा-ताओं ने इसीलिये हमारे नये विधान में संघीय तथा एकात्मक शासन की

उन सभी अच्छाइयों को ग्रहण कर लिया है जिनसे चाहे हमारा विधान राजनीतिक विद्वानों की दृष्टि में एक नये प्रकार का विधान कहलाये, परन्तु भारत की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति में वह सबसे अधिक उपयुक्त विधान है। आज हमारे देश की सबसे बड़ी आवश्यकता अपनी स्वतंत्रता को दृढ़ बनाने की है। हमारे देश में कितनी ही राष्ट्र विरोधी शक्तियाँ काम कर रही हैं। कभी संकुचित प्रान्तीयता की भावना अपना सिर उठाती है तो कभी देशी रियासतों के राजा अपनी खोई हुई सत्ता को दोबारा प्राप्त करने की सोचते हैं। ऐसी दशा में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार ही हमारी नवप्राप्त स्वतंत्रता की रक्षा कर सकती है और नये विधान में इसका पूर्ण रूप से प्रबन्ध कर दिया गया है।

१३. स्वतंत्र न्यायालय

भारतीय विधान की एक और विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत एक ऐसे स्वतंत्र न्यायालय के निर्माण का प्रबन्ध किया गया है जो केवल नागरिकों के अधिकारों की ही रक्षा न करेगा वरन् स्वयं विधान के संरक्षक का काम भी करेगा। प्रत्येक राजनीति का विद्यार्थी जानता है कि किसी देश में नागरिकों के अधिकारों का उस समय तक कोई मूल्य नहीं होता जब तक देश में एक स्वतंत्र न्यायालय की स्थापना न हो। भारत की संघीय अदालत को इस बात का पूर्ण अधिकार होगा कि वह नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिये हैवस कार्पस पिटिशन जारी कर सके तथा ऐसे कानूनों को विधान विरोधी घोषित कर दे जो नागरिकों के मौलिक अधिकारों की अवहेलना करते हों। इसके अतिरिक्त विधान में प्रान्तों के अन्तर्गत कार्यकारिणी और न्याय विभाग की स्वतंत्रता के लिये भी आयोजन किया गया है।

१४. नमनीय संविधान

अन्त में भारतीय विधान अपरिवर्त्तनशील नहीं, वह समय की बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार बदला जा सकता है। इस विधान में फैलाव,

विकास तथा परिवर्त्तनशीलता के सभी गुण विद्यमान हैं। विधान की अधिकतर धाराएँ ऐसी हैं जिन्हें राष्ट्रपति राज्य की सरकारें या केन्द्रीय संसद् बहुमत या दो-तिहाई बहुमत से बदल सकेंगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि हमारे भावी शासक, विधान की किन्हीं विशेष धाराओं से असन्तुष्ट हों तो वह उन्हें आसानी से बदल सकेंगे।

भारत के योग्य विधान निर्माताओं ने इस प्रकार हमारे देश में एक ऐसे विधान की नींव रक्खी है जिस पर संसार के राजनीतिक विशारद मुग्ध हो उठे हैं और जिसकी सभी विद्वान व्यक्तियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इस संविधान के अन्तर्गत कार्य करके हमारी आगे आने वाली सन्ततियाँ एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण कर सकेंगी जो हर प्रकार से प्रगतिशील, भावशाली तथा संसार के सर्वोत्तम राष्ट्रों में से एक होगा।

अध्याय ३

भारत राष्ट्र-मंडल के सदस्य के रूप में

भारत में एक सम्पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त लोकतन्त्रात्मिक गण राज्य की स्थापना २६ जनवरी, सन् १९५० को हुई। परन्तु जनता के बहुत से लोग पूछते हैं कि यह गणराज्य कैसा जिसमें भारत अब भी राष्ट्र-मंडल का सदस्य है और एक ऐसे राष्ट्र-मंडल का जिसका अध्यक्ष ब्रिटेन का सम्राट् है ? कुछ दूसरे लोग कांग्रेस को उसकी रावी के तट पर लाहौर के अधिवेशन में की गई पूर्ण स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा की याद दिलाते हैं और पूछते हैं कि २० वर्ष तक लगातार इस प्रतिज्ञा के दुहराने पर भी भारत ने राष्ट्र-मंडल का सदस्य होना तथा एक स्वतंत्र औपनिवेशिक स्थिति क्यों स्वीकार कर ली ?

जो लोग इस प्रकार के प्रश्न करते हैं वह राष्ट्र-मंडल के इतिहास, व्यवस्था तथा उसके सदस्यों के अधिकारों के विषय में जानकारी नहीं रखते। वास्तव में राष्ट्र-मंडल किसी राज्य अथवा सरकार का नाम नहीं। वह तो कुछ ऐसे स्वतंत्र देशों के समूह का नाम है जो ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक बन्धनों के कारण एक दूसरे के बहुत निकट अपने आप को अनुभव करते हैं और कुछ समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिये एक दूसरे के सहयोग तथा मित्रता के भाव से काम करते हैं। राष्ट्र मंडल के सदस्यों में कोई एक सदस्य दूसरे के अधीन रहकर काम नहीं करता, सब सदस्य बराबर का दर्जा रखते हैं, वह हर प्रकार से अपने आन्तरिक व वाह्य मामलों में स्वतंत्र होते हैं, वह अपनी विदेशी नीति का स्वयं

संचालन करते हैं, वह अपना विधान स्वयं बनाते हैं और उसे जब चाहें बदल सकते हैं।

एक समय था जब सन् १९२६ के वैस्ट मिन्स्टर स्टैच्यूट के पास होने से पहिले राष्ट्रमंडल के सदस्य कुछ मामलों में इंगलैंड के आधीन रह कर काम करते थे। उनके देश में कार्यकारिणी के अध्यक्ष अर्थात् गवर्नर जनरल की नियुक्ति ब्रिटेन के सम्राट् द्वारा अपनी स्वेच्छा से की जाती थी। उपनिवेशों का विधान भी इंगलैंड की पार्लियामेंट द्वारा ही बनाया जाता था, विदेशी नीति का संचालन भी 'ह्वाइट हाल' से ही होता था, सब उपनिवेशों की अन्तिम अपीलें इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल में ही सुनी जाती थीं। और भी कितने ही आर्थिक व राजनीतिक विषयों में उपनिवेश इंगलैंड की सरकार के आधीन थे।

परन्तु राष्ट्र-मंडल का यह स्वरूप इतिहास की प्रगति के साथ बराबर बदलता रहा है। राष्ट्र-मंडल ऐसे सदस्यों की संस्था बनती गई है जो सब प्रकार से स्वतंत्र हैं तथा जो केवल कुछ ऐतिहासिक बन्धनों के कारण एक दूसरे के प्रति आत्मीयता का अनुभव करते हैं।

सन् १९२६ का वैस्ट मिन्स्टर स्टैच्यूट

सन् १९२६ तक राष्ट्र-मंडल के सदस्य बहुत कुछ स्वतंत्र हो चुके थे। इस स्वतन्त्रता को कानून का रूप देने के लिये उस वर्ष एक विशेष ऐक्ट पास किया गया जिसका नाम, 'वैस्ट मिन्स्टर स्टैच्यूट' पड़ा। इस स्टैच्यूट में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इंगलैंड और उससे सम्बन्धित दूसरे राष्ट्र-मंडल के सदस्यों की सरकारें बराबर का स्थान रखती हैं। उनमें से कोई एक दूसरे के आधीन नहीं। प्रत्येक देश की सरकार जिस प्रकार का चाहे अपने देश के लिये कानून बना सकती है। वह दूसरे देशों से स्वतन्त्र व्यापारिक संधि कर सकती है। वह अपना विधान स्वयं बदल सकती है। वह ब्रिटिश सरकार द्वारा पास किये गये कानूनों को रद्द कर सकती है। वह इंगलैंड के विरुद्ध होने वाली लड़ाई में तटस्थ रह सकती

है। वह अपने राजदूत दूसरे देशों में भेज सकती है। वह प्रिवी कौंसिल में होने वाली अपीलों को समाप्त कर सकती है। वह अपनी अलग जल, थल तथा वायु सेना रख सकती है और यदि वह चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य से भी अलग हो सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि १९२६ के कानून के मातहत राष्ट्र-मंडल के सदस्यों को इंगलैंड की सरकार के समान ही सब मामलों में बराबर का रुत्बा दे दिया गया था। इंगलैंड तथा राष्ट्र-मंडल के सदस्यों में केवल इतना सम्बन्ध था कि वह सब इंगलैंड के सम्राट् को अपना सम्राट् मानते थे तथा उसके प्रति वफादारी का हलफ उठाते थे। सम्राट् का एक प्रतिनिधि गवर्नर जनरल के रूप में उनके देश में रहता था। परन्तु उसकी नियुक्ति भी ब्रिटिश सम्राट् द्वारा नहीं वरन् स्वतंत्र उपनिवेश के प्रधान मंत्री की सलाह से की जाती थी। ब्रिटिश सम्राट की आधीनता इस प्रकार केवल नाम मात्र की ही थी।

भारत और राष्ट्र-मंडल

परन्तु भारतवर्ष ने ऐसे भी स्वतंत्र उपनिवेश का सदस्य होना स्वीकार नहीं किया। कारण, जैसा पहिले बतलाया जा चुका है सन् १९३० के पश्चात् से हमारे देश की राष्ट्रीय कांग्रेस सदा इस बात को दुहराती रही थी कि भारतवर्ष किसी भी दशा में अंग्रेजों से पूर्ण स्वतंत्रता लिये बिना समझौता नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त दिसम्बर सन् १९४६ में संविधान सभा ने अपने उद्देश्यात्मक प्रस्ताव में कहा था कि भारत के अन्दर एक सम्पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त लोकतन्त्रात्मक गण राज्य की स्थापना करना ही उसका ध्येय होगा। इसलिये पं० जवाहर लाल नेहरू ने अप्रैल सन् १९४९ के कामनवैल्थ अधिवेशन में भारत की ओर से यह माँग रक्खी कि उनका देश राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहना केवल उस दशा में स्वीकार करेगा जब उसे अपना गणतन्त्रीय स्वरूप (republican form) कायम रखने का अधिकार मिले अर्थात् वह ब्रिटिश सम्राट् को अपना सम्राट नहीं माने और उसके प्रति वफादारी का हलफ न

उठाये। कामनवैल्थ राष्ट्रों ने भारत की यह माँग मान ली। इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहने के लिये भारत ने अपनी प्रतिज्ञा को नहीं बदला, वरन् राष्ट्र-मंडल ने ही भारत को अपना सदस्य बनाए रखने के लिये अपना स्वरूप बदल डाला, और इस तरह कामनवैल्थ राष्ट्रों का एक और बन्धन जो ब्रिटिश सम्राट् के प्रति वफादारी के रूप में अब तक कायम था, वह भी टूट गया। नये विधान के अन्तर्गत इसलिये भारतीय सरकार का अध्यक्ष ब्रिटिश सम्राट् या उसका प्रतिनिधि गवर्नर जनरल नहीं वरन् भारतीय जनता का अपना प्रतिनिधि "राष्ट्र-पति" है।

इस प्रकार विदित है कि कांग्रेस ने राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहना स्वीकार कर के देश के साथ की गई किसी प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ा। राष्ट्र-मंडल का सदस्य रह कर भी भारत प्रत्येक आन्तरिक तथा वाह्य मामलों में पूर्ण रूप से स्वतंत्र है, उसकी सरकार को पूर्ण सत्ता प्राप्त है। वह अपनी विदेशी नीति को स्वयं निश्चित करता है। वह किसी भी प्रकार इंगलैंड की सरकार के आधीन नहीं। हमारी सरकार ने कम्युनिस्ट चीन को इंगलैंड की सरकार से पहले ही मान्यता देकर यह बात पूर्ण रूप से साबित कर दी कि भारत अपनी विदेशी नीति का स्वय संचालन करता है और वह ब्रिटेन या दूसरे स्वतंत्र उपनिवेशों के साथ काम करने के लिये बाध्य नहीं।

जो लोग भारत के राष्ट्र-मंडल का सदस्य होने के नाते कांग्रेस के लिये कहते हैं कि उसने देश के साथ गद्दारी की या अपनी पिछली प्रतिज्ञाओं को तोड़ा वह यह भूल जाते हैं कि हमारे देश को राष्ट्र-मंडल की सदस्यता से लाभ ही हुआ है, हानि नहीं। राष्ट्र-मंडल का सदस्य होना हमारे देश के लिये उस दशा में तो हानिकारक अवश्य था यदि उसके बदले हमें अपनी पूर्ण- स्वतंत्रता के साथ समझौता करना पड़ता या किसी प्रकार से आन्तरिक अथवा वाह्य विषयों में हम इंगलैंड की सरकार की बात मानने के

लिये वाध्य हो जाते। परन्तु आज स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। राष्ट्र-मंडल एक ऐसे देशों का समूह है जो उसी सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं जिसमें भारत। वह सब स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, न्याय तथा प्रजातन्त्र-वाद के उपासक हैं। वह सब संसार में शान्ति बनाये रखना चाहते हैं। आज इंगलैंड अपना साम्राज्यवादी स्वरूप छोड़ चुका है। धीरे-धीरे उसके आधीन सभी देश स्वतंत्र होते जा रहे हैं। आज राष्ट्र-मंडल के सदस्यों में ८० प्रतिशत जन संख्या उन लोगों की है जो एशिया के रहने वाले हैं। भारत, पाकिस्तान तथा लंका के राष्ट्रमंडल का सदस्य हो जाने से उसमें गोरी जाति के लोगों की प्रधानता कम हो गई है। राष्ट्र-मंडल का स्वरूप अब बिलकुल बदल गया है।

आज की दुनियाँ में संसार का कोई भी देश दूसरे देशों से अलग रह कर उन्नति नहीं कर सकता। राष्ट्र-मंडल के सभी देश एक ही भावना से प्रेरित हैं। इस लिये एक दूसरे के साथ मिल कर काम करने से उन सब की शक्ति बढ़ती है। वह संसार में एक ऐसी शक्ति का निर्माण कर सकते हैं जो आजकल के भयभीत तथा युद्ध की भावना से ओत-प्रोत जगत में शान्ति स्थापित करने के कार्य में सहायक हो। आज रूस और अमरीका की बढ़ती हुई शक्ति संसार की शान्ति को खतरे में डाल सकती है। यदि राष्ट्र-मंडल के सदस्य आपस में मिल कर एक ऐसी तीसरी शक्ति का निर्माण कर सकें जो इन दोनों शक्तियों से बड़ी हो तथा जो इन परस्पर विरोधी शक्तियों का मुकाबिला कर सके तो संसार में शान्ति और सुख का वातावरण निर्माण हो सकता है।

राष्ट्र-मंडल के सदस्य एक उच्च नैतिक भावना से प्रेरित हैं। वह पूँजीवाद तथा साम्यवाद के बीच एक बड़ी खाई को पाटने का काम कर सकते हैं। वह संसार में एक ऐसी शक्ति को जन्म दे सकते हैं जो एक प्रलयकारी तीसरे महायुद्ध के भय को दूर कर सकें। हमारे देश को ऐसे राष्ट्र-संघ का सदस्य होने से लाभ ही है।

आर्थिक क्षेत्र में भी हम राष्ट्र-मंडल के देशों के सहयोग से अधिक उन्नति कर सकते हैं। हमारे देश का ७५ प्रतिशत व्यापार राष्ट्र-मंडल के देशों के साथ ही होता है। ऐसे देशों के साथ व्यापारिक संधि कर के तथा आयात-निर्यात कर संबंधी सुविधाएँ देकर हम अपने व्यापारको कई गुना बढ़ा सकते हैं। हमारे देश में इंगलैंड की जनता का कई सौ करोड़ रुपया उद्योग धंधों में लगा हुआ है। अपनी वर्त्तमान आर्थिक दशा को सुधारने के लिये हम राष्ट्र-मंडल के सदस्यों से और भी कई प्रकार की पूँजी तथा टैकनिकल सहायता संबंधी सहूलियतें प्राप्त कर सकते हैं।

सैनिक दृष्टि से, राष्ट्रमंडल की सदस्यता के कारण, हम विदेशी आक्रमणों का, अपनी जल थल तथा हवाई सेना पर बहुत अधिक व्यय किये बिना आसानी से मुकाबला कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनैतिक, आर्थिक तथा सैनिक दृष्टि से, राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहना स्वीकार कर के भारत सरकार ने बुद्धिमत्ता का ही कार्य किया है, मूर्खता का नहीं।

अध्याय ४

केन्द्रीय संघ शासन; नागरिकता तथा मौलिक अधिकार

पृष्ठ ८७ पर दी गई तालिका में हमारे नये विधान के अंतर्गत जो राज्य भारतीय संघ में सम्मिलित किये गये हैं उनका विवरण दिया गया है। इन राज्यों की व्याख्या संविधान की प्रथम अनुसूची के भाग (क) (ख) (ग) और (घ) में दी गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नये विधान के अंतर्गत भारत अंडमान-निकोबार को छोड़कर, २७ विभागों में विभक्त किया गया है। इन विभागों में भारत की वह ५६२ रियासतें भी शामिल हैं जो अंग्रेजी राज्य के काल में स्वतंत्र थीं, तथा जिनका शासन प्रबंध उनके राजाओं की स्वेच्छा से किया जाता था। नये संविधान में इन सभी रियासतों को शासन की दृष्टि से प्रांतों के स्तर पर ला खड़ा किया गया है। भारतीय संघ के सब विभाग अब एक ही प्रकार के संविधान के अंतर्गत शासित होंगे, उन सब में शासन का स्वरूप समान होगा, सब राज्यों के नागरिकों को एक ही प्रकार के अधिकार प्राप्त होंगे, उन सब में एक ही प्रकार की विधान सभाएँ तथा मंत्रिमंडल होंगे, सब में उत्तर-दायी शासन होगा, तथा सब राज्यों में अंतिम शक्ति जनता के हाथ में निहित रहेगी।

इतने थोड़े समय में देश का एकीकरण करना, तथा उन राज्यों के संघ बनाना अथवा उन्हें प्रांतों में विलीन करना जिनको हमारे विदेशी शासक भारत से विदा लेते समय पूर्ण रूप से स्वतंत्र कर गये थे, हमारे नये विधान की राष्ट्र को सब से बड़ी देन है।

भारतीय संघ

(क) राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले गवर्नरों के प्रांत कहलाते थे)	(ख) राज्य (जो संबिधान पास होने से पहिले रियासतें कहलाती थीं	(ग) राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले चीफ कमिश्नर के प्रांत तथा रियासतें कहलाती थीं ')	(घ) राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले कालपानी के नाम से पुकारा जाता था।)
१. आसाम	१. जम्मू और काश्मीर	१ अजमेर	१. अंडमान और निकोबार द्वीप
२. उड़ीसा	२. ट्रावनकोर-कोचीन	२, कच्छ	
३. पंजाब	३. पटियाला तथा पूर्वी पंजाब संघ	३. कूच बिहार (यह राज्य अब पश्चिमी बंगाल में मिला दिया गया है)	
४. पश्चिमी बंगाल	४. मध्य भारत	४. कुर्ग	
५. बिहार	५. मैसूर	५. त्रिपुरा	
६. मद्रास	६. राजस्थान	६. दिल्ली	
७. मध्य प्रदेश	७. सौराष्ट्र	७. बिलासपुर	
८. बम्बई	८. हैदराबाद ,	८ भोपाल	
९. उत्तर प्रदेश	९. विंध्य प्रदेश (संविधान पास होने के पश्चत् यह राज्य केन्द्रीय सरकार के आधीन ले लिया गया है)।	९. मनीपुर	
		१०, हिमाचल प्रदेश	

नये राज्यों का निर्माण अथवा उनकी सीमाओं में अदला-बदली
यह सच है कि आज भी हमारे राष्ट्र का विभाजन किसी वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं किया गया है, भाषा के आधार पर प्रांतों का पुनर्निर्माण नहीं हुआ है, राज्यों की संख्या भी अधिक है परन्तु संविधान में इस बात का पूरा प्रबंध कर दिया गया है कि भविष्य में जनता के इच्छानुसार प्रांतों की सीमाओं में अदला-बदली हो सके, नये राज्य भारतीय संघ के अंतर्गत सम्मिलित हो सकें, तथा उनके नामों में परिवर्तन किया जा सके।

संविधान की दूसरी और तीसरी धारा में कहा गया है कि भारतीय संसद को इस बात का अधिकार होगा कि वह नये राज्यों को भारतीय संघ में दाखिल कर सके तथा राज्यों की वर्तमान सीमाओं में अदला-बदली कर सके। परन्तु, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन करने से पहिले, संविधान में कहा गया है, कि राष्ट्रपति इस बात का प्रबंध करेंगे कि उन राज्यों के विधान मंडल के सदस्यों की राय मालूम कर लें जिन पर उस अदला-बदली का प्रभाव पड़ेगा। संविधान में आगे कहा गया है कि इस प्रकार राज्यों की सीमाओं का परिवर्तन संविधान का संशोधन नहीं समझा जायगा और संसद के सदस्य बहुमत से इस प्रकार का प्रस्ताव पास कर सकेंगे।

संविधान में इस प्रकार का प्रबंध इसी दृष्टि से किया गया है जिससे 'भाषा' अथवा 'शासन की सुविधा', के आधार पर प्रांतों का पुनर्संगठन किया जा सके। मद्रास राज्य के अंतर्गत आंध्र प्रांत का प्रस्तावित निर्माण इसी धारा के अनुसार किया जायगा।

अविच्छिन्न संघ—हमारे नये संविधान के अंतर्गत राज्यों को इस बात की स्वतंत्रता नहीं होगी कि वह संघ से अलग हो सकें। इसी बात को स्पष्ट करने के लिये भारत का नाम (union of states) अर्थात राज्यों का अविच्छिन्न संघ रक्खा गया है। यह संघ राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से केवल एक देश होगा, स्वतंत्र देशों का समूह नहीं। इसके

अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को नागरिकता का केवल इकहरा अधिकार प्राप्त होगा। दोहरा संघ सरकार तथा राज्य की नागरिकता का अलग अलग अधिकार नहीं। अमरीका के उदाहरण से प्रभावित होकर, जहाँ संघ बनने के पश्चात् वहाँ के राज्यों ने संघ सरकारों से संबंध विच्छेद करना चाहा, और उन्हें ऐसा करने से रोकने के लिये वहां की सरकार को एक गृह-युद्ध करना पड़ा। भारतीय विधान में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि संघ के अंतर्गत राज्यों को अलग होने की स्वतंत्रता नहीं होगी।

नया संविधान संघात्मक है अथवा नहीं

हमारे नये संविधान के बहुत से आलोचक यह कहकर विधान की टीका-टिप्पणी करते हैं कि नया संविधान संघात्मक नहीं है। उनका कहना है कि इस संविधान में राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी कर दी गई है और उसको संघ शासन प्रणाली के अंतर्गत दिये जाने वाले अधिकार नहीं सौंपे गये हैं।

इस आलोचना का प्रतिकार करने से पहिले हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि संघात्मक शासनों के मुख्य लक्षण क्या होते हैं। प्रसिद्ध राजनीतिक लेखक जइसी ने संघ शासन के तीन मुख्य लक्षण बताए हैं :-

(१) लिखित और अपरिवर्त्तन शील संविधान (Written and rigid constitution)

(२) संघ तथा उसके अंतर्गत राज्यों के बीच अधिकारों का स्पष्ट विभाजन (A clear demarcation of powers between the federation and the units)

और (३) संघ और राज्यों के बीच होने वाले संवैधानिक गति अवरोध का निपटारा करने के लिये एक स्वतंत्र तथा अधिकार सम्पन्न उच्चतम न्यायालय की स्थापना।

(The existence of a competent and independent supreme court to settle between the federation and the constituent units.)

भारत के नये विधान में यह तीनों गुण पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। हमारा नया विधान लिखित है तथा उसके वह मूलगत सिद्धान्त जिनके द्वारा राज्यों तथा संघ सरकार के बीच अधिकार विभाजन किया गया है अपरिवर्तनशील (rigid) हैं, कारण उनमें केवल उस समय परिवर्तन-किया जा सकता है जब संघ संसद के दो तिहाई सदस्य उसके विषय में प्रस्ताव पास करें तथा वह प्रस्ताव आधे से अधिक राज्यों की विधान सभाओं द्वारा स्वीकार कर लिया जाय। संघ शासन की दूसरी आवश्यक शर्त अर्थात् संघ तथा राज्यों के बीच अधिकार का विभाजन भी हमारे नये संविधान में पूर्ण रूप से विद्यमान है। संविधान में कहा गया है कि राज्यों की सरकार को ६६ विषयों पर तथा संघ सरकार को ९७ विषयों पर कानून पास करने का अधिकार होगा। दोनों शक्तियों में से कोई भी एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेपन कर सकेगी। राज्य सूची में वर्णित विषयों पर संघ सरकार को उस समय तक कानून पास करने का अधिकार नहीं होगा, जब तक दो या दो से अधिक राज्यों की विधान सभाएँ उस से स्वयं ऐसा करने के लिये न कहें या किसी बिपत्ति काल में, राष्ट्रपति संकट की घोषणा कर के यह अधिकार अपने हाथ में न ले लें। साधारण दशा में दोनों शक्तियाँ अपने अपने अधिकार क्षेत्र में काम करने के लिये पूर्ण रूप से स्वतंत्र होंगी।

अन्त में, सघ सरकार की तीसरी आवश्यक शर्त्त की पूर्ति के लिये संविधान में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई है जिसका मख्य कार्य

संघ तथा राज्यों के बीच उत्पन्न हुये संवैधानिक अवरोधों को दूर करना होगा। किसी भी राज्य की सरकार को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी कि वह कोई भी ऐसा विषय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित कर सके जिसमें उसे संघ सरकार के विरुद्ध उसके कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप करने की शिकायत हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारा नया संविधान पूर्ण रूप से संघात्मक है और उसमें संघ शासनों की वह सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं जो संसार के दूसरे विधानों में पाई जाती हैं।

भारतीय संघ संविधान की विचित्रता

परन्तु इतना होने पर भी हमारे विधान निर्माताओं ने दूसरे देशों के संघात्मक विधानों की दास वृत्ति से नकल नहीं की है। उन्होंने उन संविधानों की उन सभी अच्छाइयों को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है जो भारतीय परिस्थिति के उपयुक्त हैं तथा उनमें वह आवश्यक परिवर्तन कर दिये गये हैं जिनसे हम उनकी त्रुटियों से बचे रहें। इसी दृष्टि से हमारा नया संविधान दूसरे संविधानों के समान संघात्मक होने पर भी अपना एक पृथक अनोखापन रखता है। उदाहरणार्थ :—

(१) हमारे संविधान में भारत के नागरिकों को इकहरी नागरिकता के अधिकार प्रदान किये गये हैं, अमरीका के संविधान की भाँति दोहरी नागरिकता के अधिकार नहीं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में प्रत्येक राज्य की सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपनी अधिकार सीमा में रहने वाले नागरिकों के लिये दूसरे राज्यों से पृथक इस प्रकार के कानून बना सके जिनके द्वारा उन्हें नौकरी, स्कूलों में

भर्ती, चिकित्सालयों में प्रवेश, व्यापार तथा स्वतंत्र व्यवसाय इत्यादि सम्बन्धी विशेष अधिकार दिये जा सकें। भारत में राज्यों की सरकार को यह अधिकार नहीं दिया गया है। नये संविधान के अन्तर्गत प्रत्येक भारतीय को चाहे वह किसी भी राज्य में रहे, समान अधिकार प्राप्त होंगे।

(२) संयुक्त राष्ट्र अमरीका में राज्यों को इस बात का अधिकार है कि वह जनतंत्र सत्ता के आधीन जिस प्रकार का चाहें अपने लिये विधान बनायें तथा उसमें जब चाहें परिवर्तन कर सकें। भारत में इसके विपरीत प्रत्येक राज्य का विधान संविधान सभा द्वारा ही बनाया गया है। राज्यों की सरकारों को इस बात का अधिकार नहीं दिया गया कि वह उस विधान में किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा संशोधन कर सकें।

(३) संघ विधानों में प्रायः अधिकार विभाजन के साथ-साथ दोहरी धारा सभा, कार्यकारिणी न्यायपालिका तथा सरकारी प्र संगठन होता है। इससे देश के शासन प्रबन्ध, न्याय तथा कानून प्रकार का दोहरापन आ जाता है। यह सच है कि कुछ सीमा विशाल देश में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार शासन प्रबन्ध विभिन्नता अवश्य रहनी चाहिये परन्तु जहाँ तक मौलिक विषय कानूनों का सम्बन्ध है वह सारे देश के लिये एक से ही होने च यदि ऐसा न हो तो एक ही देश के नागरिकों को एक प्रान्त से दूस में जाने, वहाँ पर बसने, व्यापार करने अथवा पढ़ने-लिखने इत् कार्य में भारी असुविधा का सामना करना पड़े। हमारे देश में प्रबन्ध की यह एकता (१) न्यायालय (२) एक प्रकार के दीवानी व फौजदारी क़ानून तथा (३) एक प्रकार की निस्ट्रेटिव सर्विस का गठन कर के प्राप्त की गई है।

हमारे संविधान में सारे देश के लिये न्यायपालिका का संगठन समान रूप है। देश की सर्वोच्च न्यायालय सुप्रीम कोर्ट को सभी राज्यों की हाई कोर्टों तथा उनके नीचे काम करने वाली कचहरियों पर अधिकार प्राप्त है। सब हाई कोर्टों की अपीलें सुप्रीम कोर्ट के समक्ष पेश होती हैं। कानूनों को एकसा बनाये रखने के लिये दीवानी व फौजदारी क़ानून समवर्ती विषयों की सूची में रक्खे गये हैं। इसके अतिरिक्त शासन को एक सूत्र में बाँधने के लिये सभी राज्यों के लिये एक ही अखिल भारतीय सर्विस का आयोजन किया गया है। इस सर्विस के सदस्य सभी राज्यों में उच्च अधिकारी नियुक्त किये जायेंगे। इस प्रकार संसार के दूसरे देशों के संघ विधानों में उत्पन्न होने वाली शासन सम्बन्धी विभिन्नता का हमारे नये संविधान में अन्त करने का प्रयत्न किया गया है।

(४) संघीय विधानों का एक और बड़ा दोष क़ानूनीपन (Legalism) तथा जकड़बन्दी (Rigidity) होता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। कारण, संघ शासन के अन्तर्गत राज्यों तथा सरकार के बीच अधिकारों का विभाजन होता है। यदि यह विभाजन आसानी से बदला जा सके तो फिर उसकी महत्ता क़ायम नहीं रहती। परन्तु इस जकड़बन्दी से संघ सरकार एकात्मक शासनों की अपेक्षा कमज़ोर तथा बलहीन हो जाती है और राष्ट्रीय संकट अथवा देश पर किसी प्रकार की विपत्ति आ पड़ने के समय, वह पूरी शक्ति के साथ कार्य नहीं कर सकती। वैसे भी वर्तमान काल में आने जाने के साधनों की सुविधा से स्थानीय विषय राष्ट्रीय और राष्ट्रीय विषय अन्तर्राष्ट्रीय विषय बनते जा रहे हैं। इस कारण, संघात्मक विधान आज कल अधिक पसन्द नहीं किये जाते। परन्तु हमारे विधान निर्माताओं ने इस प्रकार का संविधान बनाया है कि वह इन दोनों ही दोषों से बचा रहे और शान्ति काल और संकट की परिस्थिति में आवश्यकतानुसार कार्य कर सकें। हमारे संविधान का इसलिये सबसे बड़ा गुण वह है जिसके द्वारा

विपत्ति काल में वह एकात्मक हो जाता है और शान्ति काल में संघात्मक ही रहता है। यदि राष्ट्रपति किसी समय संविधान की ३५२ धारा के अन्तर्गत देश में संकट की घोषणा कर दें तो सारा देश एक ही केन्द्र से शासित होने लगता है। इस घोषणा के आधीन संघ सरकार सारे राज्यों के लिये स्वयं क़ानून बना सकती है, उनकी कार्यकारिणी को मनचाहा आदेश दे सकती है तथा संघ विधान के अर्थ सम्बन्धी भाग को स्थगित कर सकती है।

(५) संविधान को और भी अधिक नमनीय बनाने के लिये हमारे विधान निर्माताओं ने आस्ट्रेलिया के संविधान से उदाहरण ग्रहण किया है। उन्होंने संघ तथा राज्य की सरकारों के बीच अधिकार का विभाजन इस प्रकार किया है कि संघ सरकार उन ९७ विषयों के अतिरिक्त जो उसकी अधिकार सीमा के अन्तर्गत रक्खे गये हैं ४७ और ऐसे विषयों पर क़ानून बना सकती है जो संविधान की समवर्ती सूची में दिये गये हैं। इस योजना से यह लाभ हुआ है कि भारत की केन्द्रीय सरकार बहुत से राष्ट्रीय महत्ता के विषयों पर सारे देश के लिये समान क़ानून बना सकती है। आस्ट्रेलिया के विधान में तो संघ सरकार को केवल तीन विषयों पर ही क़ानून बनाने का अधिकार प्राप्त है परन्तु भारत में संघ सरकार को यह अधिकार ९७ विषयों पर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, संविधान की २४९ धारा के अन्तर्गत संघ सरकार को यह अधिकार भी प्रदान किया गया है कि यदि किसी समय राज्यपरिषद यह अनुभव करे कि राज्य सूची में वर्णित स्थानीय विषय राष्ट्रीय महत्ता का विषय बन गया है तो वह दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास कर के ऐसे विषय को संघ सरकार के अधिकार-क्षेत्र में दे सकती है। इस प्रकार समय के परिवर्तन के साथ हमारे नये विधान में विकास व फैलाव के आवश्यक गुण विद्यमान हैं। जहाँ तक संकटकालीन स्थिति का सम्बन्ध

है वह हम पहिले ही देख चुके हैं कि विधान की २५०वीं धारा के अन्तर्गत संघ सरकार राज्यों के लिये क़ानून बना सकती है।

एक तीसरी, विधान की २५२ धारा के अन्तर्गत दो या दो से अधिक राज्यों की विधान सभाएँ संघ सरकार से प्रार्थना कर सकती हैं कि वह उनके लिये किन्हीं राज्य सूची के विषयों पर क़ानून बना दे। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारा नया विधान अत्यन्त नमनीय (Flexible) है और उसमें समय की परिस्थिति के अनुसार कार्य करने की शक्ति है।

(६) अन्त में, हमारे संविधान की एक और विशेषता यह है कि वह राज्यों तथा संघ सरकार के बीच अधिकार-विभाजन के सिद्धान्त सम्बन्धी विषयों को छोड़ कर और क्षेत्रों में आसानी से बदला जा सकता है। विधान में कहा गया है कि संघ संसद बहुसंख्यक सदस्यों की उपस्थिति में दो तिहाई बहुमत से विधान के ऐसे किसी भी भाग में परिवर्तन कर सकता है।

अतः हम देखते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं ने नये विधान को दूसरे सभी संघ शासनों के दोषों से बचाने का प्रयत्न किया है और भारत की विशेष परिस्थितियों का ध्यान रख कर देश में एक ऐसे संघ शासन की स्थापना की है जिसमें एकात्मक तथा संघात्मक दोनों ही शासनों के गुण विद्यमान हैं।

क्या भारत के लिये एकात्मक विधान अच्छा रहता ?

वैसे तो अधिकतर लोग हमारे संविधान के जन्मदाताओं की इसी लिए आलोचना करते है कि उन्होंने राज्यों की सरकारों को विशेष अधिकार प्रदान नहीं किये और उनके कार्य-क्षेत्र पर जगह-जगह कुठाराघात किया है; परन्तु इस देश में ऐसी जनता की भी कमी नहीं है जो समझती है कि राष्ट्र की वर्तमान स्थिति में उसके लिये एकात्मक शासन विधान ही सबसे अधिक उपयुक्त रहता है। इन लोगों का कहना है कि (१)

भारत की स्वतंत्रता को दृढ बनाने, (२) देश का एकीकरण करने, (३) हमारे राष्ट्रीय जीवन में प्रान्तीयता, भाषावाद, तथा साम्प्रदायिकता की पृथक्करण भावनाओं का मुकाबिला करने तथा (४) राष्ट्र-विरोधी साम्यवादी शक्तियों को दबाने के लिये, हमारे देश में एक सर्वशक्ति सम्पन्न केन्द्रीय सरकार की आवश्यकता थी।

परन्तु, फिर भी यदि, हमारे विधान निर्माताओं ने एक संघ शासन की स्थापना की तो इसके मुख्य रूप से निम्न कारण थे :—

(१) **देश की विशालता**—१२ लाख वर्ग मील के विस्तृत क्षेत्र के लिये एक ही केन्द्रीय सरकार की स्थापना शासन की कुशलता तथा सुविधा की दृष्टि से उचित न थी।

(२) **सांस्कृतिक विकास तथा भाषा की उन्नति**—हमारे देश के विभिन्न भागों में भाषा, साहित्य, रीति-रिवाज, उत्सव, त्यौहार, संगीत तथा दूसरी कलाओं की उन्नति तथा सांस्कृतिक विकास के लिये संघीय सरकार अधिक अपेक्षित थी।

(३) **प्रजातन्त्रात्मिक दृष्टिकोण**—संघ सरकार के अन्तर्गत देश की जनता को शासन प्रबन्ध में भाग लेने का अधिक अवसर मिलता है। एकात्मक सरकार में इसके विपरीत निरंकुशात्मक शासन के अधिक अंश होते हैं।

(४) **विकेन्द्रीयकरण योजना**—हमारे राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे। वह चाहते थे कि शासन की इकाइयाँ सारे देश में फैली रहें और राज्य की वास्तविक सत्ता ग्राम पंचायतों के हाथ में हो। यह आदर्श संघ शासन के आधीन अधिक आसानी से पूरा हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं के सम्मुख एकात्मक व संघीय विधानों की अच्छाइयों को अपनाने तथा उन दोनों शासन प्रथाओं के दोषों से बचने का कठिन उद्देश्य था।

यह उद्देश्य अत्यंत ही सफलता तथा सुन्दरता के साथ पूरा किया गया है। हमारे नये विधान में संकट के समय एकात्मक रूप से और साधारण शांति के वातावरण में संघात्मक रूप से कार्य कर सकने की अभूतपूर्व क्षमता है।

नये विधान में नागरिकता का अधिकार

हमारे नव संविधान में नागरिकता की उचित परिभाषा करने में बहुत अधिक समय लगा। कारण, भारत के विभाजन तथा उसके पश्चात् शरणार्थियों की समस्या ने इस कार्य को अत्यंत जटिल बना दिया था। इस समस्या की पूर्ति का नये विधान में पूरा प्रयत्न किया गया है। नागरिकता का अधिकार भारत में तीन श्रेणी के लोगों को दिया गया है। (१) भारत के जन्मजात नागरिक, (२) पाकिस्तान से भारत आने वाले शरणार्थी और (३) विदेशों में रहने वाले अनेक भारतीय।

पहली श्रेणी के लोगों को यह अधिकार देने के लिये संविधान में कहा गया है कि संविधान के आरंभ होते समय हर वह व्यक्ति जो भारत में जन्मा हो या जिसके माता-पिता या दोनों में से कोई भारत में जन्मा हो जो संविधान के आरंभ होने के कम से कम ५ वर्ष पूर्व से भारत में रहता हो, भारत का नागरिक माना जायगा।

दूसरी श्रेणी, अर्थात् पाकिस्तान छोड़ कर भारत आने वाले हिंदू और सिखों को नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के लिये संविधान में कहा गया है कि जो व्यक्ति स्वयं या जिसके माता-पिता या बाबा-दादी, या इनमें से कोई अविभाजित भारत में, पैदा हुए हों और जो १ जुलाई, १९४८ से पूर्व पाकिस्तान से आकर भारत में बस गये हों, उन्हें भारत का नागरिक माना जायगा। जो लोग जुलाई १९४८ के पश्चात् पाकिस्तान से भारत आये हैं उनके लिये विधान में कहा गया है कि वह केवल उस दशा में नागरिक समझे जायेंगे, जब वह भारत सरकार द्वारा नियुक्त किये हुये अफसरों के सम्मुख आवेदन-पत्र देकर २६ जनवरी, १९५० से

पहिले, अपना नाम रजिस्टर करा लें। परन्तु ऐसे व्यक्तियों के नाम की रजिस्ट्री केवल उस दशा में हो सकेगी जब वह आवेदन पत्र देने के पूर्व कम से कम ६ महीने से भारत में रह रहे हों। जो व्यक्ति पहिली मार्च सन् १९४७ के पश्चात् भारत छोड़ कर पाकिस्तान चले गये हैं, उन्हें भारत का नागरिक नहीं माना जायगा; परन्तु उन राष्ट्रवादी मुसलमानों की सुविधा के लिये जो स्वयं या जिनके परिवार के सदस्य साँप्रदायिक दगों के समय भय के कारण पाकिस्तान चले गय थे, परन्तु बाद में पक्का परमिट पा कर भारत लौट आये हैं उनको नागरिकता का अधिकार दे दिया गया है।

अन्त में, तीसरी श्रेणी के लोगों को नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के लिये संविधान में कहा गया है कि जो लोग आजकल विदेशों में रहते हैं परन्तु जिनका स्वयं या जिनके माता-पिता या बाबा-दादी में से किसी का जन्म अविभाजित भारत में हुआ था' ऐसे लोग, यदि वह बिदेशों में स्थित भारत के राजदूत के दफ़्तर में प्रार्थना-पत्र देकर अपने नाम की रजिस्ट्री करा लेंगे तो उन्हें भारतीय नागरिकता का अधिकार दे दिया जायगा; साथ ही संविधान में कहा गया है कि जो व्यक्ति विदेशी नागरिकता ग्रहण करेंगे, उन्हें भारत का नागरिक बनने का अधिकार नहीं होगा।

नागरिकता के संबंध में संविधान की व्यवस्था अंतिम नहीं रक्खी गई है। भारतीय संसद को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह इस वषय में एक विस्तृत कानून पास कर सके। ऐसा इसलिये किया गया है, जिससे समय की आवश्यकतानुसार भारतीय संसद इस दशा में उचित परिवर्तन कर सके और ऐसा परिवर्तन संविधान का संशोधन म समझा जाय। संविधान में दी गई नागरिकता की परिभाषा पूर्ण नहीं है, उदाहरणार्थ उसमें विदेशियों के भारतीय नागरिकता प्राप्त करने के संबंध में कोई आयोजन नहीं है। पाकिस्तान से भारत आने वाले उन हिंदुओं के लिये भी उचित व्यवस्था नहीं है जो २६ जनवरी के पश्चात्

पूर्वी बंगाल से भाग कर पश्चिमी बंगाल में आ रहे हैं। इन्हीं बातों का विचार रख कर, संविधान में, संसद को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह बाद में इन कमियों को पूरा करने के लिये हर प्रकार से पूर्ण भारतीय नागरिकता संबंधी कानून बना सकती है ।

नये विधान के अन्तर्गत नागरिकों के मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान की नागरिकों को सबसे बड़ी देन, उनके मौलिक अधिकार हैं । यह वह अधिकार हैं जो प्रत्येक भारतवासी को धर्म, जाति लिंग, तथा जन्म स्थान के भेद-भाव के बिना समान रूप से दिये गये हैं । यह अधिकार राज्य की नींव हैं । यह वह गुण हैं जिनके कारण राष्ट्र की शक्ति में नैतिकता का समावेश होता है । यह इस अर्थ में प्राकृतिक अधिकार हैं कि वे जीवन की अच्छाई तथा व्यक्तित्व के विकास के लिये आवश्यक हैं । भारतवासियों को प्रथम बार यह अधिकार नये विधान के अन्तर्गत प्रदान किये गये हैं । इससे पहिले अंग्रेजों के काल में उन्हें किसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी और सहस्त्रों की संख्या में, उन्हें प्रति वर्ष बिना मुकदमे जेल की कोठरियों में बन्द कर दिया जाता था । उन्हें न किसी प्रकार की भाषण देने की स्वतन्त्रता थी, न संघ बनाने की, और न समाचार पत्र प्रकाशित करने की । नये विधान के अन्तर्गत नागरिकों को दो प्रकार के मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं । एक वह, जिनके बारे में अदालत में कार्यवाही की जा सकती है । अंग्रेजी में इन अधिकारों को (Justiciable) अधिकार कहा जाता है। दूसरे, वह अधिकार हैं जिन पर चलना संघ तथा राज्यों की सरकार के लिये अनिवार्य होगा, परन्तु उनके संबंध में न्यायालयों में कार्यवाही न की जा सकेगी। इन अधिकारों को अंग्रेजी में (non-justiciable) अधिकार कहा जाता है ।

नागरिकों के न्यायालयों द्वारा सुरक्षित मौलिक अधिकार

प्रथम श्रेणी में नागरिकों को जो मौलिक अधिकार प्राप्त होंगे उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :—

(१) समानता का अधिकार (२) स्वतन्त्रता का अधिकार (३) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (४) संस्कृति तथा शिक्षा संबंधी अधिकार (५) संपत्ति का अधिकार और (६) संवैधानिक प्रतिकार संबंधी अधिकार।

समानता का अधिकार

नये संविधान में यह एक ऐसा अधिकार है जो नागरिकों को बिना किसी रोक-टोक के प्रदान किया गया है। इस अधिकार के द्वारा किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, जाति, लिंग, तथा जन्म-स्थान के कारण भेद-भाव करना निषिद्ध ठहराया गया है। संविधान में कहा गया है कि सब नागरिकों को दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों, कुओं, तालाबों, स्नान के घाटों, सड़कों तथा सार्वजनिक स्थानों में, प्रवेश तथा उनके उपयोग का बराबर का अधिकार होगा। हरिजनों के साथ किसी प्रकार की छूतछात नहीं बरती जायगी। राज्य की नौकरियाँ प्राप्त करने का सब नागरिकों को समान अधिकार होगा। केवल धर्म, वंश, जाति अथवा लिंग के आधार पर किसी व्यक्ति को नौकरी प्राप्त करने के अवसर से वंचित नहीं रक्खा जायगा। केवल पिछड़ी हुई जातियों के सदस्यों के लिये जिन्हें अभी तक सरकारी नौकरियों में पर्याप्त स्थान प्राप्त नहीं हैं, कुछ स्थान सुरक्षित रक्खे जायेंगे।

सामाजिक समानता की ओर एक और महत्वपूर्ण कदम जो हमारे संविधान ने उठाया है वह हर प्रकार के सरकारी खिताबों की प्रथा का मिटा देना है। गणतन्त्र भारत में किसी भी नागरिक को विश्वविद्यालयों की उपाधियों को छोड़कर और किसी प्रकार के राय साहबी, राय बहादुरी या सर इत्यादि, के खिताब नहीं दिये जायेंगे।

स्वतंत्रता का अधिकार

इसी शीर्षक के अन्तर्गत नागरिकों को भाषण की स्वतन्त्रता, शांतिपूर्वक बिना हथियार इकट्ठा किये सभा करने की स्वतन्त्रता, संघ बनाने

की स्वतन्त्रता, भारत के किसी भी प्रांत में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने, निवास करने या बस जाने की स्वतन्त्रता, तथा व्यापार करने की स्वतन्त्रता, प्रदान की गई है। परन्तु इन अधिकारों पर सरकार सार्वजनिक हित, सुव्यवस्था, सदाचार, तथा राज्य की सुरक्षा के विचार से कोई भी रोक लगा सकेगी। ऐसा इसलिये किया गया है कि जिससे नागरिक इन अधिकारों का दुरुपयोग न करें। अधिकार केवल कर्तव्य की दुनिया में ही जीवित रह सकते हैं। किसी भी अधिकार का अर्थ स्वच्छंदतापूर्वक कार्य करना नहीं होता। उदाहरणार्थ, भाषण की स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं कि किसी व्यक्ति के जो मन में आये कहे, किसी का अपमान अथवा मानहानि करे या जनता को हिंसात्मक कार्य करने के लिये उकसाये। इस प्रकार के अनियन्त्रित अधिकार देने से अराजकता के अतिरिक्त दूसरा परिणाम नहीं निकलता। इसलिये प्रायः सभी अधिकारों पर कुछ न कुछ रोक अवश्य लगाई जाती है। इन रोकों का प्रयोजन केवल यह होता है कि नागरिक अपने कर्तव्यों को न भूलें।

स्वतन्त्रता संबंधी अधिकारों के अन्तर्गत ही यह भी प्रबंध किया गया है कि जहाँ व्यक्तियों कों व्यवसाय की स्वतन्त्रता हो, वहाँ वह ऐसे व्यापार न करें, जो नैतिकता से गिरे हुए हों या जिनके द्वारा समाज के शक्तिहीन वर्गों का शोषण हो। उदाहरणार्थ, बच्चों या स्त्रियों का व्यापार निषिद्ध ठहराया गया है, साथ ही, १४ वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिये कारखानों में नौकरी करने की मनाही कर दी गई है। इसके आगे विधान में कहा गया है कि एक अपराध में किसी व्यक्ति को दो बार अभियोजित और दंडित नहीं किया जायगा। कोई व्यक्ति अपने विरुद्ध गवाही देने के लिये मजबूर नहीं किया जायगा, अपराध करते समय जो दंड निश्चित् हो उससे अधिक दंड नहीं दिया जायगा ; कोई कार्य जो प्रचलित कानून के अनुसार अपराध न हो उसके करने पर किसी को दंड न दिया जायगा ; किसी व्यक्ति को बिना अपराध गिरफ्तार नहीं किया जायगा ; गिरफ्तारी के तुरन्त पश्चात

२४ घंटे के अन्दर उसे किसी मजिस्ट्रेट के सम्मुख पेश किया जायगा ; प्रत्येक अपराधी मनुष्य को वकील करने तथा उसके द्वारा अपने मुकदमे की पैरवी कराने का अधिकार दिया जायगा ।

बिना मुकदमे नजरबन्दी—नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर रोक लगाने वाली विधान में एक २२ वीं धारा है जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति को तीन महीने के लिये बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द किया जा सकेगा परन्तु ऐसा करने के तुरन्त पश्चात् सरकार उस व्यक्ति को बतायेगी कि उसके विरुद्ध क्या अभियोग हैं ; इससे अधिक काल के लिये भी व्यक्तियों को नजरबन्द करने का विधान में आयोजन है । परन्तु ऐसा करने से पहिले सरकार को हाई कोर्ट के जजों की एक कमेटी के सम्मुख अपने कार्य का औचित्य समझाना होगा । इसी धारा के अन्तर्गत भारतीय संसद इस प्रकार का कानून बनायेगी जिसके द्वारा वह निश्चित करेगी कि अधिक से अधिक कितने काल के लिये किसी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये जेल में रक्खा जा सकता है ।

आलोचना—स्वभावतया संविधान की इस धारा की सबसे अधिक आलोचना की गई है । कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा है कि इस धारा के द्वारा संविधान में नागरिकों को जो भी मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं उन सब पर पानी फेर दिया गया है । कुछ आलोचकों ने सरकार के विरुद्ध फासिस्टवाद का आरोप लगाया है और कहा है कि इस धारा द्वारा सरकार राजनीतिक विरोधियों का दमन करेगी परन्तु, यदि हम भारत की वर्तमान स्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार करें और उन सभी राष्ट्र-विरोधी एवं अराजकता फैलाने वाली शक्तियों की ओर ध्यान दें, जो आज भारत की नवप्राप्त स्वतन्त्रता को नष्ट करके समाज के जीवन को अस्तव्यस्त कर देना चाहती हैं, तो हमें स्पष्ट हो जायगा कि हमारे विधान निर्माताओं ने संविधान में इस प्रकार की अप्रिय धारा क्यों बनाई है ? जनतन्त्रात्मक शासन में कोई भी सरकार जनता को अनुचित उपायों से अधिक समय

तक नहीं दबा सकती। यदि वह ऐसा करे तो जनता क्रांति का पथ अपनाती है। इसलिये यह कहना कि हमारे विधान निर्माताओं ने संविधान में ऐसी धारा राजनीतिक विरोधियों का दमन करने के लिये बनाई है, युक्ति संगत नहीं। अमरीका के विधान में भी जहाँ नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई गई है, सुप्रीम कोर्ट द्वारा ऐसे फैसले दिये गये हैं जिनसे नागरिकों के अधिकारों पर वैसी ही रोक लग गई हैं जैसी वह भारत के विधान में लगाई गई है।

नजरबन्दी का कानून—संविधान की २२वीं धारा के अन्तर्गत २५ फरवरी, सन् १९५० को हमारी संसद ने गृह मन्त्री सरदार पटेल के सुझाव पर एक ऐसा कानून पास कर दिया जिसके द्वारा भारत सरकार किसी भी व्यक्ति को राष्ट्र की सुरक्षा अथवा देश में आंतरिक शांति बनाए रखने के लिये, बिना मुकदमे १ वर्ष के लिये नजरबन्द कर सकेगी। परन्तु संविधान में दी गई आज्ञाओं का पालन करने के हेतु, इस कानून में कहा गया है कि ऐसा कोई भी व्यक्ति उस समय तक नजरबन्द नहीं किया जायगा, जब तक जिला या सब डिविजनल मजिस्ट्रेट या कमिश्नर पुलिस, ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के तुरन्त पश्चात् राज्य की सरकार को यह न बताएँ कि उस व्यक्ति के विरुद्ध क्या अभियोग हैं; साथ ही अभियुक्त को भी उन्हें उसके विरुद्ध लगाये गये आरोपों से अवगत कराना होगा। गिरफ्तारी के पश्चात् ६ सप्ताह के भीतर, ऐसे व्यक्ति का मामला एक ऐसी परामर्श समिति के सम्मुख भी पेश करना होगा जिसके सदस्य दो ऐसे व्यक्ति होंगे जो हाई कोर्ट के जज हों, या जज रह चुके हों, अथवा जज नियुक्त किये जाने की योग्यता रखते हों। इस परामर्श समिति के सम्मुख अभियुक्त को भी लिखकर अपनी सफाई पेश करने का अधिकार होगा।

इस प्रकार के कानून को इतने शीघ्र पास करने की आवश्यकता, इसलिये अनुभव हुई कि २६ जनवरी के तुरन्त पश्चात् हमारे देश की हाई कोर्टों ने, हैबियस कार्पस पैटिशन, के आधार पर कम्यूनिस्ट नजर-

बन्दों को छोड़ना आरंभ कर दिया था । इन हाई कोर्टों का कहना था कि नये संविधान के लागू होने के पश्चात् भारत सरकार के वह पुराने कानून मान्य नहीं ठहराये जा सकते जो जनता के मौलिक अधिकारों की अवहेलना करते हैं। इसीलिये संविधान में दी गई २२ वीं धारा के आदेशानुसार संसद को उपरोक्त कानून पास करना पड़ा ।

बिल प्रस्तुत करते समय सरदार पटेल ने कहा कि देश की सुरक्षा तथा भारत की ३३ करोड़ जनता को साम्यवादियों की हिंसा, आतंक तथा उपद्रवों की नीति से बचाने के लिये ही उन्होंने ऐसा बिल संसद के सम्मुख पेश किया है । उन्होंने कहा कि इस बिल को बनाते समय उन्हें इतनी हार्दिक वेदना हुई कि वह दो रात तक न सो सके । वह नहीं चाहते थे कि नये संविधान के लागू होने के पश्चात् जनता के नागरिक अधिकारों के साथ खिलवाड़ की जाय, परन्तु सारे देश तथा समाज के कल्याण के लिये उन्हें ऐसा कदम उठाने के लिये विवश होना पड़ा ।

उपरोक्त कानून की धाराओं को देखने से पता चलता है कि उसमें इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि इस कानून की जकड़ में समाज के शांतिप्रिय तथा निरपराध व्यक्ति न आ जाँय और उसे केवल उन्हीं व्यक्तियों के विरुद्ध इस्तेमाल किया जा सके जो हिंसा की नीति का अवलंबन करते हैं और जनतन्त्र राज्य में भी अवैध उपायों को प्रयोग में लाकर, शासन को अस्त-व्यस्त कर देना चाहते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि नये संविधान में उन व्यक्तियों के अधिकारों की पूर्ण रूप से रक्षा की गई है जो लोकतन्त्र शासन में विश्वास रखते हैं और सरकार के विरुद्ध रहते हुये भी केवल जन संत्तात्मक उपायों से ही सरकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहते हैं। सरदार पटेल ने नजरबन्दी का कानून प्रस्तुत करते समय स्पष्ट शब्दों में कहा था कि इस कानून द्वारा वह साम्यवादी सिद्धांत या किसी और सिद्धांत का प्रचार अवैध घोषित नहीं करना चाहते। वह केवल हिंसा और

खूनी क्रांति के मार्ग से लोगों को हटाना चाहते हैं। जनतंत्र राज्य में सरकार के काम की आलोचना करने का प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण अधिकार है, परन्तु ऐसा करने के लिये जनतंत्रात्मक उपायों को ही काम में लाना चाहिये।

इस कानून के पास होने के पश्चात् भी हमारे देश की उच्चतम न्यायालय नागरिकों के अधिकारों की पूर्ण रूप से रक्षा कर सकती है। देश के किसी भी नागरिक को अधिकार है कि वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिये इस न्यायालय के समक्ष प्रार्थनापत्र दे सके।

इस कानून की वैधता के संबंध में सुप्रीम कोर्ट में कई मुकदमे पेश किये गये। मुकदमों का फैसला देते समय सुप्रीम कोर्ट ने ठहराया कि कानून की केवल १४ वीं धारा अवैध है शेष कानून वैध है।

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

भारत में हर व्यक्ति को अन्तःकरण तथा धर्म की स्वतंत्रता प्रदान करने के लिये संविधान की २५वीं धारा में प्रबन्ध किया गया है। इस धारा में कहा गया है कि सामाजिक कल्याण, सदाचार, तथा स्वास्थ्य के नियमों का विचार रखते हुये प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की स्वतंत्रता प्राप्त होगी। धार्मिक सम्प्रदायों को अपनी संस्थाएँ बनाने, धार्मिक प्रचार करने, और चल और अचल सम्पत्ति रखने का पूर्ण अधिकार होगा। परन्तु, राज्य की नैतिकता कायम रखने के लिये किसी भी व्यक्ति को धर्म के नाम पर अनैतिक व्यवहार करने की आज्ञा नहीं दी जायगी। ना ही व्यक्तियों को ऐसे कर देने के लिये वाध्य किया जायगा जिसकी आमदनी किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष की उन्नति में खर्च की जाय। सरकार द्वारा चलाई हुई शिक्षा संस्थाओं में, भारत सरकार की धर्म निर्पेक्षता (लौकिकता) के कारण, धार्मिक शिक्षा देने की मनाही की गई है। सिखों को कृपाण बाँधने तथा ले जाने का अधिकार दिया गया है।

सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

धार्मिक अधिकार केवल बहुसंख्यक जाति को ही प्राप्त नहीं होंगे। संविधान में कहा गया है कि अल्पसंख्यक जातियाँ अपने धर्म, संस्कृति, भाषा और लिपि की रक्षा कर सकेंगी। वह अपनी इच्छानुसार शिक्षा संस्थाएँ चला सकेंगी और सरकार ऐसी संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं बरतेगी। सरकार द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं में, हर धर्म, जाति व नस्ल के बच्चे बिना किसी रोक-टोक के शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

सम्पत्ति अधिकार

सम्पत्ति प्राप्त करने, रखने तथा उसका क्रय-विक्रय करने का अधिकार भी नये संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को दिया गया है। विधान में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को, विधि से प्राप्त अधिकार बिना, उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायगा। सरकार किसी चल या अचल सम्पत्ति पर केवल उस समय अधिकार कर सकेगी जब उसे प्राप्त करने के लिये उचित मुआवजा दे दिया जाय। मुआवजा उचित है या नहीं, इसका निर्णय अदालतें कर सकेंगी, परन्तु, उत्तर प्रदेश, बिहार और मद्रास के जमींदारी उन्मूलन कानूनों की वैधानिकता के सम्बन्ध में कहीं अड़चन न पड़े, इसलिये संविधान में कहा गया है कि इन विशेष कानूनों के क्षेत्र में आदलतों को किसी प्रकार का दखल नहीं होगा। ऐसा इसलिये किया गया है जिससे उन प्रान्तों में जहाँ जमींदारी उन्मूलन कानून पास हो चुके हैं या विधान सभाओं के विचाराधीन हैं, मुकदमों द्वारा उन कानूनों को कार्यान्वित करना असम्भव न बना दिया जाय।

संवैधानिक प्रतिकार सम्बन्धी अधिकार

अधिकारों का उस समय तक कोई मूल्य नहीं होता जब तक उनको लागू करने तथा उनकी रक्षा करने के लिये संवैधानिक उपाय न हों।

हमारे नये संविधान में इस लिये प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने मौलिक अधिकारोंकी रक्षा के लिये देश की सर्वोच्च-न्याय अदालत में मामला पेश कर सकेगा। इस अदालत को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिये "हेबियस कारपस" तथा "मैन्डेमस" इत्यादि प्रयोगों को काम में ला सकेगी। आज-कल सुप्रीम कोर्ट में अनेक ऐसे मुकदमे विचाराधीन हैं जिन में बहुत से नाग-रिकों ने अपने मूल अधिकारों की रक्षा के संबंध में उस अदालत में प्रार्थना-पत्र दिये हुवे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे नये संविधान में नागरिकों को वह सभी सामाजिक , वैयक्तिक, सांस्कृतिक, तथा धार्मिक अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं जिनके द्वारा ही कोई मनुष्य अपने जीवन में उन्नति कर सकता है।

नागरिकों के मौलिक अधिकार जो न्यायालयों द्वारा रक्षित नहीं किये जा सकते

ऊपर, नागरिकों के जिन मौलिक अधिकारों की हमने चर्चा की है उनको अदालत द्वारा मनवाया जा सकता है। परन्तु अब हम व्यक्तियों के कुछ ऐसे अधिकारों का वर्णन करेंगे जो अदालत द्वारा तो नहीं मनवाये जा सकते; किन्तु जो राज्य की नींव हैं और जिन के अनुसार राज्य का कार्य चलना चाहिये। नागरिकों के इन अधिकारों की चर्चा संविधान के उन नियामक सिद्धान्तों में की गई है जिनका वर्णन संविधान की ३६ से लेकर ५१वीं धारा में है। आयरलैंड को छोड़ कर संसार के किसी और देश में इस प्रकार के सिद्धान्तों की घोषणा नहीं की गई है। इस प्रकार यह सिद्धान्त हमारे नये संविधान की बहुत . सुन्दर विशेषता है । बहुत से लोग कहते हैं कि ऐसे सिद्धान्तों का वर्णन करने से क्या लाभ जिनका पालन करने के लिये सरकार वाध्य नहीं। इस आक्षेप का उत्तर यही है कि नियामक सिद्धान्त राज्य की कार्यकारिणी तथा विधान-मंडल के नाम

संविधान सभा का एक प्रकार का आदेश है कि वह अपने अधिकारों तथा शक्तियों का इस प्रकार प्रयोग करें कि नागरिकों के इन सिद्धान्तों में वर्णित अधिकारों की रक्षा हो सके। यह ऐसे नियम हैं जिन पर चलना संघ सरकार तथा राज्यों की सरकारों को अनिवार्य होगा। इन पर चल कर ही हमारे देश में एक ऐसे आर्थिक तथा राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना हो सकेगी जिसके बिना स्वतन्त्रता प्राप्ति व्यर्थ है और साधारण मनुष्य के लिये स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं होता।

राज्य के नियामक सिद्धान्त (Directive Principles of State Activity)

राज्य के नियामक सिद्धान्त इस प्रकार हैं :-

(१) राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा जिसमें प्रत्येक नर और नारी को समान रूप से जीविका का साधन प्राप्त हो।

(२) राज्य सम्पत्ति का स्वामित्व व नियन्त्रण इस प्रकार करेगा जिससे सामूहिक हित में अधिक से अधिक वृद्धि हो।

(३) राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा जिससे धन व उत्पादन के साधन थोड़े से आदमियों के हाथ में इकट्ठे न हों।

(४) सब व्यक्तियों को समान कार्य के लिये समान वेतन मिल सके।

(५) बालक व बयस्क मजदूरों की शोषण से रक्षा हो सके।

(६) ग्राम पंचायतों का संगठन हो तथा उन्हें वह सभी अधिकार प्रदान किये जाँय जो पहिले कभी उन्हें प्राप्त थे।

(७) राज्य की ओर से यथाशक्ति बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा अभाव की दशा में सार्वजनिक सहायता देने का प्रबन्ध हो।

(८) प्रत्येक व्यक्ति को इतनी मजदूरी मिले कि उसकी जीविका चल सके।

(९) घरेलू, उद्योगधंधों को प्रोत्साहन दिया जाय।

(१०) १० वर्ष के भीतर १४ साल की आयु तक के बच्चों के लिये निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध हो।

(११) जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा करने के लिये पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध और स्वास्थ्य-सुधार के नियमों का पालन किया जाय।

(१२) कृषि और पशु-पालन का आधुनिक ढंग से संगठन हो, विशेषकर गायों, बछड़ों और दूध देने वाले पशुओं की रक्षा की जाय।

(१३) कलात्मक और ऐतिहासिक इमारतों की रक्षा की जाय।

(१४) कार्यकारिणी और न्याय-संबंधी विभाग को अलग अलग किया जाय।

(१५) विश्व शान्ति के लिये अन्तर्राष्ट्रीय कानून का सम्मान, परस्पर सहयोग, तथा झगड़ों का पंचों द्वारा निर्णय कराया जाय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नियामक सिद्धान्तों में उन सभी आदर्शों को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया गया है जो किसी भी राष्ट्र की जनता को प्रिय हो सकते हैं तथा जिनके पूरा होने पर समाज में स्वर्गीय आनन्द की स्थापना हो सकती है।

जनता का कर्त्तव्य

संविधान में मौलिक अधिकारों व नियामक सिद्धान्तों के उल्लेख-मात्र से जनता का कुछ अधिक भला नहीं होता। उनसे केवल उस दशा में लाभ हो सकता है जब वह कार्यान्वित किये जायँ। ऐसा केवल उस दशा में हो सकता है जब जनता अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो। संस्कृत में एक कहावत है " राष्ट्रे जाग्रेयाम् वयम्" अर्थात् हम राष्ट्र में जागते रहें। इस एक सूत्र के अन्तर्गत जनता का अपने संविधान के प्रति सारा कर्त्तव्य निहित है। स्वतंत्र कौमें केवल उस दशा में उन्नति के पथ पर अग्रसर

होती हैं जब वह जागरण और सुचेतना द्वारा अपनी स्वाधीनता का मूल्य चुकायें । यदि आज भारतवासियों ने यह मूल्य चुकाने में आनाकानी की तो हमारे सभी मौलिक अधिकार नष्ट हो जायेंगे।

केन्द्रीय संघ शासन की व्यवस्था

निम्नतालिका में केन्द्रीय संघ शासन का संगठन समझाने का प्रयत्न किया गया है :-

सरकार के इन विभिन्न अंगों का विस्तृत वर्णन अब हम आगे के अध्यायों में करेंगे।
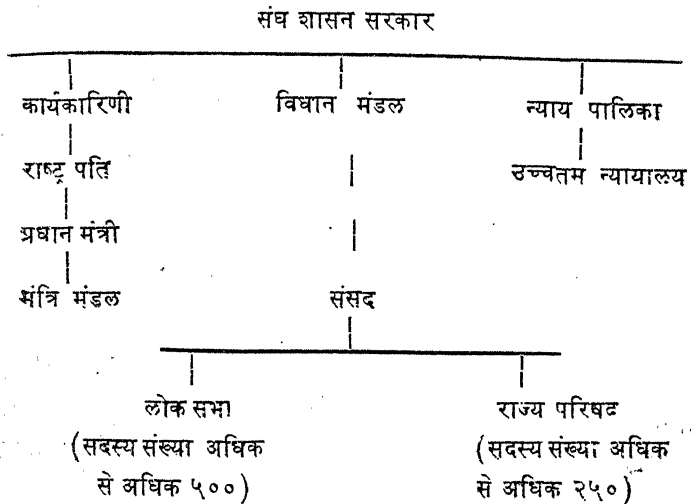
अध्याय ५

संघ कार्यकारिणी

संघ कार्यकारिणी का स्वरूप

हमारे नये संविधान के अन्तर्गत भारत में एक मंत्रिमंडलात्मक शासन की व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत देश की कार्यकारिणी व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से अपने सारे कृत्यों, फैसलों तथा कार्यों के लिये विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी होती है। विधान मंडल जब चाहे कार्यकारिणी को उसके द्वारा प्रस्तावित कानूनों को रद्द कर के या उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर के, या बजट को अस्वीकार कर के उसके पद से अलग कर सकता है। आम चुनावों के समय जनता को यह अवसर मिलता है कि वह विधान मंडल में जिस विचारधारा के भी चाहे सदस्यों को चुन कर भेजे। जिस राजनीतिक दल के सदस्य विधान सभा में वहु संख्या में निर्वाचित होते हैं, उसके नेता को ही मंत्रिमंडल बनाने का सुअवसर दिया जाता है। इस प्रकार मंत्रिमंडलात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य की अन्तिम सत्ता निर्वाचिकों के हाथ में रहती है।

शासन की यह पद्धति अमरीका की अध्यक्षात्मक प्रणाली से बिलकुल भिन्न है। वहाँ कार्यकारिणी का अध्यक्ष राष्ट्रपति विधान सभा के बहुमत दल का नेता नहीं होता। उसका अलग जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव किया जाता है। वह कार्यकारिणी का वास्तविक अध्यक्ष होता है, उसे अपने मंत्रियों को स्वयं चुनने तथा अलग करने का अधिकार होता है, वह विधानसभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होता.

ना ही वह विधान सभा की बैठकों में भाग लेता है। उसके कार्यकाल के अन्त होने तक कोई शक्ति उसे उसके पद से नहीं हटा सकती । चार वर्ष के लिये वह राष्ट्र का सर्वेसर्वा होता है।

अमरीका और भारत के राष्ट्रपति में अन्तर--हमारे संविधान में राष्ट्रपति कार्यकारिणी का अध्यक्ष अवश्य है परन्तु अमरीका के राष्ट्रपति की भाँति उसे अधिकार प्राप्त नहीं हैं। वह इंगलैंड के सम्राट की भाँति राज्य का नाममात्र का अध्यक्ष है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व तो करता है परन्तु राष्ट्र का शासन नहीं करता। वह इंगलैंड के सम्राट की भाँति प्रत्येक कार्य प्रधान मंत्री की सलाह से ही करता है है। कहने को राष्ट्र की सारी शक्ति उसके हाथ में निहित है, राज्य के सारे काम उसके नाम पर किये जाते हैं, परन्तु वास्तव में देश का असली शासक प्रधान मंत्री है। बाहर से देखने पर हमारे राष्ट्रपति के भी वही ठाट-बाट हैं जो इंगलैंड के सम्राट् के; रहने के लिये विशाल महल, सवारी के लिये शाही गाड़ियां, रक्षा के लिये सेना और अंग-रक्षक, तोपों की सलामी, सुनहरी पेटियों वाले चपरासी, और प्यादे, दावतें और स्वागत समारोह और सभी कुछ; परन्तु वास्तव में उसके हाथ में शासन की कोई विशेष शक्ति नहीं। यह सच है कि संविधान में राष्ट्रपति के हाथ में बहुत से महत्वपूर्ण अधिकार सौंपे गये हैं और कहीं पर यह नहीं कहा गया है कि वह अपने मन्त्रियों की आज्ञा मानने के लिए बाध्य होंगे, परन्तु आशा है कि इस दिशा में वही सब रीति रिवाज चालू हो जायंगे जो इंगलैण्ड में लागू हैं और जिनके कारण ब्रिटिश सम्राट मन्त्रिमंडल के हाथ में एक कठपुतली के समान कार्य करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नामों में समानता होने पर भी भारत और अमरीका के राष्ट्रपति के अधिकार एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। एक कार्यकारिणी का सर्वेसर्वा है, दूसरा, उसका नाम मात्र का अध्यक्ष। एक, सारे मन्त्रियों को स्वयं चुनता है, तथा उन्हें जब चाहे अलग कर सकता है, दूसरा, केवल प्रधान मन्त्री का चुनाव करता है और वह भी एक विशेष पद्धति

के अनुसार लोक सभा में बहुमत दल के नेता को। एक बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति स्वयं करता है, दूसरा ऐसा प्रधान मन्त्री की सलाह से करता है।

भारत में मन्त्रिमंडलात्मक शासन पद्धति चुने जाने के कारण—यहाँ प्रश्न यह उठता है कि भारत ने मन्त्रिमंडलात्मक शासन पद्धति का क्यों अवलंबन किया और अध्यक्षात्मक सरकार की स्थापना क्यों नहीं की? इसके निम्न कारण हैं:—सर्व प्रथम, इस पद्धति के अधीन पिछले १३ वर्षों से हमारे प्रांतों की सरकारें व्यवस्थित हो रही थीं। केन्द्रीय शासन में भी अंतरिम सरकार की स्थापना के पश्चात् से यही पद्धति लागू थी। इस प्रकार भारतवासियों को इस व्यवस्था का समुचित अनुभव प्राप्त था। इस अनुभव ने उन्हें बताया कि मन्त्रिमंडलात्मक सरकार के अधीन विधान मंडल तथा कार्यकारिणी के बीच कार्य बहुत सुगमता तथा सुन्दरता से चलता है। मन्त्री उस नीति को आसानी से कार्यान्वित कर सकते हैं जिसके आधार पर वे विधान सभा में चुने जाते हैं। वह विधान मंडल द्वारा उन सभी कानूनों को आसानी से पास करा सकते हैं जिन्हें वह शासन कार्य चलाने के लिए उचित समझते हैं।

अन्त में यह शासन प्रणाली भारत में ही नहीं संसार के सभी देशों में लोकप्रिय बन गई है। कारण इस व्यवस्था के आधीन कार्यकारिणी और विधान मंडल में राजनीतिक अवरोध उत्पन्न नहीं होते। इसमें परिस्थिति के अनुसार बदलने और कार्य करने की शक्ति होती है। यह प्रणाली अधिक जनतन्त्रात्मक भी मानी जाती है।

इन सभी लाभों को देखकर हमारे विधान निर्माताओं ने, खूब सोच विचार करने के पश्चात्, मन्त्रिमंडलात्मक शासन प्रणाली का ही अवलम्बन किया।

१. राष्ट्रपति

जैसा पहिले बताया जा चुका है, हमारे देश की कार्यकारिणी का अध्यक्ष एक राष्ट्रपति है। आजकल इस पद पर डा० राजेन्द्र प्रसाद सुशोभित हैं।

संविधान में कहा गया था कि जब तक संविधान लागू होने के पश्चात् नये चुनाव न हो जाँय संविधान सभा को स्वयं राष्ट्रपति निर्वाचित करने का अधिकार होगा। इस धारा के अन्तर्गत संविधान सभा की एक विशेष बैठक जनवरी २५, १९५० को की गई। इस बैठक में सर्वसम्मति से देशरत्न राजेन्द्र बाबू को राष्ट्रपति चुन लिया गया। अगले दिन गवर्नमेंट हाउस के दरबार हाल में एक विशेष समारोह के बीच उन्होंने अपने पद की शपथ ग्रहण कर ली।

राष्ट्रपति का चुनाव

हमारे वर्तमान राष्ट्रपति के पद की कोई निश्चित अवधि नहीं है। वह केवल उस समय तक ही अपने पद पर आसीन रहेंगे जब तक साधारण निर्वाचन के पश्चात् नये राष्ट्रपति का चुनाव नहीं हो जाता। इस चुनाव में दूसरे व्यक्तियों की भाँति वर्तमान राष्ट्रपति को भी उम्मीदवार बनने का अधिकार प्राप्त होगा। संविधान में राष्ट्रपति के जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाने की व्यवस्था नहीं की गई है। कारण, वह केवल कार्यकारिणी के नाम मात्र के अध्यक्ष हैं, उनके हाथ में शासन की वास्तविक शक्ति नहीं। इसलिये १८ करोड़ के लगभग मतदाताओं की विशाल संख्या से उनका प्रत्यक्ष निर्वाचन आवश्यक नहीं समझा गया। संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल द्वारा किया जायगा जिसके सदस्य सब राज्यों के दोनों भवनों के निर्वाचित सदस्य तथा केन्द्रीय संसद् के चुने हुये सदस्य होंगे। चुनाव एकहरे संक्राम्य मत (single transferable vote) के द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व (proportioned representation) के द्वारा किया जायगा। चुनाव में प्रत्येक सदस्य को जितने वोट देने का अधिकार होगा उसके निर्णय के लिए एक विशेष नियम बनाया गया है। इस नियम में कहा गया है कि विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों को जहाँ तक संभव होगा बराबर के मत देने का अधिकार दिया जायगा और समस्त राज्यों के प्रतिनिधियों को उतने ही मत

दिये जाँयगे जितने संसद के दोनों भवनों के सदस्यों को मिला कर। ऐसा करने के लिये प्रत्येक मतदाता को जितने मत देने का अधिकार होगा उसकी संख्या नीचे लिखे प्रकार से निर्धारित की जायगी :—

यू० पी० की आबादी ५॥ करोड़ है। हम यू० पी० की विधान सभा के निर्वाचित कुल सदस्यों की संख्या ५५० ले लें (यानी १ लाख आबादी पर १)। अब इस बात का पता लगाने के लिए कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में प्रत्येक सदस्य कितने वोट दे सकेगा, हमें आबादी की कुल संख्या अर्थात् ५,५०,००,००० को ५५० से भाग देना होगा और फिर भजनफल को १,००० से। इस प्रकार भजनफल ५,५०,००,००० /५५० × १०० = अर्थात १०० आया। प्रत्येक सदस्य को यही १०० राय देने का अधिकार होगा। दूसरे राज्यों के सदस्यों को भी मत देने का अधिकार इसी प्रकार निश्चित किया जायगा। इस प्रणाली से यह लाभ है कि सभी राज्यों के प्रतिनिधि राष्ट्रपति के चुनाव में बराबर भाग ले सकेंगे।

संसद् के दोनों भवनों के निर्वाचित सदस्यों के विषय में नियम यह है कि उसका कोई सदस्य उतने वोट दे सकेगा जितने, अन्तर्गत राज्यों के विधान मंडल के सब निर्वाचित सदस्यों द्वारा दिये जाने वाले वोटों को, पार्लियामेंट के दोनों भवनों के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या से भाग देने से प्राप्त होंगे।

योग्यता—राष्ट्रपति के पद के लिये केवल वही लोग खड़े हो सकेंगे जो (१) भारत के नागरिक हों (२) जिनकी आयु ३५ वर्ष से अधिक हो तथा जो (३) लोक सभा में चुने जाने की योग्यता रखते हों। यदि कोई व्यक्ति भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी लाभकारी पद पर आसीन है तो वह निर्वाचन के लिये योग्य नहीं समझा जायगा। परन्तु, संघ सरकार या किसी राज्य का मन्त्री होना, या गवर्नर होना या किसी विधान सभा या परिषद का सभापति अथवा अध्यक्ष होना लाभकारी पद नहीं समझा जायगा—ऐसे सब लोग चुनाव में भाग ले सकेंगे।

पद का कार्यकाल—राष्ट्रपति के पद का कार्यकाल ५ वर्ष होगा बशर्ते कि वह इससे पहले ही त्यागपत्र न दे दे या सार्वजनिक दोषारोपण द्वारा अपने पद से न हटा दिया जाय। जब तक नया पदाधिकारी न चुन लिया जायगा पहला राष्ट्रपति ही कार्य काल की समाप्ति पर भी अपने पद पर काम करता रहेगा। राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि वह अपने पद से त्यागपत्र दे दे। ऐसा त्यागपत्र उपराष्ट्रपति को संबोधित करके देना होगा जो इसके बाद लोक सभा के सभापति के सूचनार्थ पेश कर दिया जायगा। एक बार चुन लिये जाने के पश्चात् भी वही व्यक्ति दोबारा और तिबारा उसी पद के लिये खड़ा हो सकेगा। संविधान में इस विषय में कोई रोक नहीं लगाई गई है।

सार्वजनिक दोषारोपण—राष्ट्रपति को उनके पद से हटाने के संबंध में विधान में इस बात का प्रबंध किया गया है कि यदि कोई राष्ट्रपति संविधान को भंग करे, तो संसद का कोई एक भवन दो तिहाई बहुमत से दूसरे भवन से यह प्रार्थना कर सकेगा कि वह राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों की जाँच-पड़ताल करे। ऐसा प्रस्ताव पेश करने के लिये किसी भवन के कुल सदस्यों की एक चौथाई के हस्ताक्षर तथा १४ दिन की सूचना आवश्यक है। अभियोगों की जाँच-पड़ताल करने वाले भवन में राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि वह उस जाँच में स्वयं उपस्थित हो कर या प्रतिनिधि के द्वारा भाग ले सके। यदि पूरी जाँच के पश्चात् दूसरा भवन दो तिहाई बहुसंख्या से अभियोगों का समर्थन कर दे तो राष्ट्रपति को उसके पद से हटा दिया जायेगा।

प्रश्न उठता है कि जब नये विधान में राष्ट्रपति को कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये है तो इस दोषारोपण की व्यवस्था किस लिये की गई है। इसका उत्तर यह है कि जैसे पहले बताया गया है संविधान में राष्ट्रपति के अधिकारों पर कोई वैधानिक रोक नहीं लगाई गई है। केवल ७४वीं धारा में इतना कहा गया है कि राष्ट्रपति की सलाह तथा सहायता के लिये प्रधान मंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिमंडल होगा। यह कहीं नहीं कहा गया कि

इस मंत्रिमंडल की बात मानने के लिये राष्ट्रपति बाध्य होंगे। विधान निर्माताओं का आशय था कि इस दशा में क़ानून से नहीं, रीतिरिवाजों (conventions) से काम लिया जाय, परन्तु साथ ही उन्हें यह डर था कि यदि राष्ट्रपति रीति-रिवाज़ों को नहीं मानें और मंत्रियों की सलाह से काम नहीं करें, तो क्या होगा? ऐसी परिस्थिति के लिये ही संविधान की २५ वीं व २६ वीं धारा में राष्ट्रपति पर संविधान तोड़ने का दोष लगाकर, उन्हें उनके पद से अलग करने की व्यवस्था की गई है। मंत्रियों की सलाह न मानना अथवा देशद्रोह, भ्रष्टाचार या घूसखोरी का काम करना, संविधान का तोड़ना समझा जायगा।

रिक्त स्थान की पूर्ति---राष्ट्रपति के कार्यकाल की समाप्ति से पहले ही संविधान में कहा गया है कि नया निर्वाचन हो जाना चाहिये, परन्तु यदि मृत्यु, त्यागपत्र अथवा सार्वजनिक दोषारोपण के कारण नये चुनाव से पहिले ही राष्ट्रपति का स्थान खाली हो जाय तो ऐसी दशा में संविधान में कहा गया है कि छै महीने के अन्दर-अन्दर नया चुनाव हो जाना चाहिये। नये राष्ट्रपति का चुनाव चाहे जिस कारण से हो उसकी अवधि ५ वर्ष की ही निश्चित की गई है।

वेतन---संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति को १०,००० रु० मासिक वेतन, कई प्रकार का भत्ता तथा रहने के लिये भवन तथा दूसरी सुविधाएँ दी जायेंगी। किसी राष्ट्रपति के कार्यकाल में उसका वेतन नहीं घटाया जा सकेगा। परन्तु, हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने देश के आर्थिक संकट को देखकर अपने वेतन में स्वेच्छा से, १५% की कमी स्वीकार कर ली है।

राष्ट्रपति के अधिकार

संविधान में कहा गया है कि कार्यकारिणी का प्रत्येक कार्य राष्ट्रपति के नाम पर किया जायगा। वह सेना का प्रधान सेनापति तथा देश की कार्यकारिणी का अध्यक्ष होगा। देश में कोई भी कानून उस समय तक लागू

नहीं हो सकेगा जब तक राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर न कर दें। प्रधान मन्त्री का चुनाव उन्हीं के द्वारा किया जायगा। दूसरे देशों के राजदूत उन्हीं को प्रमाण पत्र पेश करेंगे। संसद् का अधिवेशन बुलाना, उसमें भाषण देना, तथा सरकारी नीति का उल्लेख करना उनका मुख्य कार्य होगा। सजा पाये हुए अपराधियों की सजा कम करना, उन्हें क्षमा-दान देना, तथा मृत्यु-दंड को स्थगित करने का अधिकार भी उन्हीं को प्राप्त होगा। बड़े बड़े सरकारी कर्मचारी जैसे प्रांतों के गवर्नर, राजदूत, सुप्रीम कोर्ट के जज, चीफ जस्टिस, पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य, अटार्नी जनरल, औडीटर जनरल, इलेक्शन कमिश्नर, इत्यादि की नियुक्ति उन्हीं के द्वारा की जायगी। विशेष परिस्थितियों में जब संसद् का अधिवेशन न हो रहा हो तो उसे अल्प-कालीन कानून (ordinance) भी पास करने का अधिकार होगा। परन्तु ऐसे कानून विधान मंडल की बैठक होने के छै सप्ताह के पश्चात् लागू न रह सकेंगे।

राष्ट्रपति को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह कबाइली इलाकों की व्यवस्था के लिये उपनियम बना सके। उसे लोक सभा को तोड़ने, संसद् के अन्तर्गत दोनों भवनों का अलग-अलग या संयुक्त अधिवेशन बुलाने तथा किसी एक या दोनों भवनों में भाषण देने अथवा संदेश भेजने का अधिकार होगा। अर्थ संबंधी कोई भी बिल उस समय तक प्रस्तुत न किये जा सकेंगे जब तक राष्ट्रपति उसकी स्वीकृति न दें।

संकट कालीन अवस्था में राष्ट्रपति के अधिकार

जर्मनी के वाईमार संविधान की भाँति भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को संकट कालीन अवस्था में देश का शासन अपने हाथ में लेने के लिये अनेक अधिकार दिये गये हैं। संविधान में तीन प्रकार के संकट की संभावना बताई गई है :—

(१) युद्ध, बाहरी आक्रमण अथवा आंतरिक उपद्रवों से उत्पन्न संकट-कालीन स्थिति,

(२) किसी राज्य में संवैधानिक संकट, तथा

(३) देशव्यापी आर्थिक संकट ।

(१) युद्ध, वाह्य आक्रमण अथवा आंतरिक उपद्रवों से उत्पन्न संकटकालीन स्थिति—संविधान में कहा गया है कि यदि किसी समय राष्ट्रपति को उपरोक्त किन्हीं भी कारणों से यह संशय होगा कि सारे भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह एक उद्घोषणा द्वारा यह कह सकेगा कि संघ सरकार द्वारा ही संकटकालीन अवस्था में सब राज्यों की सरकार चलाई जायगी और ऐसी घोषणा के पश्चात् संघ सरकार को अधिकार होगा कि वह राज्यों के लिये कानून बना सके, तथा राज्यों के सरकारी कर्मचारियों को आदेश दे सके कि वह संघ सरकार की आज्ञानुसार कार्य करें ।

इस प्रकार की उद्घोषणा उस समय भी की जा सकती है जब युद्ध या बाहरी आक्रमण या आंतरिक अशांति अभी उत्पन्न नहीं हुई हो और उसके उत्पन्न होने की केवल संभावना हो । संविधान की ३५२ धारा के अन्तर्गत यह घोषणा, केवल दो महीने के लिये ही लागू रह सकती है, जब तक इससे पहिले उस घोषणा का समर्थन संसद के दोनों भवनों द्वारा न कर दिया जाय । संसद् की स्वीकृति भी इस घोषणा के लिये एक समय में केवल ६ मास के लिये दी जा सकती है और किसी भी दशा में कुल मिला कर यह घोषणा ३ वर्ष से अधिक के लिये लागू नहीं की जा सकती।

जिस समय इस प्रकार की घोषणा लागू होगी तो राष्ट्रपति को यह भी अधिकार होगा कि वह कुछ समय अथवा पूरे संकटकालीन समय के लिये नागरिकों के मौलिक अधिकारों संबंधी उस धारा को स्थगित कर दें, जिसके द्वारा उन्हें देश की सर्वोच्च अदालत में अपने अधिकारों की रक्षा के लिये प्रार्थनापत्र पेश करने का अधिकार प्राप्त है ।

राष्ट्रपति को यह भी अधिकार दिया गया है कि ऐसे समय वह संविधान की उन २६८ से लगाकर २७९ धाराओं में भी संशोधन कर सकते हैं जिनके द्वारा राज्यों तथा संघ सरकार के बीच आर्थिक साधनों का विभाजन किया गया है ।

(२) **राज्यों में संवैधानिक संकट**—युद्ध अथवा आंतरिक उपद्रवों की अवस्था के अतिरिक्त राष्ट्रपति को संविधान की ३५६ धारा के अधीन यह अधिकार दिया गया है कि यदि किसी समय उन्हें राज्यपाल या राज-प्रमुख या और किसी स्रोत से यह ज्ञात हो कि किसी राज्य का शासन संविधान की धाराओं के अनुसार नहीं चलाया जा रहा है तो वह एक घोषणा के द्वारा उस राज्य की सरकार के सब या जितने वह चाहे अधिकार अपने हाथ में ले सकते हैं और राज्यपाल या राजप्रमुख के कार्यों का भी स्वयं संचालन कर सकते हैं। ऐसी दशा में वह संघ संसद् को भी अधिकृत कर सकते हैं कि वह उस राज्य के विधान मंडल की ओर से कानून पास करे। हाई कोर्ट को छोड़-कर, और किसी संस्था के अधिकार भी वह इसी धारा के अधीन, अपने हाथ में ले सकते हैं। इस घोषणा के पश्चात् संघ संसद् को यह अधिकार होगा कि वह राष्ट्रपति या किसी ऐसे अधिकारी को जिसे वह नियुक्त करे, उस राज्य की सरकार चलाने के लिये, जिसके संबंध में वैधानिक संकट की घोषणा की गई है, कानून बनाने अथवा उन पर कार्य करने की शक्ति प्रदान कर दे। राष्ट्रपति को इस स्थिति में यह भी अधिकार होगा कि वह राज्य के बजट से शासन का कार्य चलाने के लिये, स्वयं खर्चे की मंजूरी दे दे।

(३) **देशव्यापी आर्थिक संकट**—आगे चल कर संविधान की ३६० वीं धारा में राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है कि यदि किसी समय उन्हें ऐसा अनुभव हो कि देश में एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे भारत अथवा उसके किसी राज्य के क्षेत्र में भारी आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया है, तो वह एक घोषणा द्वारा संविधान में दिये गये बहुत से आर्थिक अधिकार अपने हाथ में ले सकते हैं। ऐसी दशा में उन्हें यह भी अधिकार होगा कि वह राज्यों तथा संघ के सरकारी नौकरों के वेतन में कमी कर सकें। सुप्रीम तथा हाई कोर्टों के जजों की तनख्वाह में भी इसी धारा के अधीन कमी की जा सकेगी। संघ सरकार को यह भी अधिकार होगा कि वह राज्यों की सरकारों को आदेश दे सके कि वह अपने आर्थिक विषयों का प्रबंध उसकी आज्ञानुसार करें तथा अपना वार्षिक बजट एवं दूसरे

आर्थिक बिल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये पेश करें।

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों की आलोचना

संविधान की ३५२ से लगाकर ३६० धाराओं में राष्ट्रपति को जो विशेष अधिकार दिये गये हैं और जिनका वर्णन हमने ऊपर किया है, उनको लेकर हमारे संविधान के अनेक आलोचकों ने विधाननिर्माताओं पर करारे छींटे कसे हैं। उन्होंने कहा है कि ऐसे जनतन्त्र शासन में जिसके अन्तर्गत राज्य की शक्ति जनता के चुने हुये प्रतिनिधियोंके हाथ में हो. राष्ट्रपति को जो संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं तथा जिसका चुनाव भी स्वयं जनता नहीं करती, इतने अधिकारों को दिया जाना कोई अच्छी बात नहीं। वह कहते हैं कि ऐसे अधिकार तो केवल निरंकुश राज्यों में ही दिये जाते हैं, जनतन्त्र राज्यों में नहीं। इन अधिकारों को पाकर राष्ट्रपति देश का डिक्टेटर बन कर काम कर सकता है।

परन्तु, समालोचकों की उपरोक्त सब बातों में अधिक तत्व नहीं। कारण, वह यह नहीं समझते कि राष्ट्रपति नये विधान के अन्तर्गत भारत का केवल विधान निष्ठ नाम-धारी एवं उत्सवमूर्ति अध्यक्ष है। शासन की वास्तविक शक्ति जनता द्वारा चुने गये उन मन्त्रियों के हाथ में निहित है जो संसद् के प्रति उत्तरदायी हैं। राष्ट्रपति अपने अधिकारों का उपयोग केवल उस दशा में कर सकते हैं जब प्रधान मन्त्री उन्हें ऐसा करने की सलाह दे। इसके अतिरिक्त संसद् के उन सदस्यों को जिनमें अधिकतर सदस्य राज्यों द्वारा चुने हुये प्रतिनिधि हैं—सदा यह अधिकार होगा कि वह राष्ट्रपति को इन अधिकारों का उपयोग करने से रोक सकें।

देश की संकटकालीन स्थिति में सारे राष्ट्र का हित इसी बात में है कि राज्य का शासन संघ सरकार द्वारा ही चलाया जाय, उसी के कन्धों पर अंतिम दशा में सारे देश अथवा उसके किसी भी भाग की सुरक्षा और सुव्यवस्था का भार है। इसलिये ऐसी स्थिति में जब तक संघ सरकार के हाथों में कार्य करने की पूरी शक्ति नहीं होगी, वह देश की रक्षा नहीं कर सकेगी। हमारी नवप्राप्त स्वतन्त्रता को दृढ़ बनाने तथा राष्ट्र-विरोधी शक्तियोंका

दमन करने के लिये भी केन्द्रीय सरकार के हाथ में इन सब शक्तियों का सामंजस्य अत्यन्त आवश्यक है ।

२. उप-राष्ट्रपति

नया संविधान भारत के लिये एक उप-राष्ट्रपति के चुनाव की भी व्यवस्था करता है । यह उप-राष्ट्रपति केवल उस समय चुने जावेंगे जब नव संविधान के अन्तर्गत लोक सभा तथा राज्य परिषद के चुनाव हो चुकेंगे। अमरीका की भाँति यह उप-राष्ट्रपति राज्य परिषद के अध्यक्ष होंगे । परन्तु, यदि किसी समय राष्ट्रपति बीमार होंगे, या किसी विशेष कारण से अपने काम की देखभाल न कर सकेंगे या त्यागपत्र दे देंगे या मृत्यु के कारण उनका स्थान रिक्त हो जायगा, तो उप-राष्ट्रपति उनके स्थान पर, उस समय तक कार्य करेंगे जब तक नये राष्ट्रपति का चुनाव न हो जाय । इस बात में अमरीका और भारत के उप-राष्ट्रपति की स्थिति में बड़ा भारी अंतर है । अमरीका के राष्ट्रपति के त्यागपत्र देने या मृत्यु हो जाने पर, उप-राष्ट्रपति उनका स्थान उनकी शेष अवधि के लिये ले लेता है । परन्तु, भारत में ऐसी अवस्था में वह केवल उतने समय तक के लिये राष्ट्रपति का पद ग्रहण करेंगे जब तक नये राष्ट्रपति का चुनाव नहीं हो जाता ।

उपराष्ट्रपति का चुनाव

उप-राष्ट्रपति का चुनाव पार्लियामेंट के दोनों भवनों के सदस्यों द्वारा किया जायगा । इस पद के चुनाव के लिये किसी उम्मीदवार में वही योग्यता होनी चाहिये जो राष्ट्रपति के पद के लिये आवश्यक है । उप-राष्ट्रपति को राज्य परिषद के द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाने तथा ऐसे प्रस्ताव पर लोक सभा की अनुमति मिल जाने पर अलग किया जा सकेगा । राष्ट्रपति के समान उप-राष्ट्रपति के पद की अवधि ५ वर्ष ही होगी । यदि किसी किसी समय उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के पद पर कार्य करेंगे तो उन्हें वही सब अधिकार प्राप्त होंगे तथा वही वेतन तथा सुविधाएँ मिलेंगी जो राष्ट्रपति को मिलती हैं ।

३. मंत्रिमंडल

भारतीय संघ की वास्तविक कार्यकारिणी एक मन्त्रिमंडल है। उसी के हाथ में शासन की सारी शक्ति निहित है। मन्त्रिमंडल संसद (parliament) के प्रति उत्तरदायी है। संसद में जनता के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार कार्यकारिणी का अंतिम उत्तरदायित्व जनता के प्रति है। एक प्रजातन्त्र शासन की यही सबसे बड़ी पहचान है। जनता जब चाहे मन्त्रिमंडल को बदल सकती है। आम चुनाव तथा उप चुनाव के समय जनता को मन्त्रिमंडल के प्रति अपना विश्वास अथवा अविश्वास प्रकट करने का पूरा अवसर मिलता है। शेष अवसरों पर भी प्रस्तावों, सभाओं, जुलूसों, प्रदर्शनियों, हड़तालों तथा समाचार पत्रों द्वारा जनता शासन संबंधी विषयों पर अपनी राय सरकार के कानों तक पहुँचा सकती है। एक उत्तरदायी सरकार को जनता की इस आवाज की कद्र करनी पड़ती है। वह उसके प्रति उदासीन नहीं रह सकती।

नये चुनाव होने तक संघीय मन्त्रिमंडल का स्वरूप—नये विधान के अन्तर्गत आम चुनाव सन् १९५१ के अन्त तक होंगे। उस समय तक के लिये संविधान की ३८१ धारा में कहा गया है कि संविधान लागू होने से पहिले के मन्त्री, राष्ट्रपति के मंत्रिमंडल के रूप में कार्य करते रहेंगे। २६ जनवरी सन् १९५० को एक प्रकार से हमारे मन्त्रिमंडल का पुनर्संगठन हुआ। उस दिन हमारे राष्ट्रपति के सम्मुख सभी मन्त्रियों ने अपने पद की दोबारा शपथ ग्रहण की और कहा कि वह भारतीय गणतन्त्र राज्य के प्रति वफादार रहेंगे।

प्रधान मन्त्री—हमारे वर्तमान मन्त्रिमंडल के नेता प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं। उन्हीं के द्वारा मन्त्रिमंडल का संगठन किया गया है। वही सब मन्त्रियों के बीच काम का बँटवारा करते हैं। मन्त्रिमंडल की बैठकों में वही सभापति का आसन ग्रहण करते हैं। उनका मुख्य कार्य सभी मन्त्रियों के विभागों के कार्य की देखभाल करना है। इस प्रकार वह शासन की इकाई तथा सरकार के विभिन्न विभागों में सामञ्जस्य स्थापित करते

हैं। वह मन्त्रिमंडल के मेरुमणि तथा संघ सरकार की धुरी के रूप में कार्य करते हैं। उनके ऊपर ही सरकार के कार्य की अंतिम जिम्मेदारी रहती है। वह जब चाहें मन्त्रिमंडल में परिवर्तन कर सकते हैं। वह नये मन्त्री नियुक्त कर सकते हैं तथा पुरानों से त्याग-पत्र मांग सकते हैं। वह राज्यमन्त्री (state (ministers) तथा उप मन्त्रियों (deputy ministers) की नियुक्ति भी कर सकते हैं। राज्य मन्त्री, उप मन्त्री तथा दूसरे मन्त्रियों में यह अन्तर होता है कि राज्य तथा उप मन्त्री 'कैबिनेट' के सदस्य नहीं होते। वह मन्त्रियों की आये दिन होने वाली संयुक्त बैठकों में, जिनमें सब मन्त्री मिल कर, प्रधान मन्त्री के सभापतित्व में, नीति संबंधी विषयों पर विचार करते हैं तथा सब मन्त्रियों के विभागों के कार्य की जांच पड़ताल करते हैं, भाग नहीं ले सकते। उन्हें ऐसी बैठकों में केवल उस समय निमन्त्रित किया जाता है जब उन्हें कार्य के संबंध में किसी बात पर विचार करना हो। कैबिनेट मन्त्रियों की अपेक्षा राज्य तथा उप मन्त्रियों को वेतन भी कम मिलता है। उन्हें रहने के लिये मुफ्त मकान नहीं दिया जाता। एक प्रकार से राज्य तथा उप मन्त्री सहायक मन्त्रियों के रूप में कार्य करते हैं। उनके विभाग की देखभाल किसी कैबिनेट मन्त्री के सिपुर्द कर दी जाती है।

दूसरे मन्त्री—हमारे वर्तमान संघ सरकार के मन्त्रिमंडल की व्यवस्था इस प्रकार की गई है।

पं० जवाहरलाल नेहरू	प्रधान मन्त्री तथा विदेश मन्त्री
~~सरदार वल्लभभाई पटेल~~	उप-प्रधान मन्त्री—गृह तथा रियासती विभाग मन्त्री
चिन्तामणि देशमुख	अर्थ मन्त्री
~~सरदार बलदेव सिंह~~	रक्षा मन्त्री
~~श्री श्रीप्रकाश~~	व्यापार मन्त्री
~~श्री हरेकृष्ण महताब~~	उद्योग तथा रसद मन्त्री
श्री ~~गोपालस्वामी आयंगर~~	रेलवे मन्त्री
~~कन्हैयालाल मुंशी~~	खाद्य मन्त्री

श्री जगजीवन राम	श्रम मन्त्री
श्री ~~डाक्टर अम्बेदकर~~	कानून मन्त्री
श्री रफी अहमद किदवई	डाक, तार तथा यातायात मन्त्री
श्री विष्णु हरि गाडगिल	निर्माण, खान और विद्युत मन्त्री
मौलाना अबुल कलाम आजाद	शिक्षा मन्त्री
राजकुमारी अमृत कौर	स्वास्थ्य मन्त्री
श्री ~~रंगनाथ दिवाकर~~	रेडियो तथा समाचार राज्य मन्त्री
श्री अजित प्रसाद	पुनर्वास राज्य मन्त्री
~~श्री सत्यनारायण सिन्हा~~	संसद विषय संबंधी राज्यमन्त्री
श्री बी॰ वी॰ केसकर	उप-विदेश मन्त्री
श्री ~~के॰~~ संतानम्	रेल राज्य मन्त्री
श्री खुरशेद लाल	उप यातायात मन्त्री

इस प्रकार हमारे वर्तमान मन्त्रिमंडिल के १४ कैबिनेट मन्त्री, ४ राज्य मन्त्री, तथा २ उप मन्त्री हैं। इन मन्त्रियों के बीच काम का विभाजन प्रधान मन्त्री द्वारा किया गया है।

आम चुनाव के पश्चात् नये मन्त्रिमंडल का निर्माण—नये चुनाव होने के पश्चात् मन्त्रिमंडल का पुनर्संगठन इस प्रकार होगा:—

प्रधान मन्त्री का चुनाव राष्ट्रपति द्वारा किया जायगा। यह केवल ऐसा व्यक्ति होगा जिसे संसद के निचले भवन अर्थात् लोक सभा का बहुमत प्राप्त हो। दूसरे मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा नहीं वरन् प्रधान मन्त्री द्वारा की जायगी। इस क्षेत्र में भारतीय विधान दूसरे विधानों की अपेक्षा अधिक प्रजातन्त्रवादी है। क्योंकि वह प्रधान मन्त्री के नेतृत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है और उसे इस बात का अधिकार देता है कि वह जिसे चाहे अपना मन्त्री चुने तथा जिस प्रकार चाहे उनके बीच काम का बँटवारा करे। मन्त्री केवल वही व्यक्ति हो सकेंगे जो संसद Parliament के किसी भवन के सदस्य हों। छै महीने से अधिक काल के लिये कोई बाहर का व्यक्ति मन्त्री नहीं बनाया जा सकेगा।

भारत के सभी मन्त्री वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से 'लोक सभा' के प्रति उत्तरदायी होंगे। राष्ट्रपति या उप राष्ट्रपति के समान उनके कार्य की कोई निश्चित अवधि नहीं होगी। वह केवल उस समय तक ही अपने पद पर कायम रह सकेंगे जब तक उन्हें 'लोक सभा' के अधिकतर सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। लोक सभा जब चाहे अविश्वास का प्रस्ताव पास करके या उनके द्वारा प्रस्तुत बिलों को अस्वीकार करके उन्हें उनके पद से अलग कर सकेगी। प्रधान मन्त्री भी जब चाहे, किसी मन्त्री का त्यागपत्र माँग सकेगा या उन्हें स्वयं उनके पद से हटा सकेगा। भिन्न-भिन्न मन्त्री अलग-अलग सरकारी विभाग की उसी प्रकार देखभाल करेंगे जैसे वह आजकल करते हैं।

अध्याय ६

संघ संसद् (Union Parliament)

वर्तमान संघ संसद्

नये विधान के अन्तर्गत आम चुनाव होने तक, संविधान की ३११ वीं धारा में कहा गया है कि २६ जनवरी, १९५० से पहले कार्य करने वाली संविधान सभा के सदस्य भारतीय संसद् (Indian Parliament) के रूप में कार्य करते रहेंगे। २६ जनवरी तक इन सदस्यों की संख्या ३०८ थी। इसके पश्चात् संविधान की सभा के उन सदस्यों ने जो प्रांतीय विधान सभा तथा संविधान सभा दोनों के सदस्य थे, त्यागपत्र दे दिया. कारण, नये संविधान के अन्तर्गत कोई व्यक्ति एक समय में केवल एक ही विधान मंडल का सदस्य हो सकता है, एक से अधिक का नहीं। इस प्रकार २६ जनवरी के पश्चात् जब २८ जनवरी को गणतन्त्र भारत की प्रथम संसद का अधिवेशन आरंभ हुआ तो उसमें लगभग १०० नये सदस्य उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त भारतीय संसद् में कुछ ऐसी नई रियासतों को भी प्रतिनिधित्व दे दिया गया है जो हाल ही में भारतीय यूनियन में सम्मिलित हुई हैं। उदाहरणार्थ हैदराबाद को १६ सीटें देने का निश्चय किया गया है। इन सीटों को भरने के विषय में अभी तक नियम नहीं बनाये गये हैं परन्तु आशा है शीघ्र ही हैदराबाद के प्रतिनिधि दूसरे राज्यों की भाँति, देश की धारा सभा के कार्य में भाग ले सकेंगे।

भारतीय संसद् के वर्तमान सदस्यों की संख्या ३२४ है। इन सदस्यों का चुनाव सीधा जनता द्वारा नहीं किया गया वरन् प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा किया गया था। ३२४ सदस्यों में प्रांतों, रियासतों, हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, ऐंग्लो-इण्डियन-सभी जातियों तथा हितों के प्रतिनिधि

सम्मिलित हैं। इनमें अधिकतर सदस्य कांग्रेस पार्टी के मेम्बर हैं। हमारी संसद् में अभी तक किसी शक्तिशाली विरोधी दल (Opposition Party) का निर्माण नहीं हुआ है। परन्तु आशा है कि नये संविधान के अन्तर्गत चुनाव होने के पश्चात् दूसरे प्रजातन्त्रवादी देशों की भाँति, हमारे देश में एक शक्ति-शाली विरोधी दल का निर्माण हो जायगा।

हमारी वर्तमान संघ संसद् का स्वरूप इस प्रकार है :—

हिंदुओं की संख्या	२४९
सिखों की संख्या	४
मुसलमानों की संख्या	३५
ऐंग्लो इण्डियन, पारसी, ईसाई इत्यादि	८
खाली स्थान	२८
सदस्यों की कुल जोड़	३२४

विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है :—

राज्य का नाम	सदस्य संख्या
आसाम	८
बिहार	३६
बंबई	२९
मध्य प्रदेश	२०
मद्रास	५०
उड़ीसा	१४
पंजाब	१६
उत्तर प्रदेश	५७
पश्चिमी बंगाल	२१
हैदराबाद	१६
जम्मू और काश्मीर	४

मध्य भारत	७
मैसूर	७
पटियाला और पूर्वी-पंजाब संघ	३
राजस्थान	१२
सौराष्ट्र	५
ट्रावनकोर-कोचीन	७
विंध्य प्रदेश	४
अजमेर	१
भोपाल	१
कूच बिहार	१
कुर्ग	१
देहली	१
हिमाचल प्रदेश	१
कच्छ	१
मनीपुर-त्रिपुरा	१
	३२४

नव संविधान के अन्तर्गत संघ संसद्

नये संविधान के अन्तर्गत साधारण निर्वाचन सन् १९५१ में होंगे। उस समय, संसार के सभी संघीय संविधानों की भाँति, संघ संसद के अन्तर्गत राष्ट्रपति और दो भवन होंगे—एक का नाम होगा लोक सभा (House of people) और दूसरे का नाम होगा राज्य परिषद (Council of State)। राष्ट्रपति संसद के अविभाज्य अंग हैं। दोनों भवनों से जो बिल पास होंगे उन सब पर राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है। उन्हीं के द्वारा सब कानून लागू किये जायेंगे तथा प्रवर्तित होंगे। लोक सभा के सदस्य भारत की ३३ करोड़

जनता के प्रतिनिधि होंगे। उनका चुनाव जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जायगा। 'राज्य परिषद' के सदस्य संव के अन्तर्गत राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। उनका चुनाव राज्यों के निम्न भवन अर्थात् विधान सभा (Legislative Assembly) द्वारा किया जायगा। इन दोनों की व्यवस्था के संबंध में अब हम संक्षिप्त वर्णन नीचे देते हैं:—

लोक सभा

संसार के सभी प्रजातन्त्रवादी विधानों की भाँति भारत में भी 'लोक सभा' की शक्ति दूसरे भवन अर्थात् 'राज्य परिषद' की अपेक्षा अधिक होगी। 'लोक सभा' में कुल सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक ५०० होगी। ५ लाख से ७॥ लाख जनता के पीछे एक प्रतिनिधि लोक सभा में चुना जायगा।

१२ अप्रैल १९५० को संविधान की उपरोक्त धारा के अन्तर्गत कानून मन्त्री डाक्टर अंबेदकर ने संसद में एक बिल पेश किया है, जिसके द्वारा नये चुनावों का एक संपूर्ण चित्र जनता के सम्मुख रख दिया गया है। इस बिल में लोक सभा के सदस्यों की संख्या ४८८ निश्चित की गई है। यह सदस्य विभिन्न राज्यों द्वारा इस प्रकार चुने जायेंगे :—

नाम राज्य	सदस्य संख्या
उत्तर प्रदेश	८६
मद्रास	७५
बिहार	५५
बंबई	४५
पश्चिमी बंगाल	३४
मध्य प्रदेश	२९
उड़ीसा	२०
पंजाब	१८
आसाम	१२
	३७४

हैदराबाद	२५
जम्मूकाश्मीर	६
मध्य भारत	११
मैसूर	११
पूर्वी -पंजाब रियासती संघ	५
राजस्थान	२०
सौराष्ट्र	६
ट्रावनकोर-कोचीन	१२
	९६
विंध्य प्रदेश	५
हिमाचल प्रदेश	२
देहली	३
अजमेर	१
भोपाल	१
बिलासपुर	१
कुर्ग	१
कच्छ	१
मनीपुर	१
त्रिपुरा	१
अंडेमान	१
	१८
कुल जोड़	४८८

प्रत्यक्ष चुनाव—बिल में कहा गया है कि जम्मू-काश्मीर तथा अंडेमान निकोबार को छोड़कर, जहाँ के प्रतिनिधि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जायेंगे, शेष राज्यों में उनका सीधा जनता द्वारा चुनाव किया जायगा।

बालिग मताधिकार—प्रत्येक ऐसे स्त्री और पुरुष को जिसकी आयु २१ साल से अधिक होगी तथा जो पागल, दिवालिया या जन्म से मूर्ख नहीं होगा या किसी घोर अपराध में सजा न पा चुका होगा या किसी चुनाव संबंधी अपराध के कारण दंडित न हुआ होगा, राय देने का अधिकार होगा। नये विधान के अन्तर्गत यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन है। इसके द्वारा भारत की १८ करोड़ जनता को राज्य के काम में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो जायगा। भारत के इतिहास में कभी पहिले इतनी बड़ी जन संख्या को ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। १९१९ के भारतीय विधान के अनुसार केवल ३% और १९३५ के ऐक्ट के अनुसार केवल १३% जनता को राय देने का अधिकार था। नये विधान में संपत्ति, आमदनी, सामाजिक हैसियत, उपाधियाँ या साक्षरता इत्यादि की योग्यता मतदाता के लिये अनिवार्य नहीं रक्खी गयी है। प्रत्येक ऐसे बालिग स्त्री या पुरुष को जिसमें भला-बुरा सोचने की साधारण बुद्धि है—राय देने का अधिकार प्रदान कर दिया गया है। इस प्रकार भारत में शासन की अंतिम शक्ति उन किसानों, मजदूरों तथा खेत में काम करने वाले हलवाहों के हाथ में आ जायगी जो भारतीय जनता का ९०% अंग हैं। चुनाव संबंधी बिल में जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, कहा गया है कि भारत का प्रत्येक नागरिक जिसकी आयु १ जनवरी सन् १९४९ को २१ वर्ष थी तथा जो १ मार्च सन् १९४८ के पश्चात् से कम से कम २८० दिन से किसी एक जगह रहता हो, उस क्षेत्र में जहाँ वह रहता है, मतदाता बन सकेगा।

पृथक् निर्वाचन प्रणाली का अन्त—नये संविधान के अन्तर्गत पृथक् निर्वाचन प्रणाली का भी अन्त कर दिया गया है। इसके पहिले भारतीय चुनावों में हिंदू हिंदुओं को, और मुसलमान, सिख, ईसाई, ऐंग्लो इण्डियन

अपनी अपनी जातियों के लोगों के लिये वोट देते थे। प्रत्येक जाति के प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये अलग अलग निर्वाचन क्षेत्र होते थे तथा उनकी अपनी अलग निर्वाचक सूचियाँ होती थीं। प्रत्येक जाति के व्यक्तियों के लिये धारा सभा में स्थान सुरक्षित थे। उम्मीदवार धर्म के नाम पर दूसरी जाति के लोगों के विरुद्ध अपने धर्मावलंबियों को भड़काकर उनसे राय माँगते थे। चुनावों में खूब साम्प्रदायिकता का ज़हर उगला जाता था। नये विधान के अन्तर्गत हरिजन तथा कुछ पिछड़ी हुई जातियों को छोड़कर और किसी के लिये सुरक्षित स्थान की व्यवस्था नहीं की गई है। चुनाव सब जातियों के लिये संयुक्त होंगे और उनमें हिंदू और मुसलमान, सिख और ईसाई, सब एक दूसरे को मिल कर राय देंगे। इस प्रकार भारत के नये संविधान में भारत की एकता के दो बड़े शत्रु-सुरक्षित स्थान तथा पृथक् निर्वाचन प्रणाली-दोनों का अन्त कर दिया गया है। हरिजनों तथा पिछड़ी हुई जातियों के लिये सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था इसलिये की गई है कि जिससे सहस्रों वर्षों से अधिकार वंचित, यह जातियाँ, समाज के दूसरे व्यक्तियों के समान अपना जीवन का स्तर ऊँचा कर सकें। परन्तु, यह व्यवस्था केवल दस वर्ष के लिये ही की गई है। इसके पश्चात् सब जातियों को समान रूप से ही अधिकार प्राप्त होंगे।

निर्वाचन क्षेत्र

नये संविधान के अन्तर्गत चुनाव करने के लिये सारा देश प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों (Territorial constituencies) में बाँटा जायगा। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जन संख्या लगभग ५ लाख से ७॥ लाख के बीच होगी, परन्तु इन क्षेत्रों के बनाते समय, इस बात का ध्यान रखना होगा कि एक निर्वाचन क्षेत्र की जन संख्या और प्रतिनिधियों में जो अनुपात हो, वही सारे भारत के निर्वाचन क्षेत्रों के लिये कायम रक्खा जायगा। प्रत्येक जनगणना के पश्चात् निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्संगठन किया जायगा जिससे बदली हुई जनसंख्या के हिसाब से, चुनाव करने के लिये क्षेत्रों का पुनर्विभाजन किया जा सके। यदि किसी जन गणना का फल उस समय निकलेगा

जब एक 'लोक सभा' कार्य कर रही होगी तो उसके भंग होने तक नये क्षेत्रों के हिसाब से चुनाव नहीं किया जायगा; अर्थात् जनगणना के तुरन्त पश्चात् लोक सभा को तोड़ना आवश्यक नहीं होगा।

निष्पक्ष निर्वाचन

हमारे नये संविधान का एक और अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य, चुनावों की निष्पक्षता तथा उनमें ईमानदारी कायम रखने के लिये, एक निर्वाचन कमीशन की नियुक्ति का आयोजन है। विधान की ३२४वीं धारा में कहा गया है कि निर्वाचिकों की सूची, निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण, देश में होने वाले सभी चुनावों का निरीक्षण, एवं देख-भाल तथा चुनाव संबंधी मुकदमों के फैसले के लिये राष्ट्रपति एक इलैक्शन कमीशन की नियुक्ति करेंगे, जिसका अध्यक्ष एक चीफ इलैक्शन कमिश्नर होगा तथा उसके नीचे इतने सहकारी इलैक्शन कमिश्नर या रीजनल इलैक्शन कमिश्नर नियुक्त किये जा सकेंगे, जितने राष्ट्रपति इस कार्य को पूरा करने के लिये उचित समझेंगे। चीफ इलैक्शन कमिश्नर अपने कार्य को पूर्ण निष्पक्षता के साथ कर सके, इसलिये संविधान में कहा गया है कि उसकी स्थिति वैसी ही होगी जैसी सुप्रीम कोर्ट के जजों की और उसको अपने पद से उसी प्रकार हटाया जा सकेगा जैसे सुप्रीम कोर्ट के जजों को। अपने कार्य को पूरा करने के लिये चीफ इलैक्शन कमिश्नर को अपने दफ्तर का स्टाफ स्वयं रखने का अधिकार होगा। सारे देश के चुनाव संबंधी सभी विषयों की देख-भाल इसी इलैक्शन कमिश्नर द्वारा की जायगी।

लोक सभा की अवधि—लोक सभा की अवधि ५ वर्ष होगी। इस अवधि के समाप्त होने पर 'लोक सभा' स्वयं टूट जायगी। संकटकालीन अवस्था में राष्ट्रपति को लोक सभा की अवधि बढ़ाने का अधिकार दिया गया है, परन्तु, किसी भी अवस्था में यह अवधि एक समय में एक वर्ष से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकेगी, और संकटकालीन स्थिति के समाप्त होने पर छै महीने के अन्दर-अन्दर दूसरी लोक सभा का चुनाव करना होगा।

अधिवेशन—लोक सभा के एक वर्ष में कम से कम दो अधिवेशन अवश्य

बुलाय जायेंगे। संविधान में कहा गया है कि एक अधिवेशन और दूसरे अधिवेशन में ६ महीने से अधिक का समय नहीं बीतना चाहिये।

सदस्यों की योग्यता—लोक सभा के केवल वही व्यक्ति सदस्य चुने जा सकेंगे जिनकी आयु कम से कम २५ वर्ष की होगी तथा जो भारत के नागरिक होंगे। संसद् को इस बात का अधिकार दिया गया है कि यदि वह चाहे तो लोक सभा के सदस्यों की योग्यता के विषय में कानून बना सकती है।

सदस्यता में बाधक बातें—लोक सभा या राज्य परिषद के वह व्यक्ति सदस्य न हो सकेंगे जिनमें निम्नलिखित में से कोई भी बात होगी :—

(१) यदि, वह भारत में किसी भी प्रांतीय अथवा केन्द्रीय सरकार के नीचे लाभकारी पद पर नौकर होंगे।

(२) यदि, उनके मस्तिष्क में किसी प्रकार की विकृति होगी।

(३) यदि, उन्होंने किसी दूसरे देश की नागरिकता ग्रहण कर ली होगी

(४) यदि, वह संसद द्वारा बनाये गये किसी भी कानून के अनुसार सदस्यता के लिये अयोग्य होंगे।

संसद की सदस्यता के विषय में यदि किसी प्रकार का विवाद होगा तो वह राष्ट्रपति के फैसले के लिये पेश किया जायगा। परन्तु, राष्ट्रपति उस पर अपना निर्णय देने से पहिले इलैक्शन कमिश्नर की राय लेंगे।

स्थान का रिक्तकरण—संविधान की १०१वीं धारा में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति एक समय में राज्य अथवा संघ के अन्तर्गत एक से अधिक धारा सभा का सदस्य नहीं हो सकेगा। यदि कोई व्यक्ति दो या दो से अधिक ऐसे स्थानों के लिये निर्वाचित हो जायगा तो उसे एक को छोड़कर और बाकी सभी स्थानों से त्यागपत्र देना होगा। इसके अतिरिक्त यदि किसी व्यक्ति में निम्नलिखित में से कोई बात हो जाय तो उसका स्थान भी रिक्त समझ लिया जायगा:—

(१) यदि, वह चुनाव के पश्चात् उस पद पर आसीन रहने के अयोग्य हो जाय, उदाहरणार्थ यदि वह सरकारी नौकरी कर ले।

(२) यदि, वह स्वयं अपने पद से त्यागपत्र दे दे।

(३) यदि, वह अपने भवन की बैठकों से ६० दिन से भी अधिक काल के लिये बिना अनुमति अनुपस्थित रहे।

सदस्यों के अधिकार——संसद के सभी सदस्यों को भाषण की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। कोई भाषण देने या किसी प्रकार का मत प्रकट करने पर किसी संसद के सदस्य को सजा नहीं दी जा सकेगी। परन्तु यह स्वतन्त्रता संविधान के उप-नियमों और संसद की चालू आज्ञाओं के आधीन होगी। भाषण स्वतन्त्रता के अतिरिक्त, संसद द्वारा इस संबंध में अपने नियम बनाने तक, सदस्यों के दूसरे अधिकार, इंगलैण्ड के हाउस आफ कामन्स के सदस्यों के समान होंगे।

लोक सभा के पदाधिकारी——लोक सभा की बैठकों का संचालन करने के लिये विधान में एक अध्यक्ष (Speaker) तथा उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) के चुनाव की व्यवस्था की गई है। यह दोनों पदाधिकारी लोक सभा के सदस्यों के बहुमत द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे। 'लोक सभा' जब चाहे उन्हें अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उनके पद से हटा सकेगी। अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को वही वेतन दिया जायगा जो संविधान पास होने से पहले केन्द्रीय धारा सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को मिलता था। परन्तु संसद को अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो इस वेतन को घटा-बढ़ा सकती है। लोक सभा के अध्यक्ष का मुख्य कार्य सभा की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करना, 'लोक सभा' के कार्य का संचालन करना, सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करना, बैठक की कार्यवाही के प्रकाशन का उचित प्रबंध करना तथा 'लोकसभा' संबंधी दूसरे कार्य करना होगा। इंगलैण्ड के हाउस आफ कामन्स के स्पीकर के समान 'लोक सभा' के लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि वह अध्यक्ष पद के लिये केवल ऐसा ही सदस्य निर्वाचित करे जो किसी दल विशेष से अपना संबंध तोड़ ले। परन्तु उससे यह आशा अवश्य की जायगी कि वह निष्पक्ष भाव से अपने कार्य का संचालन करे तथा उस समय तक जब

तक वह अध्यक्ष की कुर्सी पर विराजमान है, किसी पार्टी विशेष के सदस्यों का पक्ष न ले। अध्यक्ष को केवल उस दशा में राय देने का अधिकार दिया गया है जब किसी विषय पर पक्ष और विपक्ष में बराबर के मत हों। ऐसी दशा में अध्यक्ष अपना एक निर्णायक मत (Casting Vote) दे सकेगा।

गणपूर्ति— (Quorum) लोक सभा की कार्यवाही आरंभ करने के लिये सभा में कम से कम १/१० सदस्यों का उपस्थिति आवश्यक होगी।

राज्य परिषद

सदस्यता —पार्लियामेंट की उच्च सभा का नाम राज्य परिषद होगा। इसके सदस्यों की अधिक से अधिक संख्या २५० अर्थात् लोक सभा के सदस्यों की संख्या से आधी होगी। इनमें से १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाँयेंगे। यह सदस्य ऐसे होंगे जिन्होने साहित्य, कला, विज्ञान अथवा सामाजिक सेवा के क्षेत्र में विशेष रूप से काम किया हो। बाकी सदस्य संघ के अन्तर्गत राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। उनका चुनाव राज्यों के निम्नभवन अर्थात् विधान सभा (Legislative Assembly) द्वारा एकल संक्रमणीय मत तथा अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर किया जायगा। भिन्न-भिन्न राज्यों से जितने प्रतिनिधि चुने जायँगे उनकी संख्या नीचे दी जाती है :—

विधान लागू होने से पहले के प्रान्त

राज्य का नाम	सदस्यों की संख्या
आसाम	६
उड़ीसा	९
पंजाब	८
पश्चिमी बंगाल	१४
बिहार	२१
मध्य प्रदेश	१२
मद्रास	२७
मुम्बई	१७

उत्तर प्रदेश	३१
	१४५

विधान लागू होने से पहले की रियासतें

हैदराबाद	११
जम्मू और काश्मीर	४
मध्यभारत	६
मैसूर	६
पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य	३
राजस्थान	९
सौराष्ट्र	४
ट्रावनकोरकोचीन	६
विंध्य प्रदेश	४
कुल संख्या	५३

विधान लागू होने से पहिले चीफ कमिश्नर के प्रांत

अजमेर, कुर्ग	१
भोपाल	१
बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश	१
कूच बिहार	१
देहली	१
कच्छ	१
मनीपुर, त्रिपुरा	१
कुलसंख्या	७
कुल स्थानों का जोड़	२०५

संसद को अधिकार होगा कि वह भारतीय संघ के अन्तर्गत सम्मिलित होने वाले नये राज्यों के लिये विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था कर सके तथा कुछ राज्यों के दूसरे राज्यों में सम्मिलित होने के कारण सीटों के बँटवारे के सम्बन्ध में उचित परिवर्तन कर सके।

योग्यता–राज्य परिषद का सदस्य प्रत्येक वह व्यक्ति होगा जिसकी आयु ३० वर्ष से अधिक हो तथा जिसे प्रांतों की विधान सभा चुन ले।

अवधि–राज्य परिषद एक स्थायी संस्था होगी। परन्तु उसके एक तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष चुने जायेंगे। इस प्रकार आरम्भ के सदस्यों को छोड़ कर बाकी सदस्यों की अवधि छै वर्ष होगी। राज्यपरिषद के 'लोक सभा' की भाँति एक समय में सीधे चुनाव नहीं होंगे।

पदाधिकारी–राज्यपरिषद का सभापति (Chairman) जैसा पहले बतलाया जा चुका है, देश का उपराष्ट्रपति होगा जिसका चुनाव दोनों भवनों के सदस्यों द्वारा किया जायगा। उपराष्ट्रपति की अनुपस्थिति में कार्य करने के लिये राज्यपरिषद् एक उपसभापति (Deputy Chairman) भी होगा जिसका चुनाव राज्यपरिषद के सदस्यों द्वारा ही किया जायगा।

संसद (पार्लियामेंट) के अधिकार तथा कार्य

संघ के दोनों भवनों अर्थात लोकसभा और राज्यपरिषद (Council of State) का संयुक्त नाम संसद (पार्लियामेंट) होगा। भारत की संसद को वही अधिकार प्राप्त होंगे जो दूसरे स्वतंत्र देशों में वहाँ के विधान मंडल (Legislative) को प्राप्त होते हैं। इन अधिकारों में निम्न अधिकार मुख्य हैं :—

(१) देश की व्यवस्था तथा जनता की भलाई के लिये क़ानून पास करना।
(२) देश की कार्य कारिणी अर्थात् मंत्रिमंडल पर नियत्रंण रखना। यह

नियंत्रण, प्रश्नों, प्रस्तावों, बजट में कटौती. अविश्वास तथा काम-रोको प्रस्तावों के द्वारा रखा जाता है ।

(३) सरकार की आमदनी और खर्च की देख-भाल करना ।

(४) नये टैक्सों को लगाने की स्वीकृति देना अथवा पुराने टैक्सों को कम करना, या उन्हें हटा देना ।

(५) सरकार की नीति का संचालन तथा राष्ट्र की वैदेशिक नीति का निर्माण करना, दूसरे देशों से युद्ध तथा समझौता इत्यादि करना ।

कानून सम्बन्धी अधिकार—पार्लियामेंट के किसी भी भवन में कोई बिल किसी भी मंत्री अथवा स्वतंत्र सदस्य द्वारा पेश किया जा सकेगा। परन्तु वह बिल उस समय तक क़ानून का रूप धारण नहीं कर सकेगा जब तक उसे दोनों भवन बहुमत से स्वीकार न कर लें और उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर न हो जाँय ।

रुपये-पैसे सम्बन्धी बिल—रूपयें पैसे सम्बन्धी बिल केवल निम्नभवन अर्थात् लोक सभा में ही राष्ट्रपति की अनुमति से मंत्रियों द्वारा प्रस्तुत किये जा सकेंगे, उच्च सभा अर्थात् राज्य-परिषद में नहीं। यह प्रणाली संसार के सभी प्रजातंत्रवादी देशों में पाई जाती है। कारण निम्नभवन जनता की राय का अधिक प्रतिनिधित्व करता है, और उसके हाथ में रुपये-पैसे सम्बन्धी शक्ति देना अधिक लोकतंत्रीय समझा जाता है। विधान में कहा गया है कि रुपये-पैसे सम्बन्धी बिल निम्नभवन अर्थात् लोकसभा द्वारा स्वीकार किये जाने के पश्चात् राज्यपरिषद में विचारार्थ भेज दिये जायेंगे जिसे यह अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो १४ दिन के अन्दर अन्दर उस बिल में कोई संशोधन के सुझाव लोक सभा के सम्मुख पेश कर दे। परन्तु, इन सुझावों को स्वीकार या अस्वीकार करने का अंतिम अधिकार लोकसभा को ही होगा।

शेष बिल (Other Bills) दूसरे सभी प्रकार के बिल एक भवन द्वारा पास कर लिये जाने के पश्चात् दूसरे भवन के पास भेजे जायेंगे। इस दूसरे भवन को इस बात का अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो ६ महीने के अन्दर अन्दर उस बिल में संशोधन करदे। इस प्रकार दूसरे भवन द्वारा बिल पर विचार हो जाने के पश्चात् बिल अपने उद्‌गम स्थान पर वापिस आ जायगा, जहाँ दूसरे भवन द्वारा बिल पर किये गये संशोधन पर फिर से विचार किया जायगा। यदि वह संशोधन स्वीकार कर लिये जाँय तो बिल सीधा राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जायगा। परन्तु, संशोधन के विषय में दोनों भवन आपस में राज़ी न हो सकें तो राष्ट्रपति को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह दोनों भवनों की एक मिली-जुली सभा बुलाले। इस सभा में निम्न भवन का अध्यक्ष सभापति का आसन ग्रहण करेगा। दोनों भवनों की संयुक्त सभा में जिस रूप में भी बिल बहुमत से पास हो जाय वह दोनों भवनों द्वारा पास समझा जायगा और इसके पश्चात् वह राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जायगा। जिस समय कोई बिल राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत किया जायगा तो राष्ट्रपति निम्न में से कोई भी काम कर सकेंगे:—

(१) बिल पर हस्ताक्षर कर दें।
(२) उसे पार्लियामेंट के विचार के लिए लौटा दें।

दूसरी दशा में यदि पार्लियामेंट उसी बिल को दोबारा पास कर देगी तो राष्ट्रपति को उस पर अवश्य हस्ताक्षर करने पड़ेंगे और वह बिल क़ानून बन जायगा। परन्तु पहली दशा में. संविधान में इस बात का स्पष्टीकारण नहीं किया गया है कि यदि राष्ट्रपति बिल पर हस्ताक्षर करने से मना कर दें तो क्या होगा? संभवतः राष्ट्रपति ऐसा नहीं करेंगे और इस विषय में एक प्रकार की रीति (Convention) के अधीन काम करेंगे।

वार्षिक आय-व्यय (बजट) सम्बन्धी संसद के अधिकार—भारत के नये संविधान में संसद के सदस्यों के बजट पर बहस करने के अधिकार बढ़ा दिये गये हैं। पहिले की भाँति संविधान में राष्ट्रपति को आज्ञा दी गई है कि वह प्रति वर्ष संघ सरकार की आय व व्यय का ब्यौरा संसद के सदस्यों के सम्मुख पेश करायेंगे। इस ब्यौरे में वह व्यय अलग दिखाया जायगा जिस पर संसद के सदस्यों को राय देने का अधिकार नहीं होगा, तथा जो भारत व्यय के रूप में संघ सरकार की संचित निधि में से खर्च किया जायगा। इस व्यय में राष्ट्रपति का वेतन तथा उनके दूसरे भत्ते, लोक सभा व राज्य परिषद के पदाधिकारियों का वेतन, सुप्रीम कोर्ट और फ़िडरलकोर्ट के जजों की पेंशन, जजों का वेतन, आडिटर जनरल का वेतन, भारत सरकार के ऋण की अदायगी अथवा उसका ब्याज, संघ सरकार के ऊपर किसी कचहरी द्वारा की गई डिग्री की रक़म, अथवा कोई ऐसा व्यय जिसे संसद इस श्रेणी में सम्मिलित कर ले, शामिल होगा। दूसरे सभी खर्चे अलग दिखाये जाँयेंगे। राजस्व तथा पूँजी सम्बन्धी खर्चे का ब्यौरा भी अलग पेश किया जायगा।

बजट पर राय देने का अधिकार केवल लोक सभा के सदस्यों को होगा, राज्य परिषद के सदस्यों को नहीं। लोक सभा को अधिकार होगा कि वह खरचे की किसी भी रक़म में कमी करदे अथवा उसे बिलकुल अस्वीकार कर दे। परन्तु किसी मद पर खरचे को बढ़ाने अथवा-किसी नये खरचे का सुझाव रखने का लोक सभा के सदस्यों को अधिकार नहीं होगा। खरचे के सुझाव राष्ट्रपति की अनुमति से, केवल मंत्रियों द्वारा ही पेश किये जा सकते हैं।

बजट पास हो जाने के पश्चात् फाइनैंस बिल जिसमें कर सम्बन्धी सुझाव, प्रस्तुत किये जाते हैं, लोक सभा के सम्मुख रक्खा जायगा। इस पर भी राज्य परिषद के सदस्यों को राय देने का अधिकार नहीं होगा।

बजट पर बहस करने के लिये, पहिले की भाँति, कोई निश्चित समय

मुकर्रर नहीं किया गया है। संविधान पास होने से पहिले अर्थ मंत्री, २८ फरवरी को अपना बजट धारासभा के सम्मुख पेश करते थे। ३१ मार्च इस बजट को पास करने की अन्तिम तिथि थी। नव संविधान के अन्तर्गत संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह बजट पास होने तक, सरकार का दिन-प्रति दिन का खर्च चलाने के लिये एक निश्चित रक़म, संघ सरकार के लिये स्वीकार कर सकती है। इसके पश्चात् संसद के सदस्य अपनी सुविधा के अनुसार बजट पर खुली बहस कर सकते हैं। उनके लिये यह आवश्यक नहीं कि वह किसी निश्चित तिथि तक उसे पास कर दें। एक बार बजट पास कर चुकने के पश्चात् संसद को यह भी अधिकार होगा कि वह किसी असामयिक खर्चे को पूरा करने लिये सरकार को और रुपया खर्च करने की स्वीकृति दे दे। इस प्रकार उसे सप्लीमेंटरी बजट पास करने का अधिकार होगा। बजट पास हो चुकने के पश्चात् 'आडिटर जनरल' का यह कर्तव्य होगा कि वह देखे कि सरकार का खर्च बजट में स्वीकृत योजना के अनुसार ही होता है। संसद के सदस्यों को इस विषय में आडीटर जनरल की वार्षिक रिर्पोट पर बहस करने का अधिकार भी दिया गया है।

———

अध्याय ७

राज्यों का शासन प्रबन्ध

जैसा पहिले बताया जा चुका है नव संविधान के अन्तर्गत, शासन की दृष्टि से ,भारत चार भागों में विभक्त किया गया है । एक भाग में, वह राज्य हैं जिनके अध्यक्ष राज्यपाल अर्थात गवर्नर हैं, दूसरे भाग में वह राज्य हैं, जो बहुत सी देशी रियासतों को जोड़कर बनाये गये हैं तथा जिनके अध्यक्ष राजप्रमुख हैं ,तीसरे भाग में, वह राज्य हैं जो संघ सरकार के अन्तर्गत चीफ कमिश्नरों द्वारा शासित होते हैं, चौथे भाग में अंडमान नीकोबार द्वीप हैं जिसकी शासन व्यवस्था के लिये संविधान में अलग प्रबंध किया गया है ।

संविधान के भाग 'क' और 'ख' में दिये गये राज्यों अर्थात् उन राज्यों की शासन व्यवस्था, जिनके अध्यक्ष राज्यपाल अथवा राजप्रमुख हैं, मूल तत्वों में, संघ सरकार की शासन व्यवस्था से मिलती-जुलती है । इन राज्यों में उसी प्रकार की मन्त्रिमंडलात्मक सरकारें संगठित की गई हैं जैसी संघीय संविधान के अन्तर्गत । सब राज्यों के राज्यपाल केन्द्रीय सरकार के राष्ट्रपति के समान विधाननिष्ठ, नामधारी, तथा उत्सव मूर्ति अध्यक्ष हैं । शासन की वास्तविक सत्ता सब राज्यों में मन्त्रिमंडलों के हाथ में रक्खी गई है । सब मन्त्री वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से ,संघ सरकार की भाँति, अपनी अपनी विधान सभाओं के प्रति उत्तरदायी हैं । सब राज्यों के विधान मंडलों का कार्य करने का तरीका उसी प्रकार का है जैसा संघ संसद का । उन सब में बजट तथा बिल पास करने की समान विधि है। उन सब के सदस्यों को वही अधिकार प्राप्त हैं जो संघ संसद के सदस्यों को दिये गये हैं। संसद की योग्यता संबंधी धारायें भी दोनों में एक रूप हैं । इस अध्याय में इसलिये हम राज्यों के केवल उन्हीं अंगों का विस्तार से वर्णन करेंगे जिनमें वह संघीय संविधान से भिन्नता रखते हैं ; शेष अंगों का वर्णन केवल संक्षिप्त रूप से

किया जायगा ।

राज्य कार्यकारिणी (State Executive)

राज्यपाल (Governor)

संविधान की प्रथम अनुसूची के भाग 'क' में दिये गये राज्यों के अध्यक्ष का नाम राज्यपाल अथवा गवर्नर है। जैसा पहिले भी बतलाया जा चुका है राज्य के शासन में उसकी स्थिति प्रायः वैसी ही है जैसी संघ संविधान में राष्ट्रपति की। राज्य के सभी काम उसी के नाम पर किये जाते हैं। परन्तु, राष्ट्रपति के समान विपत्ति काल में शासन की असाधारण शक्तियों के साथ कार्य करने की उसे शक्ति नहीं दी गई है। वैसे भी राष्ट्रपति जहाँ केवल अपने प्रधान मन्त्री अथवा मन्त्रिमंडल की सलाह से कार्य करने के लिये बाध्य हैं, वहाँ राज्यपाल का एक प्रकार से दोहरा उत्तरदायित्व है। वह एक ओर तो राष्ट्रपति तथा संघ सरकार की आज्ञाओं को मानने के लिये बाध्य है, और दूसरी ओर उसे अपने मन्त्रियों की सलाह से काम करना पड़ता है। इस प्रकार राज्यपाल का कार्य कठिनता से खाली नहीं।

नियुक्ति—संविधान में कहा गया है कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा अपने स्वयं के हस्ताक्षरों तथा राज्य की मोहर लगा कर की जायगी। उसके कार्यकाल की अवधि ५ वर्ष होगी। पहिले संविधान सभा में यह प्रस्ताव रक्खा गया था कि राज्यपाल का जनता द्वारा सीधा चुनाव किया जाय अथवा उसे विधान सभा चुने। परन्तु, स्वीकृत संविधान में यह दोनों सुझाव, इसलिये नहीं माने गये कि राज्यपाल को संविधान के अन्तर्गत कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये हैं। जनता द्वारा चुनाव किये जाने पर मन्त्रियों तथा राज्यपाल में संघर्ष की संभावना हो सकती थी। कारण, उस दशा में राज्यपाल कह सकता था कि वह भी जनता का वैसा ही प्रतिनिधि है जैसे मन्त्री, और इसलिये जनता के हित की रक्षा के लिये उसे मन्त्रियों के काम में हस्तक्षेप करने का अधिकार है। विधान-मंडल द्वारा चुनाव में यह दोष समझा गया कि इससे राज्यपाल का चुनाव एक दलबन्दी के फेर में पड़ जाता और उसे राज्य के सभी नाग-

रिकों का विश्वास प्राप्त नहीं होता। राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल का चुनाव होने से यह स्थिति उत्पन्न नहीं होगी। वह केवल ऐसे ही व्यक्तियों को इस पद के लिये चुनेंगे जो जनता के विश्वासपात्र हों तथा जिन्होंने अपने नैतिक बल, योग्यता, अनुभव अथवा जनता की स्वार्थहीन सेवा से समाज में विशेष मान पाया हो। इस विधि से राज्य के शासन पर संघीय सरकार का प्रभुत्व भी बढ़ जायगा। अमरीका के संविधान में राज्यों के गवर्नरों का चुनाव जनता द्वारा किया जाता है। वहाँ यह प्रथा इसलिये क्षम्य है कि उस देश के संविधान के अन्तर्गत गवर्नर राज्यों के विधाननिष्ठ अध्यक्ष नहीं वरन् कार्यकारिणी के वास्तविक नेता हैं। हमारे संविधान में राज्यपालों के हाथ में इस प्रकार के अधिकार नहीं दिये गये हैं। इसलिये उनका जनता द्वारा चुना जाना अधिक उपयुक्त नहीं होता।

योग्यता—राज्यपाल के पद के लिये वह सभी व्यक्ति चुने जा सकेंगे, जो, (१) भारत के नागरिक हों, (२) जिनकी आयु ३५ वर्ष से अधिक हो, (३) जो संघ संसद अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के सदस्य नहीं हों। यदि ऐसे कोई व्यक्ति इस पद के लिये चुन लिये जायेंगे तो उनका पहिला स्थान तुरन्त रिक्त समझा जायगा।

त्यागपत्र—राज्यपाल को अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो राष्ट्रपति के नाम पत्र लिख कर अपनी अवधि पूर्ण होने से पहिले ही, अपने पद से त्यागपत्र दे दे, अन्यथा अवधि समाप्त होने पर भी वह अपने पद पर उस समय तक आसीन रहेगा जब तक उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति न कर दी जाये।

वेतन—प्रत्येक राज्य के राज्यपाल को ५,५०० रुपया मासिक वेतन मिलेगा। इसके साथ ही उसे वह दूसरी सुविधाएं, रहने के लिये मकान, तथा भत्ते इत्यादि दिये जायेंगे जो विधान लागू होने से पहिले गवर्नरों को दिये जाते थे।

राज्य पालों के अधिकार

राज्यपालों को कानून संबंधी, शासन संबंधी, तथा न्याय संबंधी जो

विशेष अधिकार दिये गये हैं उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है:—

कानून संबंधी अधिकार—(१) राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह विधान मंडल के अन्तर्गत दोनों भवनों या किसी एक भवन के अधिवेशन को बुलाये, स्थगित करे अथवा अवधि पूर्ण होने से पहिले ही विधान सभा को भंग कर दे। (२) उसे विधान मंडल के अन्तर्गत दोनों भवनों के संयुक्त अधिवेशन बुलाने, तथा उनमें भाषण देने का भी अधिकार है। (३) प्रत्येक नये अधिवेशन के समय उसे आज्ञा दी गई है कि वह विधान-मंडल के संयुक्त अधिवेशन में राज्य की नीति पर भाषण देगा जिसके पश्चात् विधान-मंडल के सदस्य उस पर बहस करेंगे। (४) वह किसी भवन के विचारार्थ अपनी ओर से लिखित संदेश भी भेज सकेगा, जिस पर उस भवन के सदस्यों को शीघ्र से शीघ्र विचार करना होगा। (५) विशेष अवस्था में जब राज्य के विधान-मंडल की बैठक न हो रही हो तो उसे अधिकार होगा कि किन्हीं ऐसे विषयों पर जो राज्य की अधिकार सीमा में हैं, वह किसी संकट का निवारण करने के लिये अल्प-कालीन कानून (Ordinance) पास कर सके। ऐसे कानून विधान मंडल का अधिवेशन आरंभ होने के तुरन्त पश्चात् उसके विचारार्थ पेश किये जायेंगे और ६ सप्ताह के बाद लागू न रहेंगे जब तक इससे पहिले ही वह विधान-मंडल की सभा द्वारा अस्वीकार घोषित न कर दिये जाँय। (६) विधान-मंडल द्वारा पास कोई भी बिल उस समय तक कानून का रूप धारण नहीं कर सकेगा जब तक राज्यपाल द्वारा उस पर हस्ताक्षर न कर दिये जाँय। जिस समय कोई बिल राज्य की विधान-सभा और यदि उस राज्य में दो भवन हैं तो दोनों भवनों द्वारा पास कर दिया जायगा तो वह राज्यपाल के हस्ताक्षर के लिए भेजा जायगा। राज्यपाल को यह अधिकार होगा कि वह उस बिल पर हस्ताक्षर कर दें, या उसे विधान-मंडल के दोबारा विचार के लिये वापस कर दें। दूसरी दशा में यदि विधान-सभा उसी बिल को, दोबारा पास कर देगी, तो राज्यपाल को उस पर हस्ताक्षर अवश्य करने पड़ेंगे।

शासन संबंधी अधिकार——राज्यपाल को इस बात का अधिकार होगा कि वह अपने मन्त्रियों को आदेश दे सके कि सरकार के सभी नीति संबंधी विषय तथा आवश्यक निर्णय, उसकी जानकारी के लिये, उसके पास भेजे जाँय। विधान में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य के मुख्य मन्त्री का यह कर्तव्य होगा कि वह राज्यपाल को सरकार के सभी कामों से परिचित रक्खे। राज्यपाल को यह भी अधिकार होगा कि यदि किसी विषय पर कोई मन्त्री अपनी स्वतन्त्र इच्छा से, पूरे मन्त्रि-मंडल की सलाह के बिना, कार्य कर डाले, तो वह उस विषय को मन्त्रि-मंडलके सम्मुख स्वयं रख दे। राज्य में बहुत से बड़े बड़े सरकारी कर्मचारी, जैसे पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य, ऐडवोकेट जनरल, इत्यादि की नियुक्ति भी, मन्त्रियों की सलाह पर, राज्यपाल द्वारा ही की जायगी। यह सच है कि राज्यपाल शासन संबंधी विषयों पर अपने मन्त्रियों की सलाह से ही कार्य करेगा, परन्तु उसका शासन पर प्रभाव बहुत कुछ उसके अपने व्यक्तित्व, योग्यता तथा अनुभव पर निर्भर होगा। नये विधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति केवल ऐसे ही व्यक्तियों को राज्यपाल के पद के लिये चुनेंगे जो अपनी जन-सेवा, दक्षता या बुद्धि के चमत्कार के कारण समाज में ऊँचा स्थान रखते हों। स्वाभाविकतः ऐसे व्यक्तियों का शासन पर समुचित प्रभाव होगा।

न्याय संबंधी अधिकार——नये विधान के अन्तर्गत राज्यपाल को सजा पाये हुये अपराधियों की सजा कम करने या उन्हें क्षमा-दान देने का अधिकार दिया गया है। परन्तु, ऐसा वह केवल उस दशा में कर सकेंगे जब अपराधी ने कोई ऐसा कानून तोड़ा हो जिसे बनाने का अधिकार राज्य की विधान सभा को हो। मृत्यु-दंड को स्थगित करना, अथवा ऐसे अपराधियों को क्षमा करना जिन्होंने संघ कानून को तोड़ा हो, राष्ट्रपति का ही काम होगा, राज्यपाल का नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नये संविधान के अन्तर्गत राज्यपालों को राज्य का वैधानिक अध्यक्ष तो अवश्य बनाया गया है, परन्तु, फिर भी अपनी

योग्यतानुसार, शासन पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगाने के लिये उन्हें अनेक अवसर मिलेंगे।

मन्त्रि-मण्डल

राज्य का नामधारी अध्यक्ष तो राज्यपाल होगा, परन्तु वास्तविक शक्ति मन्त्रिमंडल के हाथ में रहेगी। मन्त्रियों का चुनाव मुख्य मन्त्री द्वारा किया जायगा। मुख्य मन्त्री वह व्यक्ति होगा जो राज्य की विधान-सभा में बहुमत दल का नेता हो।

संख्या—मन्त्रियों की कोई निश्चित संख्या नहीं होगी। राज्य की आर्थिक अवस्था तथा सरकार के काम की उचित व्यवस्था की दृष्टि से मुख्य मन्त्री, उतने मन्त्रियों की नियुक्ति करेगा, जितने वह उचित समझेगा।

अवधि—मन्त्रियों के कार्यकाल की कोई विशेष अवधि नहीं होगी। वह विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे और यदि विधान-सभा उनके प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे तो उन्हें अपने पद से त्यागपत्र देना होगा। इस प्रकार मन्त्री केवल उस समय तक ही अपने आसन पर विद्यमान रहेंगे, जब तक उन्हें विधान-सभा का विश्वास प्राप्त रहेगा।

योग्यता—मन्त्री-पद की नियुक्ति के लिये विधान-सभा का सदस्य होना आवश्यक है। कोई भी बाहर का व्यक्ति ६ महीने से अधिक काल के लिये मन्त्री-पद के लिये नहीं चुना जा सकेगा। यदि इस बीच ऐसा व्यक्ति विधान-सभा में निर्वाचित न हो सकेगा तो ६ महीने के पश्चात् उसे अपने पद से त्यागपत्र दे देना होगा।

कार्य प्रणाली—मन्त्रियों में काम का बँटवारा मुख्य मन्त्री द्वारा किया जायगा। प्रत्येक मन्त्री एक या एक से अधिक सरकारी विभागों का अध्यक्ष होगा। उदाहरणार्थ, यदि किसी मन्त्री के पास पुलिस विभाग है तो दूसरे के पास अर्थ विभाग इत्यादि। मन्त्रियों के नीचे, उनके कार्य में सहायता देने के लिये पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी भी नियुक्त किये जा सकते हैं। इनकी नियुक्ति भी मुख्य मन्त्री द्वारा की जायगी।

मन्त्रियों के कर्तव्य

मन्त्रियों का मुख्य काम अपने विभाग के अधीन सभी अफसरों के काम की देखभाल करना होगा। शासन का दिन प्रति दिन का काम उन्हीं के द्वारा चलाया जायगा । उनके रहने के लिये बंगला, सवारी के लिये मोटर तथा इतना वेतन दिया जायगा जितना विधान-सभा द्वारा निश्चित कर दिया जाय। जिस समय तक नये चुनाव न हों, उन्हें वही वेतन मिलता रहेगा जितना संविधान के पास होने से पहिले उस प्रांत के मन्त्रियों को मिलता था। अपने महकमें की नीति का निश्चय करना, जन-सेवा के लिये नई नई योजनाएँ सोचना, अपने नीचे दफ्तर का इस प्रकार संगठन करना कि सरकारी काम अत्यंत दक्षता तथा योग्यता से चल सके, विधान-मंडल के सम्मुख अपने कार्यों को समझाना, सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देना, अपने महकमे से संबंधित बिलों को प्रस्तुत करना, बजट पर बहस का उत्तर देना तथा सदस्यों द्वारा की गई अपने विभाग की आलोचना का उत्तर देना, मन्त्रियों का मुख्य कार्य होगा। वैसे तो सभी मन्त्री अलग-अलग अपने-अपने महकमों के दिन प्रति दिन के काम की देख-भाल करेंगे और किसी एक मन्त्री को दूसरे मन्त्री के कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा, परन्तु, नीति संबंधी विषयों का निश्चय सभी मन्त्री मिल कर करेंगे। मन्त्रिमंडल की बैठकें बराबर होती रहेंगी और उनमें मुख्य मन्त्री सभापति का आसन ग्रहण करेंगे। सभी मन्त्री वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे। यदि किसी एक मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाय तो केवल वही मन्त्री त्यागपत्र नहीं देगा वरन् सारे मन्त्रिमंडल को ही अपना स्थान छोड़ देना होगा। मुख्य मन्त्री स्वयं भी यदि चाहे तो किसी एक मन्त्री को उसके पद से हटा सकेगा। इस प्रकार सभी मन्त्री मुख्य मन्त्री तथा विधान सभा——दोनों के प्रति उत्तरदायी होंगे और राज्य की वास्तविक शक्ति उन्हीं के हाथों में केन्द्रित रहेगी।

पिछड़ी हुई जातियों की सहायता के लिये मन्त्रियों की नियुक्ति—— संविधान में कहा गया है कि बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में मुख्य मन्त्री

द्वारा एक ऐसे मन्त्री की भी नियुक्ति की जायगी जिसका मुख्य कार्य कबीली जातियों (Tribal people) तथा अन्य पिछड़ी हुई जातियों के अधिकारों की रक्षा करना होगा। दूसरे प्रांतों में भी हरिजनों के हितों की रक्षा करने के लिये किसी एक मन्त्री को विशेष अधिकार दिये जा सकते हैं। नये संविधान में राज्यों की सरकारों को विशेष रूप से आदेश दिया गया है कि वह अपने अन्तर्गत पिछड़ी हुई जातियों को समाज के दूसरे व्यक्तियों के समान उन्नति के स्तर पर लाने के लिये विशेष प्रयत्न करें।

ऐडवोकेट जनरल—मन्त्रियों के अतिरिक्त राज्यों के विधान में एक ऐडवोकेट जनरल की नियुक्ति की भी व्यवस्था की गई है। यह नियुक्ति मुख्य मन्त्री की सलाह से गवर्नर द्वारा की जायगी। ऐडवोकेट जनरल का मुख्य काम राज्य की सरकार को कानून संबंधी विषयों पर सलाह देना तथा राज्य के विरुद्ध मुकदमों, इत्यादि में, सरकार की ओर से पैरवी करना होगा। उसके वेतन तथा कार्य-अवधि का निश्चय राज्यपाल द्वारा किया जायगा।

नये चुनाव होने तक राज्यों की सरकारों का शासन

संविधान की ३८४ वीं धारा में कहा गया है कि नये चुनाव होने तक राज्यों में वही मन्त्रिमंडल कार्य करते रहेंगे जो संविधान लागू होने से पहिले उन प्रांतों में काम करते थे। इस धारा में पार्लियामेंटरी सेक्रेटरियों की नियुक्ति का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इसीलिये जब २६ जनवरी सन् १९५० के पश्चात् नव विधान भारत में लागू हुआ तो राज्यों में मन्त्रियों ने तो अपने पद की शपथ ग्रहण कर ली, परन्तु पार्लियामेंटरी सेक्रेटरियों की नियुक्ति न की जा सकी। इसीलिये राज्यों की विधान सभाओं को उनकी नियुक्ति के लिये विशेष कानून बनाना पड़ा।

हमारे अपने राज्य उत्तर प्रदेश में आजकल निम्न मन्त्री काम करते हैं। वह जिस जिस विभाग के अधिकारी हैं उसका व्यौरा उनके नाम के सम्मुख दिया गया है :—

सर होमी मोदी—राज्यपाल (गवर्नर)

मंत्रिमंडल

पं० गोविंद वल्लभ पंत	प्रधान मन्त्री—न्याय, सूचना तथा शासन-प्रबंध मन्त्री
माननीय हाफिज मोहम्मद इब्राहीम	नहर, यातायात तथा पी० डब्ल्यू० डी० मन्त्री
" श्री संपूर्णानन्द	अर्थ, श्रम तथा शिक्षा-मन्त्री
" श्री हुकुम सिंह	राजस्व तथा जंगलात मन्त्री
" श्री निसार अहमद शेरवानी	कृषि मन्त्री
" श्री आत्माराम गोविंद खेर	स्व-शासन विभाग मन्त्री
" श्री चन्द्रभान गुप्त	स्वास्थ्य तथा रसद मन्त्री
" श्री लालबहादुर शास्त्री	पुलिस मन्त्री
" श्री केशवदेव मालवीय	विकास तथा उद्योग मन्त्री
" श्री गिरधारीलाल	जेल तथा उत्पादन कर मन्त्री
श्री प्यारेलाल बनरजी	ऐडवोकेट जनरल

२. भाग 'ख' के राज्यों की कार्यकारिणी का संगठन अर्थात् रियासती संघों की सरकार का स्वरूप

रियासती संघों की सरकार का संगठन उसी प्रकार का होगा जैसा वह 'क' भाग के राज्यों का है। अंतर केवल इतना है कि 'क' राज्यों के अध्यक्ष राज्यपाल कहलाते हैं और 'ख' भाग के अध्यक्ष राजप्रमुख। उनकी नियुक्ति संघ सरकार और रियासती संघों के बीच हुये समझौते के अनुसार की गई है। इन समझौतों का विस्तृत वर्णन 'भारतीय रियासतें' नामक एक अगले अध्याय में किया जायगा। यहाँ हम केवल इन संघों की सरकार के संगठन का वर्णन करेंगे।

'ख' राज्यों के अन्तर्गत मन्त्रिमंडलों का संगठन उसी प्रकार किया जाता है जैसे 'क' राज्यों में। इन राज्यों में राजप्रमुख मुख्य मन्त्री की नियुक्ति करते हैं। शेष मन्त्री मुख्य मन्त्री द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इनमें से जिन

राज्यों में विधान सभाएँ हैं वहाँ के मन्त्री विधान सभा के प्रति उत्तरदायी हैं, शेष राज्यों में वह केवल राजप्रमुख के प्रति उत्तरदायी हैं।

रियासती संघों के ऊपर संविधान की एक विशेष धारा ३७१ के द्वारा संघ सरकार का विशेष नियन्त्रण कायम कर दिया गया है। इस धारा में कहा गया है कि पहिले दस वर्ष के लिये 'ख' राज्य की प्रत्येक सरकार संघ सरकार के नियन्त्रण में रहेगी और उन्हें राष्ट्रपति की उन सभी आज्ञाओं का पालन करना पड़ेगा जो संघ सरकार की ओर से वह उनके नाम जारी करें। परन्तु आगे चल कर इस धारा में कहा गया है कि संघ संसद को इस बात का अधिकार होगा कि वह दस वर्ष की इस अवधि में कमी या बढ़ोतरी कर दे या किसी एक या अधिक राज्यों के लिये इस धारा का उपयोग न करे। इस प्रकार का प्रबंध संविधान में इस दृष्टि से किया गया है कि भारतीय रियासतों को अभी प्रजातन्त्रीय शासन का अधिक अनुभव नहीं है और उनमें से बहुत सी रियासतों में अभी तक किसी प्रकार की विधान सभाएँ भी नहीं हैं। जिन रियासतों को प्रजातन्त्रीय शासन का अधिक अनुभव है वहाँ संविधान की उपरोक्त धारा से उन पर संघ सरकार का नियन्त्रण कम किया जा सकता है।

कुछ रियासती संघों के विषय में विशेष आयोजन

संविधान में कुछ रियासती संघों की विशेष परिस्थितियों का विचार करके उनके संबंध में खास आयोजन किया गया है। उदाहरणार्थ—

काश्मीर रियासत—काश्मीर व जम्मू की रियासत के संबंध में संविधान की ३७० वीं धारा में कहा गया है कि संघ-सरकार का इस रियासत पर नियन्त्रण केवल उन विषयों पर रहेगा जो विषय उसके भारतीय संघ में प्रवेश के समय 'प्रवेश पत्र' (Instrument of accession) में वर्णित कर दिये गये थे, शेष विषयों पर नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत सरकार 'विदेशी संबंध', 'रक्षा', तथा 'यातायात के साधनों' को छोड़कर और किसी विषय पर काश्मीर व जम्मू की रियासत पर अपना अधिकार न

रख सकेगी। परन्तु साथ ही संविधान में यह प्रबंध भी कर दिया गया है कि यदि काश्मीर रियासत की अपनी संविधान सभा भारत सरकार को कुछ और विषयों पर नियन्त्रण प्रदान करना चाहे तो उसके लिये राष्ट्रपति उचित व्यवस्था कर सकेंगे ।

काश्मीर की समस्या अभी तक राष्ट्र-संघ के विचाराधीन है। उसके भारत में प्रवेश के संबंध में अभी तक कोई अंतिम निश्चय नहीं हुआ है। इसीलिये उस रियासत की विशेष परिस्थिति का विचार रखते हुये, संविधान में खास आयोजन किया गया है ।

ट्रावनकोर रियासत—काश्मीर के अतिरिक्त, ट्रावनकोर रियासत के संबंध में भी संविधान की २३८ वीं धारा में एक विशेष प्रबंध किया गया है। इस धारा में कहा गया है कि ट्रावनकोर और कोचीन संघ की सरकार को प्रति वर्ष 'देवास्वम निधि" के नाम से ५१ लाख रुपया दिया जायगा। इस रकम को देने का निश्चय उस समय किया गया था जब ट्रावनकोर और कोचीन रियासतों का एक संघ बना था। इस रकम से ट्रावनकोर की रियासत उस राज्य-मन्दिर का प्रबंध कर सकेगी जिसके देवता के नाम में कहा जाता है कि उसके राजा रियासत पर शासन करते हैं।

मध्य भारत संघ—इसी प्रकार मध्य भारत संघ के विषय में भी, संविधान में कहा गया है कि उस राज्य के मन्त्रि-मंडल में एक ऐसे मन्त्री की नियुक्ति की जायगी जिसका मुख्य काम कबायली प्रदेशों के लोगों की सुविधा का ध्यान रखना होगा। मध्य भारत की रियासतों में अनेक पिछड़े हुए इलाके हैं जहाँ की जनता अभी तक वर्तमान युग की सभ्यता के वातावरण से कोसों दूर है। इन्हीं लोगों की भलाई के लिये संविधान में विशेष आयोजन किया गया है ।

मैसूर रियासत—अंत में संविधान में कहा गया है कि मैसूर रियासत को छोड़ कर 'ख' सूची के और सभी राज्यों में एक-भवनात्मक विधान मंडल का निर्माण किया जायगा । मैसूर में इसके विपरीत दो 'भवन' होंगे ।

आजकल सभी रियासती संघों में, संविधान लागू होने से पहिले की विधान सभाएँ तथा मन्त्रिमंडल कार्य कर रहे हैं। नये चुनाव होने तक यही व्यवस्था लागू रहेगी। इन सब संघों की सरकार, जैसा पहिले बतलाया जा चुका है, आजकल संघ-सरकार के निरीक्षण तथा नियन्त्रण में कार्य करती हैं।

३. राज्य विधान मंडल (State Legislature)

नये संविधान के अंतर्गत चुनाव होने तक राज्यों में विधान मंडल का स्वरूप

संविधान की ३८५ वीं धारा में कहा गया है कि जिस समय तक नये संविधान के अन्तर्गत वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव नहीं हो जाते, राज्यों में पहिली विधान सभाएँ ही कार्य करती रहेंगी और उन्हें वह सभी अधिकार प्राप्त होंगे जो नये संविधान में राज्यों के विधान मंडलों (Legislature) को दिये गये हैं।

आजकल भारत के विभिन्न प्रांतों में विधान-मंडलों का स्वरूप इस प्रकार है :—

दो भवन—बंबई, मद्रास, उत्तर प्रदेश और बिहार में विधान मंडलों के अन्तर्गत दो भवन हैं, जिनमें निचले भवन का नाम विधान सभा तथा उच्च भवन का नाम विधान परिषद् है।

एक भवन—शेष प्रांतों अर्थात् पंजाब, मध्य प्रदेश, आसाम, बंगाल और उड़ीसा में केवल एक भवन है जिसे विधान सभा कहते हैं। बंगाल तथा आसाम में पहिले दो भवन थे। विभाजन के पश्चात् उनमें केवल एक भवन कर दिया गया है।

विधान परिषदों में सदस्य-संख्या—उच्च भवन के अन्तर्गत विभिन्न प्रांतों में सदस्य-संख्या इस प्रकार है :—

प्रांत का नाम	सदस्य संख्या
मद्रास	५६
बंबई	३०

उत्तर प्रदेश	६०
बिहार	३०

विधान सभाओं में सदस्य संख्या

प्रांत का नाम	सदस्य संख्या
मद्रास	२१५
बंबई	१७५
पश्चिमी बंगाल	८४
उत्तर प्रदेश	२२८
पंजाब	७६
बिहार	१५२
मध्य प्रदेश	११२
आसाम	७१
उड़ीसा	६०

उपरोक्त वर्णित कुछ प्रांतों में रियासतों के समाहार के कारण सदस्यों की संख्या में कुछ बढ़ोतरी कर दी गई है। ऐसा इसलिए किया गया है जिससे उन रियासतों के प्रतिनिधियों को प्रांतों की विधान सभा में मनोनीत किया जा सके जो उन प्रांतों के अन्तर्गत मिला दी गई हैं।

विधान सभाओं में, १९३५ के संविधान के अन्तर्गत, हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, ऐंग्लो इण्डियन इत्यादि सभी जातियों को पृथक निर्वाचन प्रणाली के आधीन प्रतिनिधित्व दिया गया था। इन प्रतिनिधियों का चुनाव सन् १९४५ के अंतिम मास में किया गया था। उस समय भारत की केवल १३ प्रतिशत जनता को मत देने का अधिकार था। इन चुनावों में उत्तर प्रदेश में भिन्न-भिन्न जातियों को इस प्रकार प्रतिनिधित्व मिला।

उत्तर प्रदेश की विधान सभा का संगठन

हिंदू	१२०
हरिजन	२०
मुसलमान	६४

एंग्लो इण्डियन	१
ईसाई इत्यादि	४
व्यापारी	३
जमींदार	६
विश्वविद्यालय	१
मजदूरों के प्रतिनिधि	३
स्त्रियाँ	६
कुल संख्या	२२८

उत्तर प्रदेश की विधान परिषद का संगठन—इसी प्रकार उत्तर प्रदेश की विधान परिषद में आजकल कुल सदस्यों की संख्या ६० है। इनमें विभिन्न जातियों का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है :—

हिंदू	३४
मुसलमान	१७
यूरूपियन	१
गवर्नर द्वारा मनोनीत	८
कुल संख्या	६०

नये संविधान के अंतर्गत राज्यों के विधान मंडलों का स्वरूप

संघ संविधान की भाँति नये विधान के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य में एक विधान-मंडल होगा जिसमें राज्यपाल या राजप्रमुख और कुछ राज्यों में दो भवन—विधान सभा और विधान परिषद—तथा कुछ में एक अर्थात् विधान सभा होगी ।

दो भवन—संविधान में कहा गया है कि बिहार, बंबई, मद्रास, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल के विधान-मंडल के अन्तर्गत दो भवन होंगे। इनमें से निम्न भवन का नाम विधान सभा तथा उच्च भवन का नाम विधान परिषद् होगा। शेष प्रांतों में केवल एक ही भवन होगा। जिसका नाम

विधान सभा होगा।

संविधान सभा के बहुत से सदस्य राज्यों के अन्तर्गत द्विभवन प्रणाली के विरुद्ध थे। वह कहते थे कि उच्च भवन से कोई विशेष लाभ न होगा। और व्यर्थ में राज्यों की सरकारों का खर्चा बढ़ जायगा परन्तु फिर भी कुछ प्रांतों के प्रतिनिधियों ने यह बात नहीं मानी, कारण, वह समझते थे कि वयस्क मताधिकार के अन्तर्गत, नये चुनावों में ऐसे व्यक्ति, विधान सभा में चुने जा सकते हैं, जिन्हें शासन का कोई अनुभव न हो और जो लंबी चौड़ी बातें बना कर तथा मतदाताओं को बहका कर, उनसे राय प्राप्त कर लें इसलिये उन्होंने अपने राज्य के लिये दो भवनों की माँग की, जिससे उच्च भवन में ऐसे लोगों को प्रतिनिधित्व दिया जा सके, जो अपनी शिक्षा, योग्यता, अनुभव के कारण, कानून बनाने के कार्य में अधिक योग्यता रखते हों, तथा जो निम्न भवन के कार्य की शासन की कुशलता की दृष्टि से देखभाल कर सकें।

फिर भी, उन लोगों की राय मानकर जो दूसरे भवन की प्रथा को अप्रजातन्त्रवादी समझते हैं संविधान में कहा गया है कि यदि कोई राज्य बाद में उच्च भवन की प्रथा पसंद नहीं करे तो उस राज्य की विधान सभा को यह अधिकार होगा कि वह दो तिहाई बहुमत से उच्च भवन तोड़ देने का प्रस्ताव पास कर दे। ऐसा प्रस्ताव पास होने पर संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे राज्य में उच्च भवन को तोड़ दे। ऐसे राज्यों में जहाँ अभी तक उच्च भवन का प्रबंध नहीं किया गया है, वहाँ पर भी संसद को अधिकार दिया गया है कि यदि ऐसा राज्य चाहे तो वह अपनी विधान सभा के दो तिहाई बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पास करा कर संसद के पास भेज सकता है। यह प्रस्ताव आने पर संसद उस प्रांत के लिये दूसरे भवन की व्यवस्था कर देगी।

विधान सभा

संघ शासन की भाँति राज्यों में भी निम्न अर्थात् विधान सभा की सत्ता राज्य के कार्य में सर्वोपरि होगी।

सदस्य संख्या—विधान सभा के सदस्यों की संख्या प्रत्येक राज्य में अलग अलग होगी। अधिक से अधिक ७५ हजार की जनसंख्या पर एक सदस्य विधान सभा में चुना जा सकेगा। परन्तु आसाम राज्य में जहाँ कबायली क्षेत्रों की जनसंख्या बहुत कम है, यह नियम लागू नहीं होगा।

कानूनी मन्त्री डाक्टर अंबेदकर ने १२ अप्रैल सन् १९५० को एक चुनाव संबंधी बिल संसद के सम्मुख रक्खा। इस बिल में विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं की सदस्य संख्या इस प्रकार निश्चित की गई है :—

नाम राज्य	सदस्य संख्या
आसाम	१०८
बिहार	३३०
बंबई	३१५
मध्य प्रदेश	२३२
मद्रास	३७५
उड़ीसा	१४०
पंजाब	१२६
उत्तर प्रदेश	४३०
पश्चिमी बंगाल	२३६
हैदराबाद	१७५
मध्यभारत	९९
मैसूर	९९
पूर्वी पंजाब रियासती संघ	६०
राजस्थान	१६०
सौराष्ट्र	६०
ट्रावनकोर कोचीन	१०८

उपरोक्त सदस्य संख्या में वह सदस्य सम्मिलित नहीं होंगे जो संविधान की ३३३वीं धारा के आधीन राज्यपालों द्वारा ऐंग्लो इण्डियन जाति के लोगों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिये मनोनीत कर दिये जायँ।

वयस्क मताधिकार—चुनाव में प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को राय देने का अधिकार होगा जिसकी आयु २१ वर्ष से अधिक होगी तथा जो जन्म से मूर्ख अथवा उन्मत्त, दिवालिया. एवं किसी भयंकर अपराध या चुनाव संबंधी मामले में सजा पाया हुआ अपराधी नहीं होगा। उपरोक्त वर्णित बिल में कहा गया है कि प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो पहिली जनवरी सन् १९४९ को २१ वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका है, राज्य की विधान सभा के लिये मतदाता हो सकेगा परन्तु उसे मत देने का अधिकार केवल एक ही चुनाव क्षेत्र में मिल सकेगा, एक से अधिक में नहीं।

नये विधान में पृथक निर्वाचन प्रणाली तथा हरिजन और पिछड़ी हुई जातियों को छोड़कर, शेष किसी भी जाति के लिये सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था नहीं की गई है। सभी मतदाताओं के नाम एक ही सूची में होंगे और वह सब मिल कर एक दूसरों को चुनाव में राय देंगे।

अवधि—विधान सभा की कार्य अवधि ५ वर्ष होगी। इसके पश्चात् वह स्वयं टूट जायेगी और नयी सभा के लिये चुनाव किये जायँगे। परन्तु, संकटकालीन अवस्था में संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक कानून पास करके एक समय में उसकी अवधि १ वर्ष के लिये बढ़ा सकती है। परन्तु, किसी भी दशा में यह अवधि संकटकालीन अवस्था की घोषणा समाप्त होने के छ-महीने के पश्चात् से अधिक नहीं होगी।

योग्यता—प्रत्येक वह व्यक्ति जिसकी आयु २५ वर्ष से अधिक हो अथवा जिसका नाम मतदाताओं की सूची में हो, विधान सभा की सदस्यता के लिये चुना जा सकेगा।

विधान परिषद

सदस्य संख्या—विधान परिषद के सदस्यों की कुल संख्या विधान सभा के सदस्यों की संख्या के चौथे भाग से अधिक अथवा ४० से कम नहीं होगी। इन सदस्यों में एक तिहाई सदस्य स्थानीय संस्थाओं के सदस्य, जैसे, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड इत्यादि द्वारा, एक तिहाई सदस्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा ,१/१२ सदस्य उन लोगों द्वारा जो उस राज्य के अन्तर्गत

किसी भी यूनिवर्सिटी के ३ वर्ष से अधिक के ग्रेजुएट हैं, १/१२ सदस्य ऐसे लोगों द्वारा जो कम से कम पिछले तीन वर्षों से सेकेण्डरी या उससे ऊँची शिक्षा संस्थाओं में अध्यापन का कार्य कर रहे हों, चुने जायँगे। शेष सदस्य राज्यपाल द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से मनोनीत किये जायँगे जो साहित्य, विज्ञान, कला, समाज सेवा तथा सहकारी विभाग (Co-operative Dept.) के क्षेत्र में भाग लेने के कारण, समाज में ऊंचा स्थान पा चुके हों। विधान परिषद के सदस्यों का चुनाव आयरलैंड के संविधान के आधार पर निश्चित किया गया है। इस परिषद में वह सभी व्यक्ति भाग ले सकेंगे जो राज्य के सबसे बुद्धिमान तथा योग्य व्यक्ति कहे जा सकते हैं।

चुनाव संबंधी बिल में उन राज्यों के लिये जिनमें द्विभवन प्रणाली का प्रयोग किया गया है, विधान परिषद के सदस्यों की संख्या इस प्रकार निश्चित की गई है:—

बिहार	६८
बंबई	५६
मद्रास	७५
पंजाब	४०
उत्तर प्रदेश	८६
पश्चिमी बंगाल	५१
मैसूर	४०

अवधि—विधान परिषद एक स्थायी संस्था होगी, परन्तु उसके एक तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष चुने जायँगे। विधान सभा की भाँति, परिषद के एक साथ चुनाव नहीं होंगे।

योग्यता—विधान परिषद की सदस्यता के लिये आवश्यक है कि उम्मीदवार भारत का नागरिक हो, उसकी आयु कम से कम ३५ वर्ष हो तथा उसमें वह सभी योग्यताएँ हों जो संसद विशेष कानून के द्वारा निश्चित कर सकती है।

दोनों भवनों के सम्बन्ध में समान बातें

सदस्यता—कोई भी व्यक्ति एक समय में एकसे अधिक राज्य अथवा संघीय भवन का सदस्य नहीं हो सकेगा। यदि वह ऐसी दो या दो से अधिक विधान सभाओं का अध्यक्ष चुन लिया जायगा तो उसे एक को छोड़कर सभी स्थानों से त्यागपत्र दे देना पड़ेगा।

स्थान त्याग—विधान सभा तथा परिषद के सदस्यों को इस बात का अधिकार होगा कि वह अपने पद से त्यागपत्र दे दें। यदि कोई सदस्य ६० दिन से अधिक तक 'सभा' अथवा 'परिषद' के अधिवेशनों में भाग न लेंगे तो उन्हें भी अपने पद से अलग कर दिया जायगा। इसके अतिरिक्त यदि किसी सदस्य में वह योग्यता नहीं रहेगी जो 'सभा' अथवा 'परिषद' की सदस्यता के लिये आवश्यक है, तो उसे भी अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ेगा। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति निर्वाचित होने के पश्चात् दिवालिया या पागल हो जाये या कोई सरकारी नौकरी कर ले या किसी दूसरे देश की नागरिकता ग्रहण कर ले तो उसकी सदस्यता का अन्त हो जायगा। यदि कोई ऐसा व्यक्ति विधान सभा या परिषद की बैठकों में भाग लेगा जो उसका सदस्य नहीं है या सदस्यता से अलग कर दिया गया है, तो उस पर ऐसा करने के लिये ५०० रुपया प्रति दिन के हिसाब से जुरमाना किया जा सकेगा।

अधिकार—विधान सभा तथा परिषद के सदस्यों के अधिकार वही होंगे जो संसद के सदस्यों के हैं।

गणपूर्ति—(Quorum) विधान मंडल के अन्तर्गत दोनों भवनों के कार्य आरंभ होने के लिये कम से कम १/१० सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक रक्खी गई है।

भाषा—विधान सभा तथा परिषद का कार्य हिंदी, अंग्रेजी या उस राज्य की अपनी भाषा में किया जायगा। परन्तु, सभा के अध्यक्ष को इस बात का अधिकार होगा कि यदि वह समझे कि किसी सदस्य को इन तीनों में से कोई भी भाषा नहीं आती तो वह उसको अपनी मातृ-भाषा में विचार प्रकट करने की अनुमति दे दे। १५ वर्ष के पश्चात् केवल हिन्दी ही अंग्रेजी के

स्थान पर प्रयोग में लाई जायगी। परन्तु इसके पश्चात् भी राज्य इस बात के लिये स्वतन्त्र होंगे कि वह अपने आंतरिक शासन का कार्य अपनी ही राज्य भाषा में चला सकें। यद्यपि संघ शासन के साथ संपर्क बनाये रखने के लिये, उन्हें हिंदी का ही प्रयोग करना पड़ेगा।

पदाधिकारी—संविधान में विधान सभा के लिये एक अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष और विधान परिषद के लिये एक सभापति तथा उप-सभापति की व्यवस्था की गई है। इन अधिकारियों का काम 'सभा' अथवा 'परिषद' की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करना, उनमें अनुशासन तथा नियन्त्रण कायम रखना, उनका कार्यक्रम बनाना, सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करना तथा सभा की बैठकों में कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाना होगा। उप-सभापति तथा उपाध्यक्ष केवल उस दशा में काम कर सकेंगे जब अध्यक्ष अथवा सभापति किसी कारण से कार्य न कर सकें। 'सभा' तथा 'परिषद' की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करने वाला व्यक्ति केवल ऐसी ही दशा में अपने स्वतन्त्रमत का उपयोग कर सकेगा जब किसी विषय पर पक्ष तथा विपक्ष में बराबर मत हो। इसका अर्थ यह हुआ कि साधारणतया वह अपने मत का प्रयोग नहीं करेगा। उसे केवल एक निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार होगा।

वेतन—'सभा' तथा 'परिषद' के अध्यक्ष व सभापति अथवा उपाध्यक्ष व उपसभापति को उतना वेतन मिलेगा जितना संविधान लागू होने से पहिले प्रांतों की असेम्बलियों में स्पीकर तथा डिप्टी स्पीकर इत्यादि को मिलता था।

अधिवेशन—संविधान में कहा गया है कि विधान सभा तथा परिषद की एक वर्ष में कम से कम दो बैठकें अवश्य बुलायी जायँगी। साथ ही एक अधिवेशन तथा दूसरे अधिवेशन में ६ महीने से अधिक का अन्तर नहीं हो सकेगा।

अधिकार—राज्य के विधान मंडलों के अधिकार उसी प्रकार के होंगे जैसे संघ शासन के अन्तर्गत संसद के, अर्थात् उन विषयों पर कानून बनाना

जो राज्य की अधिकार सीमा के अन्तर्गत हैं, राज्य की कार्यकारिणी पर नियन्त्रण रखना, बजट पास करना, नये टैक्स लगाना अथवा पुरानों को कम करना तथा सरकार की नीति का संचालन करना।

अधिकार सीमा—राज्य विधान मंडल उन सभी विषयों पर कानून बना सकेगा जो विधान के सातवें परिशिष्ट के अन्तर्गत राज्य सूची में दिये गये हैं। समवर्ती सूची (Concurrent) में दिये गये विषयों पर भी राज्य की सरकारें कानून बना सकेंगी, परन्तु यदि संसद द्वारा बनाये गये कानून और राज्य के कानूनों में कोई विरोध होगा तो संसद द्वारा बनाये गये कानून ही प्रमाणिक माने जायेंगे।

द्विभवन प्रणाली के अंतर्गत राज्यों में कानून बनाने की विधि

जिन राज्यों में दो भवन हैं उनमें कानून पास करने की विधि निम्न प्रकार से होगी :–

रुपये पैसे संबंधी बिल—रुपये पैसे संबंधी बिलों पर सब प्रजातन्त्र शासनों की भाँति, निम्न भवन की सम्मति ही सर्वमान्य होगी। कोई ऐसा बिल 'विधान परिषद' में पेश न हो सकेगा, परन्तु ऐसे बिल पर उसे अपनी सम्मति प्रकट करने का पूरा अधिकार होगा। विधान सभा द्वारा पास हो चुकने के पश्चात् ऐसा बिल 'परिषद' के सम्मुख उपस्थित किया जायगा। 'परिषद' को अधिकार होगा कि वह १४ दिन के अन्दर-अन्दर उस बिल के विषय में अपनी सम्मति लिखकर 'विधान सभा' को भेज दे। इस राय को मानने न मानने का अधिकार विधान सभा को पूर्णतया प्राप्त है। यदि वह विधान परिषद की बात न माने या 'परिषद' के सदस्य १४ दिन के अन्दर अपनी राय न भेजें तो ऐसा बिल सीधा राज्यपाल की स्वीकृति के लिये भेज दिया जायगा जिन्हें उस पर हस्ताक्षर अवश्य करने पड़ेंगे। यदि किसी बिल के संबंध में झगड़ा हो कि वह रुपये-पैसे संबंधी बिल (Money Bill) है अथवा नहीं, तो विधान सभा के अध्यक्ष की राय इस संबंध में अंतिम होगी।

दूसरे बिल—दूसरे बिलों के पास किये जाने के संबंध में संसद और

राज्य के विधान मंडलों की शक्ति में अंतर है। संसद में यदि कोई बिल दूसरे भवन द्वारा स्वीकार न किया जाय तो राष्ट्रपति को आज्ञा है कि वह दोनों भवनों की एक संयुक्त वैठक वुलायेंगे, और जब तक इस बैठक में वह बिल बहुमत से पास न हो जाय, वह रद्द समझा जायगा। परन्तु राज्य के विधान मंडलों के निम्न भवन को इस विषय में अधिक शक्ति प्रदान की गई है। संविधान की १४७ वीं धारा में कहा गया है कि यदि कोई बिल विधान सभा पास कर दे और विधान परिषद उसे उस रूप में स्वीकार न करे, या उसे अस्वीकार कर दे, या तीन महीने से अधिक तक उस पर विचार न करे, तो विधान सभा को अधिकार है कि वह उस बिल को दोबारा अपने अगले अधिवेशन में पास करने के पश्चात् एक बार फिर 'परिषद' के पास भेज दे, और इसके पश्चात् यदि परिषद फिर से उसे अस्वीकार कर दे या उस पर एक महीने से अधिक तक विचार न करे, तो वह दोनों भवनों द्वारा पास समझा जायगा और राज्यपाल के हस्ताक्षर के लिये सीधा भेज दिया जायगा।

बिलों के संबंध में राज्यपालों के अधिकार—जिस समय कोई बिल राज्यपाल के हस्ताक्षरों के लिये भेजा जायगा तो जैसा पहिले बताया जा चुका है, राज्यपाल को अधिकार होगा कि वह उस पर हस्ताक्षर कर दे, या उसे अस्वीकार कर दे, या उस बिल को राष्ट्रपति की सलाह के लिये भेज दे। दूसरी दशा में यदि वह बिल विधान मंडल द्वारा दोबारा पास कर दिया जायगा तो राज्यपाल को उस पर हस्ताक्षर अवश्य करने पड़ेंगे।

संविधान की २०० वीं धारा में कहा गया है कि राज्यपाल ऐसे बिल की स्वयं स्वीकृति नहीं देंगे जिस बिल का हाई कोर्टों के अधिकार पर कोई प्रभाव पड़े। ऐसे बिल को वह राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजेंगे। शेष बिलों को राष्ट्रपति की सम्मति के लिये भेजना, न भेजना उनके अपने अधिकार की बात होगी।

जिस समय कोई बिल राष्ट्रपति की सम्मति के लिये भेज दिया जायगा तो उन्हें अधिकार होगा कि वह उस बिल को स्वीकार कर लें या उसे अस्वीकार

कर दें या उसे दोबारा विचार के लिये राज्य की सरकार को लौटा दें। अंतिम दशा में विधान मंडल को उस बिल पर ६ महीने के अन्दर-अन्दर पुनः विचार करना होगा और यदि फिर वह बिल उसी प्रकार पास कर लिया जाय तो उसे राष्ट्रपति के पास दोबारा भेज दिया जायगा।

संविधान में यह बात स्पष्ट नहीं की गई है कि ऐसी दशा में जब दोबारा भी विधान मंडल किसी बिल को राष्ट्रपति के पास भेजे तो उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा या नहीं। संभवतः इस दशा में और राज्यों की रीति रिवाजों (Conventions) से काम लिया जायगा।

४. भाग 'ग' (चीफ कमिश्नर) के राज्यों का शासन प्रबन्ध

संविधान की २३९ से २४२ तक की धाराओं में चीफ कमिश्नर द्वारा शासित राज्यों के शासन प्रबंध का विवरण दिया गया है। इन धाराओं में कहा गया है कि—

केन्द्रीय सत्ता के आधीन राज्यों का प्रबंध, चीफ कमिश्नरों, लेफ्टीनेंट गवर्नरों (उप राज्यपाल) या किसी पड़ोसी सरकार के द्वारा किया जा सकता है। अंतिम दशा में, अर्थात् पड़ोसी सरकार को ऐसे क्षेत्रों का शासन प्रबंध सौंपने से पहिले, राष्ट्रपति इस बात का प्रयत्न करेंगे कि वह उस क्षेत्र की जनता तथा पड़ोसी राज्य की सरकार की उस संबंध में राय मालूम कर लें।

इन राज्यों में राष्ट्रपति को यह भी अधिकार होगा कि वह उनके शासन के लिये मनोनीत किये हुए, अथवा चुने हुए, या कुछ मनोनीत और कुछ चुने हुए सदस्यों की एक विधान सभा बना दें, या उनके लिये कुछ मन्त्रियों अथवा सलाहकारों का एक मंडल बना दें, अथवा इस प्रकार की दोनो ही संस्था कायम कर दें। इस प्रकार का आयोजन संविधान का संशोधन नहीं समझा जायगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चीफ कमिश्नरों के प्रांत में प्रजातंत्रात्मक संस्थाओं का संगठन पूर्ण रूपेण संघ सरकार की इच्छा पर निर्भर रहेगा। दिल्ली के प्रांत में, वहाँ की जनता द्वारा आजकल इसलिये एक शक्तिशाली आंदोलन किया जा रहा है कि उनके लिये किसी विधान सभा का

निर्माण किया जाय। यदि ऐसा न किया गया तो इसका अर्थ होगा कि इस प्रांत की २० लाख जनता को अपने शासन प्रबंध में स्थानीय मामलों को छोड़कर और किसी प्रकार का अधिकार न मिल सकेगा।

एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि नये संविधान में केन्द्र द्वारा शासित केन्द्रों की जनता के साथ पूरा न्याय नहीं किया गया है। उनके भाग्य का निर्णय संघ संसद पर छोड़ दिया गया है। यदि संघ संसद ने शीघ्र ही इन क्षेत्रों की जनता के लिये कोई उचित व्यवस्था नहीं की तो इसका अर्थ होगा कि केन्द्र द्वारा शासित भारत की लगभग ३॥ करोड़ जनता को प्रजातन्त्र शासन का लाभ प्राप्त न हो सकेगा।

५. भाग घ (अंडमन निकोबार) के राज्य का शासन प्रबंध

इस राज्य के शासन प्रबंध के लिये संविधान की २४३ वीं धारा में व्यवस्था की गई है। इस धारा में कहा गया है कि अंडमान निकोबार या किसी और ऐसे प्रांत का शासन जो बाद में भारत में सम्मिलित हो जाय, राष्ट्रपति द्वारा किया जायगा। इस काम में सहायता प्राप्त करने के लिये वह एक चीफ कमिश्नर या किसी और ऐसे अधिकारी की नियुक्ति कर सकते हैं जिसे वह उचित समझें। इस क्षेत्र के कानून बनाने का पूरा अधिकार राष्ट्रपति को होगा। संघीय कानून, या वह कानून जिनके द्वारा उस क्षेत्र का संविधान लागू होने से पहले शासन चलाया जाता था, केवल उस दशा में लागू समझे जायेंगे जब राष्ट्रपति उनकी स्वीकृति दे दें।

६. अनुसूचित क्षेत्रों

(Scheduled Areas) तथा अनसूचित जन - जातियों (Scheduled tribes) का शासन प्रबन्ध

हमारे देश में अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ सभ्यता का आधुनिक वातावरण अभी तक अपना प्रभाव नहीं फैला पाया है। इन क्षेत्रों की जनता अभी तक प्राचीन काल की आखेट अथवा पशुपालन अवस्था में रह कर ही अपने जीवन का निर्वाह करती है। १९३५ के विधान के अन्तर्गत हमारे देश के अनेक

भाग अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर दिये गये थे और उनका शासन प्रबंध सीधे गवर्नरों द्वारा किया जाता था। मंत्रियों को इन क्षेत्रों के शासन पर किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं था। नये संविधान के अन्तर्गत ऐसे क्षेत्रों की संख्या बहुत कम कर दी गई है और केवल वही क्षेत्र इस व्यवस्था के अन्तर्गत सम्मिलित किये गये हैं जहाँ की जनता अपने लिये कुछ विशेष संरक्षण चाहती थी। ऐसे क्षेत्र अधिकतर आसाम प्रांत में हैं।

संविधान की पाँचवीं अनुसूची (Fifth schedule) में इन क्षेत्रों की व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें कहा गया है कि इन क्षेत्रों का शासन प्रबंध राष्ट्रपति, राज्यपाल अथवा राजप्रमुखों के द्वारा करायेंगे, जिन्हें अपने कार्य की वार्षिक रिपोर्ट संघ सरकार को देनी होगी। इन क्षेत्रों में कोई भी संघीय अथवा राज्य की सरकार का कानून उस समय तक लागू न किया जायगा जब तक राष्ट्रपति के आदेशानुसार राजप्रमुख अथवा राज्यपाल उसकी स्वीकृति न दे दें। इन क्षेत्रों की स्थानीय जनता को शासन प्रबंध का अनुभव प्रदान करने के लिये, संविधान में कहा गया है कि इन क्षेत्रों में आदिम जाति मन्त्रणा परिषद (Tribes advisory Council) कायम की जायगी जिनमें अधिकतर सदस्य इन जातियों के अपने चुने हुए प्रतिनिधि होंगे। ऐसे क्षेत्रों का शासन प्रबंध इन्हीं मन्त्रणा परिषदों की सलाह से किया जायगा।

—o—

अध्याय ८

राज्यों तथा संघ सरकारों के बीच अधिकारों तथा राजस्व के साधनों का वितरण

अधिकार वितरण का आधार

संघीय विधानों का एक मुख्य लक्षण, जैसा पहले बताया जा चुका है, संघ सरकार तथा उसके अन्तर्गत राज्यों के बीच अधिकारों का विभाजन है। यह अधिकार विभाजन इस आधार पर किया जाता है कि जो विषय राष्ट्रीय महत्त्व के होते हैं तथा जिन पर सारे देश के लिये समान नीति की आवश्यकता होती है, एवं जिनमें सभी राज्य समान रूप से रुचि रखते है, उन्हें संघ सरकार के नियन्त्रण में दे दिया जाता है, शेष विषय जो स्थानीय महत्व के होते हैं तथा जिनपर विभिन्न क्षेत्रों क़ी आवश्यकता के अनुसार कार्य करने की आवश्यकता होती है वह राज्यों के आधीन कर दिये जाते हैं। इस प्रकार संघीय शासनों में संघ सरकार तथा उसमें सम्मिलित होने वाले सभी राष्ट्रों के बीच क़ानून, शासन, न्याय और अर्थ संबंधी अधिकारों का पूर्ण रूप से विभाजन किया जाता है।

अधिकार विभाजन के सम्बन्ध में साधारणतया दो प्रणाली प्रचलित हैं। एक प्रणाली के अनुसार, कुछ निश्चित विषय केन्द्रीय सरकार को सौंप दिये जाते हैं और शेष सभी विषयों का नियत्रंण राज्यों के ऊपर छोड़ दिया जाता है। अमरीका, स्विटजर लैंड और आस्ट्रेलिया में यही पद्धति प्रचलित है। कनैडा में इसके विपरित एक दूसरी प्रणाली का अवलम्बन किया गया है। उस देश में कुछ निश्चित विषय राज्यों को दे कर, शेष सभी विषय संघ सरकार के नियंत्रण में रख लिये गये हैं। इन

दोनों प्रणालियों में प्रथम प्रणाली विकेन्द्रीय करण की भावना के आधार पर अच्छी है तथा द्वितीय प्रणाली एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना के उद्देश्य के अपेक्षित है।

भारत में अधिकार विभाजन

हमारे नये संविधान के अन्तर्गत भारत में उपरोक्त दोनों प्रणालियों से भिन्न एक तीसरी पद्धति का प्रयोग किया गया है। यह पद्धति कुछ अंशों में आस्ट्रेलिया के संविधान पर आधारित है जहाँ संघ सूची के अतिरिक्त कुछ विषय एक समवर्ती सूची में रक्खे गये हैं। हमारे पुराने १९३५ के कानून में भी इसी पद्धति का अनुसरण किया गया था। इस प्रणाली के अनुसार राज्य के सभी अधिकार तीन सूचियों बांटे गये हैं (१) संघीय सूची (२) राज्य सूची, (३) समवर्ती सूची। संघ सूची में वह विषय रक्खे गये हैं जिन पर संघ सरकार ही क़ानून बना सकती है। राज्य सूची में इसके विपरीत वह विषय हैं जिनपर राज्यों की सरकारें क़ानून बना सकती हैं। तीसरी समवर्ती सूची में वह विषय हैं जिनका स्वरूप तो स्थानीय है, परन्तु जिन पर यदि सारे राष्ट्र के लिये एक से ही क़ानून बना दिये जायँ तो शासन की कुशलता तथा देश के एकीकरण में अत्यन्त सहायता मिलती है। इस तीसरी सूची के निर्माण से संघ विधान का एक बहुत बड़ा दोष-अपरिवर्तनशीलता तथा क़ानूनीपन दूर हो जाता है और राष्ट्रीयता के विकास में अत्यन्त सहायता मिलती है। इस सूची के विषयों पर-राज्य तथा संघीय-दोनों ही सरकारों को क़ानून बनाने क़ा अधिकार प्राप्त होता है, परन्तु विरोध की दशा में केवल संघीय क़ानून ही प्रमाणिक माने जाते हैं।

अवशिष्ट अधिकार (Residuary Powers) वैसे हमारे नव संविधान में राज्य के सभी अधिकारों को इन तीन सूचियों में विभक्त करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु फिर भी संभव है, कुछ विषय इस विभाजन के क्षेत्र से बाहर रह गये हों। ऐसे विषयों को अवशिष्ट (Residuary) विषय कहा जाता है। संविधान में कहा गया है कि यह विषय संघ

सरकार के आधीन रहेंगे। दूसरे, संघीय विधानों में यह विषय राज्यों की सरकारों के आधीन रहते हैं। इस प्रकार समवर्ती सूची द्वारा, अवशिष्ट अधिकारों को संघ सरकार के सुपुर्द करके तथा संघीय सूची में बहुत अधिक विषय सम्मिलित करके, हमारे नव संविधान में इस प्रकार का प्रयत्न किया गया है कि भारत में संघीय विधान होने पर भी एक शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता का निर्माण हो सके।

नीचे हम इन तीनों सूचियों में सम्मिलित विषयों का संक्षिप्त विवरण देते हैं। इनकी पूरी सूची संविधान के सप्तम परिशिष्ट में दी गई है।

संघ सूची—इनमें सब मिला कर ९७ विषय हैं। १९३५ के विधान में इस सूची में कुल ५८ विषय थे। आस्ट्रेलिया के विधान में इस सूची में केवल तीन विषय हैं। इस प्रकार संघ सरकार का अधिकार क्षेत्र अत्यंत विस्तृत रक्खा गया है। इन विषयों में रक्षा, विदेशी समस्याएँ, युद्ध और शांति, कबायली क्षेत्र, मुद्रा और सिक्का, नागरिकता, संघीय ऋण, डाक और तार, टेलीफोन और बेतार, फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशन, बनारस, दिल्ली, अलीगढ़ के विश्वविद्यालय, प्राचीन स्मारक, जन गणना, संघीय रेलें, जहाजरानी और नौकारोहण, पेटेंट तथा कापीराइट, चैक और हुण्डियाँ, शस्त्रास्त्र, अफीम, नमक इत्यादि महत्वपूर्ण विषय हैं।

राज्य सूची—इसमें कुल मिला कर ६६ विषय हैं। १९३५ के संविधान में इस सूची में ५४ विषय थे। इन विषयों में कानून और व्यवस्था, न्याय जेलें, स्वास्थ्य और स्वच्छता, स्थानीय स्वशासन व्यवस्था, मादक वस्तुओं का उत्पादन तथा उन पर नियन्त्रण, शिक्षा, चिकित्सा संबंधी सहायता, ग्राम सुधार, सिंचाई, मालगुजारी, पशुओं की रक्षा, वन, औद्योगिक उन्नति, सहयोग आंदोलन, प्रांतीय पब्लिक सर्विस कमीशन, इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।

समवर्ती सूची—इसमें ४७ विषय हैं। १९३५ के कानून के अधीन

इस सूची में ३६ विषय थे। इनमें फ़ौजदारी कानून, जाब्ता फौजदारी, नागरिक कानून, जाब्ता दीवानी, साक्षी तथा शपथ कानून, विवाह और विच्छेद, दत्तक प्रणाली, संपत्ति का हस्तांतरित होना, आवश्यक लिखित पत्रों की रजिस्ट्री, ट्रस्ट, इकरारनामों का कानून, कारखाना कानून, ट्रेड यूनियनें, समाचार पत्र, छापेखाने, विष तथा आपत्तिजनक औषधियों का कानून, इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।

२. राज्यों तथा संघ सरकार के बीच आय के साधनों का वितरण

नये संविधान में संघ तथा राज्यों की सरकारों के बीच केवल अधिकारों का ही विभाजन नहीं किया गया है वरन् आय के साधनोंका भी पूर्ण रूप से विभाजन कर दिया गया है। यह स्पष्ट है कि किसी देश की सरकार उस समय तक अपना काम नहीं चला सकती जब तक उसे आय के पर्याप्त साधन उपलब्ध न हों। संघीय विधानों में जहाँ संघ सरकार तथा उनकी इकाइयों के बीच राज्य के अधिकारों का विभाजन अत्यंत आवश्यक है वहाँ उसकी आय के साधनों का बँटवारा करना भी अनिवार्य है। इसी सिद्धांत को दृष्टि में रखकर हमारे नये संविधान के २२वें भाग में संघ सरकार तथा राज्यों की सरकार के बीच आय के साधनों का पूर्ण रूप से विभाजन कर दिया गया है।

संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ सरकार तथा राज्य की सरकारों के अलग अलग आय के क्या क्या साधन होंगे इनका विवरण दिया गया है।

संघ सरकार के आय के साधन—उपरोक्त अनुसूची की पहली सूची में संघ सरकार के आय के साधनों का विवरण ८२ से लगाकर ९७ वीं धारा में किया गया है। इन धाराओं में कहा गया है कि संघ सरकार को निम्नलिखित कर लगाने का अधिकार होगा :—

(१) कृषि आय को छोड़कर अन्य आय पर कर।

(२) सीमा शुल्क जिसके अन्तर्गत निर्यात शुल्क भी सम्मिलित है।

(३) भारत में निर्मित वस्तुओं व तम्बाकू पर कर, परन्तु जिनमें शराब व मादक वस्तुओं पर कर सम्मिलित नहीं होगा।

(४) कंपनी टैक्स।

(५) व्यक्तियों का कंपनियों के मूलधन पर टैक्स।

(६) कृषि भूमि को छोड़कर अन्य संपत्ति पर चुंगी।

(७) कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य संपत्ति के उत्तराधिकार के बारे में चुंगी।

(८) रेल या समुद्र या वायु से ले जाने वाली वस्तुओं व यात्रियों पर सीमा कर, तथा रेल का भाड़ा व वस्तु भाड़ा पर कर।

(९) शेयर बाजार व सट्टे के सौदों पर कर।

(१०) चैक, हुण्डी, रुक्का, बीमा पत्र, रसीद, ऋण पत्र इत्यादि पर स्टाम्प कर।

(११) प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों की बिक्री व उनमें छपे विज्ञापनों पर कर।

राज्य की सरकारों के आय के साधन—इसी प्रकार संविधान के उसी परिशिष्ट की ४५वीं धारा से लगा कर ६३ वीं धारा तक उन करों का विवरण किया गया है जो राज्य की सरकारें लगा सकती हैं। इन करों में निम्नलिखित कर मुख्य हैं।

(१) भूमिकर (Land Revenue)

(२) कृषि आय पर कर (Agricultural income tax)

(३) कृषि भूमि के उत्तराधिकार के विषय में चुंगी (Succession duty on ag. land)

(४) कृषि भूमि पर सम्पत्ति कर (Estate duty on ag. land)

(५) भूमि व भवनों पर कर (Tax on land and buildings)

(६) खनिज अधिकार पर कर (Tax on mineral rights)

(७) शराब अफ़ीम व प्रान्त में बनने वाली दूसरी मादक वस्तुओं पर कर (Excise duty on Intoxicants)

(८) बिक्री कर (Sales tax)

(९) बिजली के उपयोग व बिक्री पर कर ।

(१०) समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़ कर अन्य विज्ञापनों पर कर ।

(११) यात्रियों पर कर ।

(१२) मोटर व ट्रामों पर कर ।

(१३) पशुओं और नौकरों पर कर ।

(१४) प्रति व्यक्ति पर कर ।

(१५) आमोद-प्रमोद के स्थानों पर कर ।

(१६) दस्तावेज़ों की रजिस्ट्री पर स्टाम्प कर ।

आय के साधनों के बंटवारे के संबन्ध में प्रान्तों का दृष्टि कोण

भारतवर्ष में सन् १९१९में प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना के समय से प्रान्तीय सरकारें सदा इस बात की शिकायत करती रहती थीं कि उनके आय के साधन समुचित नहीं हैं और इस कारण वह विकास और राष्ट्रीय निर्माण की योजनाओं पर अधिक रुपया खर्च नहीं कर सकतीं । उनका कहना था कि सन् १९१९से प्रान्तों की सरकारों के साथ अन्याय पूर्ण व्यवहार किया जा रहा था । केन्द्रीय सरकार ने अपने पास तो आय के एसे साधन रख लिये थे जिन से आमदनी आसानी से बढ़ाई जा सकती थी; परन्तु प्रांतों की सरकार के पास आय के केवल वही साधन थे जिनसे आमदनी बढ़ने के बजाय केवल घट ही सकती थी । नये संविधान में प्रान्तीय सरकारों की यह शिकायत दूर करने का प्रयत्न किया गया है । वैसे तो १९३५ के संविधान में भी प्रान्तीय सरकारों को केन्द्र द्वारा कई प्रकार की सहायता देने का प्रबन्ध किया गया था । परन्तु हमारे नये संविधान में इस दशा में और भी सुधार कर दिया गया है ।

नये संविधान के अंतर्गत राज्यों की सरकारों को संघ सरकार द्वारा सहायता

संविधान की २६९वीं धारा में कहा गया है कि निम्नलिखित शुल्क और कर भारत सरकार द्वारा संग्रहीत किये जायंगे परन्तु इनसे होने वाली आमदनी का बँटवारा राज्यों की सरकारों के बीच कर दिया जायेगा :—

(१) सम्पति के उत्तराधिकार पर कर ।

(२) कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति पर शुल्क ।

(३) रेल, समुद्र व वायु से आने जाने वाली वस्तुओं व यात्रियों पर सीमा कर ।

(४) रेल के किरायों व भाड़ों पर कर ।

(५) शेयर बाज़ारों व सट्टे के सौदों पर स्टाम्प कर ।

(६) समाचार पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर ।

इन सभी करों से होने वाली आमदनी केंद्रीय सरकार राज्यों की सरकारों के बीच बाँट देगी ।

आगे चलकर संविधान में कहा गया है कि इनकमटैक्स से होने वाली आमदनी का एक निश्चित भाग विभिन्न राज्यों की सरकारों के बीच बाँट दिया जायेगा । इसी प्रकार आसाम, बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल के सूबों के बीच पटसन पर लगाये जाने वाले निर्यात कर से होने वाली आमदनी के संबंध में सविधान की २७३ वीं धारा में कहा गया है कि जब तक यह निर्यात कर लागू रहेगा संघ सरकार इन प्रान्तों की सरकार को एक निश्चित रकम प्रति वर्ष देती रहेगी ।

इसके अतिरिक्त संविधान में संघ संसद को इस बात का अधिकार भी दिया गया है कि वह राज्य की सरकारों की अपनी संचित निधि में से सहायता प्रदान कर सके । आसाम राज्य के लिये विशेष रूप से संविधान में कहा

गया है कि संघ सरकार उस राज्य में बसने वाली क़बीली जातियों की सहायता के लिये तथा उन क्षेत्रों के शासन प्रबन्ध को जहाँ क़बीली जातियाँ बसती हैं, दूसरे राज्यों के समान शासन के स्तर पर लाने के लिये विशेष रूप से सहायता देगी।

राजस्व कमीशन—(Finance Commission) विभिन्न राज्यों को संघ सरकार द्वारा कितनी आर्थिक सहायता दी जाय तथा उनके बीच आय कर से होने वाली आमदनी का किस प्रकार वितरण किया जाय इस के लिये संविधान में एक राजस्व कमीशन की नियुक्ति* का आदेश दिया गाया है। अभी तक इस कमीशन की नियुक्ति नहीं की गई है। संविधान में कहा गया है राष्ट्रपति विधान लागू होने के दो वर्ष के अन्दर ऐसे कमीशन की नियुक्ति अवश्य कर देंगे। जब तक इस कमीशन की नियुक्ति नहीं होती उस समय तक के लिये भारत सरकार ने निश्चय किया है कि वह श्री सी०डी० देशमुख द्वारा की गई सिफ़ारिशों के अनुसार राज्यों तथा संघ सरकार के बीच 'आय कर' तथा 'पटसन पर नियति कर का बँटवारा करती रहेगी। श्री.सी.डी.देशमुख' द्वारा की गई सिफ़ारिशें जो ३१ जनवरीसन् १९५० को प्रकाशित की गई थीं, इस प्रकार हैं :—

श्री देश मुख की सिफारिशें

राज्य की सरकारों को सन् १९३५ के विधान के अन्तर्गत आय कर का ५० प्रति शत भाग दिया जाता था। विभिन्न, प्रान्तों के बीच इस कर की आमदनी का बँटवारा इस प्रकार था :—

			प्रतिशत				
मद्रास	१५	यू० पी०	१५	सी० पी०	५	सिंध	२
वम्बई.	२०	पंजाब	८	उड़ीसा	२	सरहदी सूवा	१
बंगाल	२०	बिहार	१०	आसाम	२		

भारत के विभाजन के पश्चात् स्वभावतः भारत सरकार को उपरोक्त

प्रबन्ध पर पुनः विचार करना पड़ा। सिंध व सरहदी सूबे को दिये जाने वाले इनकम टैक्स का भाग अब भारत सरकार ने दूसरे प्रान्तों में बाँट दिया। साथ ही बंगाल, पंजाब तथा आसाम प्रान्तों का बँटवारा हो जाने से इन राज्यों को पहले की भांति ही आयकर का भाग नहीं दिया जा सकता था; इसलिये इन प्रान्तों को मिलने वाली आय कर की आमदनी का कुछ भाग दूसरे प्रान्तों को दे दिया गया। १७ मार्च सन्-१९४८ को भारत सरकार ने विभाजन के पश्चात् आयकर की आमदनी में से विभिन्न प्रान्तों का भाग इस प्रकार निश्चित किया।

नाम प्रान्त	प्रतिशत
मद्रास	१८
बम्बई	२१
पश्चिमी बंगाल	१२
यू० पी० (उत्तर प्रदेश)	१९
पूर्वी पंजाब (पंजाब)	५
बिहार	१३
सी० पी० (मध्य प्रदेश)	६
आसाम	३
उड़ीसा	३

भारत सरकार की उपरोक्त विज्ञप्ति से बहुत से प्रान्तों को सन्तोष नहीं हुआ उन्होंने संघ सरकार से कहा कि १७ मार्च वाले निर्णय पर पुनः विचार किया जाय। २६ नवम्बर सन् १९४९ को इसलिये भारत सरकार ने श्री० सी० डी० देशमुख से प्रार्थना की कि वह इन्कम टैक्स तथा निर्यात कर के बँटवारे के विषय में विचार करें और फिर आपना निर्णय संघ सरकार को दें।

श्री देशमुख ने विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों से बात-चीत करने के पश्चात् अपने निम्नसुझाव संघ सरकार के सम्मुख ३१ जनवरी सन्-

१९५० को रख दिये। यह सुझाव केद्रीय सरकार द्वारा स्वीकार कर लिये गये। हमारे नये सन् १९५०-५१ के वजट में इन्हीं सुझावों के आधार पर केद्रीय तथा राज्यों की सरकारों के बीच आय कर तथा जूट पर निर्यात कर का बँटवारा किया गया है।

आय कर का बँटवारा—आयकर के बँटवारे के संबंध में श्री देशमुख ने निम्न सुझाव केंद्रीय सरकार के सम्मुख रक्खे :—

नामराज्य	आयकर का वह भाग जो राज्य की सरकार को दिया जाना चहिये।
बंबई	२१ प्रतिशत
मद्रास	१७·५ "
पश्चिमी बंगाल	१३.५ "
उत्तर प्रदेश	१८ "
मध्य प्रदेश	६ "
पंजाब	५.५ "
बिहार	१२.५ "
उड़ीसा	३ "
आसाम	३ "

उपरोक्त निर्णय से विदित है कि श्री देशमुख के निर्णय से पश्चिमी बंगाल तथा पंजाब को कुछ लाभ हुआ है। पहिले इन दोनों राज्यों को क्रमशः १२तथा ५प्रतिशत आयकर का भाग मिलता था; अब उन्हें १३·५ तथा ५.५ प्रतिशत भाग मिलता है। उत्तर प्रदेश मद्रास तथा बिहार राज्यों को कुछ हानि हुई है क्योंकि उनका आयकर का भाग क्रमशः १९, १८ तथा १३ प्रतिशत से घटा कर १८, १७·५ तथा १२·५ प्रतिशत कर दिया गया है। शेष राज्यों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं हुवा।

पटसन पर निर्यात कर का बँटवारा—पटसन पर निर्यात कर के बँटवारे के संबंध में श्री देशमुख ने अपना निर्णय इस प्रकार दिया :—

नाम राज्य	निर्यात कर से होने वाली आय का वितरण (रु० में)
पश्चिमी बंगाल	१०५
आसाम	४०
बिहार	३५
उड़ीसा	५
कुल रक़म	१,८५,००,००० रुपया

जैसा पहिले बताया जा चुका है श्री देशमुख की सिफ़ारिशों पर केवल उस समय तक कार्य किया जायगा जब तक नये संविधान के आदेशानुसार राजस्व कमीशन की नियुक्ति नहीं की जाती। इसके पश्चात् राजस्व कमीशन के सुझावों के अनुसार संघ सरकार तथा राज्यों की सरकारों के बीच आय के साधनों का वितरण किया जायगा।

भारतीय रियासतें—इस विषय में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्री वी० टी० कृष्णमाचारी कमिटी की सिफ़ारिशों के आधार पर, भारत की रियासतों के आय के साधनों का वितरण भी, पहली अप्रैल सन् १९५० के पश्चात् से उसी आधार पर कर दिया गया है, जैसा वह संविधान में संघ-सरकार तथा दूसरे राज्यों की सरकारों के बीच किया गया है। परन्तु इस बात का विचार रख कर कि जिससे रियासतों की आय के साधनों में एकदम कमी न हो जाय, भारत सरकार ने निश्चय किया है कि उपरोक्त नीति पर धीरे-धीरे आचरण किया जायगा। दस वर्ष के पश्चात् रियासतों तथा दूसरे राज्यों की स्थिति एक सी हो जायगी और उन सब के आय के साधन एक समान हो जायेंगे।

अध्याय ७८

न्याय पालिका का संगठन

[Organisation of Judiciary]

किसी देश में कानून बनाने का कार्य विधान मंडल करता है, उनका पालन कार्यकारिणी करती है। न्याय पालिका का मुख्य उद्देश्य एक नागरिक और दूसरे नागरिक तथा राज्य और नागरिकों के बीच विवादों का फैसला करना होता है। किसी भी जनतन्त्र देश में एक स्वतन्त्र तथा योग्य न्यायपालिका का संगठन, जनता की स्वतन्त्रता तथा उसके मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये नितांत आवश्यक समझा जाता है। न्याय पालिका ही सरकार के विभिन्न अंगों को मनमानी करने से रोकती है और जनता को दमन तथा अत्याचार से बचाती है।

उच्चतम न्यायालथ

नव संविधान के अन्तर्गत भारत में न्याय की सर्वोच्च अदालत का नाम उच्चतम न्यायालय (Supreme court) रखा गया है। इस अदालत को संसार के सभी देशों की उच्चतम अदालतों से अधिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। १९३५ के ऐक्ट के आधीन भारत में एक फिडरल कोर्ट का संगठन किया गया था। यह न्यायालय अब भंग कर दी गई है और उसके स्थान पर उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) की स्थापना की गई है। फिडरल कोर्ट के जज इसी न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त कर दिय गये हैं। अब हम इस न्यायालय के संगठन, कर्तव्य तथा अधिकारों के विषय में संक्षिप्त वर्णन देंगे।

संगठन—भारत की उच्चतम् न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधिपति (Chief justice) और दूसरे न्यायाधीशों (Judge) की नियुक्ति का प्रबंध किया गया है। विशेष

अवस्थाओं में आवश्यकता पड़ने पर मुख्य न्यायाधिपति को इस बात का अधिकार दिया गया है कि कि वह विशेष काम के लिये तदर्थ (Ad Hoc) न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सके। ऐसा केवल उस दशा में किया जायगा जब इस न्यायालय के अपने जजों से गण पूरक संख्या (Quorum) पूरी न होती हो। संघ संसद को इस बात का भी अधिकार दिया गया है कि यदि वह आवश्यकता समझे तो न्यायाधीशों की संख्या में बढ़ोतरी कर सकती है। इसके अतिरिक्त सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति को भी अधिकार है कि वह राष्ट्रपति की स्वीकृति से सुप्रीम कोर्ट तथा फिडरल कोर्ट के रिटायर्ड जजों को सुप्रीम कोर्ट में न्यायाधीश का कार्य करने के लिये निमन्त्रित कर सकता है। ऐसे व्यक्तियों को सुप्रीम कोर्ट के दूसरे न्यायाधीशों के समान वेतन तथा अधिकार प्रदान किये जाते हैं; परन्तु उन्हें न्यायालय के सामने साधारण न्यायाधीश नहीं माना जाता। कुछ थोड़े समय के लिये, मुख्य न्यायाधिपति को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह हाई कोर्ट के जजों को सुप्रीम कोर्ट में कार्य करने के लिये बुला सकें। मुख्य न्यायाधिपति की अनुपस्थिति में राष्ट्रपति सुप्रीम कोर्ट के किसी भी न्यायाधीश को कार्य-कारी मुख्य न्यायाधिपति (Acting Chief justice) के रूप में नियुक्त कर सकते हैं।

न्यायाधीशों की नियुक्ति—हमारे संविधान में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये अमरीका तथा ब्रिटेन के संविधानों की नकल नहीं की गई है। अमरीका में राष्ट्रपति 'सीनेट' की स्वीकृति से न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। इंगलैण्ड में यह नियुक्ति प्रधान मन्त्री की सलाह से सम्राट द्वारा की जाती है। भारत में वैसे तो राष्ट्रपति को ही न्यायाधीशों की नियुक्ति का कार्य सौंपा गया है, परन्तु संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश की नियुक्ति से पहिले सुप्रीम कोर्ट तथा हाई कोर्ट के जजों से सलाह लेंगे। इसके अतिरिक्त सुप्रीम कोर्ट के जजों

की नियुक्ति के लिये मुख्य न्यायाधिपति की मन्त्रणा अनिवार्य ठहराई गयी है ।

योग्यता—न्यायाधीशों की योग्यता के संबंध में संविधान में निम्न शर्तें आवश्यक रक्खी गई हैं :—

(१) न्यायाधीष, भारत का नागरिक हो, (२) वह किसी एक उच्च न्यायालय (हाई कोर्ट) में अथवा दो या दो से अधिक ऐसे न्यायालयों में क्रमशः कम से कम ५ वर्ष तक न्यायाधीश के रूप में काम कर चुका हो या (३) वह कम से कम दस वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय में अथवा दो या दो से अधिक ऐसे न्यायालयों में अधिवक्ता (Advocate) की हैसियत से कार्य कर चुका हो, या (४) वह कोई सुविख्यात न्यायशास्त्रज्ञ (Jurist) हो ।

कार्य अवधि—सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश उस समय तक अपने पद पर काम कर सकते हैं जब तक उनकी आयु ६५ वर्ष की न हो जाय । उनकी स्वतन्त्रता कायम रखने के लिये संविधान में कहा गया है कि किसी भी न्यायाधीश को उस समय तक उसके पद से अलग नहीं किया जा सकेगा, जब तक संसद के दोनों भवन दो तिहाई बहुमत से राष्ट्रपति से यह प्रार्थना न करें कि किसी न्यायाधीश को अयोग्यता अथवा दुर्व्यवहार के कारण उसके पद से अलग कर दिया जाय । न्यायाधीशों के लिये एक मकान तथा ४००० रुपया मासिक वेतन का आयोजन किया गया है । मुख्य न्यायाधिपति का वेतन दूसरे न्यायाधीशों से अधिक, ५,०००) मासिक नियत किया गया है । अपने पद से रिटायर होने के पश्चात न्यायाधीशों के लिये यह शर्त रक्खी गई है कि कि वह भारत की किसी भी अदालत में वकालत न कर सकेंगे । इस प्रकार की शर्त इसलिये आवश्यक समझी गई जिससे देश की अदालतों पर सुप्रीम कोर्ट के पुराने न्यायाधीशों के व्यक्तित्व का अनुचित प्रभाव न पड़े ।

बैठकों का स्थान—सुप्रीम कोर्ट के अधिवेशन साधारणतया दिल्ली में होते हैं, परन्तु मुख्य न्यायाधिपति को यह अधिकार दिया गया है कि,

राष्ट्रपति की स्वीकृति से, वह भारत के दूसरे स्थानों में भी सुप्रीम कोर्ट की बैठकों का आयोजन कर सकते हैं ।

सुप्रीम कोर्ट के अधिकार

सुप्रीम कोर्ट भारत की सर्वोच्च अदालत होगी । इसके फैसले देश की दूसरी सभी अदालतों पर लागू होंगे । इस न्यायालय की स्थापना के पश्चात् हमारे देश से इंगलैण्ड की प्रिवी कौंसिल का अधिकार क्षेत्र समाप्त कर दिया गया है । इस न्यायालय में जाने वाली सभी अपीलों की सुनवाई अब सुप्रीम कोर्ट में ही होती है । सुप्रीम कोर्ट को दीवानी, फौजदारी तथा संवैधानिक मुकदमों पर अधिकार प्राप्त है । इन मुकदमों की सुनवाई के लिए यह अंतिम न्यायालय है ।

प्रथम क्षेत्राधिकर—(Original jurisdicton) सुप्रीम कोर्ट को ऐसे मुकदमों पर प्रथम क्षेत्राधिकार प्राप्त है जो भारत सरकार तथा दूसरी राज्यों की सरकारों के बीच, अथवा दो या दो से अधिक राज्यों की सरकारों के बीच, संवैधानिक विषयों के संबंध में उत्पन्न हों । परन्तु इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार उन मुकदमों पर नहीं होगा जो भारतीय रियासतों और संघ सरकार के बीच हुई संधियों अथवा करारों के कारण उत्पन्न हों ।

अपील का क्षेत्राधिकार (Appealate Jurisdiction —तीन प्रकार की अपीलें सुप्रीम कोर्ट में सुनी जा सकेंगी । (१) संवैधानिक, (२) दीवानी, (३) फौजदारी ।

(१) **संवैधानिक**—संवैधानिक विषयों में सुप्रीम कोर्ट केवल उस दशा में अपील सुनेगी जब किसी राज्य की हाई कोर्ट यह प्रमाणित कर दे कि मुकदमे में संविधान की किसी धारा के सही आशय के संबंध में विवाद है । सुप्रीम कोर्ट स्वयं भी ऐसे मुकदमों की अपने यहाँ सुनवाई की आज्ञा दे सकती है ।

[२] **दीवानी मुकदमे**—दीवानी मुकदमों की अपील सुप्रीम कोर्ट में

केवल उस दशा में होगी जब राज्य की हाई कोर्ट यह प्रमाणित कर दे कि किसी मुकदमे की राशि या मूल्य २०,००० रु० से अधिक है या यह कि मुकदमे में कोई ऐसी बात पर विवाद है जिसकी सुनवाई सुप्रीम कोर्ट द्वारा की जानी चाहिये।

[३] फौजदारी मुकदमा—फौजदारी मुकदमों की सुनवाई सुप्रीम कोर्ट में केवल उस दशा में हो सकती है जब (१) किसी हाई कोर्ट द्वारा अपील में अभियक्त की रिहाई के आदेश को उलट कर मृत्यु दंड में बदल दिया जाय, (२) हाई कोर्ट अपने आधीन किसी न्यायालय से किसी मुकदमे को अपने पास मंगा ले और फिर उसमें अभियुक्त को मृत्यु दंड दे दे, या (३) हाई कोर्ट किसी मुकदमे में यह प्रमाणित कर दे कि उसमें कोई महत्वपूर्ण कानूनी समस्या पेश है।

फौजदारी मुकदमों में, संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह सुप्रीम कोर्ट का अधिकार क्षेत्र एक विशेष कानून पास करके बढ़ा सकती है। मुकदमों की निगरानी [Revision] का भी सुप्रीम कोर्ट को विशेषअधिकार है। सुप्रीम कोर्ट भारत की किसी भी मातहत अदालत से मुकदमों को अपने यहाँ मँगा कर उनकी अपील सुन सकती है अथवा उनकी निगरानी कर सकती है अथवा स्वयं अपील की आज्ञा दे सकती है। इन सब के अतिरिक्त जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है सुप्रीम कोर्ट को नागरिकों के मौलिक अधिकार संबंधी मुकदमे सुनने का भी अधिकार प्राप्त है। आजकल ऐसे अनेक मुकदमे सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचाराधीन हैं।

सुप्रीम कोर्ट का मन्त्रणा संबंधी कार्य (Advisory functions of the Supreme court)—मुकदमे तथा अपील सुनने के अतिरिक्त सुप्रीम कोर्ट का एक महत्वपूर्ण कार्य राष्ट्रपति को ऐसे सार्वजनिक महत्व के विषयों पर मन्त्रणा देना है जो वह उसके विचारार्थ भेज दें। ऐसे विषयों पर सुप्रीम कोर्ट ऐसी सुनवाई

के पश्चात् जैसी वह उचित समझे, राष्ट्रपति को अपनी सम्मति लिख कर भेज देती है । संविधान की इसी धारा के आधीन सुप्रीम कोर्ट की राय के लिए वह सब संधियाँ तथा इकरारनामे भी भेजे जा सकते हैं जो रियासतों तथा संघ सरकार के बीच हुए हों और जिन पर सुप्रीम कोर्ट का प्रथम क्षेत्राधिकार नहीं है ।

काम करने की विधि

सुप्रीम कोर्ट को यह अधिकार है कि वह स्वयं अपने कार्य के उचित संपादन तथा अपने सम्मुख वकीलों की पेशी के लिए आवश्यक नियम बना सकती हैं। परन्तु इन नियमों को लागू करने से पहिले राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है । सुप्रीम कोर्ट द्वारा सभी महत्वपूर्ण मुकदमे कम से कम पाँच जजों की एक बैंच के सम्मुख सुने जाते हैं और उनका निर्णय उपस्थित न्यायाधीशों की बहुसंख्यक सहमति से दिया जाता है। परन्तु सहमत न होने वाले कसी न्यायाधीश को अपना अलग निर्णय देने की पूरी आज्ञा है ।

स्टाफ की भर्ती : सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति अथवा किसी ऐसे न्यायाधीश अथवा अफसर को जिसको मुख्य न्यायाधिपति नियुक्त कर दें, यह अधिकार है कि वह सुप्रीम कोर्ट के लिए स्वयं स्टाफ की भर्ती कर सके तथा उनकी नौकरी के संबंध में उचित नियम बना सके । इस न्यायालय की स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए संविधान की १४६ वीं धारा में यह भी कहा गया है कि सुप्रीम कोर्ट का सारा व्यय जिसके अन्तर्गत न्यायालय के पदाधिधिकारियों और उसके सेवकों को दिये जाने वाला सब वेतन भी सम्मिलित होगा, संघ सरकार के वार्षिक बजट की उस निधि में से दिया जायगा जिस पर संसद के सदस्यों की राय लेना आवश्यक नहीं है ।

हाई कोर्ट

संविधान में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य में एक हाई कोर्ट का होना अनिवार्य होगा। हाई कोर्ट एक मुख्य न्यायाधिपति तथा ऐसे अन्य

दूसरे न्यायाधीशों से मिल कर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करना आवश्यक समझें। हाई कोर्ट के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायगी। परन्तु, ऐसा करने से पहिले वह भारत के मुख्य न्यायाधिपति, तथा राज्य के राज्यपाल तथा मुख्य न्यायाधिपति से मन्त्रणा करेंगे। साधारणतया हाई कोर्ट के न्यायाधीश ६५ वर्ष की आयु तक अपने पद पर कायम रह सकेंगे। हाई कोर्ट के न्यायाधीशों की योग्यता के संबंध में संविधान की ३१७ वीं धारा में कहा गया है कि केवल वही व्यक्ति इस पद के लिए चुने जा सकेंगे जो भारत के नागरिक हों तथा जो कम से कम दस वर्ष तक न्यायिक (Judicial) पद ग्रहण कर चुके हों अथवा जो किसी राज्य की हाई कोर्ट में अथवा ऐसे दो या अधिक उच्च न्यायालयों में लगातार कम से कम दस वर्ष तक अधिवक्ता Advocate रह चुके हों।

हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति को ४००० रु० मासिक वेतन तथा दूसरे न्यायाधीशों को ३५०० रु० मासिक वेतन एवं दूसरे भत्ते दिये जाने का प्रबंध किया गया है। हाई कोर्ट में कार्यकारी (Acting) मुख्य न्यायाधिपति और रिटायर्ड जजों की नियुक्ति के संबंध में वही नियम लागू हैं जो सुप्रीम कोर्ट के संबंध में पहिले बतलाये जा चुके हैं।

हाईकोर्ट के अधिकारों तथा कार्य क्षेत्र के संबंध में वही नियम लागू रक्खे गये हैं जो १९३५ के संविधान में दिये गये थे। इसके अतिरिक्त नये संविधान में उन्हें यह भी अधिकार दिये गये हैं कि वह (१) बिना किसी रोक के माल के मुकदमों को सुन सकेंगी (२) नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये लेख (Writs) निकाल सकेगी तथा अपने आधीन न्यायालयों से मुकदमे उठा कर अपने आप स्वयं सुन सकेंगी।

हाई कोर्ट के क्षेत्राधिकार अथवा कर्तव्यों के संबंध में राज्य की विधान सभा को कानून बनाने का अधिकार नहीं होगा। केवल संघ संसद को ही इस विषय में कानून बनाने का अधिकार दिया गया है।

आधीन न्यायालय

हाई कोर्ट के आधीन जिलों की न्यायालयों के संबंध में संविधान में कहा गया है कि जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा, हाई कोर्ट की सम्मति से, की जायगी। इन न्यायाधीशों की योग्यता के संबंध में संविधान में कहा गया है कि जिला न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए आवश्यक है कि ऐसा व्यक्ति या तो भारतीय संघ या राज्य की नौकरी में रहा हो अथवा उसने कम से कम ७ वर्ष तक वकील (Pleader) एवं अधिवक्ता (Advocate) के रूप में काम किया हो। जिला न्यायाधीश के अतिरिक्त दूसरे जजों की नियुक्ति राज्यपाल उन नियमों के अधीन करेंगे, जिन्हें वह राज्य की पब्लिक सर्विस कमीशन तथा हाई कोर्ट की सलाह से बनायेंगे। जिला अथवा उसके आधीन अदालतों पर पूरा नियन्त्रण हाई कोर्ट का होगा। उसे ही इन सब अदालतों में काम करने वाले अधिकारियों की उन्नति, तबादला, तथा नियुक्ति का अधिकार होगा।

उत्तर प्रदेश में न्याय का प्रबंध

दूसरे राज्यों की भाँति हमारे राज्य में भी एक हाई कोर्ट है। पहले हमारे प्रांत में दो हाई कोर्ट थीं—एक इलाहाबाद में और दूसरी लखनऊ में। परन्तु जुलाई १९४८ में ये दोनों हाई कोर्ट मिला कर एक कर दी गईं। हमारी हाई कोर्ट में एक मुख्य न्यायाधिपति और २० दूसरे न्यायाधीश हैं। यह न्यायालय हर प्रकार के फौजदारी तथा दीवानी मुकदमों की अपीलें सुनती हैं। इसके फैसलों की अपील सुप्रीम कोर्ट में की जा सकती है। हाई कोर्टों के नीचे तीन प्रकार की अदालतें काम करती हैं, जिनका संगठन निम्न तालिका से स्पष्टजया हो गा।

दंड न्यायालय (फौजदारी अदालतें)	व्यवहार न्यायालय (दीवानी अदालतें)	राजस्व-न्यायालय माल की अदालतें)
हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय)	हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय)	हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय)
सेशन कोर्ट	डिस्ट्रिक्ट कोर्ट	बोर्ड आफ रेवेन्यू
मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी	सिविल जज	कमिश्नर की अदालत
" द्वितीय श्रेणी	मुंसिफी	कलक्टर की अदालत
" तृतीय श्रेणी	खफीफा न्यायालय	तहसीलदार की अदालत
आनरेरी मजिस्ट्रेट		नायब तहसीलदार की अदालत

फौजदारी अदालत

प्राय: प्रत्येक जिले में ही एक सेशन जज होता है जो मजिस्ट्रेटों के फैसलों की अपील सुनता है तथा कत्ल इत्यादि के संगीन मुकदमों की सीधी सुनवाई करता है। सेशन जज को फांसी तक की सजा देने का अधिकार होता है ,परन्तु ऐसी सजा देने से पहिले उसे हाई कोर्ट की स्वीकृति लेनी पड़ती है ।

सेशन जज के नीचे तीन प्रकार के मजिस्ट्रेट मुकदमों का फैसला करते हैं यह मजिस्ट्रेट प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट कहलाते हैं। प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को दो वर्ष की सजा तथा १००० रु० जुर्माना, द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट को ६ महीने की सजा तथा २०० रु० जुर्माना और तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट को एक महीने की सजा और ५० रु० जुर्माना करने का अधिकार होता है। मजिस्ट्रेट वैतनिक Honrary भी होते हैं और अवैतनिक Stipendary भी। पहिले ऐसे लोगों को आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाया जाता था जो खुशामदी और सरकार के पिट्ठू होते थे, परन्तु आजकल केवल योग्य तथा अनुभवी यक्तियों को ही इसके लिये चुना जाता है ।

दीवानी अदालत

जिले में सबसे बड़ी दीवानी अदालत डिस्ट्रिक्ट जज की अदालत कहलाती है। सेशन और डिस्ट्रिक्ट जज एक ही व्यक्ति होता है। फौजदारी मुकदमों का फैसला करते समय वह सेशन जज कहलाता है और दीवानी मुकदमों का फैसला करते समय डिस्ट्रिक्ट जज कहलाता है। डिस्ट्रिक्ट जज को बड़ी से बड़ी रकम के मुकदमे सुनने का अधिकार है। डिस्ट्रिक्ट जज के नीचे सिविल जज, मुंसिफ तथा स्माल काज कोर्ट जज की अदालतें होती हैं। स्माल काज कोर्ट की कचहरी में १००० या ५०० रुपया से अधिक मालियत के मुकदमों की सुनवाई नहीं होती। मुंसिफों की अदालत में ५००० रु० तक के मुकदमें सुने जा सकते हैं। सिविल जज अपने मातहत छोटी अदालतों के मुकदमों की अपील सुनते हैं और बड़े बड़े दीवानी मुकदमों की स्वयं भी सुनवाई करते हैं।

माल की अदालत

हाई कोर्ट के समान माल के मुकदमों के लिए सब से बड़ी अदालत बोर्ड आफ रेवेन्यू कहलाती है। यह अदालत कमिश्नरों के फैसलों की अपीलें सुनती हैं। बोर्ड आफ रेवेन्यू के नीचे कमिश्नर, कलक्टर, डिप्टी कलक्टर, तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार की अदालतें होती हैं। भूमि तथा लगान संबंधी हर प्रकार के मुकदमें इन अदालतों में सुने जाते हैं।

अध्याय १०

भारतीय रियासतें

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहिले रियासतों का स्वरूप

कुल संख्या ५६२

क्षेत्रफल—७,२५, ९६४ वर्गमील

—भारत के समस्त क्षेत्रफल का भाग ४५ प्रतिशत

जन संख्या ९,३२,००,०००

भारत की समस्त जन संख्या का भाग २४ प्रतिशत

भारत की समस्त जनता में से रियासतों में रहनेवाली जनता की, धर्म के आधार पर संख्या—

हिंदू २५ प्रतिशत

मुसलमान १६ प्रतिशत

ईसाई ४६ प्रतिशत

सिख २७ प्रतिशत

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् रियासतों का स्वरूप

कुल संख्या लगभग ५००

क्षेत्रफल—५,८७,९४९ वर्गमील

विभाजित भारत के समस्त क्षेत्रफल का भाग—४८ प्रतिशत

जन संख्या ८,९०,००,०००

विभाजित भारत की जन संख्या का भाग २८ प्रतिशत

विभाजित भारत में, समस्त जन संख्या की, धर्म के आधार पर, रियासतों में रहने वाली संख्या—

हिंदू ७ प्रतिशत

मुसलमान २६ प्रतिशत

ईसाई ५० प्रतिशत

सिख ३६ प्रतिशत

भारतीय रियासतों का इतिहास

हमारे देश की रियासतों का इतिहास, उनके जन्म की कथा तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उनके विलीनीकरण एवं संघीयकरण की गाथा 'अलीफ लैला' की कहानियों के समान रोचक है। वैसे तो हमारे देश की कुछ थोड़ी सी रियासतों जैसे उदयपुर, जोधपुर, जैपुर, ट्रावनकोर, कोचीन, बनारस इत्यादि का इतिहास अत्यंत प्राचीन है; परन्तु अधिकतर रियासतें हमारे देश में ऐसी हैं जिनका जन्म मुगल साम्राज्य के पतन, तथा अंग्रेजी साम्राज्य के प्रारंभिक विस्तार काल में हुआ था। जिस समय मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् भारत में मुसलमानी साम्राज्य की जड़ें हिल उठीं, और अनेक हिंदू, पठान, तथा मुसलमान स्थानीय शासकों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी तथा इसके तुरन्त पश्चात् जिस समय हमारे अंग्रेज शासक व्यापारियों के रूप में हमारे देश में आए और उन्होंने भारत की आंतरिक राजनैतिक स्थिति का लाभ उठाकर इस देश में अपना साम्राज्य स्थापित करने के प्रयत्न आरंभ कर दिये, तो हमारे देश में अनेक छोटी और बड़ी रियासतों का जन्म होना आरंभ हो गया। अंग्रेजों ने सोचा कि किसी दूसरे देश में राज्य करने के लिये उन्हें वहाँ के स्थानीय लोगों की सहायता तथा मित्रता की आवश्यकता होगी। ऐसे सहायक और मित्र उन्हें उन लोगों की श्रेणी में से बहुत सुगमता से मिल गये जिन्होंने उसी काल में अपने राज्यों की स्थापना की थी, अथवा जो उन्हीं दिनों, कुछ थोड़ी सी सैन्य शक्ति के सहारे, जर्जरित मुगल साम्राज्य की हड्डियों पर अपने साम्राज्य की विशाल नींव खड़ी करना चाहते थे। ऐसे सभी लोगों की महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में, अंग्रेजी सेना ने पूर्ण सहायता प्रदान की। बदले में इन राजाओं ने अंग्रेजी सेना की संरक्षता में रहना स्वीकार कर लिया, और अंग्रेज शासकों को भारत की स्वतन्त्र रियासतों में शनैः शनैः अनेक प्रकार के अधिकार प्राप्त हो गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की अधिकतर रियासतें २०० वर्ष से भी कम पुरानी हैं। इनका निर्माण तथा अस्तित्व हमारे अँग्रेज शासकों की कूट राजनीतिक चाल का द्योतक थी। अंग्रेज जानते थे कि भारत के राजा और नवाब, जमींदार और बड़े बड़े जागीरदार उन्हीं के सहारे जीवित रह सकते थे। भारत की जनता इन सभी शासकों के अत्याचार तथा दमन से तंग आ चुकी थी और वह उनकी सत्ता को जड़ मूल से नष्ट कर देना चाहती थी। परन्तु अंग्रेजी सेना के संरक्षण के कारण भारतीय रियासतें कायम थीं और वह निर्दयतापूर्वक अपनी प्रजा के शोषण के कार्य में लगी रहती थीं। इस प्रकार जहाँ एक ओर भारतीय रियासतें अपनी प्रजा के साथ गुलामों से भी बुरा व्यवहार करती थीं, वहाँ दूसरी ओर वह भारत के ब्रिटिश शासकों की खुशामद तथा 'जी हुजूरी' में लगी रहती थीं और उन्हें अपना संरक्षक मान कर उनकी इच्छा पर नीच से नीच कार्य करने के लिए सदा प्रस्तुत रहती थीं।

विभिन्न भारतीय रियासतों में भेद

जिस समय मुगल साम्राज्य के विनाश के पश्चात् भारत में देशी रियासतों का जन्म हुआ, तो सभी रियासतें एक ही प्रकार की न बनीं। विभिन्न स्थानीय शासकों, अमीरों, सेनाधिकारियों तथा जागीरदारों की सैन्य शक्ति के अनुसार उनकी रियासतों का अधिकार क्षेत्र छोटा या बड़ा हो गया। इन्हीं सब रियासतों को बाद में ब्रिटिश सरकार ने मान्यता प्रदान कर दी और उनके साथ अलग-अलग संधियों पर हस्ताक्षर कर दिये। इन संधियों में विभिन्न रियासतों को उनकी स्थिति के अनुसार अलग-अलग अधिकार प्रदान किये गये। परिणाम यह हुआ कि जहाँ भारत की लगभग ६०० रियासतों में समानता एवं एकरूपता के चिन्ह बहुत कम थे, वहाँ उनमें भिन्नता (Dis-similarities) अधिक दृष्टिगोचर होती थी।

उदाहरणार्थ समानता की दृष्टि से भारत की रियासतों में केवल निम्नलिखित एक से लक्षण थे :—

(१) भारत की सभी रियासतें ब्रिटिश सत्ता के आधीन थीं। वह अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से स्वतन्त्र रियासतें नहीं कही जा सकती थीं। वह किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की सदस्य नहीं हो सकती थीं। उनकी विदेश नीति का संचालन भारत सरकार द्वारा किया जाता था।

(२) अपने आंतरिक शासन प्रबंध की दृष्टि से वह स्वतन्त्र थीं। भारतीय धारा सभा द्वारा बनाये गये कानून रियासतों में लागू नहीं किये जाते थे। ब्रिटिश भारत की अदालतों को भी रियासती प्रजा पर किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं था।

(३) सभी रियासतों पर ब्रिटिश सम्राट को सर्वाधिकार प्राप्त थे। दूसरे शब्दों में भारत की सभी रियासतें भारत सरकार की सार्वभौम सत्ता (Paramount Power) के आधीन रह कर कार्य करती थीं।

इनके अतिरिक्त अन्य सभी विषयों जैसे अधिकार क्षेत्र, जन-संख्या, आंतरिक संगठन, सम्राट से संबंध, जनता के अधिकार इत्यादि में वह एक दूसरे से भिन्न थीं। उदाहरणार्थ—

(१) यदि एक ओर भारत में हैदराबाद और काश्मीर जैसी रियासतें थीं जो आज भी पहिले जैसी ही बनी हुई हैं और जिनका प्रांतों में विलीनीकरण नहीं किया गया है, और जिनका क्षेत्रफल क्रमशः ८२,००८ वर्गमील तथा ८२,३१३ वर्गमील है, तो दूसरी ओर भातर में ऐसी छोटी छोटी रियासतें भी थीं जिनका क्षेत्रफल कतिपय एकड़ों में है।

(२) भारत में ऐसी रियासतें जिनका क्षेत्रफल १०,००० वर्गमील से अधिक था, १५ से ज्यादा नहीं थीं। इसके अतिरिक्त ६७ ऐसी रियासतें थीं जिनका क्षेत्रफल १००० तथा १०,००० वर्गमील के बीच में था। शेष रियासतों में २०२ ऐसी थीं जिनका क्षेत्रफल २० वर्गमील से भी कम था।

(३) आबादी की दृष्टि से भारत में केवल २६ ऐसी रियासतें थीं जिनकी जनसंख्या २० लाख से अधिक थी। इसके अतिरिक्त ऐसी रियासतों की संख्या जिनकी आबादी २० लाख से कम परन्तु ५ लाख से ऊपर थी १७ थीं। शेष रियासतों की जन-संख्या बहुत साधारण थी। इनमें, विशेषकर शिमला तथा काठियावाड़ की रियासतों में, ऐसी भी बहुत सी रियासतें विद्यमान थीं जिनकी जन-संख्या १००० से भी बहुत कम थी।

(४) आय की दृष्टि से भारत में केवल १९ ऐसी रियासतें थीं जिनकी वार्षिक आय १ करोड़ रुपये से अधिक थी, ७ रियासतों की आय ५० लाख तथा ७० लाख रुपये के बीच में थी। शेष रियासतों की आय बहुत कम थी। इनमें ऐसी रियासतें भी थीं जिनकी आय एक साधारण कारीगर की आय से भी कम थी, परन्तु उनके क्षेत्र में ब्रिटिश भारत का कानून लागू न होने के कारण, वह रियासतें ही कही जाती थीं।

(५) आधिकारों की दृष्टि से जहाँ कुछ रियासतों को ब्रिटिश सरकार से संधि के अधीन, अपनी करन्सी, रेल, डाकखाने, सेना, इत्यादि रखने का अधिकार था, और विदेशी नीति को छोड़कर दूसरे प्रायः सभी मामलों में वह भारत सरकार से स्वतन्त्र थीं, वहाँ हमारे देश में ऐसी भी अनेक रियासतें थीं, जिनके नरेशों को तृतीय दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार ही प्राप्त थे।

(६) शासन प्रबंध की दृष्टि से जहाँ कुछ रियासतों में ब्रिटिश भारत के समान प्रतिनिधि संस्थाएँ तथा आधुनिक ढ़ंग की व्यवस्था थी, वहाँ अधिकतर रियासतों में मध्यकालीन युग की सामंतशाही प्रथा के अनुसार उनका शासन किया जाता था और उनकी जनता को किसी भी प्रकार के राजनैतिक व आर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं थे।

रियासतों का वर्गीकरण

रियासतों में विद्यमान इन्हीं विभिन्नताओं के कारण, हमारे अंग्रेज शासकों

को उनके वर्गीकरण में अत्यंत कठिनाई का सामना करना पड़ा। उनमें से यदि किसी ने संधियों, समझौतों तथा सनदों के आधार पर उनका वर्गीकरण किया तो कुछ दूसरों ने उनके आंतरिक शासन प्रबंध की दृष्टि से उनका विभाजन किया। इस विषय में 'बटलर कमैरो' का वर्गीकरण सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। इस कमेटी ने रियासतों को तीन वर्गों में विभक्त किया :—

(१) प्रथम वर्ग में कमेटी ने उन १०८ रियासतों को स्थान दिया जिन्हें 'नरेन्द्र मंडल' में व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व मिला था। ऐसी रियासतों का क्षेत्रफल ५ लाख वर्गमील तथा जन संख्या ६ करोड़ थी।

(२) द्वितीय वर्ग में कमेटी ने उन १२७ रियासतों को रक्खा जिन्हें नरेन्द्र मंडल में स्वयं बैठने का नहीं वरन् अपने १२ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया था। ऐसी रियासतों का क्षेत्रफल ८०,००० वर्गमील तथा जन संख्या ८० लाख थी।

(३) तृतीय श्रेणी में कमेटी ने उन ३२७ रियासतों तथा जागीरों को रक्खा जिन्हें नरेन्द्र मंडल में किसी प्रकार का प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। इन रियासतों का क्षेत्रफल केवल ६४०० वर्गमील तथा जन संख्या लगभग २५० लाख थी।

बटलर कमेटी ने रियासतों के आंतरिक शासन प्रबंध के आधार पर भी रियासतों का वर्गीकरण किया था। उस सिद्धांत के आधार पर उसने कहा था कि भारत में सन् १९२९ में, ३० ऐसी रियासतें थीं जिनमें धारा सभाओं की व्यवस्था की गई थी, यद्यपि इन धारा सभाओं को केवल परामर्शदाई अधिकार ही थे। इसके अतिरिक्त भारत में ४० ऐसी रियासतें थीं जिनमें हाई कोर्टों की प्रथा उसी प्रकार की थी जैसी वह ब्रिटिश भारत में है। ३४ रियासतों में कार्यकारी (Executive) और न्यायकारी

(Judicial) विभागों को अलग कर दिया गया था। ५६ रियासतों में नरेन्द्रों का व्यय निश्चित् था। ५४ रियासतों में प्रौविडेंड फंड तथा बोनस की प्रथा थी। शेष रियासतें इतनी पिछड़ी हुई थीं कि उनमें न किसी प्रकार की प्रतिनिधि संस्थाएँ थीं, न आधुनिक न्याय विभाग, न वहां नरेन्द्रों की आय निश्चित् थी और न उनके अधिकार। उनका संगठन अत्यंत माध्यमिक तथा सामन्तशाही के आधार पर था।

नरेन्द्र मंडल

ऊपर जिस नरेन्द्र मंडल का जिक्र किया गया है उसका संगठन मौंट–फोर्ड सुधार योजना के अधीन ८ फरवरी सन् १९२१ को किया गया था। यह संस्था इसलिये बनाई गई थी जिससे रियासतों के नरेश पारस्परिक समस्याओं पर मिल कर विचार कर सकें। इस संस्था को किसी प्रकार के विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे और इसके निश्चय वायसराय के सम्मुख केवल सिफारिशों के रूप में प्रस्तुत किये जाते थे। परन्तु फिर भी इस संस्था का संगठन इस दृष्टि से विशेष महत्व रखता था कि इससे पहिले रियासतों के नरेशों को एक दूसरे के साथ किसी प्रकार के सीधे संबंध रखने अथवा राजनैतिक वार्ता करने का अधिकार नहीं था। ऐसा वह केवल राजनैतिक विभाग के माध्यम द्वारा कर सकती थी।

रियासतें तथा ब्रिटिश सरकार की सार्वभौम सत्ता (Indian States and Paramount Power)

रियासतों के संबंध में उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध उन्हें किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। उनका जीवन तथा अस्तित्व ब्रिटिश सरकार की कृपा पर निर्भर था। उनका निर्माण तथा पालन इसी दृष्टि से किया गया था कि वह अंग्रेज सरकार की अधिक से अधिक सहायता करें तथा भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को अधिक मजबूत बनायें। इसलिये रियासती नरेशों को जहाँ अपनी प्रजा के विरुद्ध इस

प्रकार के तानाशाही अधिकार प्राप्त थे, वहाँ उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध किसी भी प्रकार के अधिकार प्रदान नहीं किये गये। ब्रिटिश सरकार के रियासतों के विरुद्ध अधिकारों को 'सम्राट के सार्वभौम अधिकार' (Paramount Powers of the Crown) के नाम से भी संबोधित किया जाता था। इन अधिकारों का विकास शनैः शनैः हुआ और भारत स्थित सम्राट के विभिन्न प्रतिनिधियों ने रियासतों के साथ हुई ईस्ट इण्डिया कंपनी की संधियों का इस प्रकार आशय लिया कि ब्रिटिश सरकार को रियासतों के आंतरिक व बाह्य–हर प्रकार के विषयों में–हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

आरंभ में सन् १८५७ तक रियासतों का सम्राट से कोई भी संबंध नहीं था। इसके पश्चात् 'भारत-विद्रोह' के बाद महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की कि वह राजाओं के मान और विशेषाधिकारों की रक्षा स्वयं अपने मान और विशेषाधिकारों के समान करेंगी और सभी देशी नरेशों को अपनी-अपनी प्राचीन प्रथाओं के अनुसार शासन करने की अनुमति होगी। ऐसी घोषणा इस दृष्टि से की गई थी जिससे भारतीय रियासतें भविष्य में सदा ब्रिटिश सरकार की मित्र बनी रहें और विद्रोही शक्तियों का साथ न दें। परन्तु जिस समय अंग्रेजी सत्ता भारत में अत्यंत शक्तिशाली हो गई और उसे भारतीय नरेशों की सहायता की कोई विशेष अपेक्षा न रही, तो उसने रियासतों के आंतरिक व बाह्य विषयों में शनैः शनैः हस्तक्षेप करना आरंभ कर दिया। उसने कहा, 'यदि किसी राज्य में कुशासन है, प्रजा के साथ न्याय नहीं होता, जीवन और संपत्ति की रक्षा का समुचित प्रबंध नहीं है, राज्य की आर्थिक व्यवस्था उचित नहीं है तो ब्रिटिश सरकार सुशासन की दृष्टि से उस रियासत में हस्तक्षेप कर सकती है।' वास्तव में अंग्रेजी सरकार, प्रजा के हित में नहीं, बरन् प्रजा के हित साधन के नाम पर, अपनी स्वार्थसिद्धी की पूर्ति के लिए ही, रियासतों के आंतरिक प्रबंध में हस्तक्षेप करती थीं। यह हस्तक्षेप भारत सरकार के राजनैतिक विभाग व रियासतों में स्थित सम्राट के दूत-रैजिडेंट, पोलिटिकल एजेंट इत्यादि–की सिफारिशों पर किया जाता था। परिणाम

यह होता था कि देशी रियासतों के नरेश सदा राजनैतिक विभाग व उसके दूतों से डरते रहते थे और उन्हें संतुष्ट करने के लिए सब प्रकार के उचित व अनुचित उपाय काम में लाते थे ।

भारत की परतन्त्रता के २०० वर्षों से भी अधिक काल में, हमें अनेक उदाहरण ऐसे देखने को मिलते हैं जहाँ ब्रिटिश सरकार ने ऐसे नरेशों के शासन में हस्तक्षेप किया जो राष्ट्रीय अथवा स्वतन्त्र विचार रखते थे, परन्तु जनता के अधिकारों की रक्षा अथवा रियासतों में प्रजातन्त्रात्मक संस्थाओं के संगठन के लिए उसने एक बार भी किसी नरेश के विरुद्ध कदम नहीं उठाया। ब्रिटिश सरकार ने सन् १८७३ में बड़ौदा के महाराज को रैजीडेंट को विष देने के संदेह मात्र पर गद्दी से अलग कर दिया। सन् १९२६ में उदयपुर तथा इन्दौर के महाराजाओं को गद्दी से निकाला गया। सन् १९२३ में नाभा नरेश को कैद किया गया। इसके पश्चात् रीवाँ के नरेश को गद्दी से हटाया गया ।

सन् १९२६ में वायसराय लार्ड रीडिंग ने हैदराबाद के निजाम को एक पत्र लिखकर रियासतों के संबंध में सम्राट की सार्वभौम सत्ता का इस प्रकार वर्णन किया था :—

"भारतवर्ष में ब्रिटिश सम्राट की राजसत्ता सर्वोच्च है, अस्तु किसी भी देशी नरेश का ब्रिटिश सरकार से समता के आधार पर बातचीत करना वैध न होगा। यह सर्वोच्चता केवल संधियों या समझौतों पर आश्रित नहीं है पर उनसे स्वतन्त्र भी उसका अस्तित्व है। साथ ही विदेशी संबंध में भी सम्राट का इन रियासतों पर विशेष अधिकार है। ब्रिटिश सरकार का यह अधिकार और कर्तव्य है कि वह संधियों व समझौतों का ध्यान रखते हुए भारतवर्ष भर में शाँति व सुव्यवस्था की रक्षा करे।"

भारतीय नरेशों ने भारत सरकार द्वारा अपनी रियासतों के आंतरिक प्रबंध में बढ़ता हुआ हस्तक्षेप देखकर सन् १९२९ में सम्राट से प्रार्थना की कि ईस्ट इण्डिया कंपनी के साथ हुई उनकी संधियों तथा समझौतों के आधार

पर सार्वभौम सत्ता (Paramount Power) का अधिकार क्षेत्र निश्चित् किया जाय और उन्हें बताया जाय कि उनके क्या अधिकार हैं ? सम्राट ने नरेशों की यह प्रार्थना स्वीकार करके, उसी वर्ष एक कमेटी बिठाई जिसके अध्यक्ष श्री 'बटलर' थे। इस कमेटी ने रियासतों के संबंध में एक विस्तृत रिपोर्ट भारत सरकार के सन्मुख प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में कमेटी ने कहा कि, "रियासतों के संबंध में सम्राट के क्या अधिकार हैं उनका निश्चय करना कठिन है। सार्वभौम सत्ता सार्वभौम है और वह सर्वोच्च ही रहेगी।" (Paramountcy is Paramountcy and must remain paramount)

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने रियासतों के विरुद्ध अपने अधिकारों का कभी स्पष्टीकरण नहीं किया और समय और परिस्थिति की आवश्यकतानुसार वह सदा, उनके आँतरिक व बाह्य, हर प्रकार के विषयों में हस्तक्षेप करती रही। हस्तक्षेप के इन उदाहरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि, संक्षेपमें, रियासतों की सम्राट के सन्मुख इस प्रकार स्थिति थी:—

(१) रियासतों की कोई अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति नहीं थी। वह दूसरे देशों में अपने दूत व प्रतिनिधि नहीं भेज सकती थीं, यद्यपि भारत सरकार के प्रतिनिधियों में प्रायः एक प्रतिनिधि देशी रियासतों का भी सम्मिलित रहता था।

(२) वह विदेशों से सीधे व्यापारिक संबंध स्थापित नहीं कर सकती थी।

(३) सम्राट की अनुमति के बिना कोई नरेश किसी विदेशी सरकार से कोई पद या मान स्वीकार नहीं कर सकता था।

(४) वायसराय की अनुमति के बिना कोई विदेशी किसी रियासत में नौकर नहीं रक्खा जा सकता था।

(५) ब्रिटिश सरकार से पासपोर्ट लिये बिना नरेश या देशी राज्यों का नागरिक विदेश नहीं जा सकता था।

(६) रियासतों की सेना ब्रिटिश भारत की सेना के आधार पर संग-ठित की जाती थीं। लड़ाई या आंतरिक विद्रोह के समय इस सेना को भारत सरकार की सहायता करनी पड़ती थी।

(७) रियासतों के नरेशों को गोद लेने या अपना उत्तराधिकारी निश्चित् करने के लिए सम्राट की अनुमति लेनी पड़ती थी।

(८) कुशासन या आर्थिक कुप्रबंध के आधार पर वायसराय जब चाहते किसी नरेश को गद्दी से निकाल सकते थे तथा उसकी रियासत का प्रबंध अपने आधीन ले सकते थे।

(९) नरेशों की शिक्षा-दीक्षा, उनके शादी-विवाह, भ्रमण व भाषण एवं दूसरी हलचलों पर भी वायसराय को नियन्त्रण रखने का पूर्ण अधिकार था।

(१०) रेल, तार, डाक या मुद्रा संबंधी वायसराय द्वारा जारी की गई आज्ञाओं का पालन करना भी नरेशों के लिए अनिवार्य था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय रियासतें पूर्ण रूपेण ब्रिटिश सत्ता के अधीन थीं। उनकी स्वतन्त्रता केवल नाममात्र की थी। जब तक रिया-सतों के नरेश ब्रिटिश सरकार की इच्छानुसार कार्य करते तथा अपने अंग्रेज रैजिडेंट और पोलिटिकल एजेंटों को प्रसन्न रखते थे तब तक वह अपनी प्रजा के साथ जिस प्रकार का चाहते व्यवहार कर सकते थे, परन्तु किसी समय भी यदि वह अपने शासकों के विरुद्ध स्वतन्त्र नीति से काम लेने का साहस करते तो उन्हें गद्दी छोड़ने के लिए उद्यत रहना पड़ता था।

रियासतें तथा उनकी जनता

परन्तु जहाँ ब्रिटिश सत्ता के समक्ष हमारी रियासतें इस प्रकार दास वृत्ति से व्यवहार करती थीं, वहाँ अपनी स्वयं की प्रजा के साथ उनका व्यव-हार अत्यंत स्वेच्छाचारी तथा अन्यायपूर्ण होता था। अधिकतर रियासतों में मध्यकालीन ढंग पर तानाशाही निरंकुश राज्य था। राजाओं की आज्ञा

ही इन रियासतों में कानून थी। जनता को किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। राजनीतिक अधिकारों का तो कहना ही क्या, नागरिक स्वतन्त्रता का अधिकार भी रियासतों की प्रजा के लिए दुर्लभ था। उन्हें भाषण देने, संघ बनाने, समाचार पत्र प्रकाशित करने, स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करने अथवा कोई भी व्यवसाय एवं व्यापार करने की स्वतन्त्रता नहीं थी। अधिकतर रियासतों में न्याय का कोई उचित प्रबंध नहीं था। कानून बनाने, शासन चलाने तथा न्याय का संचालन करने का सब काम एक ही व्यक्ति अर्थात् रियासत के नरेश के हाथ में केन्द्रित रहता था। राज्य में केवल वही लोग उच्च सरकारी पदों पर पर नियुक्त किये जाते थे जो राजाओं के परिवारों से संबंधित होते थे अथवा जो खुशामदी, जी हुजूर, चपल, षड़यन्त्री एवं नैतिक आचरण की दृष्टि से अत्यंत पतित और जो अपने राजाओं के विलासी जीवन के लिए उपयुक्त सामग्री जुटाने की क्षमता रखते थे। कुछ प्रगतिशील रियासतों को छोड़ कर शेष रियासतों के नरेशों का व्यक्तिगत चरित्र अत्यंत निकृष्ट था। रंग महलों में पड़े हुए रंगरेलियाँ मनाना, रणवास को सजाना, नई-नई शादियाँ करना, भले तथा प्रतिष्ठित घरों की कुमारियों का सतीत्व नष्ट करना, शराब, जुआ, घुड़दौड़ आदि व्यसनों में पड़े रहना, दूसरे देशों में जाकर अपनी प्रजा की गाढ़ी कमाई को व्यर्थ नष्ट करना, अंग्रेज शासकों के कर्मचारियों की खुशामद करना, यही उनका आये दिन का कार्य था। अपनी प्रजा की भलाई के लिए योजनाय बनाना, अथवा उनके दुख को अपना दुख एवं सुख को अपना सुख समझना, उनकी उन्नति तथा विकास के लिए हर प्रकार की सुविधाएं प्रदान करना, उनके लिए शिक्षा संस्थाएँ, विद्या मंदिर, पुस्तकालय, वाचनालय, इत्यादि खोलना, अपने राज्य के उद्योगीकरण अथवा प्रजा की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए रचनात्मक कार्य करना, सड़के बनाना, पानी, बिजली अथवा आने-जाने की सुविधाओं इत्यादि का प्रबंध करना---वह अपना कार्य नहीं समझते थे। वह स्वयं अपने लिए तो हर प्रकार के साजोसामान व ऐशो

इशरत की सामग्री चाहते थे—चाहते थे कि, रहने के लिए विशाल महल हो, एक जगह नहीं परन्तु सब सुन्दर स्थानों में, बिजली हो, आधुनिक काल की सभी सुविधाएँ हों, सुन्दर लान, बाग, बगीचे, विशाल खेलने के मैदान, रनिवास, पानी के झरने, लिफ्ट, सवारी के लिए रौल्स-रायस, स्पेशल ट्रेन, हवाई जहाज, अंग रक्षक, दास-दासियाँ, तोपों की सलामी, फौज, बैंड, गाजे-बाजे, नृतक, नर्तकियाँ और सब कुछ; परन्तु अपनी जनता द्वारा इनमें से किसी भी वस्तु की दरकार करना वह रियासत के प्रति घोर राज-द्रोह समझते थे। वह अपने आप को भगवान का प्रतीक और अपनी प्रजा पर शासन करने के लिये स्वयं ईश्वर का भेजा हुआ दूत समझते थे। परन्तु जहाँ तक आचरण का संबंध था, देवता तो क्या, पशुओं से भी गया बीता उनका व्यवहार था। उनका सिद्धांत था कि प्रजा राजा के लिए है, राजा प्रजा के लिए नहीं। प्रजा से हर प्रकार की बेगार लेना, बिना वेतन उनसे काम कराना, उनकी धन और संपत्ति को अपनी ही दौलत समझना, तरह तरह के कर व टैक्स लगाकर उनका शोषण करना, अपने वैयक्तिक व्यय एवं पारिवारिक उत्सवों के लिए जनता से रुपया वसूल करना, कभी शादी के लिए टैक्स लगाना तो कभी अपने जन्म दिन का उत्सव मनाने के लिए, कभी दावतों के लिए कर वसूल करना तो कभी महल बनाने के लिये, कभी जनता से त्यौहारों पर भेंट माँगना तो कभी दर्शन देने के उपलक्ष्य में—संक्षेप में प्रत्येक संभव उपाय से अपनी जनता का निर्दयतापूर्वक शोषण करना, उनका मुख्य धर्म था। वह अपनी प्रजा के साथ गुलामों से भी बुरा व्यवहार करते थे। वह उन्हें केवल एक ही बात की शिक्षा देते थे और वह यह कि "प्रजा का धर्म है कि वह अपने राजा पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिये सदा उद्यत रहे।" यही मुख्य कारण था कि जहाँ ब्रिटिश भारत की प्रजा केवल अंग्रेजों की गुलाम थी वहाँ हमारे देशी रियासतों की प्रजा एक दोहरी गुलामी का शिकार थी—एक अंग्रेज शासकों की दूसरे अपने अत्याचारी नरेशों की।

आर्थिक स्थिति--रियासती प्रजा की आर्थिक दशा भी अत्यंत हीन थी। कुछ बड़ी-बड़ी रियासतों को छोड़कर छोटी रियासतों में न किसी प्रकार के उद्योग धन्धे थे, न कारखाने, न बड़ी बड़ी व्यापार की मण्डियाँ थीं, न आधुनिक बैंक और व्यवसाय। "व्यापार की आत्मा" सड़कों, रेलों, मोटरों, इत्यादि का भी उचित प्रबंध नहीं था। किसानों से जमीन का भारी लगान वसूल किया जाता थ। उनकी जमींदारों, ठिकानेदारों तथा जागीरदारों के जुल्म से रक्षा के लिए, किसी प्रकार के कानून नहीं थे। जमींदार जब चाहते किसानों को अपनी जमीन से निकाल कर बाहर कर सकते थे। उन्हें तरह तरह की बेगार करनी पड़ती थी। उनकी खेती की उन्नति के लिये किसी प्रकार की आधुनिक सुविधाएँ नहीं थीं। न उन्हें बोने के लिए अच्छा बीज ही मिलता था न खाद और न आधुनिक ढ़ंग के हल। जमीनों का किराया बहुत अधिक था और जमींदार जब चाहते उसमें वृद्धि कर सकते थे। गाँव में किसी प्रकार के घरेलू उद्योग धन्धे न थे। नगरों में जहाँ कहीं छोटे-मोटे कारखाने थे वहाँ पर मजदूरों की दशा अत्यंत ही खराब थी। उनकी रक्षा के लिए किसी प्रकार के फैक्टरी कानूनों की व्यवस्था नहीं थी और उन्हें चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घंटे काम करने के लिये विवश किया जाता था।

शिक्षा का प्रबंध--भारत की लगभग ६०० रियासतों में से केवल ३ रियासतों--ट्रावनकोर, मैसूर तथा हैदराबाद में विश्व-विद्यालय थे। सब रियासतों में कुल मिला कर डिग्री कालेजों की संख्या ३० से अधिक नहीं थी। ४०० से अधिक रियासतों में एक भी हाई स्कूल नहीं था। पढ़े-लिखे लोगों की संख्या सब रियासतों में मिला कर ३ प्रतिशत थी। केवल मैसूर रियासत में टेकनिकल शिक्षा का प्रबंध था।

राजनीतिक अधिकार--दक्षिण की कुछ रियासतों को छोड़कर शेष

रियासतों में जनता को किसी प्रकार के राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। धारा सभाओं का संगठन केवल ३० रियासतों में था और उनमें भी अधिकतर सदस्य नरेशों द्वारा नामजद किये जाते थे। शेष रियासतों में किसी प्रकार की जनतन्त्रात्मक व्यवस्था नहीं थी। स्वायत्त शासन संस्थाएं भी बहुत कम रियासतों में थीं। कुछ रियासतों में तो गुलामी की प्रथा भी चली आती थी। राजाओं के विवाहों में दास और दासियों को दहेज के रूप में देना राजस्थान की रियासतों की एक आम प्रथा थी।

रियासतों में स्वतन्त्रता आन्दोलन

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ रियासतों को छोड़ कर शेष सभी रियासतों में प्रजा की दशा अत्यंत खराब थी। इस दशा को सुधारने के लिये रियासती प्रजामंडलों तथा काँग्रेस से संबंधित आल इण्डिया स्टेटस् पीपल्स काँग्रेस नें भारी आंदोलन किया। परन्तु, भारत को स्वतन्त्रता मिलने से पहिले देशी राज्यों में प्रजा की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। वह गुलामी की चक्की में ही पिसती रही। रियासतों के स्वतन्त्रता आँदोलन के विषय में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं—एक तो यह कि हमारी राष्ट्रीय काँग्रेस नें रियासतों के संग्राम में कोई सक्रिय भाग नहीं लिया, यद्यपि उसकी पूर्ण सहानुभूति इस आँदोलन के साथ थी, और काँग्रेस के अनेक प्रमुख नेता जैसे पंडित जवाहरलाल नेहरू, पट्टाभि सीतारमैया इत्यादि स्टेट्स पीपिल्स काँग्रेस के भी नेता थे, और दूसरी यह कि यद्यपि रियासती प्रजा का अपने स्वतन्त्रता संग्राम में बलिदान ब्रिटिश भारत से किसी प्रकार भी कम नहीं था, फिर भी देशी राज्यों में प्रचार के आधुनिक साधनों ,विशेषकर समाचार पत्रों की कमी के कारण, इस प्रकार की घटनाऐं जनता को कम मालूम पड़ती थीं। ब्रिटिश भारत में जिन अत्याचारी तथा कठोर उपायों का अवलंबन हमारे स्वतन्त्रता संग्राम को कुचलने के लिये किया गया, उससे कहीं अधिक दमन रियासती प्रजा को सहना पड़ा। फिर भी इस प्रकार की रोमंचकारी घटनाएँ समाचार पत्रों

में प्रकाशित नहीं होती थीं। देशी रियासतों के नरेशों ने हमारे अँग्रेज शासकों का साथ केवल इसी बात में नहीं दिया कि उन्होंने अपने क्षेत्र में स्वतन्त्रता आंदोलन को बुरी तरह कुचला, वरन् आजादी के सिपाहियों पर गोली बरसाने के लिये उन्होंने भारत सरकार को भी अपनी सेनाओं की सेवाएँ अर्पित कीं। हमारे देशी राज्यों के नरेश, अँग्रेजों के इशारे पर सदा कठपुतली की तरह नाचते थे। यही कारण था कि काँग्रेस ने देशी राज्यों के मामले में हस्तक्षेप न करने की नीति का अवलंबन किया और उसने सदा यही कहा कि देशी रियासतों की प्रजा की स्वतन्त्रता का प्रश्न समस्त भारत की स्वतन्त्रता के साथ जुड़ा हुआ है। जिस समय हमारे देश से ब्रिटिश सत्ता का अंत हो जायगा और अंग्रेज हमारे देश से चले जायेंगे तो रियासतें स्वतः ही स्वतन्त्र हो जायंगी, कारण, देशी राज्यों की सामन्तशाही का एक मात्र आधार ब्रिटिश सत्ता थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देशी रियासतों का स्वरूप

पिछले तीन वर्षों के इतिहास ने हमारे नेताओं की इस भविष्यवाणी को सच्चा साबित कर दिखाया है। १५ अगस्त सन् १९४७ के तुरन्त पश्चात् हमारे देश की रियासती सत्ता की जड़ें हिल उठीं। यद्यपि हमारे अंग्रेज शासक भारत छोड़ते समय, डाह की अग्नी में, भारत को अनेक छोटे छोटे भागों में छिन्न भिन्न देखने के लिये, यह घोषणा कर गये थे कि रियासतों के ऊपर अंग्रेजी व भारत सरकार को किसी प्रकार के सार्वभौम अधिकार (Paramount Rights) प्राप्त नहीं होंगे, और देशी रियासतें पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र होंगी, फिर भी स्वतन्त्र भारत के परिवर्तित वातावरण में नरेशों की यह हिम्मत न हुई कि वह भारत सरकार से अलग रह कर अपना अलग राज्य बनाये या अपनी प्रजा पर पूर्ववत् ही तानाशाही शासन लादे रहें। कुछ रियासतों नें प्रारंभ में इस प्रकार की शरारतें करनी चाहीं। इनमें, ट्रावनकोर, जूनागढ़, भोपाल, तथा हैदराबाद की रियासतें प्रमुख थीं। परन्तु कुछ ही दिनों में इन रियासतों को यह अनुभव हो गया कि उनकी

सत्ता का एक मात्र आधार-ब्रिटिश-सेना--हमारे देश से बिदा हो चुकी थी, और उनकी महत्वाकाँक्षाओं को पूरा करने के लिये न अब उनकी प्रजा ही उनके साथ थी और न भारत सरकार की सैन्य शक्ति। सर्वप्रथम ट्रावनकोर सरकार के दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर को जो अपनी रियासत को भारतीय संघ से अलग रखना चाहते थे, अत्यंत तिरस्कृत होकर अपना पद त्याग कर देना पड़ा। इसके पश्चात् जूनागढ़ रियासत में जिसने पाकिस्तान के साथ मिलने की घोषणा की थी, अनेक उपद्रव हुए, और जनता के प्रकोप से घबड़ा कर नवाब को पाकिस्तान में शरण लेनी पड़ी। इसके थोड़े दिन पश्चात् हैदराबाद की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया गया। उस रियासत में मुसलमानों का सबसे अधिक जोर था और वह पाकिस्तान के षडयन्त्रों का केन्द्र बन रही थी। कासिम रिजवी के धर्मांध नेतृत्व में, हैदराबाद के १॥ लाख रजाकार तथा निजाम, एक स्वतन्त्र, निरंकुश तथा सामन्तवादी सरकार बनाये रखने का स्वप्न देख रहे थे। भारत सरकार ने निजाम के साथ शाँति पूर्ण वार्ता करने के लिये कितने ही प्रयत्न किये। हैदराबाद राज्य भारत के मध्य में स्थित है। भारत सरकार अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की दृष्टि से, किसी दशा में भी उसे एक स्वतन्त्र राज्य रह कर, भारत विरोधी शक्तियों का अड्डा बनने की आज्ञा न दे सकती थी। परन्तु हैदराबाद के रजाकार अपनी शरारत में लगे हुए थे और उन्होंने निजाम को भारत सरकार की सभी उचित माँगों को ठुकरा देने के लिये बाध्य कर दिया। अन्त में, विवश होकर, १३ सितंबर १९४८ के दिन, भारत सरकार को हैदराबाद राज्य के विरुद्ध पुलिस कार्यवाही करनी पड़ी। चार दिन के पश्चात् हैदराबाद की सरकार ने हथियार डाल दिये और भारत सरकार से समझौते की प्रार्थना की। इस प्रकार कुछ ही दिनों में यह पुलिस कार्यवाही सफलता पूर्वक समाप्त हो गई।

हैदराबाद के उदाहात दू पश्चकिसी रफ्णरस रियासत ने भारत सरकार के समस्त देश को एक संगठित एवं शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के कार्य

में बाधा न डाली, और सरदार पटेल के नेतृत्व में, भारत की ५०० से अधिक रियासतें १५ इकाइयों में पुर्नसंगठित कर दी गईं ।

रियासतों का एकीकरण

भारतीय रियासतों के एकीकरण का आँदोलन उस समय आरंभ हुआ जब सरदार पटेल के नेतृत्व में भारत सरकार के अन्तर्गत जुलाई सन् १९४७ में एक रियासती विभाग खोला गया। सर्व प्रथम इस विभाग ने भारतीय रियासतों से अपील की कि वह भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए प्रवेशपत्रपर हस्ताक्षर कर दे । आरंभ में इस प्रवेश पत्र में रियासत की सरकारों को केवल तीन विषयों अर्थात् विदेश नीति, रक्षा तथा यातायात का नियन्त्रण संघ सरकार को सौंपना था। परन्तु कुछ ही दिन पश्चात् भारत सरकार को अनुभव हुआ कि देश की नव प्राप्त स्वतन्त्रता को दृढ़ बनाने के लिये आवश्यक है कि रियासतों तथा प्रांतों के अधिकार कम किये जाँय और भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना की जाय। इस उद्देश्य से एक ऐसे नये रियासतों से समझौते पर हस्ताक्षर कराये गये जिसके द्वारा संघ सरकार को उन सभी विषयों पर प्रभुत्व प्राप्त हो गया जिनका वर्णन हमारे नव संविधान की संघ तथा समवर्ती सूची में किया गया है।

भारतीय संघ में सम्मिलित होने के पश्चात् देश की छोटी-छोटी रियासतों से प्रार्थना की गई कि वह भारत को एक शक्तिशाली अविछिन्न राष्ट्र में संगठित करने के लिये अपने पड़ौसी प्रांत में मिल जाँय अथवा अपना कोई अलग संघ बना लें। इस नीति के आधीन बहुत शीघ्रता से काम लिया गया और सर्व प्रथम पहली जनवरी सन् १९४८ को यह घोषणा की गई कि उड़ीसा प्रांत की २३ रियासतें उसी प्रांत में विलीन कर दी गई हैं। इसके पश्चात् मध्य प्रांत, पंजाब, बंबई तथा बिहार राज्यों की छोटी छोटी रियासतों का समाहार किया गया और उन राज्यों के नरेशों को वार्षिक पेंशन के रूप में एक निश्चित रकम देकर बिदा कर दिया गया। अंतिम रियासत कूच

बिहार पहली जनवरी सन् १९५० को बंगाल राज्य में विलीन कर दी गई। बहुत सी बड़ी-बड़ी रियासतों के संघ बना दिये गये और और इस प्रकार दो वर्ष से भी कम समय में भारत की छाती पर स्थित सामन्तशाही के ५०० गढ़ समाप्त हो गये।

रियासतों के भारत में प्रवेश, उनके विलीनीकरण तथा संघीयकरण का क्रांतिकारी परिणाम इस प्रकार हुआ :—

भारत की २१६ रियासतें प्रांतों में विलीन कर दी गई हैं। ऐसी रियासतों का कुल क्षेत्रफल १,०८,७३९ वर्गमील तथा जन संख्या १,९१,५८,००० है।

भारत की ६१ रियासतें केन्द्र के अधीन ७ चीफ कमिश्नरों के प्रांतों में संगठित कर दी गई हैं। इन रियासतों में भोपाल, कच्छ, बिलासपुर, त्रिपुरा, मनीपुर, हिमाचल तथा विंध्य प्रदेश की रियासतें हैं। इनका कुल क्षेत्रफल ६३,७०४ वर्गमील तथा जन संख्या ६९ लाख है।

अंत में भारत की २७५ रियासतों को ५ संघों में संगठित किया गया है। इन संघों के नाम इस प्रकार हैं—सौराष्ट्र, पैप्सू, मध्य भारत, राजस्थान तथा ट्रावनकोर कोचीन। इन संघों में सम्मिलित रियासतों का क्षेत्रफल २,१५,४५० वर्गमील तथा जन संख्या ३४७ लाख है।

एकीकरण के क्रम से प्रभावित न होने वाले राज्य केवल ३ हैं अर्थात् मैसूर, हैदराबाद और जम्मू-काश्मीर। इन तीनों रियासतों का भविष्य अभी अनिश्चित है। हैदराबाद का भविष्य उस राज्य की संविधान सभा द्वारा निश्चित किया जायगा और काश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ के विचाराधीन है। मैसूर रियासत का भविष्य महाकर्नाटक राज्य के निर्माण के साथ जुड़ा हुआ है।

इस प्रकार भारत की ५०० से अधिक रियासतों की केवल १५ इकाइयाँ रह गई हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) सौराष्ट्र, (२) पैप्सू, (३) मध्यभारत, (४) राजस्थान, (५) ट्रावनकोर-कोचीन

(६) हिमाचल प्रदेश, (७) कच्छ, (८) बिलासपुर, (९) भोपाल, (१०) त्रिपुरा, (११) मनीपुर, (१२) विन्ध्य प्रदेश

(१३) मैसूर, (१४) हैदराबाद और (१५) जम्मू-काश्मीर ।

रियासती नरेशों की 'प्रिवी पर्स' का निश्चय

भारत सरकार ने एक निश्चित नीति के आधीन देश की समस्त रियासतों से इस प्रकार का समझौता किया है जिसके अधीन उनके नरेशों को अपनी समस्त राजसत्ता जनता के हाथों में सौंप देने के बदले में, अपने व्यय के लिये, एक निश्चित राशि, निम्न प्रकार, प्रति वर्ष मिलती रहेगी।

उन रियासतों को जिनकी वार्षिक आय १ लाख या इससे कम है, आय का १५ प्रतिशत भाग 'प्रिवी पर्स, के रूप में दिया जायगा।

इसके बाद, एक लाख से ५ लाख तक की आयं पर १० प्रतिशत और ५ लाख से १० लाख तक की आय पर ७।। प्रतिशत भाग प्रिवी पर्स के रूप में दिया जायगा। अधिक से अधिक १० लाख रुपया वार्षिक नरेशों को दिया जा सकेगा। कुछ थोड़ी सी बड़ी बड़ी रियासतों के साथ इस नियम का पालन नहीं किया गया है, उदाहरणार्थ हैदराबाद के निजाम के साथ, 'प्रिवी पर्स' की रक़म ५० लाख रुपया वार्षिक निश्चित की गई है, बड़ौदा महाराज को २६।। लाख रुपया दिया गया है, मैसूर के महाराज को २६ लाख, ग्वालियर महाराज को २६ लाख, जैपुर व ट्रावनकोर के महाराज को १८ लाख, बीकानेर व पटियाला महाराज को १७ लाख, जोधपुर महाराज को १७।। लाख तथा इन्दौर महाराज को १५ लाख रुपया वार्षिक दिया गया है। परन्तु यह बढ़ी हुई राशि इन रियासतों के नरेशों को केवल उनके जीवन काल में ही दी जायगी। सब रियासतों को मिला कर भारत सरकार को ५ करोड़ ६५ लाख रुपया प्रतिवर्ष 'प्रिवी पर्स' के रूप में देना होगा। प्रिवी पर्स की

सब से कम राशि १९२) रुपया वार्षिक कटौदिया (सौराष्ट्र) नरेश को दी गई है।

नरेशों की निजी संपत्ति के विषय में भी भारत सरकार ने विशिष्ट नियम बनाये हैं। इन नियमों के आधीन प्रत्येक नरेश के रहने के लिये दो महल दिये गये हैं—एक महल उसकी अपनी राजधानी में दूसरा किसी पहाड़ या समुद्र तट पर। नरेशों की दिल्ली में स्थित कोठियों के विषय में अभी अंतिम निश्चय नहीं हुआ है। इस विषय में अभी तक वार्ता जारी है। कृषि भूमि के संबंध में यह निश्चय किया गया है कि जो नरेश स्वयं कृषि करने में रुचि रखते हैं उन्हें कुछ भूमि दे दी जाय, परन्तु इस भूमि पर लगान इत्यादि के वही नियम लागू होंगे जो दूसरी प्रजा पर लागू होते हैं। पारिवारिक आभूषण तथा हीरे जवाहिरात नरेशों के संरक्षण में रक्खे गये हैं। वह उनका विशेष उत्सवों पर उपयोग कर सकेंगे, परन्तु इन वस्तुओं को बेचने अथवा इधर उधर करने का उन्हें अधिकार नहीं होगा। अधिकांश जागीरें नरेशोंके हाथ से छीन ली गई हैं परन्तु उनके कंपनियों इत्यादि में इस प्रकार के शेयर जो उन्होंने अपनी निजी आय से खरीदे थे, उन्हीं के हाथों में छोड़ दिये गये हैं।

वहुत सी रियासतों में राज्यकोष तथा नरेशों के निजी कोष में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रखा जाता था। इन रियासतों के संपत्ति वितरण में भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। हमारे देश की कितनी ही ऐसी रियासतें थीं जिनके नरेशों ने यह समझ कर कि अब उनकी राजसत्ता समाप्त होने वाली है, अपनी अतुल धन संपत्ति विदेशों को भेज दी, और जिस समय उनके खजानों की जाँच पड़ताल की गई तो उनमें कुछ ही आने या रुपये देखने को मिले। इसी प्रकार की एक रोचक घटना नाभा रियासत में हुई जहाँ उस राज्य के पैप्सू संघ में समाहार के पश्चात, खजाने में केवल ६ पैसे शेष मिले। नरेशों ने करोड़ों रुपया विदेश भेज कर दूसरे स्थानों पर बड़ी बड़ी जायदादें खरीदीं तथा अनेक उद्योग धन्धों में अपना रुपया लगाया। जहाँ इस प्रकार की घटनाएं अत्यंत निंदनीय हैं और वह हमारे नरेशों के

चरित्र पर समुचित प्रकाश डालती हैं, वहाँ हमें यह न भूलना चाहिये कि भारतीय जनता के लिये, इस प्रकार एक भारी रक्तहीन क्रांति का मूल्य चुकाना स्वाभाविक ही था। यह सच है कि हमारे चरित्रहीन नरेशों ने अपनी प्रजा की गाढ़ी कमाई का करोड़ों रुपया अपने निजी ऐश व आराम के लिये हड़प कर लिया, परन्तु हमें यह समझ लेना चाहिये कि एक बार इस प्रकार का भारी बलिदान देकर, आगे आने वाले काल के लिये, अब हमारी प्रजा सुख और चैन की नींद सो सकेगी, और उसका वह अमानुषिक शोषण समाप्त हो जायगा जिसके कारण वह कभी अपना सर ऊपर न उठा सकती थी। रियासतों के नरेशों के हाथों से तानाशाही शक्ति को छीन कर, सरदार पटेल ने सदा के लिये, भारतीय रियासतों की पीड़ित जनता के दुःखों का अन्त कर दिया है। वहाँ की जनता के बीच से अब शासक और शासित का भेद नष्ट हो गया है। आज हमारी देशी राज्यों की जनता को वही अधिकार प्राप्त हैं जो भारत के दूसरे प्रांतों की जनता को मिले हुए हैं।

भारतीय रियासतों की कुछ कठिन समस्याएँ

परन्तु देश के एकीकरण के पश्चात् हमें यह न समझ लेना चाहिये कि हमने भारत की देशी रियासतों की उपस्थिति से उत्पन्न सभी समस्याओं को सुलझा लिया है। यह सच है कि यह समस्याएं अब इतनी जटिल नहीं रह गई हैं जितनी वह पहले थीं, और आशा है कि थोड़े ही समय में उनका कोई उचित हल निकल आयेगा। परन्तु इस कारण हमें अपने प्रयत्नों में किसी प्रकार की ढ़ील नहीं छोड़नी चाहिये।

रियासतों के विलयीकरण एवं संघीयकरण के कारण जो नई समस्याएं हमारे देश में उत्पन्न हो गई हैं उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:—

(१) रियासतों की आय की समस्या— एकीकरण की नीति को अपनाने से पहिले रियासतें हर प्रकार के 'कर' लगाने के लिये स्वतन्त्र थीं। समुद्र तट पर स्थित कुछ रियासतें बाहर से आने वाले माल पर भी कर लगा सकती थीं। आय कर, नमक कर, रेल, डाकखाने तथा

मिट से होने वाली आय, रियासती में बाहर से आने वाले माल पर कर, इत्यादि मदों से होने वाली आय रियासतों को मिलती थी। नव संविधान के अन्तर्गत रियासतों को केवल वही कर लगाने का अधिकार होगा जो भारत के दूसरे राज्यों में लगाये जायेंगे। इस कारण कुछ रियासती संघों की आय बहुत कम हो जायगी, और वह अपनी जनता के लिये वही सुविधाएं उपलब्ध नहीं कर सकेंगी जिनकी उन क्षेत्रों की जनता को स्वतन्त्रता का अनुभव कराने के लिये आवश्यकता है। भारत सरकार ने रियासतों की इसी समस्या को सुलझाने के लिये सर वी० टी० कृष्णमाचारी के नेतृत्व में एक कमेटी बिठाई थी। इस कमेटी ने निम्न सिफारिशें कीं :—

(१) रियासतों को अपने क्षेत्र में भारत के विभिन्न प्रांतों से आने वाले माल पर चुंगी (International Customs Duties) नहीं लगानी चाहिये। इस प्रकार की चुंगी हैदराबाद, राजस्थान, मध्य भारत, सौराष्ट्र और विंध्य प्रदेश में लगाई जाती थी। विंध्य प्रदेश और सौराष्ट्र में इस प्रकार की चुंगी पहिली अप्रैल सन् १९५० से अवैध घोषित कर दी गई है। दूसरी रियासतों के लिए संघ सरकार ने ४ से ५ वर्ष तक की मौहलत दी है। इस बीच में यह रियासतें चुंगी की प्रथा को समाप्त कर बिक्री टैक्स के द्वारा अपनी आर्थिक हानि को पूर्ण कर लेंगी।

(२) आय कर ((Income tax)) के संबंधमें कमेटी ने कहा है कि रियासतों को यह कर उसी दर से लगाना चाहिये जैसा वह भारत के विभिन्न प्रांतों में लगाया जाता है। इस कर से होने वाली आय केन्द्रीय सरकार को मिलती है परन्तु राज्य की सरकारों को उसमें ५०प्रतिशत भाग दिया जाता है। रियासतों को भी इसी अनुपात से आयकर का भाग दिया जायगा। आरंभ में कमेटी ने सिफारिश की है कि रियासतों को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वह अपने क्षेत्र में आय कर की दर धीरे धीरे बढ़ाएं, जिससे उनकी आर्थिक व्यवस्था पर एकदम बुरा प्रभाव न पड़े। भारत सरकार ने इस संबंध में रियासतों को २ से ६ वर्ष तक का समय दिया है। इसके पश्चात् सभी रियासतों में आय कर उसी प्रकार वसूल किया जायगा

जैसे वह शेष भारत में किया जाता है, और रियासतों को आयकर से होने वाली आमदनी में समान रूप से भाग दिया जायगा ।

(३) रेल, डाकखानें, करन्सी, मिंट, आँडिट तथा ब्रॉडकास्टिंग विभागों पर रियासती सरकारों का आधिपत्य पहिली अप्रैल १९५० से समाप्त कर दिया गया है । कमेटी की सिफारिशों के अधीन यह सभी महकमे तथा इनसे होने वाली आय संघ सरकार को सौंप दी गई है ।

(४) देश के आर्थिक एकीकरण से जिन रियासतों को विशेष आर्थिक हानि होगी और जिनमें हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर-कोचीन तथा सौराष्ट्र मुख्य हैं, उनके लिये कमेटी ने सिफारिश की है कि संघ सरकार ऐसी सभी रियासतों को पाँच वर्ष तक सहायता देगी । इसके पश्चात् रियासतों तथा भारत के दूसरे सभी राज्यों की आर्थिक स्थिति की जाँच एक 'राजस्व कमीशन' द्वारा कराई जायगी और संविधान में कहा गया है कि इस कमीशन की सिफारिशों के आधार पर आगे चल कर भारत का आर्थिक संगठन किया जायगा ।

इस प्रकार यद्यपि कृष्णामाचारी कमेटी ने देश के एकीकरण से होने वाले आर्थिक कष्ट को निवारण करने का समुचित प्रयत्न किया है, परन्तु आने वाले चार या पाँच वर्ष हमारे देश के लिये ऐसे होंगे जिसमें अत्यंत सावधानी से कार्य करने का आवश्यकता है, और जिस बीच केन्द्रीय सरकार को रियासती संघों की आर्थिक व्यवस्था पर विशेष नियन्त्रण रखने की आवश्यकता होगी ।

(२) सैनिक समस्या—रियासतों की दूसरी गुत्थी सेना की समस्या है । अंग्रेजों के काल में प्रायः प्रत्येक रियासत अपनी अलग सेना रखती थी । यह सेना युद्ध या आंतरिक अशांति के समय अंग्रेजी सरकार का साथ देती थी । नव संविधान के अन्तर्गत् देश की रक्षा व सेना के संगठन का पूर्ण कार्य संघ सरकार को सौंपा गया है । इसलिये रियासतों को आदेश दिया गया है कि वह अपने क्षेत्रों में केवल इतनी ही सेना रक्खें जितनी संघ सरकार द्वारा उनके लिये निश्चित की जाय । ऐसी सेना का समस्त व्यय संघ सरकार द्वारा दिया जायगा । रियासतों को अपनी शेष सेना कम करनी होगी ।

ऐसा करने से कुछ रियासतों में बेकारी की समस्या बढ़ जायगी ,परन्तु संघ सरकार ने रियासतों से अपील की है कि वह छटनी में आने वाले सैनिकों को अपने राज्य की पुलिस में भर्ती करने का प्रयत्न करें ।

(३) सुशासन की समस्या—देश के एकीकरण से उत्पन्न होने वाली समस्याओं में रियासतों की सब से जटिल सस्मया कुशल सरकारी प्रबंध की समस्याहै । अंग्रेजों के काल में हमारी रियासतों का शासन प्रबंध अत्यंत निकृष्ट कोटि का था । वहाँ सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति उनकी योग्यता के आधार पर नहीं वरन् उनकी चापलूसी के आधार पर की जाती थी । नरेश जब चाहते किसी सरकारी कर्मचारी को हटा सकते थे । जनता में शिक्षा का प्रचार अत्यन्त सीमित था । प्रतिनिधि संस्थाओं के कार्य व संचालन का उन्हें किसी प्रकार का अनुभव प्राप्त नहीं था । जनता में एक शिक्षित व जागृत लोकमत की भी भारी कमी थी । फिर भी रियासतों का शासन प्रबंध इस कारण निर्विघ्न रूप से चलता था कि जनता शासकों के कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती थी, और वह हर प्रकार का दमन व अत्याचार सहने की आदी बन गई थी । परन्तु भारत को स्वाधीनता प्राप्त होने तथा रियासतों में लोकप्रिय मन्त्रिमंडलों के बन जाने के पश्चात् हमारी रियासतों का शासन स्तर और भी नीचे गिर गया है । इसका मुख्य कारण हमारी रियासतों में अनुभव प्राप्त राजनीतिज्ञों की कमी तथा सरकारी कर्मचारियों की अयोग्यता है ।

ब्रिटिश भारत में प्रतिनिधि संस्थाएं बहुत काल से कार्य करती चली आ रही थीं । जनता के बहुत से नेताओं को शासन प्रबंध का समुचित ज्ञान प्राप्त था । इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारत में अंग्रेजों के काल का शासन प्रबंध अत्यंत उच्च कोटि का था । सरकारी कर्मचारी अत्यंन्त योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति होते थे । इस कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में शासन शक्ति के आ जाने से, जहाँ ब्रिटिश भारत के शासन प्रबंध में कोई विशेष शिथिलता नहीं आई वहाँ हमारी रियासतों का शासन प्रबंध अत्यंत ही दोषपूर्ण हो गया । रियासती संघों में लोकप्रिय

मन्त्रि मंडल बन गये परन्तु मन्त्री ऐसे व्यक्ति बने जिन्हें शासन का किसी प्रकार का अनुभव प्राप्त नहीं था। वह केवल प्रजा मंडलों के साधारण कार्य कर्ता थे। इसके अतिरिक्त मन्त्रि मंडलों की सहायता व उनके मार्ग प्रदर्शन के लिए मैसूर, ट्रावनकोर-कोचीन व मध्य भारत को छोड़कर और किसी रियासत में विधान सभाएं नहीं थीं। स्वभावत: ऐसी रियासतों में शासन का स्तर अत्यंत नीचे गिर गया, और रियासती प्रजा को यह अनुभव होने लगा कि इस प्रकार के शासन से नरेशों का शासन प्रबंध कहीं अच्छा था।

आजकल रियासतों की सबसे जटिल समस्या अच्छी सरकार की समस्या है। रियासतों में राजनैतिक साइनबोर्ड अवश्य बदल गया हैं; नरेशों के स्थान पर अब उन क्षेत्रों में लोक प्रिय सरकारें हैं, परन्तु ये सरकारें ऐसी हैं जो रियासती जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। उनमें विधान सभाओं का संगठन नहीं किया गया है। हैदराबाद व पैप्सू संघ में तो पूर्णत: लोक प्रिय मन्त्रि मंडल भी नहीं बनाये गये हैं। वहाँ की राज्यसत्ता अभी तक केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधियों के हाथों में है।

रियासती संघों को छोड़कर जो देशी राज्य चीफ़ कमिश्नर के प्रांत बना दिये गये हैं वहाँ की प्रजा की दशा और भी अधिक चिंतनीय है। इन राज्यों में न लोकप्रिय मन्त्रि मंडल हैं और न किसी प्रकार की प्रतिनिधि संस्थाएं। शासन की समस्त शक्ति केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि चीफ़ कमिश्नरों के हाथ में है। नव संविधान के अन्तर्गत् भी इन राज्यों को स्वायत्त शासन के अधिकार नहीं दिये गये हैं। उनकी जनता को राजनैतिक अधिकारों से वंचित रक्खा गया है। अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि उन्हें जो अधिकार प्राप्त हुए हैं वह १९१९ के गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट के आधीन अधिकारों के समान हैं।

रियासतों में अनुभव प्राप्त उच्च सरकारी कर्मचारियों की भी भारी कमी है। इस प्रकार के अधिकतर कर्मचारी केन्द्रीय सरकार द्वारा ही भेजे गये हैं। परन्तु जब तक रियासती जनता में से स्वयं इस प्रकारके अनुभव प्राप्त

सरकारी कर्मचारियों का निर्माण नहीं होता तब तक उन क्षत्रों का शासन प्रबंध नहीं सुधर सकता ।

रियासतों के शासन प्रबंध को सुधारने के लिये आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में शीघ्र ही (१) विधान सभाओं का संगठन किया जाय जिससे रियासती प्रजा को प्रजातन्त्रात्मिक संस्थाओं की कार्य शैली का शीघ्र अनुभव प्राप्त हो सके, (२) जनता में शिक्षा के प्रसार के लिए शिक्षा संस्थाओं की उन्नति की व्यवस्था की जाय, (३) लोकमत को जागृति व सचेत बनाने के लिये ऐसे राजनैतिक दलों का निर्माण किया जाय जिनका आधार सांप्रदायिकता की भावना का प्रचार न हो, (४) रियासती जनता में से प्रतियोगिता के आधार पर उच्च सरकारी कर्मचारियों की भरती का प्रबंध किया जाय, तथा अंत में (५) रियासतों के न्याय विभाग को आधुनिक ढ़ंग पर संगठित करने के लिये उनमें अत्यंत योग्य एवं निष्पक्ष व्यक्तियों की नियुक्ति की जाय ।

इन्हीं सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हमारे नव संविधान में प्रथम दस वर्षों के लिये, रियासती संघों को आदेश दिया गया है, कि वह रियासत मन्त्रालय के आधीन रह कर कार्य करें तथा उसकी आज्ञाओं को मानें । इस संबंध में संविधान की विस्तृत धाराओं का वर्णन हम पहिले ही कर चुके हैं ।

(४) आर्थिक समस्या--रियासती संघों की चौथी समस्या उनकी प्रजा की गरीबी की समस्या है । अंग्रेजों के काल में रियासती जनता का जिस प्रकार उनके नरेशों तथा सामंतों द्वारा निर्दयतापूर्वक शोषण किया जाता था उसकी कहानी सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते है । इन रियासतों में यदि एक ओर राजा और उसके कुछ निकट संबंधी जागीरदार अथाह धन और ऐश्वर्य की आनंदमयी सरिता में गोते लगाते थे, तो दूसरी ओर उनकी प्रजा निर्धनता, जहालत, आश्रयहीनता तथा भूख और प्यास की अग्नि में धधक धधक कर अपने प्राणों की बलि देती थी । इन रियासतों में मध्यम वर्ग (Middle Class) जैसी जनता की कोई श्रेणी ही नहीं थी । या तो एक ओर बड़े बड़े महलों या राज प्रासादों में रहने वाले कुछ

मुट्ठी भर सामन्त थे या दूसरी ओर भूख और प्यास से त्रस्त, टूटे फूटे झोपड़ों में रहने वाली, असंख्य जनता थी। जनता के यह भोले भाले घटक अपने नरेशों की धन पिपासा को शांत करने के लिये ही काम करते थे। उनकी कमाई का अधिकतर भाग अपने राजाओं के लिये भोग विलास की सामग्री एकत्रित करने के काम में ही आता था। अधिकतर रियासतों में न किसी प्रकार के आधुनिक उद्योग धन्धे थे, न बड़ी बड़ी व्यापार की मण्डियाँ। इन क्षेत्रों की ९५ प्रतिशत जनता कृषि के ही सहारे अपना निर्वाह करती थी। स्वभावतः जनता की आर्थिक दशा हीन थी। और वह सामन्तों के जुल्म और अत्याचार के नीचे इतनी दबी हुई रहती थी कि उसे कभी अपने चारों ओर देख कर अपनी दशा को सुधारने का विचार ही न आता था।

आज रियासतों के एकीकरण के पश्चात् उनके शासकों के सन्मुख अपनी प्रजा की आर्थिक दशा सुधारने की सबसे कठिन समस्या है। हमारी रियासती जनता को स्वतन्त्रता के वातावरण का उस समय तक कोई अहसास नहीं हो सकता जब तक उसे खाने के लिये दो समय भोजन तथा तन ढाँपने के लिये कपड़े न मिलें। हमारे लोकप्रिय रियासती मन्त्रि मंडलों को इसलिए चाहिये कि वह अपनी जनता की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये आधुनिक कृषि, उद्योग, तथा व्यापार के तरीकों को प्रोत्साहन दें।

(५) प्रादेशिक भक्ति की समस्या—अंत में हमारे देशी राज्यों की प्रजा को अपने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना है। अभी तक रियासतों की जनता सहस्रों वर्षों से एक ही प्रकार के राजतन्त्रीय शासन प्रबंध के आधीन रह कर, यह न समझ पाई है कि प्रजातन्त्र शासन उनके अपने राज्य प्रबंध का नाम है। राजतन्त्रीय शासन कभी प्रजातन्त्र शासन से अच्छा नहीं हो सकता, कारण उसमें देश की असंख्य जनता को अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर नहीं मिलता। आज कितने ही देशी राज्यों के व्यक्ति अपने पुराने नरेशों की याद करते और कहते हैं कि ऐसे जनराज्य से तो हमारा पहिला राज्य ही अच्छा था, वह यह भूल जाते हैं कि अच्छा शासन स्वशासन का स्थान नहीं ले सकता। आरंभ में प्रत्येक देश के

लोग ही, नई नई राज्यसत्ता अपने हाथ में आने के समय, शासन प्रबंध में त्रुटियाँ किया करते हैं। परन्तु कुछ समय पश्चात्, शिक्षित तथा जागरुक लोक मत उन्हें जनमत के हित में कार्य करने को बाध्य कर देता है।

एक और दशा में भी हमारी देशी राज्यों की जनता को अपने दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है। वह यह है कि अभी तक इन क्षेत्रों की जनता अपने आप को एक बहुत छोटी रियासत का नागरिक समझती आई है। वह उस छोटे क्षेत्र के प्रति ही अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन करती है। उदाहरणार्थ जोधपुर रियासत के व्यक्ति वृहद राजस्थान संघ में सम्मिलित होने के बाद भी यही समझते हैं कि वह जोधपुरी हैं और जोधपुर तो उनका अपना है, परन्तु बीकानेर, या उदयपुर या जैपुर नहीं। इस प्रकार की प्रादेशिक संकुचित राजभक्ति की भावना राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधक सिद्ध होती है और देश में एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण नहीं होने देती। हमारे रियासती संघों की सरकारों को इसलिये चाहिये कि वह इस प्रकार की भावना का अंत करने के लिये कोई प्रयत्न बाकी न रक्खें। कि भारतीय जन जीवन से प्रादेशिकता के इस विष को हम जितमा शीघ्र दूर कर सकें उतना अच्छा है।

भारत की ५०० रियासतों का एकीकरण करके, हमारे राष्ट्र निर्माता सरदार पटेल ने देश का जैसा हित साधन किया है, वैसा कोई एक व्यक्ति भारतीय इतिहास में आज तक नहीं कर सका। आज भारतीय राष्ट्र की मजबूत नींव रक्खी जाने का कार्य संपन्न हो चुका है। आवश्यकता अब इस बात की है कि हम इस सुदृढ़ नींव पर एक ऐसे नव समाज तथा राष्ट्र का निर्माण करें जिसकी कीर्ति विश्व के चारों कोनों में फैलती रहे और जो सदा उन्हीं सिद्धांतों का प्रतिपादन करता रहे जिनके लिए हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने अपने सारे जीवन कार्य किया था तथा जिनका प्रचार करने के लिये अंत में उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दे दी।

———

अध्याय ११

भारत में सरकारी नौकरियाँ

इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में ,नव संविधान के अन्तर्गत, हमने संघ तथा राज्यों की सरकारों के संगठन का अध्ययन किया है। परन्तु यह संगठन उस समय तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक हम सरकार के यन्त्र को चलाने वाली संस्था अर्थात् सरकारी नौकरों के संगठनका अध्ययन न करें।

स्थायी सरकारी नौकरों की प्रथा का महत्व

पिछले अध्यायों में हमने देखा है कि सरकार की नीति का संचालन करना मन्त्रियों का काम होता है। इसीलिये हम कहते हैं कि जब एक मन्त्रिमंडल के स्थान पर दूसरा मन्त्रिमंडल बन जाता है तो सरकार बदल जाती है। परन्तु मन्त्रियों द्वारा निर्धारित नीति का संचालन करना सरकारी नौकरों का काम होता है। मन्त्री स्वयं सरकार के विशाल संगठन को नहीं चला सकते। वह केवल सरकारी संगठन का नेतृत्व कर सकते हैं। मन्त्रियों तथा विधान मंडल द्वारा निर्धारित नीति को कार्य रूप में परिमित करना उन सरकारी नौकरों का काम होता है जो मन्त्रि मंडल के बदलने पर अपने स्थान का त्याग नहीं करते, वरन् जो कोई भी मन्त्रिमंडल शासनारूढ़ हो, उसकी ही आज्ञानुसार सरकारी काम को चलाते हैं और देश के विभिन्न भागों में सरकारी आज्ञाओं का पालन करते हैं।

प्रजातन्त्रीय सिद्धांत के अन्तर्गत सरकार का कार्य इसी कारण कुश-लतापूर्वक चलता है कि मन्त्रियों को उन सरकारी नौकरों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है जो अपना सारा जीवन एक ही प्रकार के कार्य में लगा कर उसमें पूर्ण रूप से दक्षता तथा अनुभव प्राप्त कर लेते हैं। यदि इस प्रकार के सर-कारी नौकरों के संगठन की व्यवस्था न होती, और मन्त्रि मंडल के परिवर्तन के साथ साथ, पुराने सरकारी नौकरों को भी अपना स्थान त्याग करना पड़ता, तो अनुभवहीन मन्त्री तथा नये सरकारी कर्मचारी देश का शासन नहीं चला सकते थे। आजकल प्रजातन्त्र शासनों के अन्तर्गत हम देखते हैं कि एक व्यक्ति जिसे शासन का कोई भी अनुभव प्राप्त नहीं होता, तथा जिसने पहिले कभी उस प्रकार का काम ही नहीं किया होता, वह भी जनता का विश्वास पात्र होने के कारण सरकार का मन्त्री बन सकता है। इंगलैण्ड की सरकार में कितने ही ऐसे व्यक्ति भारत मन्त्री बन जाते थे जिन्होंने कभी भारत को देखना तो क्या उसके विषय में कभी गूढ़ अध्ययन भी नहीं किया था। परन्तु ऐसे मन्त्री भी अपने कार्य में इस कारण पूर्ण सफलता प्राप्त करते थे कि उन्हें अपने आधीन, उन स्थाई सरकारी कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त होता था जो वर्षों तक एक ही प्रकार का कार्य करते रहने के कारण, उसमें पूर्ण रूप से दक्षता प्राप्त कर लेते थे। अच्छे, कुशल, परिश्रमी तथा ईमानदार सरकारी कर्मचारियों का संगठन, इसलिये, प्रजातन्त्र शासन की सफलता के लिये अत्यंत आवश्यक है।

अङ्गरेजों के काल में भारत में सरकारी नौकरों का संगठन

प्रजातन्त्र शासन के अन्तर्गत ही नहीं, दूसरे हर प्रकार के सरकारी संगठनों के अधीन सरकारी नौकरों की कुशल व्यवस्था की आवश्यकता होती है। निरंकुश शासनों में सरकारी नौकर ही सारे देश का शासन चलाते हैं। ऐसे राज्यों में जनता को सरकारी काम में हस्तक्षेप करने का किसी प्रकार का अधिकार नहीं दिया जाता। उसका काम केवल

राजाज्ञाओं का पालन करना होता है। इसलिये इस प्रकार की व्यवस्था में सरकारी नौकरों को अपने कार्य में और भी अधिक दक्ष होने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु इस प्रकार का सरकारी संगठन जीवात्माहीन, निरंकुश, अत्याचारी तथा जनता से अत्यधिक दूर रहकर कार्य करता है। इसका एक मात्र उद्देश्य राज्य में शांति और सुव्यवस्था (Law and order) कायम रखना रह जाता है। वह जनता की सेवा तथा उत्थान का कार्य नहीं करता। जनता को किसी प्रकार की राजनैतिक शिक्षा प्राप्त नहीं होती, उसमें आत्म विश्वास का निर्माण नहीं होता तथा उसका नैतिक स्तर निरंतर गिरता रहता है।

नौकरशाही (Bureaucracy)—अंग्रेजों के काल में इसी प्रकार का सरकारी संगठन हमारे देश में विद्यमान था। उस सरकारी संगठन को हम नौकरशाही या ब्यूरोक्रैसी के नाम से संबोधित करते थे। इस संगठन के अन्तर्गत् सरकारी नौकर अपने आपको जनता का सेवक नहीं उसका स्वामी समझते थे। जनता स्वयं सरकारी अधिकारियों को अपना 'माई-बाप' कह कर संबोधित करती थी। सरकारी नौकर जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे। वह अंग्रेज शासकों की गुलामी करते थे परन्तु भारतीय जनता को हर प्रकार से कुचलते थे। इस प्रकार का सरकारी संगठन अत्यंत अनुन्नतशील तथा भावशून्य होता था और वह एक लोहे की, जीवात्मा हीन, मशीन के समान एक बंधी हुई लकीर के आधार पर कार्य करता था। उसमें विचार शक्ति का अभाव था, वह जनता का हित चिंतन नहीं कर सकता था।, वह अत्याचार पूर्ण उपायों से जनता का शोषण तथा उसका दमन करता था।

इंडियन सिविल सर्विस—अंग्रेजों के काल में इस प्रकार के भारतीय सरकारी संगठन की द्योतक हमारी 'इण्डियन सिविल सर्विस' थी। इस सर्विस के सदस्य भारत सरकार द्वारा नहीं वरन् इंगलैण्ड में 'भारत मन्त्री' द्वारा

भर्ती किये जाते थे। इस सर्विस के अधिकतर सदस्य अंग्रेज होते थे और उन्हीं को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त किया जाता था। शिक्षा के दौरान में इन अधिकारियों को केवल यह बताया जाता था, कि वह किस प्रकार, भारत में वहाँ की जनता से दूर रह कर, देश में शांति व सुव्यवस्था बनाये रखने के कार्य में सफल हो सकते हैं। उन्हें इस बात की शिक्षा नहीं दी जाती थी कि वह जनता की किस प्रकार अधिक से अधिक सेवा कर सकते हैं। इसीलिये आज भी हम यह देखते हैं कि इस पुरानी सर्विस के जो लोग भी सरकारी नौकरियों में शेष हैं, वह भारत के परिवर्तित वातावरण में भी, उसी प्रकार व्यवहार करते हैं जैसे वह जनता के सेवक नहीं, उसके स्वामी हों। उनमें दंभ, घमंड तथा झूठे स्वाभिमान के अधिक चिन्ह देखने को मिलते हैं। वह साधारण जनता के साथ रहना अथवा उनसे संपर्क बढ़ाना पसंद नहीं करते। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों, यहाँ तक कि मन्त्रियों को भी, वह घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वह समझते हैं कि देश का शासन चलाने की एकमात्र योग्यता केवल उनमें है, और जनता के चुने हुए प्रतिनिधि मूर्ख, अनुभवहीन तथा अव्यवहारिक हैं।

जहाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'इंडियन सिविल सर्विस' के लोगों में उपरोक्त सभी बुराइयाँ हैं, वहाँ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि शासन के कार्य में यह व्यक्ति अत्यंत ही निपुण तथा दक्ष हैं। अंग्रेजों के काल में इन लोगों को इस प्रकार की उच्च शिक्षा दी जाती थी कि वह अपने पाठ्य क्रम को पूरा करने के पश्चात् ,सरकारी काम में हर प्रकार से कुशल हो जाते थे। उनकी भरती एक अत्यंत कठिन परीक्षा तथा प्रतियोगिता के आधार पर की जाती थी। इस परीक्षा में केवल वही व्यक्ति उत्तीर्ण हो पाते थे जो अत्यंत कुशाग्र बुद्धि तथा परिश्रमी होते थे। इंगलैण्ड के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष से जिसमें उस समय पाकिस्तान भी सम्मिलित था, केवल तीन या चार व्यक्ति प्रति वर्ष इंडियन सिविल सर्विस के लिये चुने जाते थे। स्वभावतः यह व्यक्ति ऐसे होते थे जिनको सारे देश का मथा हुआ 'मस्तिष्क' कहा जा सकता था।

इंडियन सिविल सर्विस का इतिहास—कुछ अंशों में, भारत में राज-नैतिक चेतना के संचार का मूल कारण, हम इंडियन सिविल सर्विस के साथ जोड़ सकते हैं ।

जिस समय, सन् १८८५ तक, भारत में राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना भी नहीं हुई थी और जनता स्वराज्य के नाम से भी अनभिज्ञ थी, उस समय इंडियन सिविल सर्विस में भारतीयों की भर्ती का प्रश्न लेकर ही कुछ व्यक्तियों ने सारे देश में राजनैतिक चेतना का संचार किया था। इस सर्विस का संगठन ईस्ट इण्डिया कंपनी के काल में उस समय हुआ था जब अंग्रेजों को भारत का शासन चलाने के लिये अत्यंत योग्य तथा अनुभवी अधिकारियों की आवश्यकता थी। आरंभ में 'कंपनी' के डाइरेक्टरों के रिश्तेदार अथवा कृपा पात्र ही इस सर्विस में भर्ती किये जाते थे, परन्तु ब्रिटिश सरकार को आगे चल कर जब यह अनुभव हुआ कि किसी दूसरे देश में शासन चलाने के लिये लालची, बेइमान तथा अयोग्य अधिकारियों से काम नहीं चलता, और इसके लिये अत्यंत ही योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है, तो उसने सन् १८५८ में, प्रतियोगिता के आधार पर, इंडियन सिविल सर्विस में ब्रिटिश यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थियों को भर्ती करने का निश्चय किया। इन विद्यार्थियों के शिक्षण के लिये 'हेलीबरी' में एक ट्रेनिंग कालेज भी खोल दिया गया ।

आरंभ में भारतीय विद्यार्थियों को इस सर्विस में भर्ती होने से रोकने के लिये उनके मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित की गईं। कहा गया कि केवल इंगलैण्ड में पढ़ने वाले वही भारती इस सर्विस की परीक्षा में बैठ सकेंगे जिनकी आयु १९ वर्ष से कम होगी। उन्नीसवीं शताब्दी का भारत आज से बहुत भिन्न था। उस समय विदेशी यात्रा धर्म विरोधी समझी जाती थी। तिस पर, छोटी आयु में अपने बच्चों को समुद्र पार भेजने के लिये कोई भी परिवार तैयार नहीं होता था। परिणाम यह हुआ कि भारतीय विद्यार्थियों के अंगरेज विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक कुशाग्र बुद्धि होने

पर भी, सन् १८७० तक केवल एक ही भारतीय इंडियन सिविल सर्विस में भर्ती हो सका ।

भारतवासियों के इंडियन सिविल सर्विस में भर्ती किये जाने के इसी प्रश्न को लेकर, देश के नेताओं ने, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आंदोलन किया। उनकी माँग थी कि भारतवासियों को बढ़ते हुए अनुपात से इस सर्विस में भर्ती किया जाय, उनके प्रवेश के लिये इंगलैण्ड के अतिरिक्त भारत में भी प्रतियोगिता परीक्षा ली जाय, तथा भर्ती के पश्चात उनको उच्च से उच्च सरकारी पद प्राप्तकरने के योग्य समझा जाय । सन् १८८५ में राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना के पश्चात् यह आँदोलन और भी अधिक शक्तिशाली हो गया । काँग्रेस के तत्वावधान में कई प्रतिनिधि मंडल इंगलैण्ड भेजे गये। इन सब आंदोलनों का परिणाम यह हुआ कि यद्यपि सन् १९१९ के मौंटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों के पश्चात तक, ब्रिटिश सरकार ने भारत में इंडियन सिविल सर्विस की भरती के लिये अलग परीक्षा का आयोजन नहीं किया, परन्तु फिर भी उसने एक बढ़ते हुए अनुमान से इंडियन सिविल सर्विस में भारत-वासियों की भरती के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया। १९१९ के पश्चात आई० सी० एस० की परीक्षा भी भारत में होने लगी, यद्यपि इस परीक्षा के परिणामों के फलस्वरूप बहुत थोड़े से ही व्यक्ति इस सर्विस में भर्ती किये जाते थे ।

ली कमीशन की नियुक्ति---सन् १९२३ में ब्रिटिश सरकार ने इम्पीरियल सर्विस के समस्त संगठन के विषय में विस्तृत रिपोर्ट देने के लिये, एक विशेष कमीशन की नियुक्ति की । इस कमीशन के सभापति लार्ड ली थे । कमीशन ने अपनी सिफारिशों में कहा कि इम्पीरियल सर्विसों अर्थात् आई० सी० एस०, आई० पी० और आई० एम० एस० में भारतीयों का अनुपात कुछ वर्षों में, (१० से लगाकर २५ वर्षों में) धीरे धीरे बढ़ाकर ५० प्रति-शत कर दिया जाय । दूसरी सरकारी नौकरियों के विशय में भी कमीशन ने अपने सुझाव रक्खे । उसने कहा कि भारत की समस्त नौकरियों को केन्द्रीय तथा प्रांतीय भागों में बाँट दिया

जाय। प्रत्येक विभाग की नौकरी के तीन भाग किये जाँय—(१) केन्द्रीय या प्रांतीय सुपीरियर सर्विस, (२) सबार्डिनेट सर्विस और (३) लोअर सबार्डिनेट सर्विस। इम्पीरियल सर्विसों अर्थात् आई० सी० एस०, आई० पी० एस०, तथा आई० एम० एस० के विषय में कमीशन ने कहा कि इसकी भर्ती भारत मन्त्री ही द्वारा की जानी चाहिये तथा इनके ऊपर केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों का किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रखना चाहिये ।

ली कमीशन की सिफारिशों ने भारत में अत्यधिक राजनैतिक असंतोष उत्पन्न कर दिया, कारण जनता तो समझती थी, कि मांटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों के पश्चात् ब्रिटिश सरकार उच्च सरकारी नौकरियों पर से भी अपना नियन्त्रण हटा लेगी, और इम्पीरियल सर्विस के सदस्य जनता के चुने हुए मन्त्रियों के आधीन रह कर काम कर सकेंगे। परन्तु ब्रिटिश सरकार जानती थी कि ब्रिटिश इम्पीरियल सर्विस के सदस्यों की राजभक्ति तथा सहयोग के कारण ही भारत में उसका शासन कायम है।* इसलिये किसी मूल्य पर भी वह इन नौकरियों के ऊपर अपना नियन्त्रण छोड़ने के लिये प्रस्तुत नहीं थी ।

सन् १९३५ के विधान में भी भारत मन्त्री ने इम्पीरियल सर्विस के ऊपर अपना ही अधिकार कायम रक्खा। कैसे आश्चर्य की बात थी कि जनता के प्रतिनिधि मन्त्रियों की कुर्सियों पर बैठें और शासन की नीति का संचालन करें, परन्तु उनके नीचे कार्य करने वाले उच्च सरकारी कर्मचारी मन्त्रियों के प्रति नहीं वरन् एक विदेशी सरकार के प्रतिनिधि के प्रति उत्तरदाई हों। संसार के राजनैतिक इतिहास में इस प्रकार का प्रबंध अद्वितीय था। परन्तु ब्रिटिश सरकार भारतवासियों के हाथ में वास्तविक शासन सत्ता सौंपना नहीं चाहती थी। वह तो केवल अन्तर्राष्ट्रीय लोकमत को अपने पक्ष में करने के लिये एक इस प्रकार का ढकोसला संसार के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहती थी जिसमें बाहर से यह प्रतीत हो कि भारतवर्ष में सरकार की समस्त सत्ता वहाँ की जनता के हाथ में है परन्तु वास्तव में वह स्वयं उस देश की भाग्य विधाता हो ।

अगस्त सन् १९४७ अर्थात् उस समय तक जब कि ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों के हाथ में समस्त शासन सत्ता को हस्तारित नहीं कर दिया, हमारे देश में इम्पीरियल-सर्विसों के संबंध में यही व्यवस्था कायम रही। इस व्यवस्था में सब से बड़ा दोषयह था कि इस इम्पीरियल-सर्विस के सदस्य मन्त्रियों द्वारा निर्धारित शासन की नीति का उचित रूप से पालन नहीं करते थे और उनकी इस अवज्ञा के लिये मन्त्रीगण उनके विरुद्ध किसी प्रकार की अनुशासन संबंधी कार्यवाही भी नहीं कर सकते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इसीलिये सर्वप्रथम भारत सरकार ने, यह निश्चय किया कि इम्पीरियल सर्विसों के ऊपर उसका वही अनुशासन हो, जो उसे दूसरी सर्विसों के ऊपर प्राप्त है। बहुत से अंग्रेज, इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य ,जो इस परिवर्तित वातावरण में कार्य करना नहीं चाहते थे, भारत सरकार ने उन्हें ब्रिटिश सरकार से एक समझौता करके, पेंशन तथा हानि पूर्ति (Compensation) की रकम देकर बिदा कर दिया। इस प्रकार सन् १९४७ में लगभग ५०० अंग्रेज इम्पीरियल-सर्विसों से पृथक कर दिये गये। दूसरे सिविल सर्विस के सदस्यों से, भारत सरकार ने एक विशेष प्रबंध पत्र पर हस्ताक्षर करा लिये ,जिसके अन्तर्गत उन्होंने यह स्वीकार किया कि वह भारत मन्त्री के स्थान पर भारत सरकार के प्रति उत्तरदाई होंगे और उसके अनुशासन के नीचे रह कर कार्य करेंगे।

इस प्रकार भारतीय शासन की सबसे दूषित प्रथा, जिसके अन्तर्गत सरकार के कुछ नौकर भारतीय जनता का नमक खाकर भी एक दूसरी सरकार के प्रति उत्तरदाई थे, तथा उसी की नीति को भारत में कार्यान्वित करते थे, का अन्त कर दिया, और देश के समस्त सरकारी कर्मचारियों को एक से ही नियमों के आधीन, भारत सरकार के अनुशासन में ले लिया गया।

असैनिक नौकरियाँ ((Civil Services)

भारत की सरकारी नौकरियों का वर्तमान संगठन

अखिल भारतीय नौकरियाँ—'इंडियन सिविल सर्विस' के स्थान पर

अब भारत में एक दूसरी अखिल भारतीय सर्विस का संगठन किया गया है जिसका नाम 'इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस' है। इस सर्विस के सदस्य उसी प्रकार के पद प्राप्त करते हैं जैसे पहिले इंडियन सिविल सर्विस के सदस्यों को मिलते थे। इंडियन पुलिस सर्विस का संगठन पहिले जैसा ही रक्खा गया है। इन दोनों सर्विसों के सदस्य केन्द्रीय सरकार के अधीन 'यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन' द्वारा भरती किये जाते हैं, परन्तु वह प्रान्तों में रह कर उनकी सरकारों के अधीन काम करते हैं। इस प्रकार का आयोजन इस दृष्टि से किया गया है जिससे भारत में शासन प्रबंध की दृष्टि से एकता बनी रहे, और राज्यों में कार्य करने वाले बड़े बड़े उच्च सरकारी कर्मचारी केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में रहें तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करें। एक तीसरी नई अखिल भारतीय सर्विस, इंडियन फोरेन सर्विस के नाम से संगठित की गई है जिसके सदस्य भारत के विदेशों में स्थित दूतावासों में काम करते हैं।

उपरोक्त तीनों अखिल भारतीय सर्विसों के अतिरिक्त निम्न सर्विसों के सदस्य भी केन्द्रीय सरकार द्वारा ही भरती किये जाते हैं तथा उन्हें भी देश के किसी भी भाग में कार्य करने के लिये बाध्य किया जा सकता है :—

(1) Indian Audit and Accounts Service
(2) The Military Accounts Department
(3) The Indian Railway Accounts Service
(4) The Indian Customs and Excise Service
(5) The Income tax officers (Class I, Grade II) Service
(6) The Transportation (Traffic) and Commercial Departments of the Superior Revenue Establishment of State Railways.

इन सभी नौकरियों में भरती के लिये, केन्द्रीय सरकार के आधीन, यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन, एक संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा का

आयोजन करती है। इन परीक्षा के परिणामों के फलस्वरूप उपरोक्त सभी नौकरियों के लिये सदस्य छाँटे जाते हैं तथा उन्हें देश के विभिन्न भागों में कार्य करने के लिये भेज दिया जाता है।

केन्द्रीय सरकार के आधीन दूसरी नौकरियाँ—उपरोक्त नौकरियों के ऐंतिरिक्त सरकार के अधीन विभिन्न महकमों में काम करने के लिये चार प्रकार के सरकारी नौकर रक्खे जाते हैं। इन सरकारी नौकरों को क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी के सरकारी नौकर (Class I, II, III or IV Services) कहा जाता है। चतुर्थ श्रेणी के सरकारी नौकरों की सूची में चपरासी, तथा फराश इत्यादि गिने जाते हैं। तृतीय श्रेणी में दफ़्तरों में काम करने वाले क्लर्क, टाइपिस्ट, स्टैनो, ऐसिस्टेंट तथा छोटे दरजे के सरकारी अफसर आते हैं। इसके अतिरिक्त प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के अफसर वह व्यक्ति होते हैं जो सरकार के अधीन अत्यंत उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर कार्य करते हैं तथा जिनमें से अधिकतर को 'गजटेड अफसर' की उपाधि दी जाती है।

केन्द्रीय सरकार के आधीन मुख्य रूप से निम्न सर्विसों के लोग काम करते हैं:—

केन्द्रीय सैक्रेटेरियेट सर्विस, डाकखाने या यातायात संबंधी सर्विस, कस्टम्स सर्विस, केन्द्रीय एक्साइज सर्विस, इन्कम टैक्स सर्विस, अखिल भारतीय रेडियो सर्विस, इंडियन स्टेट्स सर्विस तथा रक्षा संबंधी सर्विस।

भारत के नये संविधान के चौदहवें भाग में केन्द्रीय व राज्य की सरकारों के कर्मचारियों को कुछ विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं। उदाहरणार्थ संविधान की ३१२ वीं धारा में कहा गया है कि किसी सरकारी' कर्मचारी को तब तक उस के पद से अलग नहीं किया जायगा जब तक, उसे उन कारणों से अवगत न कराया जाय जिनकी वजह से उसके विरुद्ध इस प्रकार की कार्यवाही की जा रही है। साथ ही उसे अपील का अधिकार दिया गया है। आगे चल कर संविधान में कहा गया है कि कोई भी सरकारी कर्मचारी उसे नियुक्त करने वाले अधि-

कारी से निचले किसी भी अधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जायगा। इंडियन सिविल सर्विस के उन सदस्यों के अधिकारों के रक्षा के लिए जिनकी भर्ती स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहिले भारत मन्त्री द्वारा की जाती थी, संविधान में कहा गया है कि उनके वेतन, छुट्टी, क्षति पूर्ति, तथा अनुशासन संबंधी अधिकार पहिले जैसे ही बने रहेंगे। भारत सरकार के समस्त कर्मचारियों को मत प्रदान करने के उसी प्रकार के अधिकार प्राप्त होंगे जैसे दूसरे नागरिकों को, परन्तु उन्हें किसी राजनैतिक दल का सदस्य नहीं होने दिया जायगा। ऐसी रोक प्रत्येक देश में ही लगाई जाती है जिससे सरकारी नौकर राजनीतिकी दल-दल में न फंसें और जो भी राजनैतिक दल शासनारूढ़ हो उसकी ही सेवा करते रहें।

'इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस' तथा 'इंडियन पुलिस सर्विस' के अधिकारियों को छोड़ कर राज्यों में कार्य करने वाले और शेष सारे सरकारी कर्मचारी राज्यों की सरकारों द्वारा भरती किये जाते हैं, तथा वे उसी के अनुशासन के अधीन रहकर कार्य करते हैं। १९३५ के विधान के अधीन 'इंडियन मैडिकल सर्विस' के सदस्य भी भारत मन्त्री द्वारा नियुक्त किये जाते थे परन्तु नये विधान के अन्तर्गत यह सर्विस प्रांतीय कर दी गई है अर्थात् इसके सदस्य अब राज्यों की सरकारों द्वारा ही भर्ती किये जाते हैं।

राज्य की सर्विसों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) प्रांतीय सर्विस, (२) सबार्डिनेट सर्विस और (३) लोअर सबार्डिनेट सर्विस। प्रांतीय सर्विस में निम्न नौकरियाँ सम्मिलित हैं:—

(१) प्रांतीय सिविल सर्विस—जिनके सदस्य कार्यकारिणी तथा न्याय संबंधी महकमों में काम करते हैं।

(२) प्रांतीय पुलिस सर्विस—जिसके सदस्य डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट पुलिस इत्यादि के पद पर कार्य करते हैं।

(३) प्रांतीय शिक्षा सर्विस (Provincial Education Service)

(४) प्रांतीय इंजीनियरिंग सर्विस (Provincial Engineering Service)

(५) प्रांतीय स्वास्थ्य सर्विस (Provincial Health Service)

(६) प्रांतीय चिकित्सा संबंधी सर्विस (Provincial Medical-Service)

(७) प्रांतीय कृषि सर्विस (Provincial Agricultural Service)

(८) प्रांतीय पशु चिकित्सा सर्विस (Provincial Veterinary Service)

(९) प्रांतीय वन सर्विस (Provincial Forest Service)

इन सर्विस के सदस्यों की नियुक्ति पब्लिक सर्विस कमीशन की सिफारिशों के आधार पर राज्यपाल द्वारा की जाती है। इस सर्विस के सदस्य, प्रांतों में, प्रथम श्रेणी (Class I) के सरकारी नौकर कहे जाते हैं।

इस सर्विस के अधिकारियों के नीचे सबार्डिनेट सर्विस के सदस्य काम करते हैं जिनमें हम तहसीलदार, नायब तहसीलदार, थानेदार, इन्स्पेक्टर पुलिस, एक्साइज इन्स्पेक्टर, सब असिस्टेंट सर्जन, सरकारी महकमे के इस्पेक्टर, कृषि इन्स्पेक्टर इत्यादि के नाम ले सकते हैं।

सबार्डिनेट सर्विस के सदस्यों के अधीन अनेक क्लर्क, स्टैनों, असिस्टेंट इत्यादि काम करते हैं। यह सदस्य लोअर सबार्डिनेट सर्विस के सदस्य कहलाते हैं। इन सब की नियुक्ति भी पब्लिक सर्विस कमीशनों की सिफारिशों के आधार पर की जाती है। कुछ टेकनिकल पदों पर सरकार के विभिन्न विभाग भी स्वयं सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकते हैं। परन्तु इनके लिये पब्लिक सर्विस कमीशन की स्वीकृति अनिवार्य होती है।

राज्यों के अन्तर्गत काम करने वाले सरकारी नौकरों को भी प्रायः उसी प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं जैसे केन्द्रीय सरकार के आधीन काम करने वाले सरकारी नौकरों को। अन्तर केवल इतना है कि राज्य की सरकारें केन्द्र की अपेक्षा अपने कर्मचारियों को कम बेतन देती हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है, कारण प्रांतों में खर्चा कुछ कम होता है और वहाँ जीवन की आवश्यक वस्तुएं सस्ती तथा आसानी से मिल जाती हैं।

लोक सेवा आयोगों (Public Service Commissions) का संगठन

हमारे नये संविधान की एक विशेषता यह है कि राज्यों तथा संघ सरकार के अन्तर्गत, सरकारी नौकरों की भर्ती के लिये, ऐसे लोक सेवा आयोगों (Public Service Commissions) का संगठन किया गया है, जो कार्यकारिणी से स्वतन्त्र रह कर, प्रतियोगिता के आधार पर, सरकारी नौकरों की भर्ती का कार्य करेंगे। शासन प्रबंध की कुशलता तथा निष्पक्षता के विचार से इस प्रकार का प्रबंध प्रत्येक ही प्रगतिशील देश में पाया जाता है। यदि कार्यकारिणी के हाथों में ही सरकारी नौकरों की भर्ती का काम सौंप दिया जाय तो इससे शासन में शिथिलता आ जाती है, कारण इस प्रकार के प्रबंध में केवल वही लोग सरकारी पद प्राप्त कर सकते हैं जो उच्च सरकारी अधिकारियों के संबधी अथवा मित्र हों। 'लोक सेवा आयोग' प्रतियोगिता तथा परीक्षाओं के आधार पर सरकारी कर्मचारियों की भर्ती करते हैं, और यद्यपि इस प्रकार के प्रबंध में भी बहुत से अयोग्य तथा सिफारिशी व्यक्ति सरकारी नौकरी प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु फिर भी दूसरे हर प्रकार के आयोजनों से यह प्रबंध अच्छा है,। 'लोक सेवा आयोगों' के कार्य में अधिक कुशलता तथा निष्पक्षता लाने के लिये आवश्यक है कि उनके सदस्य अत्यंत ईमानदार, योग्य तथा चरित्रवान हों, सरकारी नौकरों की भर्ती केवल भेंट (Selection by interview) के आधार पर न की जाय, परीक्षार्थियों की योग्यता की जाँच के लिये तरह तरह के मनोवैज्ञानिक अनुभव (Psychological Experiments) काम में लाये

जाँय, तथा सरकार के लिये लोक सेवा आयोग की सिफारिशों के आधार पर सरकारी नौकरों की नियुक्ति करना अनिवार्य बना दिया जाय। हमारे देश में अभी तक 'लोक सेवा आयोग', केवल प्रतियोगिता के आधार पर, हर प्रकार के सरकारी नौकरों की भर्ती नहीं करते। कितने ही सरकारी कर्मचारी केवल ५-६ मिनट की 'कमीशन' के सम्मुख भेंट के पश्चात् उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त कर दिये जाते हैं। उनकी योग्यता की परीक्षा के लिये किसी प्रकार के मनोवैज्ञानिक उपाय काम में नहीं लाये जाते। आशा है नव संविधान के अन्तर्गत संगठित हमारे 'लोक सेवा आयोग' इन दोषों को शीघ्र दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

नव संविधान में, संघ सरकार के अन्तर्गत सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिये अलग तथा राज्यों में उनके सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिये अलग, लोक सेवा आयोगों का संगठन किया गया है।

संविधान की ३१५ वीं धारा में कहा गया है कि भारत में संघ सरकार तथा राज्यों की सरकारों के लिये अलग लोक सेवा आयोग होंगे, परन्तु दो या दो से अधिक राज्यों के विधान मंडल संघ सरकार से यह प्रार्थना कर सकेंगे कि उनके लिये एक संयुक्त 'लोक सेवा आयोग' बना दिया जाय। 'संघ लोक सेवा आयोग' भी राज्यों की सरकारों के लिये, उनके राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की प्रार्थना पर, उस राज्य की सब अथवा किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कार्य करना स्वीकार कर सकेगा।

लोक सेवा आयोगों के सदस्यों की नियुक्ति—लोक सेवा आयोगों के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति, यदि वह संघ आयोग या संयुक्त आयोग है, तो राष्ट्रपति द्वारा, और यदि वह राज्य आयोग है तो राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा, की जाती है। इन सदस्यों में आधे सदस्य ऐसे होते हैं जो कम से कम दस वर्ष तक केन्द्रीय अथवा प्रांतीय सरकारों के नीचे कार्य कर चुके हों।

कार्य अवधि—आयोगों के सदस्यों की कार्य अवधि ६ वर्ष निश्चित

की गई है, परन्तु इससे पहिले भी ,कोई सदस्य, यदि वह संघ आयोग का सदस्य है तो ६५ वर्ष की आयु होने पर, और यदि वह राज्य आयोग का सस्दय है तो ६० वर्ष की आयु होने पर, अपने पद से अलग किया जा सकेगा । एक बार से अधिक कोई भी व्यक्ति आयोगों की सदस्यता के लिये मनोनीत न हो सकेगा ।

आयोगों के सदस्य अपने पद से केवल उस समय हटाए जा सकेंगे जब उनके विरुद्ध कदाचार का आरोप हो और उस आरोप की पूरी जाँच देश की उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) द्वारा कर ली जाय। इस प्रकार की जाँच के पश्चात यदि राष्ट्रपति यह समझें कि कोई सदस्य वास्तव में कदाचार का दोषी है तो वह उसे उसके पद से हटा सकेंगे। राज्यपालों अथवा राजप्रमुखों को सदस्यों के विरुद्ध इस प्रकार की कार्यवाही करने का अधिकार नहीं होगा।

सदस्य संख्या—आयोगों के सदस्यों की संख्या ,यदि वह संघ आयोग है तो राय्ट्रपति द्वारा और यदि वह राज्य आयोग है तो राज्यपाल अथवा राजप्रमुख द्वारा, निश्चित की जाती है। सदस्यों के वेतन तथा नौकरी की दूसरी शर्तों का निश्चय भी वही करते हैं। आजकलसंघ आयोग में ६ सदस्य हैं।

सदस्यता में बाधक शर्ते—आयोगों के सदस्यों तथा अध्यक्षों के संबंध में संविधान में कुछ कड़ी शर्तें रक्खी गई हैं। उदाहरणार्थ विधान में कहा गया है कि :—

(१) कोई भी सदस्य एक बार से अधिक उसी पद के लिये मनोनीत न किया जा सकेगा।

(२) संघ आयोग का अध्यक्ष अपनी पदाविधि की समाप्ति पर संघ सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार के आधीन किसी प्रकार की नौकरी न कर सकेगा ।

(३) अपनी अवधि की समाप्ति पर किसी राज्य के लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष, संघ आयोग का सदस्य, अथवा अध्यक्ष, या किसी दूसरे राज्य

के आयोग का अध्यक्ष हो सकेगा, परन्तु वह संघ अथवा उसके अतर्न्गत राज्यों की सरकारों के अधीन और किसी प्रकार की नौकरी न कर सकेगा।

(४) इसी प्रकार संघ आयोग का कोई सदस्य उसी आयोग अथवा किसी राज्य के आयोग का अध्यक्ष बन सकेगा परन्तु वह और किसी प्रकार की नौकरी न कर सकेगा।

(५) राज्य आयोगों का कोई सदस्य, अपनी कार्य अवधि की समाप्ति पर, संघ आयोग का अध्यक्ष अथवा सदस्य, या किसी दूसरे राज्य के आयोग का अध्यक्ष बन सकेगा, परन्तु वह और किसी दूसरे प्रकार की नौकरी नहीं कर सकेगा।

इस प्रकार की शर्त इसलिये निश्चित की गई हैं जिससे आयोगों के सदस्य अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करके ऐसे व्यक्तियों के संबंधियों को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त न कर दें जो उन्हें रिटायर होने के पश्चात, सरकारी नौकरी का प्रलोभन दें।

आयोगों के अधिकार:–आयोगों के अधिकारों के संबंध में संविधान में कहा गया है कि प्रत्येक आयोग को, अपने अधिकार क्षेत्र में, सभी असैनिक सरकारी नौकरियों के लिये व्यक्ति भरती करने का हक़ होगा। इस प्रकार की भरती के लिये वह परीक्षाओं का आयोजन करेंगी। वह ऐसे नियम बनायेगी जिनके आधीन विभिन्न सरकारी नौकरियों के लिये व्यक्ति भरती किये जा सकें। सरकारी नौकरों की तरक्की तथा एक विभाग से दूसरे विभाग में उनकी बदली के संबंध में भी वह नियम बना-एंगी। उन्हें सरकारी नौकरों की ओर से, उनके विरुद्ध कार्यवाही किये जाने पर, अपील सुनने का भी अधिकार होगा। पैंशन, ऐसे मुकदमों में खर्च हुई रकम की माँग जो किसी सरकारी कर्मचारी को किसी पद विशेष पर कार्य करने के कारण करनी पड़ी हो, अथवा कर्तव्य पालन के समय शारीरिक अथवा मानसिक हानि होने पर पेंशन अथवा क्षति पूर्ति की माँग, तथा इसी

प्रकार के दूसरे प्रश्नों पर भी, जिनका सरकारी कर्मचारियों से संबंध होगा, कमीशनों द्वारा विचार किया जायगा। इन सब के अतिरिक्त संविधान में कहा गया है कि यदि संसद उचित समझे तो 'आयोगों' को दूसरे प्रकार के अधिकार भी प्रदान कर सकेगी ।

वार्षिक रिपोर्ट—संघ तथा राज्यों के आयोगों को, प्रति वर्ष, अपने कार्य की पूरी रिपोर्ट संसद अथवा विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत करनी होगी। इस रिपोर्ट में 'आयोग' अपनी उन सिफारिशों का भी वर्णन करेगा जिनको संघ अथवा राज्यों की सरकारों ने स्वीकार नहीं किया हो। आयोगों की रिपोर्टों पर संसद और राज्यों की विधान सभाओं को विचार करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होगा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नये संविधान में, लोक सेवा आयोगों को बहुत विस्तृत अधिकार देकर, हमारे विधान निर्माताओं ने, सरकारी नौक-रियों में भरती का एक ऐसा आयोजन किया है जो हर प्रकार से दोषरहित तथा कुशल साबित हो सके। 'आयोग' कार्यकारिणी के अधिकार क्षेत्र से उसी प्रकार स्वतन्त्र होंगे जैसे हमारी न्याय पालिका (Judiciary) है। उनके सदस्यों को सुप्रीम कोर्ट की सिफारिश के बिना पदच्युत नहीं किया जा सकेगा। उनके वेतन तथा नौकरी की दूसरी शर्तें राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल व राजप्रमुख द्वारा स्वयं निश्चित की जायंगी। सरकारी महकमों के लिये 'आयोगों' की सिफारिशों पर कार्य करना प्रायः अनिवार्य होगा। जो महकमें इन सिफारिशों पर अमल नहीं करेंगे उनकी रिपोर्ट संसद के सम्मुख प्रस्तुत की जायगी ।

किसी देश में मन्त्रिमंडल के सदस्य चाहे जितने अधिक योग्य तथा बुद्धिमान हों, सरकार की अंतिम सफलता उसके स्थाई कर्मचारियों के चरित्र पर निर्भर करती है। इसलिये आशा है कि हमारे 'लोक सेवा आयोग स्वतन्त्र भारत में ऐसे सरकारी कर्मचारियों को चुनेंगे जो हमारे देश को

गौर्वान्वित कर सकें तथा जो झूठा दंभ और स्वाभिमान त्याग कर जनता की सच्ची सेवा कर सकें ।

२ सैनिक नौकरियाँ (Defence Services)

असैनिक सरकारी कर्मचारी जहाँ किसी देश में कार्यकारिणी द्वारा निर्धारित नीति को कार्यान्वित करते हैं, वहाँ देश की सेना राष्ट्र की आंतरिक उपद्रवों तथा बाह्य आक्रमणों से रक्षा करती है। शासन के अस्तित्व तथा राष्ट्र के गौरव के लिये सेना का संगठन उतना ही आवश्यक है जितना सरकार के विभिन्न विभागों का निर्माण ।

हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहिले, सेना का संगठन, भारत की रक्षा के लिये नहीं वरन् ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिये किया जाता था। इसी कारण भारत की गुलामी के काल में सेना का सबसे अधिक उपयोग हमारे स्वतन्त्रता संग्राम को कुचलने के लिये किया गया। सेना पर व्यय, उसकी संख्या का निश्चय, उसमें ब्रिटिश सिपाहियों की भर्ती, उसका विदेशों में उपयोग—सब ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की दृष्टि से किया जाता था। यही कारण था कि हमारे देश के नेता अगस्त सन् १९४७ से पहिले सदा इसी बात की माँग किया करते थे कि भारतीय सेना का व्यय कम किया जाय तथा उसमें भारतीयकरण (Indianisation) की नीति का अवलंबन हो ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हमारे देश के सैन्य संगठन में आमूल परिवर्तन किये गये। जिस सेना में कुछ ही वर्ष पहिले प्रायः सारे ही उच्च अधिकारी अंग्रेज ही हुआ करते थे, तथा जिसमें लगभग एक लाख सिपाही भी अंग्रेज थे, आज उसी सेना का पूर्ण रूप से भारतीय तथा राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। कुछ थोड़े से उच्च सेना अधिकारियों को छोड़ कर, जिनमें से भी अधिकतर केवल वही लोग हैं जो विशेष प्रकार की टेकनिकल योग्यता रखते हैं, शेष सभी सेना अधिकारी भारतीय नियुक्त कर

दिये गये हैं। अंग्रेज अधिकारियों को केवल कुछ वर्षों के ठेके पर ही नियुक्तकिया गया है। भारतीय सेना की अंतिम अंग्रेज टुकड़ी २८ फरवरी सन् १९४८ को हमारे देश से बिदा कर दी गई।

अंग्रेजों के काल में 'सेनापति' हमारे देश की सर्वोच्च कार्यकारिणी अर्थात् वायसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के सब से प्रमुख सदस्य होते थे। उनका भारत की तीनों सेना अर्थात् जल, थल तथा वायु सेना पर पूर्ण आधिपत्य होता था। स्वतन्त्रता के पश्चात 'सेनापति' का पद रक्षामन्त्री के आधीन कर दिया गया। तथा देश की तीनों विभिन्न सेनाओं के लिये अलग अलग सेनापति नियुक्त कर दिये गये। आजकल हमारी थल सेना के सेनापति श्री करिअप्पा हैं, जल सेना के सेनापति वाइस ऐडमिरल श्री पैरी हैं, और वायुसेना के सेनापति श्री कैम्पबैन हैं।

एक तीसरा क्रांतिकारी परिवर्तन हमारे सैन्य संगठन में यह किया गया है कि अंग्रेजों के काल में हमारी सेना की भर्ती भारत की कुछ विशिष्ट सैन्य जातियों में से की जाती थी। आजकल भारत का प्रत्येक नागरिक चाहे वह किसी भी प्रांत, जाति, धर्म अथवा समुदाय से संबंध रखता हो, अपनी सेना में भरतीहोकर, उच्च से उच्च पद प्राप्त कर सकता है।

सेना का सँगठन

आजकल भारतीय सेना का सर्वोच्च अधिकारी जनता का अपना चुना हुआ प्रतिनिधि रक्षा मन्त्री होता है। वह कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में देश की रक्षा-नीति का संचालन करता है। रक्षा मन्त्री की सहायता के लिये दो सरकारी दफ़्तर होते हैं जिन्हें मिनिट्री आफ डिफैन्स तथा आर्म्ड फोर्स हैडक्वाटर के नाम से संबोधित किया जाता है। फौज के प्रत्येक विभाग का, जैसा ऊपर बताया जा चुका है, अपना एक अलग सेनापति होता है। देश की रक्षा समस्याओं पर अवि- लंब विचार करने के लिये, मन्त्रिमंडल की विशेष समिति होती है जिसे Defence Committee of the Cabinet कहा जाता है। इस कमेटी के

सदस्य प्रधान मन्त्री, उप प्रधान मंत्री, रक्षा, वित मंत्री, तथा रेल मन्त्री होते हैं। तीनों सेनाओं के सेनापति भी इस कमेटी की बैठकों में भाग ले सकते हैं। यह कमेटी सेना संबंधी देश की समस्त समस्याओं पर अंतिम विचार करती है।

रक्षा सचिवालय (Defence Ministry) सेना की नीतिसंबंधी समस्याओं पर विचार करती है। नीति का संचालन Army Headquarters द्वारा किया जाता है। इस सचिवालय के निम्न भाग होते हैं:—

1. General Staff Branch
2. Adjutant General's Branch
3. Quarter Master General's Branch
4. Master General of Ordnance Branch
5. Engineer-in-Chief's Branch
6. Military Secretary's Branch

यह विभिन्न विभाग जैसा उनके नामों से स्पष्ट है क्रमशः सैन्य नीति, सैन्य भर्ती, सेना के सामान की प्राप्ति, हथियारों इत्यादि की सप्लाई, सेना के लिये आवश्यक इमारतों तथा सड़कों इत्यादि के निर्माण एवं राष्ट्रपति की रक्षा की व्यवस्था करते हैं।

आजकल हमारे देश की सेना पर लगभग १७० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष व्यय होता है। हमारी सेना की सैन्य संख्या लगभग ५ लाख है। सेना की तीनों शाखाओं के अधिकारियों के शिक्षण के लिये देहरादून तथा पूना में Military Academy हैं। स्थाई सेना के अतिरिक्त हमारे देश में 'राष्ट्रीय केडट कोर' तथा 'प्रादेशिक सेना' (टैरीटोरियल फोर्स) का संगठन किया गया है। राष्ट्रीय केडट कोर में केवल स्कूल व कालेज के छात्र सैनिक शिक्षा ग्रहण करते हैं। प्रादेशिक सेना दूसरे नागरिकों के सैनिक शिक्षण के लिये है। इन दोनों सेनाओं के लोग सैन्य शिक्षा ग्रहण करने के

पश्चात् अपने अपने काम में लग जाते हैं और फिर केवल राष्ट्रीय संकट के समय में ही सेना में भरती होकर देश की रक्षा का कार्य करते हैं।

स्थाई सेना का वितरण हमारे देश के तीन भागों (Commands) में किया गया है। इन भागों को पश्चिमी भाग (Western Command) में पूर्वी भाग (Eastern Command), और दक्षिणी भाग) (Southern Command) कहा जाता है। प्रत्येक भाग फौज के एक जनरल के आधीन रह कर कार्य करता है।

अंग्रेजों के काल में हमारी जल तथा वायु सेना के संगठन पर अधिक जोर नहीं दिया गया, कारण अंग्रेज हमारी सेना को ब्रिटिश साम्राज्य की सेना का एक भाग ही समझते थे। इंगलैण्ड की सरकार स्वयं अपनी जल तथा वायु सेना को शक्तिशाली बनाने पर अधिक जोर देती थी, और अपने अधीन देशों में थल सेना के संगठन को अधिक महत्व प्रदान करती थी। इस प्रकार वह सारे साम्राज्य की रक्षा के लिये एक संयुक्त नीति (Integrated Policy) से काम लेती थी। भारत विभाजन से हमारी सेना की इन दोनों शाखाओं की शक्ति और भी कम हो गई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इसलिये हमारी सरकार ने जल तथा वायु सेना के संगठन पर अधिक जोर दिया। जल सेना की विभिन्न शाखाओं की ट्रेनिंग के लिये उसन विजगापट्टम, कोचीन, सोनवाला, जामनगर तथा मैसूर में स्कूल खोले। उसने हमारी जल सेना को शक्तिशाली बनाने के लिये इंगलैण्ड व अमरीका से बहुत से विध्वंसक जहाज (Destroyers) तथा युद्ध जहाज (Battle Ships) खरीदे। इसी प्रकार वायु सेना को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिये उसने बहुत से युद्धक विमान, उड़ान नौका, रक्षक विमान इत्यादि खरीदे तथा हवाई सेना की बहुत सी नई टुकड़ियाँ संगठित कीं। परन्तु अभी तक दूसरे देशों की अपेक्षा हमारी सैन्य शक्ति बहुत क्रम है। यहाँ यह समझ सेना आवश्यक है कि भारत सरकार एक बहुत बड़ी सेना रखने में विश्वास नहीं करती। हमारी सरकार साम्राज्य-बादी नीति का अवलंबन करना नहीं चाहती। वह दूसरे देशों की स्वतन्त्रता

हड़प करके अपने साम्राज्य का विस्तार देखना नहीं चाहती । वह केवल इतनी सेना रखना चाहती है जिससे वह आंतरिक विद्रोहों को दबा सके तथा दूसरे देशों के सामान्य आक्रमण से अपनी रक्षा कर सके। आजकल परमाणु तथा हाईड्रोजन बम के युग में कोई देश, चाहे उसकी सैन्य शक्ति कितनी बढ़ी चढ़ी क्यों न हो, अकेला रह कर अपनी रक्षा नहीं कर सकता । यदि हमारे देश की सरकार, आज अरबों तथा खरबों रुपया प्रतिवर्ष खर्च करके भी यह चाहे कि वह रूस अथवा अमरीका की सैन्य शक्ति का मुकाबला कर सके तो यह एक असंभव बात है। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये हमें राष्ट्र संघ की शक्ति पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। आज हमारा देश एक भीषण आर्थिक संकट में से गुजर रहा है । ऐसे समय में १७० करोड़ रुपया प्रति वर्ष भी सेना पर व्यय करना, जनता की आशाओं पर पानी फेरना है। भारत की कोटि कोटि जनता आज अपनी भूख, बेकारी तथा आश्रयहीनता की समस्या का हल चाहती है। सेना पर रुपया बरबाद करने की अपेक्षा वह सरकार से आशा करती है कि वह उसके लिये नये-नये उद्योग धन्धे चलायेगी, मकानों का प्रबंध करेगी, बेकारी को दूर करने के लिये योजनाएं बनायेगी, तथा बढ़ती हुई वस्तुओं की कीमतों को कम करने के लिये रचनात्मक कार्य करेगी । हमारे देश के नेता इसलिये अब प्रयत्नशील हैं कि सेना पर व्यय कम किया जाय । यदि भारत और पाकिस्तान के संबंधों में सुधार हो सका और दोनों देश अपने झगड़े का निबटारा शांतिपूर्ण उपायों से कर सके तो वह दिन दूर नहीं जब हमारा सेना पर व्यय बहुत कम हो जायगा और हमारी सरकार जनता के आर्थिक संकट को दूर करने के लिये बहुत कुछ रचनात्मक कार्य कर सकेगी ।

अध्याय १२

नव संविधान पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में हमने अपने नव संविधान की रूप रेखा पर एक विहंगम दृष्टि डाली है। इस संविधान में कौन-सी विशेषताएं हैं, तथा क्या क्या गुण हैं, जिनके कारण हम कह सकते हैं कि हमारा नया विधान संसार के सर्वोत्तम विधानों में से एक है, इसका वर्णन हम इसी पुस्तक के द्वितीय अध्याय में विस्तारपूर्वक कर चुके हैं। अभी तक हमारे इस संविधान पर पूर्णरूपेण कार्य आरंभ नहीं हुआ है। राज्यों की विधान सभाओं तथा केन्द्रीय विधान मंडल के चुनाव सन् १९५१ के मध्य में होंगे। उसी समय हमारे नये राष्ट्रपति का निर्वाचन होगा तथा एक उप राष्ट्रपति भी चुना जायगा। इसलिये जिस समय तक इस संविधान पर पूरी तरह कार्य नहीं होता, तब तक हम यह नहीं कह सकते कि हमारे इस 'ऐतिहासिक पत्र' में क्या क्या दोष है अथवा वह प्रत्येक दृष्टि से सर्वगुण संपन्न है अथवा नहीं। डाक्टर अंबेदकर ने संविधान सभा के अतिन्म अधिवेशन में ठीक ही कहा था—किसी विधान की सफलता इस बात पर निर्भर नहीं होती कि उसका निर्णय किन आदर्शों पर किया गया है, अथवा उसकी भाषा पूर्ण रूपेण प्रजासत्तात्मक है अथवा नहीं, वरन् इस बात पर निर्भर करती है कि उस पर किस भावना से कार्य किया जाता है। विधान के सैद्धांतिक गुण कितने ही अच्छे हों, परन्तु यदि वह लोग जो उसे कार्यान्वित करने के लिये आगे आते हैं, ईमानदार नहीं, तो अच्छे से अच्छा विधान भी बुरा हो जाता है।

इसके विपरीत संविधान चाहे जितना बुरा हो, यदि उस पर कार्य करने वाले लोग अच्छे हैं तो विधान अच्छा बन जाता है। विधान की सफलता का अंतिम उत्तरदायित्व जनता तथा राजनैतिक दलों पर है। यदि उन दोनों शक्तियों ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संवैधानिक उपायों को काम में लाया और क्रांतिकारी उपाय न अपनाये तो निसन्देह हमारा नव संविधान सफल रहेगा।"

नव संविधान के विरुद्ध आलोचनाएँ

हमारे नव संविधान के सिद्धांतों तथा उसकी आकृति के विरुद्ध आलोचकों की भी कमी नहीं है। हमारे देश के अनेक लेखकों, राजनीतिक विद्वानों, विशेषकर समाजवादी तथा साम्यवादी नेताओं ने इस संविधान की दिल खोल कर आलोचना की है। नीचे हम इन आलोचनाओं का सार देते हैं। इन्हें देखने से पता चलेगा कि अधिकांश आलोचनाएं वैयक्तिक प्रतिक्रिया द्वारा अनुप्रेरित हैं। वास्तविकता की दृष्टि से उनमें अधिक सार नहीं है और अधिकतर दलील एक दूसरे की काट कर देती हैं। उदाहरणार्थ जहाँ एक ओर आलोचक यह कहते हैं कि हमारा नया विधान समुचित रूप में प्रजातन्त्रवादी नहीं है, वहाँ दूसरी ओर वह वयस्क मताधिकार की टीका टिप्पणी करते हैं और कहते हैं कि अशिक्षित तथा जाहिल जनता के हाथ में राय देने का अधिकार देने से हमारा राष्ट्र की नींव सुदृढ़ नहीं हो सकती। इसी प्रकार जहाँ एक ओर आलोचक भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना देखना चाहते हैं वहाँ दूसरी ओर वह राज्य की सरकारों के हाथ से अधिकार छीने जाने पर आँसू बहाते हैं। नीचे हम अपने संविधान के विरुद्ध की गई विभिन्न आलोचनाओं का विश्लेषण करेंगे और यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि उनमें कहाँ तक सार है:—

(१) संसार का सबसे विस्तृत एवं जटिल विधान—सर्व प्रथम हमारे नव संविधान के विषय में यह कहा जाता है कि यह विधान अत्यंत जटिल, विस्तृत तथा कानूनीपन के दोषों से भरा हुआ है। यह विधान संसार के

विधानों में सबसे अधिक लंबा है तथा इसके बनाने में जितना समय लगा एवं इस पर जितना रुपया व्यय किया गया वह अद्वितीय है। हमारे संविधान में ३९५ धाराएं तथा ८ परिशिष्ट हैं। इसके विपरीत अमरीका के संविधान में केवल ७, आस्ट्रेलिया के संविधान में १२८, कैनाड़ा के संविधान में १४७, तथा दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में १५३ धाराएं हैं। हमारे विधान को पास करने में देश कीं संविधान सभा को २ वर्ष ११ मास तथा १७ दिन का समय लगा तथा इस पर ६४ लाख रुपया व्यय किया गया। इसके विपरीत अमरीका की संविधान सभा ने केवल ४ मास, दक्षिण अफ्रीका की सभा ने २ वर्ष, तथा कनाड़ा की सभा ने २ वर्ष ५ मास में अपने विधान तैयार कर लिये थे।

आलोचना का उत्तर—इन आलोचनाओं को दोहराते समय हमारे राजनीतिज्ञ यह भूल जाते हैं कि भारतवर्ष जैसी विकट समस्याएं तथा वह भीषण परिस्थितियाँ जिनका विधान परिषद को सामना करना पड़ा, संसार के किसी दूसरे देश के सम्मुख न थीं। भारत की लगभग ६०० देशी रियासतों का एकीकरण एवं विलीनीकरण जिनको हमारे विदेशी शासक बिदा लेते समय पूर्ण रूप से स्वतन्त्र कर गये थे, उस साम्प्रदायिक समस्या का निवारण जिसका हल अंग्रेजों द्वारा बनाई गई दो गोल मेज सभाएं कुछ न निकाल सकीं, नये प्रान्तों का निर्माण, राष्ट्र भाषा का प्रश्न, भारत की प्राचीन संस्थाओं का नई संस्थाओं के साथ योग, वयस्क मताधिकार का प्रश्न, तथा जनता के उन आर्थिक अधिकारों का निर्णय जिनके बिना भारत की त्रस्त तथा शोषित जनता के लिये स्वतन्त्रता का कोई मूल्य न था—और इन सारी समस्याओं पर उस समय विचार जब सारा देश बंटवारे तथा ६० लाख शरणार्थियों के पुनर्वास के घोर संकट का सामना कर रहा था—कोई आसान काम न था। तीन वर्ष तो बहुत कम हैं, भारत की प्रत्येक उल्लिखित समस्या, हमारी सदियों की परतन्त्रता, और गुलामी के वातावरण में इतना जटिल रूप धारण कर चुकी थीं कि यदि उसका निवारण और अधिक समय भी लेता

तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। यदि जल्दी में हमारी विधान परिषद ने अपने पहले वर्ष में संविधान बनाने का कार्य समाप्त कर दिया होता तो हमारी देशी रियासतों का क्या रूप होता, हैदराबाद और कश्मीर की समस्याओं का क्या हल निकलता, अल्प संख्यक जातियों के लिये सुरक्षित स्थानों की क्या व्यवस्था रहती—यह कुछ प्रश्न हैं जिन पर हमें ठंडे हृदय से विचार करना चाहिये। किसी देश का संविधान एक अत्यंत पवित्र तथा पावन ग्रन्थ होता है। वह प्रतिदिन नहीं बदला जा सकता; उसके स्वरूप पर किसी देश की जनता का भविष्य निर्भर होता है। इसलिये ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ को जितना भी सोच विचार कर बनाया जाय उतना ही कम है। रही आकार की बात तो इससे भय खाने की आवश्यकता नहीं। एक अच्छे संविधान का सबसे बड़ा गुण स्पष्टता है, और भारत की समस्याओं को देखते हुए एक छोटे संविधान में सब समस्याओं का निरूपण न हो सकता था।

(२) अभारतीय विधान—हमारे नव संविधान के विषय में दूसरी बात यह कही जाती है कि यह विधान अभारतीय है। उसकी आत्मा व आधार विदेशी है। वह भारत की प्राचीन संस्कृति का पुष्प और फल नहीं है। उसमें अधिकतर १९३५ के विधान की नकल की गई है। शेष विधान में इंगलैण्ड, अमरीका कनाड़ा, आस्ट्रेलिया तथा आयरलैण्ड के विधानों से प्रेरणा ली गई है। इस विधान में कोई नई बात नहीं है, उसमें कोई नया सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया गया है।

उत्तर—इस आलोचना के उत्तर में हम केवल यही कह सकते हैं कि जो लोग हमारे संविधान को अभारतीय कह कर उसकी उपेक्षा करते हैं वह यह नहीं बताते कि हमारे नव संविधान का कौन सा भाग भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात करता है, तथा वह किस प्रकार का संविधान भारतीय संस्कृति के अनुरूप समझते हैं? क्या प्राचीन भारत में जनतन्त्रात्मक शासन

प्रणाली नहीं थी ? क्या हमारे पहिले राजा जनता द्वारा नहीं चुने जाते थे ? क्या वह जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की सलाह से काम नहीं करते थे ? क्या प्राचीन भारत में प्रतिनिधि संस्थाएं––जनपद तथा लोक सभाएं–नहीं थीं ? क्या प्राचीन भारत में राज्यों का कोई विधान नहीं होता था ? क्या बौद्धों के काल में भिक्षु संघों का वही स्वरूप नहीं था जो आज हमारी 'संसद' का है। जिन लोगों ने डाक्टर जयसवाल ,वासुदेव शरण अग्रवाल तथा भण्डारकर द्वारा लिखित उन पुस्तकों को पढ़ा है जिनमें हमारे प्राचीन हिंदू राज्यों की व्यवस्था का उल्लेख किया गया है, उन्हें भारतीय संविधान में वर्णित हमारी आधुनिक शासन प्रणाली अभारतीय प्रतीत नहीं होगी।

प्राचीन भारत के धर्म ग्रन्थों में, प्रत्येक स्थान पर, राज्य में, जनता की राय को ही सर्वोपरि माना गया है। महाभारत में उस प्रतिज्ञा का उल्लेख जो राजाओं को गद्दी पर बैठने के समय करनी पड़ती थी, इन शब्दों में किया गया है, "मैं मन, कर्म और वाणी से शपथ लेता हूं कि सदा भूमि को ब्रह्म समझता हुआ, धर्म और दंड नीति के अनुसार, सदा प्रजारंजन के लिये कार्य करूंगा, और कभी अपनी मनमानी न करूंगा।" दंड नीति का अर्थ हमारे प्राचीन ग्रन्थों में संविधान से लिया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में लिखित संविधान होते थे और राजा उस संविधान की रक्षा के लिये समस्त जनता के सम्मुख शपथ ग्रहण करते थे।

भारत में, पाणिनी के समय में, ईसा से लगभग ५०० वर्ष पूर्व, मन्त्री परिषद् ,जैसी संस्था भी अपने पूरे अस्तित्व में आ चुकी थी। इस समय राजा मन्त्रियों के परामर्शानुसार ही कार्य करते थे। जनता राजाओं के चुनावों में भाग लेती थी। रामायण में दशरथ ने रामचन्द्र जी को सिंहासन पर बैठाने से पूर्व ,जिस प्रकार अपनी प्रजा की राय ली थी, उसका विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। इसके पश्चात् अशोक के शिलालेखों में इस बात का संकेत

मिलता है कि मन्त्री परिषदों को राजाओं के प्रस्ताव मानने या न मानने का पूरा अधिकार था ।

चुने हुए राजाओं की ही नहीं ,प्राचीन भारत में गणराज्यों की भी प्रथा थी। बुद्ध के समय में भारतवर्ष के पूर्वी भाग में गण शासनों का रिवाज था। बुद्ध स्वयं एक गणराज्य के नागरिक थे। उनके पिता शुद्धोदन उस गण के संघपति थे, परन्तु जनता प्रेम के कारण, उन्हें राजा के नाम से संबोधित करती थी। शाक्य, मल्ल और लिच्छवी पूर्व के गण राज्य थे। पश्चिम में यौधेय, मालव, क्षुद्रक, शिबि, आदि सैकड़ों गणराज्य पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रांत और सिंध में फैले हुए थे। ये राज्य सारे गण के नाम से अपने सिक्के ढ़ालते थे और राज्य सभा भवन में इकट्ठे होकर मन्त्रणा करते थे। कृष्ण स्वयं अंधक वृष्णि गण राज्य के सदस्य थे। इन गणराज्यों में अनूकूल और विरोधी दलों का भी संगठन होता था। इन दलों को वर्ग या द्वन्द कहते थे। गण सभाओं में प्रस्ताव रक्खे जाते थे जिन पर सदस्य गुप्त या प्रकट मत देते थे। मत के लिये प्राचीन राजनैतिक शब्द 'छन्द' था। गुप्त मतदान के लिये 'शलाकाएं' (Ballot Boxes) होती थीं। सभाओं में प्रस्ताव रखने, वाद विवाद करने तथा उन पर मत लिये जाने की प्रथा प्रायः वैसी ही थी जैसी वह आजकल पाई जाती है। इस प्रकार के गणराज्यों की परम्परा हमारे देश में ईस्वी पूर्व छटी शताब्दि से चौथी शताब्दि ईसवी (600 B.C. to 400 A.D.) तक रही। संसार के शायद ही किसी दूसरे देश में इतने लंबे काल तक गण राज्य प्रणाली की प्रथा विद्यमान रही हो ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे नव संविधान के विषय में यह कहना कि वह अभारतीय है, पूर्णतया असत्य है। ऐसा केवल वही लोग कहते हैं जिन्होंने भारत के प्राचीन इतिहास का पठन-पाठन एवं गूढ़ अध्ययन नहीं किया है। यह सच है कि हमारे विधान निर्माताओं नें दूसरे देशों के

संविधानों से भी उनकी अच्छी बातें ग्रहण करने का प्रयत्न किया है और अपनी प्राचीन संस्थाओं को आधुनिक स्वरूप दे दिया है, परन्तु ऐसा करने में बुराई क्या है '? क्या हम चाहते हैं कि हमारा देश संसार से अलग अपनी एक अलग दुनिया बनाए, हम पर दूसरी संस्कृतियों का प्रभाव न पड़े, हम दूसरे देशों से उनकी अच्छी बातें ग्रहण न करें, उनसे संपर्क न बढ़ाएं। यदि हमारी ऐसी ही मनोवृत्ति रही, तो हम संसार में कभी आगे न बढ़ सकेंगे।

रही नये सिद्धांतों के प्रतिपादन की बात तो जैसा डाक्टर अंबेदकर ने कहा था "पिछले २०० वर्षों में संसार में इतने संविधान बनाये गये हैं तथा हर दृष्टिकोण से उनके प्रत्येक पहलू पर इतना विचार किया गया है कि संविधानों के विषय में किसी नये सिद्धांत का प्रतिपादन करना अथवा कोई नये प्रकार का ऐसा संविधान बनाना जिसके विषय में कभी पहिले नहीं सुना गया हो, न संभव ही है न आवश्यक ही।" यहाँ हम यह कह देना भी चाहते हैं कि एक ओर तो हमारे कुछ आलोचक यह कहते हैं कि भारत के संविधान में कोई नई बात नहीं है, और उसमें दास वृत्ति से केवल यूरुप व अमरीका के देशों के संविधानों की नकल की गई है, और दूसरी ओर वह यह भी कहते हैं कि हमारा नया संविधान संसार में अनूठा है और जिस प्रकार का भारतीय संघ उसके अन्तर्गत बनाने का प्रयत्न किया गया है, वैसा संघ किसी दूसरे देश में देखने को नहीं मिलता। इस प्रकार की विरोधात्मक दलीलें एक दूसरे की काट कर देती हैं और वह केवल यही सिद्ध करती हैं कि हमारा नया संविधान इस दृष्टि से वनाया गया है कि उसमें भारत की विशेष परिस्थिति के अनुसार सफलतापूर्वक कार्य करने की क्षमता हो, और उसमें हमारी प्राचीन परंपरा एवं दूसरे देशों के संविधानों के सभी अच्छे गुण विद्य-मान हों।

(३) गाँधीवादी विधान—हमारे नव संविधान के विरुद्ध तीसरी

दलील यह दी जाती है कि उसमें गाँधी जी के आदर्शों को पालन करने का कोई भी ध्यान नहीं रक्खा गया है ।

उत्तर—इस आरोप का उत्तर देने से पहिले हमें यह समझ लेना चाहिये कि कोई भी विधान राजनीतिक विचारधारा की मीमाँसा नहीं करता । वह केवल शासन व्यवस्था के मूल सिद्धांतों को प्रकट करता है, यद्यपि उसकी व्यवस्था से यह प्रकट हो जाता है कि उसमें किस विचार धारा से काम लिया गया है । हमारे संविधान के गूढ़ अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा कि उसमें गाँधीय दर्शन एवं कार्यक्रम का रंग रूप आसानी से देखा जा सकता है ।

गाँधी जी के आदर्श क्या थे ? रचनात्मक कार्यक्रम, अछूत-प्रथा का अंत, खादी एवं ग्रामोद्योगों की प्रगति, हिंदू मुसलिम एकता, सर्व-जनकल्याण, मद्य निषेध, राष्ट्रभाषा का प्रचार तथा विश्व शांति । संविधान के विभिन्न भागों, विशेषकर उसके नियामक सिद्धांतों का अध्ययन करने से पता चलेगा कि उसमें राष्ट्रपिता के इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का समुचित प्रयत्न किया गया है ।

जनता द्वारा रचनात्मक कार्य किये जाने के लिये कोई विधान बाध्य नहीं कर सकता, वह तो एक व्यक्तिगत भावना का विषय है । जहाँ तक अछूत प्रथा के अन्त करने का प्रश्न है वह हम देख ही चुके हैं कि नव संविधान में उसे एक भीषण अपराध घोषित कर दिया गया है । खादी व ग्रामोद्योग की बात राज्य के नियामक सिद्धांतों के अन्तर्गत आ गई है, क्योंकि ४३ से ५२ धाराओं में स्पष्ट कह दिया गया है कि राज्य, व्यक्तिगत् अथवा सहकारी आधार पर ,ग्राम्य क्षेत्रों में, ग्रामोद्योगों की उन्नति के लिये प्रयत्न करेगा । इसी प्रकार संयुक्त निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था द्वारा हिंदू-मुसलिम-एकता का महत्व स्वीकार किया गया है । सर्वजन कल्याण के लिये हमारे संविधान में धर्म, जाति, लिंग व स्थिति का विचार न रखते हुए सब स्त्री पुरुषों को बराबर के मूल अधिकार प्रदान किये गये हैं । नियामक सिद्धांत संबंधी ३८ वीं धारा में कहा गया है कि राज्य सभी नागरिकों के लिये जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधनों की व्यवस्था करेगा एवं आर्थिक व्यवस्थाक संचालन

इस विधि से करेगा कि राष्ट्रीय संपत्ति एवं साधनों का वितरण जन साधारण के हित में हो। इसी प्रकार संविधान की विभिन्न धाराओं में, बेकारी, बुढ़ापे, बीमारी आदि की दशा में सरकारी सहायता का अधिकार, बालकों की निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधी अधिकार, मद्य एवं मादक वस्तुओं के निषेध, गौरक्षा, एक राष्ट्र भाषा, एवं विश्वशांति की पुष्टि के लिये न्याय तथा सम्मानपूर्ण संबंधों की अक्षुण्णता बनाये रखने के लिये विशेष व्यवस्था की गई है। यह सभी सिद्धांत गाँधी जी को अत्यंत प्रिय थे और इनकी स्पष्ट झलक हमारे संविधान में देखने को मिलती हैं।

(४) मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात करने वाला विधान—बहुत से नेताओं का कहना है कि भारतीय संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का वर्णन एक ढ़कोसला है। उन्हें जो एक हाथ से दिया गया है वही दूसरे हाथ से छीन लिया गया है।

उत्तर—इन आलोचकों का आशय मौलिक अधिकारों में वर्णित उन शर्तों से है जिनके द्वारा कहा गया है कि विशेष परिस्थितियों में नागरिकों के कई अधिकार छीने भी जा सकेंगे। परन्तु यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि संसार के किसी भी देश में नागरिकों को पूर्ण रूप से मन चाहे काम करने की स्वतन्त्रता नहीं दी जाती। अमेरीका में भी जहाँ विधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन है, सुप्रीम कोर्ट द्वारा ऐसे फैसले दिये गये हैं जिनके अन्तर्गत नागरिक अधिकारों की व्याख्या उसी प्रकार की गई है जैसी भारतीय संविधान में।

यह सच है कि अमरीका के संविधान में नागरिकों के जिन मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है उन पर किसी प्रकार की वैधानिक रोक नहीं लगाई गई है, परन्तु वहाँ पर सुप्रीम कोर्ट द्वारा एक दूसरा सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है जिसे अंग्रेजी में (डाक्ट्रिन आफ़् दी पुलीस पावर आफ़् दी स्टेट) अर्थात्-राज्य की पुलिस शक्ति" का सिद्धांत कहते हैं। इस सिद्धांत के अन्तर्गत अमरीका की उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि नागरिकों को अनियन्त्रित अधिकार नहीं दिये जा सकते। राज्य की

रक्षा व जनता के हित में सरकार को अधिकार है कि वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर रोक लगा सके ।

मौलिक अधिकारों के संबंध में, अमरीका व भारत के संविधानों में केवल इतना अंतर है कि एक देश में सुप्रीम कोर्ट को अधिकार है कि वह इस बात का निश्चय करे कि नागरिकों के अधिकारों पर किन दशाओं में रोक लगाना उचित है, और दूसरे देश में विधान द्वारा ही इस बात का निश्चय कर दिया गया है कि उन अधिकारों पर क्या क्या रोक लगाई जाँय। एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि अमरीका के संविधान में सुप्रीम कोर्ट की शक्ति अधिक विस्तृत रक्खी गई है और उसे इस बात का अधिकार दिया गया है कि 'वह 'काँग्रेस' द्वारा बनाये गये किसी असंवैधानिक कानून को रद्द कर सके। भारत में इसके विपरीत 'विधान मंडल' की शक्ति को सर्वोपरि रक्खा गया है, और जब तक वह संविधान के अंदर रह कर कार्य करती है, देश की उच्चतम न्यायालय उन कानूनों को रद्द नहीं कर सकती।

अभी हाल ही में मौलिक अधिकार संबंधी श्री गोपालन के एक मुकदमे में हमारी सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय किया है कि संसद को संविधान के अन्तर्गत ऐसे कानून बनाने का अधिकार है जिनसे नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर रोक लगाई जा सके। इसी दृष्टि से उसने भारत सरकार के सन् १९४९ के बिना मुकदमें नजरबन्दी कानून को वैध घोषित किया है। इस कानून की केवल वही धारा अवैध घोषित की गई है जिसके द्वारा न्यायालयों को इस बात का अधिकार नहीं दिया गया था कि वह उन कारणों की छान बीन कर सके जिनके कारण किसी व्यक्ति को नजरबन्द करना आवश्यक समझा गया।

अंतिम दशा में, हमें यह भली भांति समझ लेना चाहिये कि, किसी देश में भी नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा, न्यायालय व संविधान द्वारा नहीं, वरन् केवल एक सचेत, जागृत व शिक्षित लोकमत द्वारा ही की जा सकती है। यदि लोकमत सचेत न हुआ तो संविधान चाहे जितना अच्छा हो, वह भी बदला जा सकता है और इस प्रकार के कानून बनाये जा सकते हैं जिनसे नागरिकों के मौलिक अधिकारों का कोई अर्थ ही शेष न रह जाय।

त्तौर यदि किसी देश में जनता जागरुक है तो संविधान चाहे जितना निकम्मा हो, सरकार को इतना साहस नहीं हो सकता कि वह नागरिकों के अधिकारों के साथ किसी प्रकार की खिलवाड़ कर सके। अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये इसलिये हमें चाहिये कि विधान में त्रुटि निकालने के स्थान पर हम जनता में जाग्रति उत्पन्न करें और लोकमत को सचेत व सुदृढ़ बनायें।

(५) राज्यों की सत्ता व उनके अधिकारों को हरने वाला विधान—— हमारे नव संविधान के विरुद्ध पाँचवाँ आरोप यह लगाया जाता है कि उसके अन्तर्गत राज्यों की सरकारों के अधिकारों को छीनकर, उनकी स्थिति प्रायः वैसी ही कर दी गई है जैसी स्थानीय संस्थाओं (म्युनिसपल इंन्सटी-ट्यूशनस्) की। आलोचकों का कहना है कि संघीय विधान के अन्तर्गत संघ में सम्मिलित होने वाली इकाइयों के अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिये। संघ को इस बात का अधिकार नहीं होना चाहिये कि वह राज्यों के आंतरिक शासन प्रबंध में हस्तक्षेप कर सके। संघीय विधान केवल इसी दृष्टि से बनाया जाता है कि उसके अन्तर्गत कुछ ऐसे विषयों का शासन प्रबंध केन्द्रीय सरकार को सौंपा जाय जिनमें उस संघ में सम्मिलित होने वाली सभी इकाइयाँ समान रूप से रुचि रखती हों, और शासन के शेष सभी विषय राज्यों की सरकारों के पास सुरक्षित रहें। भारतीय विधान में संघ शासन के इन मूल सिद्धांतों का ध्यान न रख कर, एक इस प्रकार की सरकार का संग-ठन किया गया है जो केवल नाम से संघीय है, अन्यथा उसमें सभी लक्षण एकात्मक सरकार जैसे हैं।

उत्तर——इस आरोप के उत्तर में हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं ने इस बात की परवाह न करते हुए कि हमारे देश का संविधान पूर्ण रूप से संघीय विधानों के लक्षणों को संतुष्ट करता है अथवा नहीं, इस बात का प्रयत्न किया है कि हमारे देश के लिये एक ऐसे विधान की रचना हो जो भारत की विशेष परिस्थितियों के अनुकूलहो एवं जिसमें हमारे देश में व्याप्त प्रांतीयता एवं प्रथककरण की भावनाओं का अंत करने

की क्षमता हो। हमारे देश का प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत की स्वाधीनता को केवल उस समय खतरा उत्पन्न हुआ है जब हमारे देश में केन्द्रीय सत्ता की शक्ति कम हो गई है। इसलिये हमारे नये विधान में इस बात का विचार रक्खा गया है कि जहाँ राज्यों की सरकारों को अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र रह कर कार्य करने की आज्ञा हो, वहाँ वह कोई ऐसा काम न कर सकें जिससे समस्त देश का अहित हो।

अनुचित केन्द्रीयकरण के आरोप का उत्तर देते हुए डाक्टर अंबेडकर ने संविधान सभा में कहा था, "संघीय विधानों की सबसे बड़ी पहिचान यह है कि उनके आधीन संघ सरकार तथा उनकी इकाइयों के बीच अधिकारों का विभाजन होना चाहिये। हमारे विधान में यह विभाजन पूर्ण रूप से विद्यमान है। इस अधिकार विभाजन के आधीन संघ एवं राज्यों की सरकार अपने अपने क्षेत्र में काम करने के लिये स्वतन्त्र होंगी। रही विशेष परिस्थितियों की बात तो ऐसे समय में सारे देश का ही हित संघ सरकार द्वारा काम किये जाने में होगा, हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि संघ सरकार सदा संसद के प्रति उत्तरदाई होगी, और लोक सभा तथा राज्य-परिषद में केवल वही सदस्य भाग ले सकेंगे जो राज्यों के चुने हुए प्रतिनिधि होंगे। ऐसे सदस्य कभी अपने राज्य के हित के विरुद्ध काम नहीं करेंगे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोचकों के इस आरोप में अधिक बल नहीं है। आज हमारे देश में एक ऐसे शासन की आवश्यकता है जो सारे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँध कर हमारी नव प्राप्त स्वतन्त्रता को इन्द्र के वज्र के समान सुदृढ़ बना सके।

(६) फासिस्टवादी विधान—उपरोक्त आरोप से मिलता-जुलता एक दूसरा आरोप हमारे विधान के विरुद्ध यह लगाया जाता है कि उसके आधीन समस्त राज्य सत्ता केन्द्र में ही एकत्रित कर दी गई है, और भारत की प्राचीन परंपरा के अनुसार उसका आधार ग्राम पंचायतें नहीं रक्खी गई हैं। इसी कारण कुछ आलोचकों का कहना है कि हमारा नया विधान हमें फासिस्ट-

वाद की ओर ले जाता है। संविधान में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक संकटकालीन स्थिति की घोषणा करके, देश का समस्त शासन, संघ सरकार के आधीन ले सकेंगे और फिर केन्द्रीय सरकार उसी प्रकार कार्य करेगी जैसा कोई तानाशाह किया करता है।

उत्तर—इस आरोप का उत्तर हम पहिले ही दे चुके हैं। यहाँ केवल यह बतला देना पर्याप्त होगा कि आलोचकों का यह कहना कि नव संविधान के अन्तर्गत ग्राम्य पंचायतों की उपेक्षा की गई है अथवा उनके संगठन लिये किसी प्रकार का प्रबंध नहीं किया गया है, ठीक नहीं है। हमारे संविधान के नियामक सिद्धांतों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारतीय संघ के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्र में ग्राम पंचायतों के संगठन के लिये शीघ्रातिशीघ्र प्रयत्न करेगा। हमारे देश के कितने ही प्रांतों में इस प्रकार की सहस्त्रों पंचायतें संगठित की जा चुकी हैं और उन सब को वही अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं जो प्राचीन भारत में ग्राम्य पंचायतों को प्राप्त थे। दूसरे प्रांतों में भी इस दिशा में अत्यंत शीघ्रता के साथ काम किया जा रहा है।

(७) अनमनीय संविधान—एक और आलोचना विधान के विरुद्ध यह की जाती है कि इसमें फैलाव ,विकास व परिवर्तन के लिये अधिक स्थान नही है। इस विधान को कानूनीपन के दाँव पेचों से भरपूर कर दिया गया है। यह विधान स्पष्ट नहीं है और इसे भारत की अशिक्षित जनता भलीप्रकार नहीं समझ सकती ।

उत्तर—किसी देश का विधान एक अत्यंत पावन तथा पवित्र ग्रंथ होता है। उसी के स्वरूप पर जनता के अधिकार आधारित रहते हैं। कोई देश भी, इसलिये अपने संविधान को, एक बार अत्यंत सोच समझकर बना लेने के पश्चात् यह नहीं चाहता कि वह आसानी से बदला जा सके। भारत के विधान को भी केवल इसी दृष्टि से अपरिवर्तनशील (रिजिड) रक्खा गया है। परन्तु उसमें कितनी ही ऐसी धाराएं हैं जो बहुमत से बदली जा सकेंगी। दूसरी धाराओं के परिवर्तन के लिये केवल दो तिहाई

बहुमत का होना आवश्यक होगा। रही कानूनीपन की बात तो इस प्रकार के महत्वपूर्ण 'पत्र' में यह दोष सर्वत्र ही पाया जाता है। संविधान सरकार का स्वरूप निश्चित करने के लिये होता है। उसके सिद्धांत आम जनता द्वारा आसानी से समझे जा सकते हैं। जहाँ तक उसकी धाराओं का संबंध है वह विशेषज्ञों के लिये बनाई जाती हैं। जन साधारण के लिये वह विशेष महत्व नहीं रखतीं।

(८) संकुचित प्रतिनिधित्व के आधार पर बनाया गया विधान--

हमारे देश के समाजवादी व साम्यवादी दलों द्वारा यह बात प्रायः बहुत बार दोहराकर कही जाती है कि हमारा विधान एक ऐसी संविधान सभा द्वारा नहीं बनाया गया जिसका चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ हो। संविधान सभा के चुनाव प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा किये गये थे, जिनका चुनाव देश की समस्त बालिग जनता द्वारा नहीं वरन् केवल उन्हीं लोगों द्वारा किया गया था जिन्हें सन् १९३५ के विधान के आधीन राय देने का अधिकार प्राप्त था। ऐसे लोगों की संख्या १३ प्रतिशत से अधिक नहीं थी। इन आलोचकों का कहना है कि इसी सीमित मत प्रदान प्रथा के आधीन उन लोगों को संविधान सभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया जो भारत की नग्न तथा भूख और प्यास से पीड़ित जनता, किसान और मजदूरों के प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते थे, स्वभावतः इन लोगों ने अपनेस्वार्थ लाभ के लिये इस प्रकार का विधान बनाया जिसके अधीन वह गरीब जनता का शोषण जारी रख सकते थे। उदाहरणार्थ, इन लोगों का कहना है, कि हमारे नये विधान में व्यक्तिगत संपत्ति की प्राप्ति पर किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई गई है, देश के बड़े बड़े कारखानों के ऊपर राज्य के स्वामित्व का प्रबंध नहीं किया गया है, मजदूरों को ट्रेड यूनियन बनाने, हड़ताल करने तथा अपने अधिकारों की रक्षा के लिये आंदोलन करने का अनियन्त्रित अधिकार नहीं दिया गया है, इत्यादि।

उत्तर--उपरोक्त आरोप में समुचित सचाई है। परन्तु आलोचक यह

भूल जाते हैं कि जिस परिस्थिति में हमारे देश की विधान सभा का संगठन हुआ उस दशा में वयस्क मताधिकार के आधार पर उसका संगठन असंभव नहीं तो अव्यवहारिक अवश्य था। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि किसी भी चुनाव के आधीन संविधान सभा में काँग्रेस दल को ही बहुमत प्राप्त होता और फिर उस दशा में संविधान का वही स्वरूप होता जो उसका आज है। रही समाजवाद की बात, तो भारत की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति, इस सिद्धांत के प्रतिफलन के अनुकूल नहीं है। आज हमारा देश भीषण आर्थिक संकट के मध्य में से गुजर रहा है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रीयकरण की माँग एक आकर्षक नारे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हाँ, परिस्थिति सुधरने पर जनता को पूर्ण अधिकार होगा कि वह अपने संविधान में उचित परिवर्तन कर सके। हमारा संविधान किसी समय भी दो तिहाई बहुमत से बदला जा सकता है। यदि आने वाले आम चुनावों में समाजवादी दल को विजय प्राप्त होती है तो उसे पूर्ण अधिकार होगा कि वह अपने सिद्धांत के अनुसार संविधान में परिवर्तन कर ले।

(९) राष्ट्र मंडल के स्वरूप से प्रभावित हमारा विधान---अंत में हमारे नव संविधान के विरुद्ध सबसे बड़ी दलील यह दी जाती है कि यह विधान एक स्वतन्त्र देश की स्वतन्त्र जाति का विधान नहीं है। वह एक ऐसे देश का विधान है जो राष्ट्र मंडल का सदस्य है, और इस कारण वह एक पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र देश का विधान नहीं है। हमारे देश की सरकार ने राष्ट्र मंडल का सदस्य रहना स्वीकार करके जनता के साथ विश्वासघात किया है, कारण, सन् १९३० के पश्चात् से कांग्रेस सदा यह कहती रही थी कि वह कभी औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थिति स्वीकार नहीं करेगी।

उत्तर---उपरोक्त आरोप का विस्तृत विश्लेषण हम इसी पुस्तक के तीसरे अध्याय में कर चुके हैं। यहाँ हम केवल इतना ही दुहरा देना उचित समझते हैं कि, भारत राष्ट्र मंडल का सदस्य रहे, इसके लिये हमारा देश इतना इच्छुक नहीं था जितना स्वयं राष्ट्र मंडल के दूसरे देश, और ऐसा करने

के लिये उन्होंने भारत की प्रत्येक शर्त मानी और स्वयं राष्ट्र मंडल का स्वरूप ही बदल लिया। आज राष्ट्र मंडल का प्रत्येक देश आँतरिक व बाह्य शासन प्रबंध की दृष्टि से पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। सम्राट के प्रति राजभक्ति का प्रश्न भी अब नहीं उठता। सम्राट राष्ट्रमंडल का अब केवल एक साँकेतिक रूप में अध्यक्ष है। वह ब्रिटिश साम्राज्य का प्रथम नागरिक है, परन्तु भारतीय सरकार का अध्यक्ष नहीं। हमारी सरकार का अध्यक्ष जनता का अपना चुना हुआ प्रतिनिधि राष्ट्रपति है। राष्ट्रमंडल की सदस्यता से भारत के गणतन्त्रीय स्वरूप अथवा उसकी सार्वभौम सत्ता पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। हमारे देश की जनता प्रत्येक विषय में स्वयं ही अपना मार्ग निर्धारित करती है। वह किसी प्रकार भी ब्रिटेन अथवा राष्ट्र मंडल के दूसरे सदस्यों की विदेश नीति को पालन करने के लिये बाध्य नहीं।

निष्कर्श––इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं ने हमारे देश के लिये एक ऐसा संविधान बनाया है जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। यह सच है कि इस संविधान के कुछ अंश ऐसे अवश्य हैं जिन्हें अत्यंत असंतोष की दृष्टि से देखा गया है। परन्तु भारत की वर्तमान राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थिति में, स्वभावत: इससे अच्छा विधान नहीं हो सकता था। आज हमारे देश की सबसे बड़ी आवश्यकता अपनी स्वतन्त्रता को दृढ़ बनाने तथा आर्थिक संकट को दूर करने की है। ऐसी दशा में यदि हमारे विधान निर्माता हमारे देश के लिये आदर्श विधान नहीं बना सके हैं, तो इसके लिये उन्हें दोषी ठहराना उचित नहीं। इस प्रकार की व्यवस्था का उत्तरदायित्व यदि किसी पर है तो वह हमारे देश की वर्तमान पस्थिति है। हमें आशा है, जैसे जैसे देश की जनता में शिक्षा का प्रसार होगा तथा वह अपने कर्तव्यों को भली प्रकार समझने लगेगी, वैसे वैसे हमारे वर्तमान संविधान की असंतोषप्रद धाराएं बदल दी जायेंगी और हम एक ऐसे राष्ट्र के नागरिक कहे जाने में गर्व का अनुभव करेंगे, जिसका संविधान संसार का सबसे सुन्दर तथा आदर्श विधान होगा।

अध्याय १३

उत्तर प्रदेश का शासन प्रबन्ध

भारत के सभी प्रांतों से हमारा प्रांत अधिक बड़ा है। इसका क्षेत्र फल १,१२,५२३ वर्गमील और जनसंख्या ५,६४,००,००० है। रामपुर, बनारस तथा टेहरी गढ़वाल रियासतों को भी अब हमारे प्रांतों में ही विलीन कर दिया गया है। हमारा प्रांत इतना बड़ा है कि योरुप के कई छोटे छोटे देश, जैसे स्विटजरलैण्ड, बेल्जियम, हालैण्ड, लुक्जमबर्ग, ऐल्बानिया, ऐस्टोनियाँ, इत्यादि इसमें समा सकते हैं। विदित है कि इतने बड़े प्रांत (जिसे नये संविधान में राज्य कहा गया है) का शासन राजधानी में बैठकर किसी एक राज्यपाल अथवा मन्त्रिमंडल द्वारा नहीं चलाया जा सकता। इसलिये शासन की सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक प्रांत कुछ डिविजनों, जिलों, सब डिविजनों, तहसीलों, परगनों, तथा गावों में बाँट दिया जाता है। इनमें से प्रत्येक भाग का एक अलग अफसर होता है जिसे कमिश्नर, कलक्टर, डिप्टी कलक्टर, तहसीलदार, कानूनगो तथा पटवारी कहा जाता है। मन्त्रियों के नीचे जो और विभाग होते हैं जैसे कृषि विभाग, सिंचाई विभाग, सहकारी विभाग, इमारती विभाग, राजस्व विभाग, शिक्षा विभाग, उद्योग विभाग, श्रम विभाग, इत्यादि उनका प्रबंध उस महकमे के नीचे अलग अलग अफसरों द्वारा किया जाता है।

सरकारी विभाग

प्रत्येक सरकारी विभाग का सर्वोच्च अधिकारी एक मन्त्री होता है जो प्रांतीय धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होता है।

मन्त्री की सहायता के लिये विभाग में एक सेक्रेटरी होता है, जिसके नीचे कुछ डिप्टी, तथा अंडर सेक्रेटरी काम करते हैं। उनके नीचे एक पूरा दफ़्तर होता है जिसमें क्लर्क, असिस्टेंट तथा सुपरिन्टेंडेट होते हैं। मन्त्री का काम सरकार की नीति का निश्चय करना तथा अपने विभाग की उन्नति के लिये योजनाऐं बनाना होता है। विभाग के दिन प्रति दिन का काम, सेक्रेटरी तथा उसके नीचे काम करने वाले सरकारी अफसर करते हैं।

विभाग का सबसे बड़ा दफ़्तर तो राजधानी में होता है परन्तु उसके कार्यवाह अफसर जिलों, तहसीलों, तथा गावों में रह कर अपने अपने काम की देखभाल करते हैं। यह अफसर अपने विभाग के मन्त्री तथा सेक्रेटरी के आदेशों का पालन करते हैं। साथ ही वह अपने काम का विवरण जिले के कलक्टर तथा डिविजन के कमिश्नर को भी देते हैं। इस प्रकार इन अफसरों की दोहरी जिम्मेदारी होती है ---एक अपने महकमे के प्रति और दूसरे कलक्टर या कमिश्नर के प्रति। कलक्टर और कमिश्नर अपने अपने क्षेत्र में प्रांतीय सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह शासन के सभी महकमों की देखभाल करते हैं जिससे राज्य का प्रबंध ठीक प्रकार से चल सके और जनता अपना जीवन सुख और चैन के साथ व्यतीत कर सके।

साधारण शासन प्रबंध

कमिश्नर

हमारे प्रांत में दस कमिश्नरियाँ हैं। प्रत्येक कमिश्नरी का औसतन क्षेत्रफल १०,६०० वर्गमील है तथा जन संख्या ५ लाख। कुमाऊँ को छोड़कर शेष सभी डिवीजनों में 'कमिश्नर' डिविजन का प्रधान अफसर होता है। कुमाऊं डिविजन का शासन नैनीताल के डिप्टी कमिश्नर के हाथ में है। कमिश्नर का मुख्य काम जिले के कलक्टर तथा प्रांतीय मन्त्रियों के बीच एक कड़ी का काम करना होता है। प्रांतीय सरकार की सभी आज्ञाएँ कलक्टरों के पास कमिश्नरों के द्वारा भेजी जाती हैं। कमिश्नर अपने नीचे सभी जिलाधीशों के काम की देखभाल करता है। उसका मुख्य काम माल-

गुजारी तथा भूमि संबंधी होता है। वह अपने आधीन अधिकारियों की माल-गुजारी संबंधी निर्णयों की अपील सुनता है तथा मालगुजारी की वसूली की देखभाल करता है। जरूरत पड़ने पर वह मालगुजारी की छूट भी दे सकता है तथा उसकी वसूली रोक सकता है।

कुछ लोगों का विचार है कि कमिश्नर का पद व्यर्थ का अनावश्यक पद है। प्रांतीय सरकार सीधा कलक्टरों के साथ अपना संबंध रख सकती है। मद्रास प्रांत के अन्दर कमिश्नर का पद नहीं होता, फिर भी, वहाँ शासन अत्यंत कुशलता के साथ चलता है। आजकल जब शासन का कार्य चलाने के लिये अनुभवी अधिकारियों की अत्यंत कमी है तो इस पद के लिये योग्य, तथा पुराने, सुलझे हुए अधिकारियों की नियुक्ति करना न्याय संगत नहीं। इसलिये हमारे प्रांत की सरकार इस बात का विचार कर रही है कि कमिश्नरों के पद को रक्खा जाय अथवा नहीं। अंतिम निश्चय होने तक सरकार ने कमिश्नरों की संख्या १० से घटा कर ५ कर दी है।

ज़िलाधीष (कलक्टर)

प्रत्येक कमिश्नरी में कुछ जिले होते हैं। भिन्न भिन्न कमिश्नरियों में जिलों की संख्या अलग अलग है, उदाहरणार्थ, लखनऊ कमिश्नरी में ६ जिले हैं, मेरठ में ५ और गोरखपुर में केवल ३। हमारे प्रांत में कुल जिलों की संख्या ५१ है। इनमें वह जिले भी शामिल हैं जो रामपुर, बनारस तथा टेहरी, गढ़वाल रियासतों को मिलाने से बनाये गये हैं। जिले के सर्वोच्च अधिकारी को जिलाधीश या कलक्टर कहते हैं। कुमाऊँ में उसे डिप्टी कमिश्नर कहा जाता है। कुछ काल पहिले तक यह अफसर इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य होते थे। कुछ प्रांतीय सिविल सर्विस के लोगों को भी बहुत अनुभव हो जाने के पश्चात् कलक्टर बनने का अवसर दे दिया जाता था। परन्तु अब इंडियन सिविल सर्विस की भर्ती बन्द कर दी गई है, कारण इस सर्विस का चुनाव भारत मन्त्री द्वारा किया जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात ऐसा करना संभव नहीं था, इसलिये उसके स्थान पर 'इंडियन ऐड-

मिनिस्ट्रेटिव सर्विस' का आयोजन किया गया है। इसी सर्विस के व्यक्ति आजकल जिलों के कलक्टर बनते हैं।

कलक्टर अपने जिले में सरकार का प्रतिनिधि रूप होता है। शासन प्रबंध की दक्षता उसी के कार्य पर निर्भर रहती है। जिले के अन्तर्गत सब प्रकार के कामों की देख भाल करना उसी का काम होता है। उसे कई काम करने पड़ते हैं जैसे माल गुजारी वसूल करना, जिले में शाँति और व्यवस्था कायम रखना, जिले की जेलों, शिक्षा संस्थाओं, हस्पतालों, सड़कों, इमारतों, स्थानीय संस्थाओं और ग्राम पंचायतों की देखभाल करना इत्यादि। मुख्य रूप से हम उसके अधिकारों को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं।:—

(१) मालगुजारी संबंधी अधिकार—जिले की मालगुजारी वसूल करना कलक्टर का मुख्य काम होता है। इसी दृष्टि से उसे भूमि संबंधी सभी कागजात संभाल कर रखने पड़ते हैं। जिले के सारे पटवारी, कानूनगो, नायब तहसीलदार, तथा तहसीलदार उसकी इस काम में सहायता करते हैं। जिले का खजाना भी उसी के आधीन रहता है।

(२) शांति और व्यवस्था संबंधी अधिकार—जिले में शाँति और व्यवस्था कायम रखना कलक्टर का दूसरा मुख्य काम है। इस कार्य की दृष्टि से जिले के सारे पुलिस कर्मचारी, पुलिस सुपरिन्टेंडेंट, डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट, थानेदार इत्यादि उसी के नीचे काम करते हैं। राजनीतिक दृष्टि से भी जिले में किसी प्रकार की गड़बड़ न होने देना उसी का काम है। सभा, जुलूस, समाचार पत्रों, राजनीतिक दलों, इत्यादि की देखभाल करना—इसलिये उसके कार्य का आवश्यक अंग है। जिले में किसी कलक्टर की सफलता इसी बात से जानी जाती है कि वह शाँति बनाये रखने में कहा तक सफल होता है। समाचार पत्रों पर दृष्टि रखना, जनता को अपने पक्ष में बनाना, सरकार की आज्ञाओं को जनता तक पहुंचाना, तथा सारे जिले का दौरा करना, उसका मुख्य काम होता है।

(३) न्याय संबंधी अधिकार—कलक्टर न्याय की दृष्टि से प्रथम

श्रेणी का मजिस्ट्रेट होता है। बहुत से फौजदारी मुकदमे उसी की अदालत में पेश किये जाते हैं। उसे अपराधियों को दो वर्ष तक की सजा तथा १,००० रुपया जुर्माना करने का अधिकार होता है। वह माल के मुकदमों में अपने आधीन डिप्टी कलक्टरों के निर्णयों की अपील सुनता है। कुछ लोग कलक्टरों के इन न्याय संबंधी धिकारों की आलोचना करते हैं, कारण वह कहते हैं कि शासन तथा न्याय संबंधी अधिकार एक ही व्यक्ति के हाथ में रखने से नागरिकों के अधिकारों की रक्षा नहीं होती। नये संविधान में इसीलिये राज्य के नियामक सिद्धांतों के अन्तर्गत सरकारों को यह आदेश दिया गया है कि वह शीघ्र से शीघ्र शासन तथा न्याय संबंधी कार्यों को अलग अलग कर दें।

(४) निरीक्षण संबंधी अधिकार—जिले के भिन्न भिन्न विभागों का निरीक्षण करना कलक्टर का एक और आवश्क कार्य है। वास्तव में, जैसा पहिले बताया जा चुका है, कलक्टर वह इकाई है जहाँ पर आकर जिले की सारी शक्तियाँ केन्द्रित होती हैं। वह शासन की एकता बनाये रखने में सहायक सिद्ध होता है। जिले के सभी अफसर कलक्टर को आकर अपने महकमों की बातें बताते हैं तथा उसी के द्वारा प्रांतीय सरकार तक अपनी माँगें पेश करते हैं। वह जिले के प्रत्येक विभाग के कर्मचारियों जैसे जेलर, सिविल सर्जन, एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर, हेल्थ अफसर, इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स, पुलिस सुपरिन्टेंडेंट, म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन इत्यादि के काम की देखभाल करता है। अंग्रेजों के काल में कलक्टर को जनता अपना माँ-बाप समझती थी। वह ब्रिटिश सत्ता का प्रतीक था। जिले का शासन वह जनता की भलाई की दृष्टि से नहीं वरन् अपने इलाके में शाँति व व्यवस्था बनाये रखने की दृष्टि से करता था। यदि ऐसा करने में उसे अनुचित उपायों का प्रयोग भी करना पड़ता था, तो वह ऐसा करने से नहीं हिचकिचाता था। वह कमिश्नर और कमिश्नर के जरिये गवर्नर के प्रति उत्तरदायी होता था। वह अपने आप को जनता का सेवक नहीं वरन् उसका

स्वामी समझता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से यह स्थिति बिलकुल बदल गई है। कलक्टर अब उस मन्त्री के आधीन काम करता है जो अपने आप को जनता का सबसे बड़ा सेवक समझता है। कलक्टरों को इसलिये आदेश दिया जाता है कि वह जिले की जनता के साथ अधिक से अधिक संपर्क बढ़ाये, हर प्रकार के लोगों से मिलें, उनकी मुसीबत तथा दुख दर्द की कहानी सुनें तथा उनकी भलाई के लिये नई नई योजनाएं बनायें।

डिप्टी कलक्टर

जिला सब डिविजनों में बंटा रहता है। प्रत्येक सब डिविजन का अफसर एक डिप्टी कलक्टर होता है। वह प्रांतीय सिविल सर्विस का सदस्य होता है। अपने सब डिविजन में रह कर डिप्टी कलक्टर वह सभी काम करता है जो कलक्टर को जिले में करने पड़ते हैं। उसे प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार भी प्राप्त होते हैं और उसका मुख्य काम मुकदमों की सुनवाई करना तथा अपने सब डिविजन में शाँति और व्यवस्था कायम करना होता है। उसे मालगुजारी के प्रबंध की देखभाल नहीं करनी पड़ती।

तहसीलदार

एक सब डिविजन में तीन या चार तहसीलें होती हैं। प्रत्येक तहसील का अफसर एक तहसीलदार होता है। उसके भी दो प्रकार के काम होते हैं—एक माल गुजारी संबंधी और दूसरे शासन संबंधी। मालगुजारी की वसूली के लिये उसके नीचे एक नायब तहसीलदार, एक सदर कानूनगो, कुछ दूसरे कानूनगो तथा बहुत से पटवारी काम करते हैं। यही अफसर मालगुजारी तथा जमीनों की मिल्कियत का ब्यौरा रखते हैं। तहसीलदार एक द्वितीय श्रेणी का मजिस्ट्रेट भी होता है। वह छोटे फौजदारी तथा माल के मुकदमों का फैसला करता है। शासन प्रबंध की दृष्टि से तहसील-दार के नीचे तहसील के सभी थानों के थानेदार, हेड काँस्टेबिल, सिपाही तथा गावों के चौकीदार, आकर अपने काम का ब्यौरा देते हैं। तहसीलदार कलक्टर तथा डिप्टी कलक्टर दोनों के प्रति जिम्मेदार होता है।

पुलिस का प्रबंध

जिले में शाँति तथा व्यवस्था कायम रखने के लिये एक पुलिस फोर्स होती है जिसका मुख्य अधिकारी एक पुलिस सुपरिन्टेंडेंट होता है। उसके नीचे दो प्रकार की पुलिस काम करती है:—(१) खुफिया पुलिस और (२) साधारण पुलिस। खुफिया पुलिस के लोग गुप्त रहकर संगीन जुर्मों की छान बीन करते हैं। बड़े बड़े षड़यन्त्रों तथा राजनीतिक अभियोगो का भी वही पता लगाते हैं। दोनों प्रकार की पुलिस के अलग अलग सब-इन्स्पेक्टर, इन्स्पेक्टर तथा डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट पुलिस होते है। यह सभी अफसर सुपरिन्टेंडेंट पुलिस तथा जिले के कलक्टर को अपने काम का ब्यौरा देते हैं। पुलिस के महकमे का सब से बड़ा अधिकारी होम मिनिस्टर कहलाता है। उसके नीचे एक इन्स्पेक्टर जनरल आफ पुलिस तथा कुछ डिप्टी तथा असिस्टेंट इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस काम करते हैं। जिले का पुलिस सुपरिन्टेंडेंट इन्हीं अफसरों के प्रति उत्तरदायी होता है।

पुलिस की दृष्टि से प्रत्येक जिला कुछ सर्किलों, थानों तथा चौकियों में बंटा हुआ होता है। सर्किल का अफसर एक सर्किल इन्स्पेक्टर, थाने का अफसर एक थानेदार तथा चौकी का अफसर हवलदार कहलाता है। कुछ बड़े बड़े नगरों में कोतवालियाँ भी होती हैं जिनका इंचार्ज एक कोतवाल होता है।

भारत की गुलामी के काल में पुलिस अफसर अपना मुख्य कार्य देश में राजनीतिक आँदोलन को दबाना तथा किसी भी प्रकार के उचित अथवा अनुचित उपायों से अपने क्षेत्रमें शाँति बनाये रखना समझते थे। जनता के भले तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को परेशान करने तथा उनके विरुद्ध झूठे सच्चे मुकदमे बनाने में भी उन्हें आनन्द आता था। वह जनता की रक्षा नहीं, उसके अधिकारों की भर्त्सना करते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पुलिस के दृष्टिकोण में एक बड़ा परिवर्तन आ गया है। वह अब अपने आप को जनता का सेवक समझती है। जनता के साधारण व्यक्तियों का सबसे अधिक काम

पुलिस के अधिकारियों के साथ पड़ता है। इसलिये स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ समझ कर हमारे पुलिस अधिकारियों को चाहिये कि वह रिश्वत, बे-ईमानी, दमन तथा जुल्म का मार्ग छोड़कर जनता की सेवा को ही अपना सबसे बड़ा धर्म समझें। हमारे प्रांत में आज भी पुलिस के कितने ही ऐसेकर्मच ारी हैं जिनकी मनोवृत्ति अभी तक नहीं बदली है और जो पुराने ही ढंग पर शासन का कार्य चलाना चाहते हैं। हमारा धर्म है कि हम ऐसे पुलिस कर्म-चारियों को उनका कर्तव्य समझायें तथा उनके अनुचित कार्यों को मन्त्रियों तथा प्रांतीय विधान सभा के सदस्यों के सम्मुख रक्खें।

जेलों का प्रबंध

प्रत्येक जिले में एक जेल का होना अनिवार्य होता है, जिससे वहाँ पर वह सभी अपराधी रक्खे जा सकें जो कानूनों को तोड़ते हैं। जेल का बड़ा अफसर सुपरिन्टेंडेंट जेल तथा छोटा अफसर जेलर कहलाता है। जिले का सिविल सर्जन भी जेलों की देख भाल करता है।

स्त्रियों तथा बच्चों के लिये अलग जेल होती है। जहाँ ऐसा प्रबंध संभव नहीं, वहाँ उनके लिये उसी जेल में अलग वार्ड बना दी जाती है। हमारे प्रांत में छोटे बच्चों के लिये चुनार में एक अलग जेल है। स्त्रियों के लिये भी आगरे में एक विशेष जेल की व्यवस्था है।

जेल का सर्वोच्च अधिकारी जेल मन्त्री होता है। उसके नीचे एक इन्स्पेक्टर जनरल आफ प्रिजिन्स काम करता है। अंग्रेजों के काल में हमारी जेलों का प्रबंध अच्छा नहीं था। जेलों से निकल कर अपराधी एक सभ्य नागरिक के स्थान पर और भी भयंकर अपराधी बन जाता था। जेलों में अपराधियों के नैतिक चरित्र को उठाने की कोशिश नहीं की जाती थी। उन्हें किसी प्रकार की शिक्षा भी नहीं दी जाती थी। आजकल हमारी सरकार इस ओर ध्यान दे रही है।

स्वास्थ्य व सफाई का प्रबंध

जनता के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये प्रांतीय सरकार के अन्तर्गत एक

स्वास्थ्य विभाग होता है। आजकल हमारे प्रांत में इस विभाग के मन्त्री श्री चन्द्रभान गुप्त हैं। मन्त्री के नीचे इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी जो डाइरेक्टर आफ पब्लिक हेल्थ कहलाता है काम करता है। उसकी सहायता के लिये कई डिप्टी तथा असिस्टेंट डाइरेक्टर होते हैं। इस विभाग का मुख्य काम बीमारियों को रोकना, जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करना, सफाई रखना, स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा देना, प्रदर्शनियों इत्यादि का प्रबंध करना, संक्रामक बीमारियों को फैलने से रोकना, जन्म और मृत्यु का हिसाब रखना, तथा खाने पीने की चीजों की स्वच्छता कायम रखना, होता है। यह काम शहरों में म्युनिस्पैलिटियाँ तथा गावों में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा ग्राम पंचायतें करती हैं। प्रत्येक बड़ी म्युनिस्पैल्टी में एक हेल्थ आफीसर होता है जिसके नीचे कई सैनीटरी इन्स्पेक्टर तथा वैक्सीनेटर इत्यादि काम करते हैं। इन कर्मचारियों के काम की देखभाल प्रांत के स्वास्थ्य विभाग के डाइरेक्टर इत्यादि द्वारा की जाती है।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएं प्रर्याप्त मात्रा में विद्यमान नहीं हैं। हमारे देश के व्यक्तियों की औसतन आयु केवल २६ वर्ष है, हजारों रोगी चिकित्सा की किसी प्रकार की सुविधा न मिलने के कारण मौत के शिकार हो जाते हैं, १००० बच्चों के पीछे १६० बच्चे १ वर्ष की आयु से पहिले ही काल के गाल में समा जाते हैं। लाखों स्त्रियाँ प्रसव की वेदना के कारण, किसी प्रकार का जच्चा गृह का प्रबंध न होने से, परलोक को सिधार जाती हैं। दूसरे देशों में स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। आशा है हमारी प्रांतीय सरकारें अब इस ओर विशेष रूप से ध्यान देंगी।

चिकित्सा का प्रबंध

स्वास्थ्य विभाग का मुख्य काम बीमारियों की रोक थाम तथा जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करना होता है। यह विभाग बीमारों, तथा रोगियों की चिकित्सा का प्रबंध नहीं करता। यह काम प्रांत के चिकित्सा विभाग द्वारा

किया जाता है। प्रायः चिकित्सा तथा स्वास्थ्य विभाग का एक ही मन्त्री अधिकारी होता है, परन्तु उसके नीचे काम करने वाले चिकित्सा तथा स्वास्थ्य संबंधी अफसर अलग अलग होते हैं। चिकित्सा विभाग का प्रधान कर्मचारी इन्स्पेक्टर जनरल आफ सिविल हास्पिटलस कहलाता है। उसकी सहायता के लिये भी असिस्टेंट तथा डिप्टी डाइरेक्टर्स होते हैं। इस विभाग में जिले का प्रधान अफसर सिविल सर्जन कहलाता है जो जिले के सभी अस्पतालों की देखभाल करता है। अस्पताल सरकारी भी होते हैं, म्युनिसिपल कमैटियों तथा बच्चों के लिये अलग अस्पताल भी होते हैं।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं के समान चिकित्सा संबंधी प्रबंध की भारी कमी है। हमारे देश में ४०,००० व्यक्तियों के पीछे एक अस्पताल, ९,००० व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर तथा ८६,००० व्यक्तियों के पीछे एक नर्स हैं। इंगलैंड में ७०० व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर ४०० व्यक्तियों के पीछे एक नर्स, तथा २,००० व्यक्तियों के लिये एक अस्पताल का प्रबंध है। बच्चों, स्त्रियों तथा संक्रामक रोगों की चिकित्सा के लिये भी हमारे देश में उचित प्रबंध नहीं है। आशा है कि शीघ्र ही प्रांतीय सरकारें इस ओर विशेष ध्यान देंगी।

अध्याय १४

स्थानीय स्वशासन

स्थानीय संस्थाओं का महत्त्व

स्थानीय स्वशासन का अर्थ वह शासन है जिसके द्वारा नगर, उप-नगर, तथा ग्राम में रहने वाले लोगों को अपनी स्थानीय समस्याओं का, अपनी आवश्यकता तथा इच्छानुसार, प्रबंध करने का अधिकार दिया जाता है। किसी भी देश में केन्द्रीय अथवा प्रांतीय सरकारें, इच्छा रहने पर भी स्थानीय विषयों का इतना उचित प्रबंध नहीं कर सकतीं जितना स्वयं उन स्थानों की जनता, जिनके जीवन पर उन विषयों का दिन प्रति दिन प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, किसी नगर की अमुक गली में सफाई है अथवा नहीं, प्रातः भंगी ने आकर झाड़ू लगाई है या नहीं, नालियाँ ठीक प्रकार से साफ की गई हैं या नहीं, कूड़ा डालने के लिये किसी स्थान पर ढोल का उचित प्रबंध है या नहीं, किसी गली या कूचे में सरकारी रोशनी की व्यवस्था है अथवा नहीं, नगर के रोगियों के लिये औषधालय में दवाइयां हैं अथवा नहीं, आने जाने के मार्ग पर ठीक प्रकार से सफाई अथवा मरम्मत की गई है अथवा नहीं, इत्यादि—ये कुछ ऐसे विषय हैं जिनका संबंध स्थानीय लोगों के नित्य के जीवन से होता है और उस स्थान के रहने वाले लोग ही इन समस्याओं का उचित प्रबंध कर सकते हैं—कोई दूर रहने वाली केन्द्रीय या प्रांतीय सत्ता नहीं। इसलिये प्रायः प्रत्येक देश में ही स्थानीय विषयों का प्रबंध करने के लिये नगरपालिकाएं, जिला मंडली, उपनगर पालिकायें तथा ग्राम पंचायतों इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।

(१) प्रजातन्त्र देशों में स्थानीय स्वशासन संस्थाएं नागरिकों के जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं। उनका मुख्य काम ऐसी सुविधाओं का प्रबंध करना होता है, जिनका संबंध व्यक्तियों के दैनिक जीवन से है। शुद्ध दूध, घी, मक्खन, पीने का पानी, स्वास्थ्यप्रद फल, खाद्य सामग्री, औषधालय, तैरने के तालाब, बिजली, ट्राम, बस, सड़कें खेलने के मैदान, इत्यादि का उचित प्रबंध—यह कुछ ऐसे विषय हैं जो हमारे नित्य प्रति के जीवन को सुखमय अथवा दुखी बनाते हैं। यह सब काम स्थानीय संस्थाओं को करने पड़ते हैं। केन्द्रीय व प्रांतीय सरकारों की नीति तथा उनके कार्य, हमारे दैनिक जीवन को इतना अधिक प्रभावित नहीं करते, जितना स्थानीय संस्थाओं के काम, जिनकी उचित व्यवस्था पर, हमारे दिन प्रति दिन के जीवन का हर्ष उल्लास, आनन्द, एवं उत्साह निर्भर रहता है। यदि हमारी केन्द्रीय या प्रांतीय सरकार दूसरे देश में अपना दूतावास खोल देती है अथवा देश की सेना में एक और टुकड़ी जोड़ देती है, या हमारी प्रांतीय सरकार उद्योग धन्धों की उन्नति के लिये एक पंच वर्षीय योजना बना देती है तो इससे हमारे दैनिक जीवन पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उन कामों से पड़ता है जो हमारी स्थानीय संस्थाओं को करने पड़ते हैं।

(२) स्थानीय संस्थाएं अपने ऊपर छोटी छोटी स्थानीय समस्याओं का कार्य भार लेकर केन्द्रीय व प्रांतीय सरकारों के भार को हल्का कर देती हैं और उन्हें इस बात का अवसर देती हैं कि वह बड़ी बड़ी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर अधिक ध्यान दे सकें।

(३) स्थानीय संस्थाओं द्वारा शासन के कार्य में कुशलता तथा दक्षता की वृद्धि होती है। कारण, उनका निर्माण कार्य विभाजन के प्रशंसनीय सिद्धांत पर किया जाता है और स्थानीय लोग अपनी समस्याओं का अधिक सुन्दरता से उपचार कर सकते हैं।

(४) अंत में, स्वशासित संस्थाएं नागरिक शिक्षा के महान् केन्द्र का कार्य करती हैं। वह नागरिकों में जन सेवा, बलिदान, सहयोग, संयम तथा

अनुशासन की उन भावनाओं का निर्माण करती हैं जिन पर एक स्वस्थ नागरिक जीवन अवलंबित है। वह व्यक्तियों में सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेने की भावना जागृत करती हैं। वे, उन्हें शासन का अनुभव प्रदान करती हैं। इस प्रकार आगे चलकर वह उन्हें इस योग्य बनाती हैं कि वह देश के बड़े बड़े कामों में भाग ले सकें तथा केन्द्रीय व प्रांतीय शासनों में उच्च पदों पर काम कर सकें। वे लोकतन्त्र शासन की इकाइयों का काम देती हैं और जनता को इस बात का अवसर देती हैं कि वह शासन कार्य में अधिक से अधिक भाग ले सकें। इस प्रकार वह गणतन्त्र की नींव कही जाती है। प्रसिद्ध राजनीतिक लेखक लास्की ने कहा है "स्थानीय संस्थाएं सरकार के दूसरे अंगों से बढ़-कर जनता को लोक तन्त्र की शिक्षा देती हैं। वे जातियों को शिक्षित बनाती हैं, नागरिक गुणों के विकास के लिये प्रारंभिक पाठशालाओं का काम देती हैं तथा जनता को वास्तविक स्वतन्त्रता का अनुभव कराती हैं।"

भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में स्थानीय संस्थायें किसी न किसी रूप में सदा से चली आई हैं। वैदिक काल में भारतीय ग्रामों का संगठन पंचायती राज्य के सिद्धांत पर आधारित था। सारे देश में स्वायत्त शासन संस्थाओं की भरमार थी। यह संस्थाएं अपने क्षेत्र में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थीं और वह केवल ग्राम में शाँति बनाये रखने अथवा न्याय करने का काम ही नहीं करती थीं वरन् जनता के सामाजिक आचार और व्यवहार, शिक्षा, जीविका, व्यापार व दूसरे कामों पर भी उनका पूरा नियन्त्रण था। वह राजाओं का चुनाव करती थीं। इन संस्थाओं का उल्लेख हमें जातक, रामायण, महाभारत, बृहस्पति, कौटिल्य के अर्थ शास्त्र, तथा अन्य पुरातन ग्रन्थों में मिलता है। स्वायत्त शासन की यह प्रणाली भारतीय राजनीतिक जीवन में लगभग १९ वीं शताब्दि के मध्य तक बनी रही। इसके पश्चात् बाह्य हस्तक्षेप से उनका संतुलन बिगड़ने लगा और अंत में जीवन की यह स्वस्थ प्रणाली बिलकुल लुप्त हो गई।

प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार सर चार्ल्स मेटकाफ ने तो यहाँ तक कहा है "इन संस्थाओं ने भारतीय सामाजिक जीवन की स्थिरता तथा स्वतन्त्रता को बनाये रखने में दूसरी सभी भारतीय संस्थाओं से अधिक सहयोग दिया है। भारत में राज्य बदले, एक शासन प्रणाली का अन्त हुआ, दूसरी का प्रादुर्भाव, कितने ही आक्रमणकारी आये, परन्तु भारत की इन ग्राम पंचायतों में वह शक्ति थी कि वह इन सब क्रांतियों तथा परिवर्तनों के बीच स्थिर बनी रहीं और भारतीयों के जीवन को उसी प्राचीन संस्कृति के वातावरण में ढालती रहीं।"

प्राचीन भारत की इन संस्थाओं को 'श्रेणी' या 'गुणा' के नाम से संबोधित किया जाता था इनमें ५ से लगाकर ७ तक जनता के चुने हुए प्रतिनिधि गाँव या नगर का प्रबंध करते थे। बड़ी नगर पालिकाओं में अधिक प्रतिनिधि भी होते थे, उदाहरणार्थ चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में पाटलीपुत्र नगर के प्रबंध का वर्णन देते हुए प्रसिद्ध यूनानी राजदूत मेगस्थनीज लिखता है कि इस नगर के प्रबंध के लिये ३० प्रतिनिधियों की एक समिति थी। यह समिति उप समितियों द्वारा सारे नगर का प्रबंध करती थी। पाटलीपुत्र का शासन प्रबंध अत्यंत उच्च कोटि का था। नगर में भूमिगत नालियों का प्रबंध था। प्रकाश तथा सफाई की उचित व्यवस्था थी। नगरपालिका की ओर से अनेक उद्यान, क्रीड़ास्थल, खेल के मैदानों इत्यादि का प्रबंध किया जाता था। नगर में शाँति व सुरक्षा बनाए रखने का काम भी यही संस्था करती थी।

जाति पंचायतें——प्राचीन भारत में एक दूसरे प्रकार की जाति पंचायतें थीं जिनके सदस्य केवल वही व्यक्ति हो सकते थे जो किसी जाति या व्यवसाय विशेष से संबंध रखते हों। ऐसी संस्थायें दो प्रकार के कार्य करती थीं——एक यह कि जातीय या व्यवसायिक एकता बनाये रखने में सहायक सिद्ध होती थीं और दूसरी यह कि वह अपने सदस्यों की सहायता तथा उनके अधिकारों की रक्षा के लिये उसी प्रकार के कार्य करती थीं जैसे आजकल सहायक समितियों (Co-operative Societies) या ट्रेड यूनियनों

द्वारा संपादित किये जाते हैं। यह संस्थायें अपने सदस्यों द्वारा नैतिक आच-रण का अवलंबन करने तथा व्यापार में ईमानदारी से काम लेने पर भी जोर देती थीं। इसी कारण इन संस्थाओं में जाति अथवा व्यापार के अ-लिखित नियमों के उल्लंघन करने की दशा में दंड व्यवस्था का आयोजन भी रहता था।

उपरोक्त पंचायतों में से कुछ जाति पंचायतें आजकल भी ग्रामीण भारतवर्ष में, विशेषकर दलित जातियों में, पाई जाती हैं। इनको बिरादरी पंचायत भी कहा जाता है जैसे कोलियों, महतरों, चमारों, धोबियों की पंचा-यतें इत्यादि। यह पंचायतें थोड़े थोड़े समय बाद खुले स्थानों में होती हैं और अपनी ही जाति व व्यवसाय की समस्याओं पर विचार करती हैं। जाति के प्रत्येक सदस्य को इन सभाओं में बोलने का अधिकार होता है। इन संस्थाओं में अधिक अनुशासन से कार्य नहीं होता। प्रायः सभाओं में सभी व्यक्ति एक साथ बोलने का प्रयत्न करते हैं जिससे आस पास वालों को ऐसा प्रतीत होता है मानों यह व्यक्ति आपस में लड़ रहे हों। इन संस्थाओं के फ़ैसलों का पालन जाति के लोग इस डर से करते हैं कि उनका सामाजिक बहिष्कार न कर दिया जाय। बहुत बार ये पंचायतें जुर्माने इत्यादि भी करती हैं और कभी कभी सदस्यों का हुक्का-पानी व रोटी-बेटी का व्यवहार बन्द कर देती हैं। इन जाति पंचायतों से कुछ लाभ अवश्य हैं उदाहरणार्थ, वह जाति की नैतिक अवनति को रोकती हैं, विवादों का पारस्परिक भाई चारे के ढंग से निर्णय करती हैं और जातीय एकता को दृढ करती हैं, परन्तु आजकल राष्ट्रीयता के निर्माण में ये पंचायतें घातक सिद्ध होती हैं। इन पंचायतों के कारण एक जाति के सदस्यों में प्रथककरण की भावना बनी रहती है और समाज के सब लोग एक दूसरे के साथ मिल कर घनिष्ठ मित्रता का व्यवहार नहीं कर पाते। बहुत बार जाति पंचायतों में एक दूसरे के साथ संघर्ष भी हो जाते हैं। आधुनिक काल में व्यवसाय के आधार पर ट्रेड यूनियनों का संगठन किया जाता है। इस कारण जाति-पाँति के आधार पर संस्थाओं का निर्माण करना अधिक उचित नहीं जान पड़ता।

मुसलिम काल में स्वायत्त शासन-संस्थाओं का संगठन

मुसलमानों के काल में भारत के ग्रामीण जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। मुसलमान शासक नगर के जीवन को ही अधिक पसंद करते थे। इस कारण उनके काल में हमारी ग्रामीण संस्थाओं का संगठन पूर्ववत् ही बना रहा। हाँ! इतना अवश्य है कि नगरों के शासन के लिये जो प्राचीन नगर-पालिकाओं का संगठन था वह तोड़ दिया गया और उनके स्थान पर नगरों के शासन प्रबंध के लिये कोतवालों की नियुक्ति कर दी गई। यह कोतवाल आजकल की म्युनिसिपल कमेटियों के सब कार्यों की देखभाल करते थे।

ब्रिटिश-शासन-काल में स्वायत्त शासन-संस्थाओं का विकास

हमारे अंग्रेज शासकों ने सर्व प्रथम देश में केन्द्रीकरण की नीति का अनुसरण किया। इस नीति के आधीन, उन्होंने अपने शासन के प्रारंभिक काल में, स्थानीय संस्थाओं को जड़-मूल से नष्ट कर दिया। भारत की प्राचीन ग्राम पंचायतें भी जो सहस्त्रों वर्षों से हमारे सामाजिक जीवन का अविच्छिन्न अंग बन गई थीं, तोड़ दी गईं। परन्तु शीघ्र ही सरकार को अपनी त्रुटि का पता चल गया और उसने यह अनुभव किया कि इतने बड़े देश में शासन की कुशलता की दृष्टि से किसी न किसी प्रकार की स्थानीय संस्थाओं का संगठन अवश्य होना चाहिये। इसी उद्देश्य से सर्व प्रथम सन् १७९३ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक कानून पास किया जिसके अन्तर्गत् भारत में स्थानीय संस्थाओं का संगठन किया गया। इसके पश्चात् सन् १८४२, १८५० तथा १८५६ में दूसरे कानून बनाये गये जिनके द्वारा इन संस्थाओं का संगठन अधिक व्यापक बना दिया गया। आरंभ में इन संस्थाओं के सदस्य केवल मनोनीत ही होते थे, परन्तु सन् १८७३ में लार्ड मेयो ने निर्वाचन पद्धति की नींव डाली। इसके पश्चात् सन् १८८२ में लार्ड रिपन के शासन काल में इन संस्थाओं को और अधिक लोकप्रिय बना दिया गया। निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और सभापति का आसन भी गैर-सरकारी

नबा दिया गया । सन् १९१९ में मौन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधारों के आधीन प्रांतों में स्वायत्त शासन विभाग एक लोकप्रिय मन्त्री के हाथों में दे दिया गया। इसके पश्चात् इन संस्थाओं के संगठन में और अधिक सुधार किये गये । निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गई और मत देने का अधिकार बहुत अधिक लोगों को दिया जाने लगा । हमारे अपने प्रांत में सन् १९१६ में एक वृहद-म्यूनिसिपल ऐक्ट पास किया गया । इसी ऐक्ट के आधीन अभी, कुछ दिन पहिले तक, हमारी म्युनिसिपैल्टियोंका शासन प्रबंध किया जाता था । पिछले वर्ष इस ऐक्ट में कुछ संशोधन किये गये जिससे वयस्क मताधिकार के आधार पर राय देने का अधिकार सभी बालिग् स्त्री और पुरुषों को दे दिया गया, प्रथक निर्वाचन प्रणाली का अन्त कर दिया गया और म्यूनिस्पल कमेटियों के प्रधानों का निर्वाचन सदस्यों के हाथ से छीन कर सीधा मत दाताओं के हाथ में दे दिया गया । इस संशोधित कानून के आधीन हमारे प्रांत भर की म्यूनिस्पैल्टियों में आम-चुनाव इसी वर्ष के अंत में होने वाले हैं ।

स्थानीय संस्थाओं का वर्गीकरण

भारतवर्ष की स्थानीय संस्थाओं को हम मोटे रूप से दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं:—

१. नगरों की समस्याओं की देखभाल करने वाली संस्थायें ।

२. ग्रामीण प्रदेशों की देख भाल करने वाली संस्थायें ।

जो संस्थायें नगरों के प्रबंध की व्यवस्था करती हैं, उनका वर्गीकरन हम निम्न प्रकार कर सकते हैं:—

१. कार्पोरेशन

२. म्युनिस्पल कमेटियां या नगरपालिकाएं

३. टाउन एरिया व नोटीफाइड एरिया कमेटियाँ या उपनगर पालिकायें

४. कैन्टोन्मेंट बोर्ड

५. और पोर्ट ट्रस्ट

इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों की संस्थाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है:—

१. डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या ज़िला मंडली ।

२. ताल्लुका या सब डिविजल बोर्ड

३. ग्राम पंचायत ।

अब हम इन विभिन्न संस्थाओं के कार्य अथवा संगठन की विवेचना करेंगे ।

स्थानीय संस्थाओं के कार्य

जैसा पहिले बतलाया जा चुका है स्थानीय संस्थाओं का काम मुकामी बातों का प्रबंध करना होता है , इन कामों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं ।

(१) सार्वजनिक रक्षा—इस शीर्षक के अन्तर्गत स्थानीय सरकारों का काम सड़कों तथा गलियों का बनाना, उनकी मरम्मत करना, नगर की रोशनी का प्रबंध करना, मकानों इत्यादि के बनाने के लिये नियम बनाना, जनता के लिये स्वच्छ पानी व नहरें इत्यादि का प्रबंध करना, आग से बचाव के लिये दमकलें या फायर इंजनों का प्रबंध करना, जनता के स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने वाली चीजों की बिक्री को रोकना, ऐसे कारखानों तथा व्यापारों पर नियन्त्रण रखना जिनसे जनता के स्वास्थ्य अथवा चरित्र पर कुप्रभाव पड़े तथा सार्वजनिक मार्गों पर से रुकावटें हटाना इत्यादि होता है ।

(२) सार्वजनिक स्वास्थ्य—इस शीर्षक के अन्तर्गत स्थानीय संस्थाओं का काम चेचक व टीके का प्रबंध, संक्रामक रोगों की रोक थाम, औषधालयों तथा चिकित्सालयों का प्रबंध, खेल के मैदान तथा बागीचों का प्रबंध, तथा ऐसे दूसरे कामों को करना होता है जिनसे जनता के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़े ।

(३) सार्वजनिक शिक्षा—स्थानीय संस्थायें लड़के व लड़कियों के लिये प्राइमरी शिक्षा, टेकनिकल शिक्षा, पुस्तकालय, वाचनालय, अजायबघर, जू व कला केन्द्र, इत्यादि का प्रबंध करती हैं ।

(४) सार्वजनिक सुविधाएं—इस शीर्षक के अन्तर्गत स्थानीय संस्थाओं का कर्तव्य अपने नागरिकों की सेवा व उन्नति के लिये हर प्रकार का कार्य करना होता है, जैसे पानी, गैस व बिजली का प्रबंध, मार्केटों का खोलना, श्मशान भूमि का प्रबंध, बसें व ट्राम गाड़ियाँ चलाना, डेरी खोलना, तैरने के तालाब बनाना, सिनेमा खोलना, पब्लिक हाल बनाना, वृक्ष लगाना, पिकनिक के स्थान बनाना, नावों का प्रबंध करना, इत्यादि ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थानीय संस्थाओं को वह सभी काम सुपुर्द किये जाते हैं जिनका संबंध उन स्थानों पर रहने वाली जनता की सुविधा, भलाई तथा आराम से होता है। प्रायः सभी संस्थायें चाहे वह बड़े बड़े नगरों में कार्य करती हों या छोटे कस्बों में, देहाती इलाकों में काम करती हों या छोटे छोटे गावों में, अपने साधनों के अनुसार इसी प्रकार के कार्य करती हैं।

दूसरे देशों की स्थानीय संस्थाएँ

दुर्भाग्यवश हमारे देश की स्थानीय संस्थायें, अनेक कारणों से अपने नागरिकों को वह सभी सुविधाएं प्रदान नहीं कर पातीं जो दूसरे देशों की, संस्थाएं करती हैं। इंगलैण्ड, फ्रांस या अमरीका के किसी गाँव या कस्बेमें आप चले जाइये, आपको उन क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं द्वारा हर प्रकार की सुविधाएं देखने को मिलेंगी। मोटर या दूसरी सवारी का प्रबंध, होटलों का इन्तजाम, खालिस दूध, दही, घी, व मक्खन का प्रबंध, ट्राम, बस व रेलों की व्यवस्था, तैरने के तालाय, बोट क्लब, खलने के मैदान, लान, पार्क, चिड़ियाघर, कला केन्द्र, वाचनालय, पुस्तकालय आदि का प्रबंध तथा दूसरे प्रकार की अनेक सुविधाएं, इन देशों की स्थानीय संस्थाएं अपने नागरिकों को प्रदान करती हैं। उनकी आमदनी के स्रोत्र इतने अधिक होते हैं कि एक एक म्यूनिसिपल्टी में कई कई लाख रुपये की आमदनी होती है। हमारे देश में सारी स्थानीय संस्थाओं की कुल आमदनी २० करोड़ रुपये से अधिक नहीं। इंगलैण्ड में अकेली ग्लासगों म्यूनिसिपैल्टी की आम-

दनी १५ करोड़ रुपये से अधिक है। यही मुख्य कारण है कि वहाँ की संस्थाएं अपने नागरिकों के लिये बहुत अधिक सुविधाओं का प्रबंध कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त हमारे देश के लोगों में नागरिक व सार्वजनिक भावना व शासन अनुभव की भारी कमी है। हमारे गावों में शहरों के लोग म्यूनिसिपल या डिस्ट्रिक्टबोर्ड के सदस्य इसलिय नहीं बनते कि वह वहाँ जाकर जनता की सेवा करें या उनकी दशा सुधारने के लिये नईयोजनाएं बनायें, वरन् इसलिये कि उनकी अपनी इज़्जत व आबरू बढ़े और उनके कुछ स्वार्थों की पूर्ति हो सके। हमारी अधिकतर स्थानीय संस्थाओं के सदस्य अध पढ़े लिखे होते हैं। वह दूसरे देशों के अनुभवों से लाभ नहीं उठा सकते, उनमें इतनी योग्यता नहीं होती कि दूसरे देशों की स्थानीय संस्थाओं का साहित्य पढ़ें, उनके तजुर्बों से लाभ उठायें तथा उनकी भांति जन सेवा का कार्य करें। दूसरे देशों की स्थानीय संस्थाएं जिनकी आमदनी कम होती हैं वह आपस में मिल कर एक दूसरे के सहयोग से कार्य करती हैं। उदाहरणार्थ, पास पास की दो या दो से अधिक म्युनिसिपल कमेटियाँ एक ही अस्पताल, शिशु गृह, जच्चा खाना, नाट्यशाला, खेल के मैदान व पब्लिक हाल इत्यादि बना लेती हैं। इससे खर्चे में भारी कमी हो जाती है और जनता को अधिक सुविधाएं मिल जाती हैं। भारत में भी हम इसी प्रकार के सहयोग से काम कर सकते हैं।

हमारे देश की स्थानीय संस्थाओं में सुधार के लिये कुछ सुझाव

भारतवर्ष की स्थानीय संस्थाओं में सुधार करने के लिये आवश्यक है कि भारतीय जनता अपने कर्त्तव्यों को भली भांति समझे और चुनावों के समय केवल ऐसे ही व्यक्तियों को राय दे जो हर प्रकार से योग्य तथा अनुभवी हों और जो उनकी सच्ची सेवा कर सकें। जाँति-पाँति, पारिवारिक बन्धन, या रिश्तेदारी के विचार से हमें राय देनी नहींचाहिये। हमें मतदाता परिषद (Voters Council), नागरिक संस्थाएं (Citizens Associations) इत्यादि बनानी चाहिये और इनके द्वारा इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि स्थानीय संस्थाओं के सदस्य अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये नहीं वरन्

जन सेवा के लिये कार्य करें। जब तक जनता स्वयं जागरुक न बनेगी और वह अपने अधिकारोंको न समझेगी तब तक कोई बाहरी संस्था उसका उद्धार नहीं कर सकती ।

जनता को शिक्षित बनाने तथा उसे अपने कर्तव्यों की याद दिलाने के लिये आवश्यक है कि भारत के प्रत्येक स्कूल व कालेज में नागरिक शास्त्र व स्वायत्त शासन संबंधी संस्थाओं की शिक्षा अनिवार्य बना दी जाय। हमारी विश्वविद्यालयों को भी चाहिये कि वह एम० ए० तथा पी० एच० डी० की डिग्रियों के लिये भी स्थानीय स्वशासन की शिक्षा पर जोर दें। आजकल हमारे देश की अधिकतर यूनिवर्सिटियों में स्थानीय संस्थाओं की शिक्षा को स्थान नहीं दिया जाता। इन संस्थाओं की कितनी ही ऐसी समस्याएं हैं जिन पर अनुसंधानत्मक अध्ययन किया जा सकता है, उदाहरणार्थ स्थानीय राजस्व (Local Finance), म्युनिसिपल व्यापार (Municipal Trading), नगर योजना, गृह निर्माण योजना (Housing Problem), जन स्वास्थ्य (Public Health), समाजिक उत्थान (Social amenities), इत्यादि अनेक ऐसी समस्याएं हैं जिन पर बहुत गूढ़ अध्ययन किया जा सकता है। इसलिये विश्वविद्यालयों को चाहिये कि वह अपने पाठ्य क्रम में इस शिक्षा पर विशेष ध्यान दें।

नागरिक संस्थाओं का संगठन

कार्पोरेशनों का संगठन

हमारे देश में मुख्यत: तीन कार्पोरेशन बहुत प्राचीन समय से कार्य करते हैं। यह कार्पोरेशन बंबई, कलकत्ता और मद्रास में हैं। इनकी स्थापना ब्रिटिश पार्लियामेंट के विशेष कानूनों द्वारा की गई थी। भारत में सबसे पहला कार्पोरेशन सन् १६८७ में मद्रास नगर में स्थापित किया गया। इसके पश्चात बंबई तथा कलकत्ता में कार्पोरेशन संगठित किये गये। म्यू-निसिपल कमेटियों की अपेक्षा कार्पोरेशनों को अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं। उन पर प्रांतीय सरकार का नियन्त्रण भी नाम मात्र का होता है।

कलकत्ता कार्पोरेशन

कलकत्ता-कार्पोरेशन के सदस्यों की कुल संख्या ९८ है। इन सदस्यों में ९३ सभासद (Councillors)) और ५ एल्डरमैन होते हैं। ऐल्डरमैनों का चुनाव सभासदों द्वारा किया जाता है। यह नगर के सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। कार्पोरेशन का अध्यक्ष मेयर कहलाता है, जिसका चुनाव प्रति वर्ष किया जाता है। कार्पोरेशन के शासन प्रबंध के लिए एक चीफ एक्जीक्यूटिव आफिसर की नियुक्ति की जाती है। कार्पोरेशन के सेक्रेटेरियट के सारे प्रबंध का उत्तरदायित्व इसी अफसर पर होता है। कार्परेशन के 'मेयर' या कौंउसिलर उसके काम में हस्तक्षेप नहीं करते।

बंबई कार्पोरेशन

बंबई कार्पोरेशन के सदस्यों की संख्या १०६ है। इनमें से ८० निर्वाचित, १६ मनोनीत तथा १० सदस्य शेष सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। बंबई कार्पोरेशन के चीफ एक्जीक्यूटिव आफीसर को म्यूनिसिपल कमिश्नर कहा जाता है। वह प्रायः इंडियन सिविल सर्विस का सदस्य होता है। और उसकी नियुक्ति तीन वर्ष के लिये की जाती है। बंबई में एक प्राचीन रीति के अनुसार 'मेयर' का चुनाव प्रति वर्ष क्रमशः हिंदू, मुसलिम तथा पारसी सदस्यों में से किया जाता है। परन्तु अभी कुछ दिन हुए इस रीति को तोड़कर बंबई कार्पोरेशन के इतिहास में प्रथम बार, श्री एस० के० पाटिल दुबारा इसी पद के लिये निर्वाचित कर दिये गये।

मद्रास कार्पोरेशन

मद्रास कार्पोरेशन के सदस्यों की संख्या ६५ है। इनमें ५९ सदस्य निर्वाचित, १ मनोनीत तथा ५ सदस्य दूसरे सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। बंबई कार्पोरेशन की भांति मद्रास कार्पोरेशन के चीफ ऐक्जीक्यूटिव आफीसर को भी म्यूनिसिपल कमिश्नर कहा जाता है। इसकी नियुक्ति प्रांतीय सरकार द्वारा की जाती है।

भारतवर्ष में उपरोक्त तीन नगरों को छोड़कर शेष सब बड़े नगरों में म्यूनिसिपल कमेटियाँ हैं। हमारे प्रांत में इन कमेटियों की संख्या ८५ है। भिन्न भिन्न प्रांतों में म्यूनिसिपैलटियों का संगठन अलग प्रकार से किया जाता है। नीचे हम उत्तर प्रदेश की नगर-पालिकाओं के संगठन का संक्षिप्त विवरण देते हैं:—

निर्माण—हमारे प्रांत के प्रायः उन सभी नगरों में जिनकी जन संख्या ५०,००० से अधिक है म्यूनिसिपल कमेटियाँ हैं। जिन म्यूनिसिपल कमेटियों की वार्षिक आय ५०,००० रु० से अधिक है उनमें एक एक्जीक्यूटिव अफसर होता है। म्यूनिसिपेलिटी संबंधी संशोनीत कानून के अनुसार नगर -पालिकाओं की सदस्य संख्या २० से कम अथवा ८० से अधिक नहीं होगी। संशोधित कानून के अनुसार मनोनित सदस्यों की प्रथा का अन्त कर दिया गया है और उसके स्थान पर सहायक सदस्यों की व्यवस्था की गई है। कानून में कहा गया है कि कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, आगरा व लखनऊ में सहायक सदस्यों की संख्या ८ होगी। शेष नगर-पालिकाओं में जिनकी जन-संख्या १ लाख से अधिक है, ऐसे सदस्यों की संख्या ६ निश्चित की गई है। इससे छोटे नगरों में केवल ४ सहायक सदस्य नगर पालिकाओं में चुने जायंगे ।

ऐसे सदस्यों के निर्वाचन के संबंध में संशोधित कानून में विशेष व्यवस्था की गई है। उदाहरणार्थ, कानून में कहा गया है कि सहायक सदस्यों में से आधे सदस्य विशेष-हितों का प्रतिनिधित्व करेंगे और शेष सदस्य स्त्रियाँ होंगी। ऐसे व्यक्ति सहायक सदस्य न चुने जा सकेंगे जो नगर पालिका के आम चुनावों में हार गये हों या जिनका नाम मतदाताओं की सूची में न हो, या जिनको चुनाव में भाग लेने से न्यायालय द्वारा वंचित कर दिया गया हो। सहायक सदस्यों के निर्वाचन के संबंध में यदि किसी प्रकार का विवाद होगा तो इस दशा में प्रांतीय सरकार का निर्णय अंतिम माना जायगा ।

निर्वाचन—चुनाव के लिये कानून में कहा गया है कि प्रत्येक

व्यक्ति उम्मीदवार हो सकेगा जिसका नाम मतदाताओं की सूची में हो, जो हिंदी अथवा अंग्रेजी पढ़ लिख सकता हो, एवं जो सरकारी नौकर, सरकारी वकील, अवैतनिक मजिस्ट्रेट या मुंसिफ या सहायक कलेक्टर न हो। कुष्ट रोग से पीड़ित व्यक्ति, दिवालिया, तथा ऐसे लोग जिनके नाम म्यूनिसिपल टैक्स बाकी हों, वह भी नगर पालिका की सदस्यता के लिये खड़े न हो सकेंगे ।

नगर-पालिका का प्रधान—नये कानून में सबसे मुख्य क्रांतिकारी परिवर्तन नगर-पालिकाओं के प्रधान के संबंध में किया गया है । पुराने कानून के आधीन अध्यक्ष का चुनाव नगर-पालिकाओं के सदस्यों द्वारा किया जाता था । इस रीति में सबसे बड़ा दोष यह था कि सदस्य दलबन्दी की प्रथा से प्रभावित होकर आये दिन एक अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके दूसरे ऐसे अध्यक्ष को उसके स्थान पर लाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे जो उनकी अधिक स्वार्थ पूर्ति कर सके, और इस कारण नगर पालिकाओं की शासन व्यवस्था अत्यंत निकृष्ठ तथा निम्नकोटि की रहती थी । संशोधित कानून में इसलिये कहा गया है कि नगर पालिकाओं के अध्यक्ष का चुनाव सीधा मत दाताओं द्वारा किया जायगा । नये कानून के अन्तर्गत भी सदस्य अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर सकते हैं परन्तु अध्यक्ष को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वह समझे कि जनता उसके साथ है, और उसकी नीति को पसन्द करती है, तो वह प्रांतीय सरकार से इस बात की प्रार्थना कर सकता है कि नगर-पालिका को तोड़ कर नये आम चुनाव कर दिये जाँय । इस प्रार्थना को स्वीकार या अस्वीकार करने का अंतिम अधिकार प्रांतीय सरकार को है । आम निर्वाचन के पश्चात यदि नये सदस्य अध्यक्ष के विरुद्ध फिर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दें तो अध्यक्ष को तीन दिन के अन्दर अपना त्याग-पत्र दे देना होगा । नये कानून के अन्तर्गत प्रांतीय सरकार को भी इस बात का अधिकार दिया गया है कि यदि वह किन्हीं विशेष कारणों से यह समझे कि किसी नगर-पालिका का अध्यक्ष अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर रहा है तो

वह उसे उसके पद से हटा सकती है। संशोधित कानून के अनुसार, आशा है कि नगर पालिकायें नगरों की व्यवस्था अधिक सुचारु रूप से कर सकेंगी।

आम निर्वाचन—संशोधित कानून में एक और विषय जिसको विशेष महत्व दिया गया है यह है कि आम चुनाव के समय उम्मीदवार मत-दाताओं से धर्म की दुहाई देकर या उनकी जातीय सांप्रदायिक भावनाओं को भड़का कर उनसे राय न माँग सकेंगे। कानून में कहा गया है कि चुनावों में 'धर्म खतरे में है' का नारा लगाना या यह कहना कि 'यदि अमुक उम्मीदवार को राय न दी गई तो उस व्यक्ति पर ईश्वर का प्रकोप होगा'—गैर कानूनी समझा जायगा। इस आधार पर कानून में कहा गया है कि यदि यह सिद्ध हो सके कि कोई उम्मीदवार इन उपायों को काम में लाकर निर्वाचित हो गया है तो ऐसे व्यक्ति का चुनाव रद्द किया जा सकता है।

कार्यावधि—नये कानून के अनुसार नगर-पालिकाओं की कार्यावधि ४ वर्ष निश्चित की गई है। परन्तु प्रांतीय सरकार को इस बात का अधिकार दिया गया है कि यदि वह किन्हीं विशेष कारणों से आवश्यक समझे तो उनकी अवधि एक समय में एक वर्ष के लिये बढ़ा सकती है।

नगर-पालिकाओं के कार्य—इसी अध्याय में जैसा पहले बताया जा चुका है कि नगर-पालिकायें मुख्य रूप से चार प्रकार के कार्य करेंगी।—१. सार्वजनिक रक्षा का कार्य, २. सार्वजनिक स्वास्थ्य का कार्य, ३ सार्वजनिक शिक्षा का कार्य और ४. सार्वजनिक सुविधाएं प्रदान करने का कार्य। इन कार्यों का विस्तृत वर्णन हम पहले ही दे चुके हैं, और यह भी देख चुके हैं कि हमारे देश में नगर पालिकायें अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन क्यों नहीं करतीं।

आय के साधन—हमारी नगर पालिकाओं की असफलता का सबसे मुख्य कारण यह है कि उनकी आय के स्रोत अत्यंत सीमित हैं। अपने प्रांत की नगर पालिकाओं की आय के साधनों को हम चार मुख्य भागों में बाँट सकते हैं—१ म्यूनिसिपल कर, २. सरकारी सहायता, ३. ऋण और ४. म्यूनिसिपल व्यापार से आय।

१. म्यूनिसिपल कर---नगर पालिकाओं की आय का सबसे बड़ा भाग करों द्वारा प्राप्त होता है। यह कर निम्नलिखित हैं:—

(क) संपत्ति-कर (Property Tax)

(ख) व्यापार तथा व्यवसाय कर (Taxes on Trades and Professions)

(ग) गाड़ियों, ताँगों, ठेलों, रिक्शा व सवारी के दूसरे साधन पर कर

(घ) कुत्तों पर कर

(च) बाहर से नगरों में आने वाले पदार्थों पर कर जिसे अंग्रेजी में चुंगी कर (Octroi or Terminal Tax) कहा जाता है।

(छ) पानी, बिजली व सफाई कर

(झ) म्यूनिसिपल संपत्ति व कमेटी के बाजारों से आय।

(२) सरकारी सहायता---प्रायः प्रत्येक ही नगर पालिका को प्रांतीय सरकार की ओर से एक बंधी हुई वार्षिक सहायता मिलती है।

(३) ऋण---नगर-पालिकायों को प्रांतीय सरकार की अनुमति से ऋण लेने का अधिकार भी प्राप्त होता है।

(४) म्यूनिसिपल व्यापार---नगर-पालिकाओं की आय का एक और बड़ा स्रोत जिसे हमारे देश में बहुत कम काम में लाया जाता है म्यूनिसिपल व्यापार है। दूसरे देशों में नगर पालिकाये अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे चलाती हैं--जैसे होटल खोलना, डेरी फार्म चलाना, ट्राम इत्यादि का आयोजन करना, थियेटर व सिनेमा खोलना, शुद्ध खाद्य-पदार्थों की बिक्री का प्रबंध करना, सार्वजनिक स्नानागार व तैरने के तालाबों का प्रबंध करना, बोट क्लब व पिकनिक के स्थानों का प्रबंध करना इत्यादि। इन कार्यों से न केवल नगर पालिकायें अपनी आय में वृद्धि करती हैं, वरन् अपने नागरिकों के दैनिक जीवन को भी अधिक आनन्दमय व सुविधाजनक बनाने में सहायक सिद्ध होती हैं।

नगर-पालिकाओं की आय में वृद्धि करने के लिये कुछ रचानात्मक सुझाव

भारतवर्ष में सब नगर-पालिकाओं की वार्षिक आय कुल मिलाकर लगभग २० करोड़ रुपया है। इस आय में से ३ कार्पोरेशनों की आय का भाग लगभग ९ करोड़ रुपया है। शेष, भारत की लगभग ६०० नगर पालिकाओं की आय केवल ११ करोड़ रुपया है। हमारे अपने प्रांत में सब नगर पालिकाओं की आय, कुल मिलाकर, २ करोड़ रुपये से अधिक नहीं है। साधारण नगर-पालिकाओं की आय ५० हजार रुपया वार्षिक से भी कम होती है। विदित है कि इतनी कम आय से कोई भी नगर-पालिका न अपना शासन-प्रबंध ही कुशलतापूर्वक चला सकती है और न नागरिकों को वह सभी सुविधाएं प्रदान कर सकती हैं जो दूसरे देशों में दीजाती हैं। नगर-पालिकाओं की अवस्था सुधारने के लिये आवश्यक है कि उनकी आय के स्रोत बढ़ाये जाँय। हम निम्न सुझाव नगर पालिकाओं की आय बढ़ाने के लिये प्रस्तुत करते हैं।

१. सन्तानोत्पत्ति कर—(Progressive tax on birth of children) हाल ही में पंजाब के करनाल नामक नगर की कमेटी ने इस प्रकार का कर लगाया है। सन्तानोत्पत्ति की सूचना प्रत्येक माता-पिता को नगर-पालिका में देनी होती है। ऐसे समय यदि शिशु के माता-पिताओं से कहा जाय कि वह प्रथम शिशु पर कम, परन्तु उसके पश्चात बढ़ता हुआ कर नगर-पालिका के कार्यालय में जमा करें तो इस विधि से केवल नगर-पालिकाओं की आय में वृद्धि हो सकेगी वरन् हमारे देश की बढ़ती हुई जन संख्या पर भी कुछ प्रतिबन्ध लग सकेगा।

२. विवाहों तथा सहभोजों के अवसर पर, उन उत्सवों में होने वाले कुल व्यय के अनुपात से कर—हमारे देश में विवाहों तथा सहभोजों पर करोड़ों रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता है। यदि हर्ष और उल्लास के इन अवसरों पर नगर पालिका भी अपने नागरिकों से कहे कि उसे कुछ 'कर' दिया जाय तो यह कोई अनुचित माँग नहीं होगी। इन अवसरों पर नगर-पालिकाओं के कर्मचारियों, विशेषकर भंगियों इत्यादि को, अधिक

काम करना पड़ता है। इसलिये उचित ही है कि ऐसे लोगों से म्यूनिसिपल कर वसूल किया जाय।

३ नौकर रखने पर कर—नगरों में प्रत्येक ऐसे परिवार के लिये जो अपने यहाँ नौकरों से काम लेता है, अनिवार्य होना चाहिए कि वह अपने नौकरों का नाम व पता नगर-पालिका के कार्यालय में दर्ज करायें, और प्रति नौकर के हिसाब से,एक बढ़ती हुई दर के अनुसार, नगर-पालिकाओं को टैक्स दे।

४. सिनेमा के विज्ञापनों पर कर।

५. म्यूनिसिपल धन्धों जैसे सिनेमा, थियेटर, बैंक, डेयरी, स्टोर, सार्वजनिक स्नानागार, बसें, ट्राम इत्यादि चलाकर उनसे आय।

६. प्रांतीय सरकारों से अधिक सहायता की माँग।

७. विनोद (Entertainment) तथा जुए पर लगाये हुये प्रांतीय करों में नगर-पालिकाओं द्वारा निश्चित भाग की माँग।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि हमारे देश की नगर-पालिकायें इन सभी आय के साधनों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करें तो उनकी वार्षिक आय में भारी बढ़ोतरी हो सकती है और वह अपने नागरिकों की अधिक सेवा कर सकती है।

नगर पालिकाओं के अधिकार

इसी अध्याय में हमने नगर पालिकाओं के कर्त्तव्यों का विवरण दिया है। इन कर्तव्यों को पूर्ण करने के लिये नगर पालिकाओं को कानून द्वारा विशेष प्रकार के अधिकार दिये जाते हैं। उदाहरणार्थ—प्रत्येक नगर-पालिका अपने नागरिकों पर कई प्रकार के कर लगाती है। वह नगर में जायदाद इत्यादि बनाने के लिये विशेष नियम बनाती है। प्रत्येक नागरिक को नया मकान या दुकान बनाने या अपनी पुरानी संपत्ति में परिवर्तन करने के लिये नगर-पालिका की स्वीकृति लेनी पड़ती है। नगर का स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये प्रत्येक नगर पालिका को विशेष अधिकार दिये जाते हैं।

जैसे अशुद्ध, गले-सड़े, बीमारी फैलाने वाले, मिलावटी पदार्थों की रोक-थाम करने का अधिकार, हलवाइयों इत्यादि को आदेश देने का अधिकार कि वह हानिकारक पदार्थों को न बेचें और कीटाणुओं से अपने पदार्थों की रक्षा करने के लिये सफाई व जाली की अलमारियों इत्यादि का समुचित प्रबंध करें इत्यादि। कुछ विशेष प्रकार के भयानक तथा दूषित व्यापारों की रोक थाम के लिये भी नगर-पालिकायें नियम बनाती हैं। कारखाने, मादक वस्तुएं, जहरीले पदार्थ, शीघ्र आग पकड़ने वाली चीजें जैसे पेट्रोल, मिट्टी का तेल, सिनेमा-फिल्म इत्यादि के नियन्त्रण के लिये भी नगर पालिकाओं को नियम बनाने पड़ते हैं।

सरकार की ओर से नगर पालिकाओं को ऐसे नागरिकों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने का भी अधिकार होता है को उसके नियमों को भंग करें, सार्वजनिक स्थानों पर गंदगी फैलायें, अपने मकानों में उचित सफाई का प्रबंध न रखें, म्यूनिसिपल संपत्ति का अनाधिकार उपयोग करें इत्यादि।

नगर पालिकाओं की शासन व्यवस्था——नगर पालिका का शासन प्रबंध सदस्यों तथा बोर्ड के कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। इस दशा में, नगर पालिका के अध्यक्ष तथा ऐक्जीक्यूटिव आफिसर अथवा सेक्रेटरी को विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं। नगर का शासन प्रबंध विभिन्न विभागों द्वारा संपन्न किया जाता है। इन विभागों में निम्न विभाग मुख्य हैं:——

१. शिक्षा विभाग——यह विभाग एक शिक्षा सुपरिन्टेंडेंट के अधिकार में रहता है। इस विभाग का मुख्य कार्य लड़के व लड़कियों की प्रारंभिक शिक्षा का प्रबंध करना होता है। एक विशेष आयु तक के बच्चों के लिये प्रायः प्रत्येक नगर पालिका में निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था होती है। शिक्षा विभाग नगर की पुस्तकालयों व वाचनालयों की भी देखभाल करता है तथा उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

२. इंजीनियरिंग विभाग——यह विभाग एक सुयोग्य म्यूनिसिपल

इंजीनियर के अधीन होता है। इस विभाग का मुख्य कार्य सड़कों, गलियों, नालियों, विश्रामघरों, अपाहज घरों, तालाबों, बाजारों पाठशालाओं तथा अन्य सार्वजनिक उपयोग के भवनों का निर्माण तथा उनकी देख रेख करना होता है।

३. चुंगी विभाग—यह विभाग एक मुख्य चुंगी अधिकारी के आधीन कार्य करता है। नगर के चारों ओर अनेक चुंगी वसूल करने के स्थान होते हैं। उन स्थानों की देख रेख करना तथा ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करना जो चुंगी न दें, इस विभाग का मुख्य कार्य होता है।

४. पानी व बिजली विभाग—इस विभाग का मुख्य कार्य नगर में पानी व बिजली की उचित व्यवस्था करना होता है।

५. स्वास्थ्य विभाग—यह विभाग एक स्वास्थ्य अधिकारी के अधीन कार्य करता है। प्रत्येक नगर पालिका में अनेक सफाई-निरीक्षक (Sanitary Inspectors) टीके लगाने वाले वैक्सीनेटर (Vaccinators) इत्यादि रखे जाते हैं। चिकित्सालयों का उचित प्रबंध भी इसी विभाग द्वारा होता है।

इन विभागों के अतिरिक्त प्रत्येक नगर-पालिका अपने कार्य की दृष्टि से और भी कई प्रकार के विभागों का संगठन करती है। उदाहरणार्थ—बहुतसी नगर-पालिकाओं में रोशनी-विभाग, डेयरी-विभाग, यातायात-विभाग इत्यादि का संगठन किया जाता है। इन विभिन्न विभागों की देख-भाल के लिये नगर-पालिका के सदस्य उप-समितियों का चुनाव करते हैं, जैसे: शिक्षा-समिति, स्वास्थ्य-समिति, चुंगी-समिति, मार्केट-समिति, भूमि व जायदाद-समिति, पानी व बिजली समिति इत्यादि। इन समितियों में नगर-पालिकाओं के सदस्यों के अतिरिक्त बाहर के व्यक्ति भी सहायक सदस्यों के रूप में मनोनीत किये जाते हैं। उप समितियाँ अपने अपने कार्य का विवरण नगर-पालिका को देती हैं। नगर पालिकाओं का अधिकतर कार्य इन्हीं उप समितियों द्वारा संपन्न किया जाता है।

नगर पालिकाओं के कार्य में प्रांतीय सरकार का हस्तक्षेप

एक मुख्य कारण जिससे नगर पालिकाएं अपने कार्य क्षेत्र में अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकी हैं यह है कि प्रांतीय सरकारों द्वारा उनके कार्य में अधिक हस्तक्षेप किया जाता है। हमारे प्रांत में संशोधित म्यूनिसिपल ऐक्ट में इस बात का प्रबंध किया गया है कि प्रांतीय सरकार के प्रतिनिधि कलक्टर तथा कमिश्नर, नगर-पालिकाओं के काम में अधिक हस्तक्षेप न करें। इसी दृष्टि से इस कानून में कहा गया है कि यदि किसी समय कलक्टर या कमिश्नर नगर पालिका के किसी निर्णय को स्वीकार न करें या उसके कार्य में हस्तक्षेप करना चाहें तो उन्हें प्रांतीय सरकार को अपने कार्य का औचित्य समझाना होगा।

संशोधित कानून की यह धारा पहिले कानून में भारी परिवर्तन की द्योतक है। १९१६ के म्यूनिसिपल ऐक्ट के अधीन कलक्टर तथा कमिश्नर नगर पालिकाओं के काम में कभी भी हस्तक्षेप कर सकते थे। वे कमेटी के किसी भी निश्चय को रद्द कर सकते थे। प्रत्येक प्रस्ताव पर कर्य करने के लिये उनकी स्वीकृति आवश्यक थी। परन्तु संशोधित कानून में कलक्टर तथा कमिश्नर के हाथ से ऐसी बहुत सी शक्तियाँ ले ली गई हैं। नगर-पालिकाओं के काम में हस्तक्षेप करने का अधिकार अब केवल प्रांतीय सरकार को प्राप्त है। प्रांतीय सरकार यदि यह समझे कि कोई नगर पालिका अपना कार्य ठीक प्रकार से नहीं कर रही है तो वह उसे भंग कर सकती है, उसके लिये नये चुनाव किये जाने की आज्ञा दे सकती है, अथवा नगर-पालिका का प्रबंध किन्हीं ऐसे व्यक्ति के हाथ में दे सकती है जिन्हें वह ऐसा काम करने के लिये उपयुक्त समझे। अध्यक्ष तथा ऐसे सदस्यों को अपने पद से अलग करने का अधिकार भी प्रांतीय सरकार को प्राप्त है जो अपने पद का उचित उपयोग न कर, नगर-पालिका के कार्य में गड़बड़ फैलाएं। इस प्रकार के अधिकार प्रांतीय सरकार के हाथ में रखे जाने उचित ही हैं, कारण अभी तक हमारे देश में जनता अपने कर्तव्यों को उचित प्रकार से नहीं समझती है। ।जब तक हमारे देश की जनता

प्रजातांत्रिक संस्थाओं के कार्य में अधिक अनुभव प्राप्त नहीं कर लेती, उसके ऊपर किसी न किसी प्रकार का नियन्त्रण नितांत आवश्यक है ।

छाँवनी बोर्डों का शासन प्रबंध (Administration of Cant—onment Boards)

छावनियाँ उन क्षेत्रों को कहा जाता है जहाँ भारत सरकार की सेना रहती है । ऐसे क्षेत्रों में असैनिक जनता भी रहती है, परन्तु मुख्यतः वह ऐसा व्यापार करती है जिसका सेना की आवश्यकताओं से संबंध होता है । छावनियों का प्रबंध प्रांतीय सरकार के आधीन न रहकर, केन्द्रीय सरकार के आधीन होता है । उनके नागरिक प्रबंध के लिये जो समिति चुनी जाती है उसमें अतिकतर सेना के अधिकारी मनोनीत किये जाते हैं । कुछ सदस्य असैनिक जनता के प्रतिनिधि भी होते हैं परन्तु बोर्ड का अध्यक्ष, सेना का एक उच्च अधिकारी ब्रिगेडियर अथवा कंपनी कमाँडर होता है, और सेना की सुविधा तथा आवश्यकताओं को ही बोर्ड के कार्यक्रम में महत्ता दी जाती है । अंग्रेजों के काल में छावनियों के प्रबंध में असैनिक जनता के प्रतिनिधियों को विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे, परन्तु अब हमारी सरकार, उनके अधिकारों में शनैः शनैः वृद्धि कर रही है ।

छावनी बोर्डों को वही सब काम करने पड़ते हैं जो नगर पालिकाएं करती हैं । उनकी कार्य प्रणाली तथा आय के साधन भी प्रायः वैसे ही होते हैं ।

बंदरगाहों का शासन प्रबंध (Port Trusts)

बंदरगाहों के प्रबंध के लिये भी, छावनियों की भांति, विशेष व्यवस्था की आवश्यकता होती है । बन्दरगाहों पर सवारियों तथा सामान के आयात व निर्यात का काम होता है । इस कारण बन्दरगाहों के प्रबंधकों को नावों, छोटे जहाजों, माल उतारने के लिये क्रेनों, गोदामों, मजदूरों तथा इसी प्रकार की अनेक सुविधाओं का प्रबंध करना पड़ता है । यह प्रबंध एक

विशेष समिति द्वारा किया जाता है जिसमें कुछ सदस्य कार्पोरेशन के प्रतिनिधि होते हैं, कुछ सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं तथा कुछ व्यापारिक संस्थाओं के प्रतिनिधि होते हैं। हमारे देश में तीन पोर्ट ट्रस्ट, बंबई, कलकत्ता तथा मद्रास में हैं। इन पोर्ट ट्रस्टों को माल के आयात व निर्यात संबंधी कार्य के अतिरिक्त सफाई, स्वास्थ्य, रोशनी, तथा बन्दर में काम करने वाले मजदूरों की भलाई संबंधी अनेक वैसे ही काम करने पड़ते हैं जैसे म्यूनिसिपैलटियाँ करती हैं।

टाउन तथा नोटिफाइड एरिया कमैटियाँ

हमारे प्रांत में उन क्षेत्रों के म्यूनिसिपल प्रबंध के लिये जिनकी जन संख्या २०,००० से कम है, टाउन एरिया तथा नोटीफाइड एरिया कमेटियाँ है। प्रांतीय सरकार को अधिकार है कि वह किसी भी ऐसे क्षेत्र को नोटिफाइड एरिया, या टाउन एरिया अथवा यूनिसिपल कमेटी के अधिकार क्षेत्र में दे दे जिसे वह उचित समझे।

टाउन एरिया तथा नोटीफाइड एरिया कमैटियों को वही सब काम करने पड़ते हैं जो बड़े नगरों में नगर पालिकाएं करती हैं। वह सड़कों का निर्माण करती हैं, स्वास्थ्य तथा सफाई संबंधी कार्य करती है, कुओं व तालाबों की देख भाल करती हैं, पीने का पानी, रोशनी, बिजली, शिक्षा तथा इसी प्रकार सार्वजनिक सुविधाएं प्रदान करने के कार्य करती हैं। इन कमेटियों में सदस्यों की संख्या ५ और ७ के बीच में रहती है। इनमें अधिकतर सदस्य निर्वाचित होते हैं परन्तु कुछ सदस्य प्रांतीय सरकार द्वारा भी मनोनीत किये जाते हैं। नगर पालिकाओं की अपेक्षा नोटीफाइड तथा टाउन एरिया कमेटियों को कम अधिकार प्राप्त होते हैं, उनके कार्य में कलक्टर तथा कमिश्नर अधिक हस्तक्षेप कर सकते हैं, तथा उनकी आमदनी के स्त्रोत भी कम होते हैं। उनकी आर्थिक सहायता डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा प्रांतीय सरकार द्वारा की जाती है, कुछ थोड़े से कर भी वह स्वयं लगा सकती हैं।

जिला मंडलियाँ

वह कार्य जो नगरों में म्यूनिसिपल बोर्डों द्वारा संपन्न किये जाते हैं, ग्राम्य क्षेत्रों में डिस्ट्रिक्ट बोर्डों द्वारा किये जाते हैं। आसाम को छोड़कर भारत के शेष सब प्रांतों में जिला मंडलियों की व्यवस्था है। जिला मंडली का अधिकार क्षेत्र जिले की सीमा के साथ साथ होता है। पंजाब और उत्तर प्रदेश को छोड़कर जिला मंडली के आधीन तालुका बोर्ड तथा सर्किल बोर्ड होते हैं। बंगाल, मद्रास तथा उड़ीसा में उन्हें यूनियन कमेटी कहा जाता है। कहीं कहीं तालुका बोर्डों के अधीन स्थानीय बोर्ड होते हैं जो ग्राम पंचायतों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। उनकी अधिकार सीमा एक गाँव या २ से ४ गाँव तक सीमित रहती है। हमारे अपने प्रांत में जिला मंडलियों के अधीन तालुका या स्थानीय बोर्डों की व्यवस्था नहीं है। उनके स्थान पर हमारे प्रांत में तहसील कमेटियाँ तथा ग्राम पंचायतें हैं।

ज़िला मंडलियों के आवश्यक कार्य

जिला मंडलियाँ नगर पालिकाओं के समान ही कार्य करती हैं। उत्तर-प्रदेश के जिला-मण्डली-कानून के अधीन उनके कार्यों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) आवश्यक कार्य और (२) ऐच्छिक कार्य। आवश्यक कार्य वह हैं जो ग्राम निवासियों के स्वास्थ्य तथा रक्षा के लिये आवश्यक हैं। ऐच्छिक कार्य वह हैं जो ग्रामिक क्षेत्र के नागरिकों को जीवन की सुविधायें तथा एक उल्लासपूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान कर सकते हैं। जिला मण्डलियों के आवश्यक कार्यों को हम निम्न चार भागों में विभक्त कर सकते हैं।

१ सार्वजनिक स्वास्थ्य—औषधालयों व चिकित्सालयों का स्थापित करना तथा उनका काम चलाना, सार्वजनिक कुओं व तालाबों का बनवाना तथा उनकी मरम्मत करना, संक्रामक रोगों जैसे हैजा प्लेग इत्यादि की रोक थाम करना, गावों के लिये शिक्षित-दाइयों का प्रबन्ध करना, जनता में स्वास्थ्य तथा सफाई संबंधी शिक्षा का प्रसार करना और चेचक के टीके का प्रबंध करना।

२. सार्वजनिक रक्षा——भयानक तथा दूषित व्यापारों की रोक थाम करना, पीने के पानी को दूषित होने से बचाना, कुओं तथा तालाबों में लाल दवाई के प्रयोग के द्वारा उनके पानी की जहरीले कीटाणुओं से रक्षा करना, टूटे फूटे मकानों को गिराना इत्यादि ।

३. सार्वजनिक सुविधाएँ——सड़क, पुल व गाँव के रास्तों को बनवाना, तथा उनकी देखभाल व मरम्मत कराना, पेड़ लगवाना, अपाहिज घरें तथा अनाथालयों का प्रबंध करना, बाजारों, हाटों, पैठों तथा मेलों का प्रबंध करना, पशु व मानव चिकित्सालयों की स्थापना करना, विश्राम गृहों व डाक बंगलों का बनवाना, जनता की सुविधा के लये बाटिका व बागों की स्थापना करना, बिजली व नल के पानी का प्रबन्ध करना, नदी पार करने के लिये नावों का प्रबंध करना, काजी हाउस बनवाना, कृषि, व्यापार व घरेलू उद्योग धन्धों की उन्नति के लिये प्रदर्शनी व मेले इत्यादि लगाना ।

४. सार्वजनिक-शिक्षा——लड़के व लड़कियों की प्रारंभिक शिक्षा के लिये ग्रामीण क्षत्रों में पाठशालाओं की स्थापना करना, विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ प्रदान करना, शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिये केन्द्र खोलना, शिक्षा कमेटियों द्वारा पाठशालाओं के निरीक्षण का प्रबंध करना तथा वाचनालयों तथा घूमने फिरने वाले पुस्तकालंयों का प्रबंध कराना, औद्योगिक तथा कृषि शिक्षा प्रदान करने के लिये शिक्षालयों का प्रबंध करना।

ऐच्छिक कार्य

इन कार्यों में हम निम्नलिखित कार्य सम्मिलित कर सकते हैं——नई सड़कें बनाने के लिये भूमि ग्रहण करना, अस्वास्थ्यप्रद स्थानों को स्वास्थ्य प्रद बनाना, ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पत्ति तथा मृत्यु के आँकड़े रखना, ग्रामीण जनता को यातायात की सुविधा प्रदान करने के लिये मोटर, बस, ट्राम गाड़ियाँ तथा छोटी रेल गाड़ियों का प्रबंध करना, सिंचाई संबंधी प्रबंध करना, ग्रामीण जनता के मनोरंजन तथा शिक्षा के लिये, रेडियो, सिनेमा,

चलचित्र तथा ड्रामा का प्रबंध करना, पंचायत बनाना तथा पंचायत घरों का निर्माण करना इत्यादि ।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में आय के साधनों की कमी के कारण जिला मण्डलियाँ ऐच्छिक कार्यों का तो कहना ही क्या, अपने आवश्यक कार्य भी पूरे नहीं कर पातीं। जिला मंडलियों के संरक्षण में जो सड़कें, रास्ते, गलियाँ, इत्यादि होती हैं उनकी दशा देखते ही बनती है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा सफाई व चिकित्सा का भो कोई संतोषजनक प्रबंध नहीं होता। समाज के पिछड़े हुए वर्ग जैसे हरिजन तथा स्त्रियों की शिक्षा के लिये जिला-मण्डलियाँ किसी प्रकार का प्रबंध नहीं करतीं। भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसे गाँव हों जहाँ जिला मण्डली की ओर से पंचायत घर, उद्यान, बाटिका, थियेटर-हाल, क्लब या आमोद-प्रमोद के के न्द्रों का प्रबंध किया जाता हो। दूसरे सभ्य देशों में ग्रामीण क्षेत्रों की शासन व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जाता है। नगरों से भी अधिक उनको स्वास्थ्य, सफाई तथा आमोद प्रमोद के केन्द्रों में परिवर्तित करने का सतत प्रयत्न किया जाता है। नगर के लोग शहर के घ्रणास्पद जीवन से तंग आकर प्रत्येक अवकाश के समय गावों की ओर ही अपने जीवन की कुछ सुखपूर्ण घड़ियाँ व्यतीत करने के स्वप्न देखते हैं। इंगलैण्ड में प्रतिष्ठित घरानों के व्यक्ति---बड़े बड़े सरकारी कर्मचारी, मन्त्री तथा हाउस-आफ लार्डस् के सदस्य, ग्रामीण क्षेत्रों में अपने आराम तथा स्वास्थ्य लाभ के लिये कोठियाँ इत्यादि बनाते हैं। वहाँ कोई भी ऐसा गाँव देखने में नहीं मिलता जिसमें अपना क्लब, ड्रामा सोसायटी, पंचायत-घर, पुस्तकालय, वाचनालय अथवा कोई कला केन्द्र देखने को न मिले। हमारे देश में सर्व प्रथम तो जिला मण्डलियों के आय के साधन बहुत कम हैं जिसके कारण स्थानीय संस्थायें अपने नागरिकों की सुविधा के लिये कुशल प्रबंध नहीं कर सकतीं, तिस पर हमारी जनता में नागरिक -शिक्षा का इतना अभाव है कि वह अपने कर्त्तव्यों को भली भांति नहीं समझती और जिला मण्डलियों के सदस्य जनता की सेवा करने के स्थान पर अपनी स्वार्थ सिद्धी के साधनों को अधिक महत्त्व देते हैं।

इसलिये जिला मण्डलियों के शासन स्तर को ऊंचा उठाने के लिये आवश्यक है कि हम (१) जिला-मण्डलियों के आय के साधनों में वृद्धि करें, (२) उनके संगठन को अधिक कुशल तथा शक्तिशाली बनायें और (३) जनता को अधिक से अधिक नागरिक शिक्षा प्रदान करें।

ज़िला मंडालियों का संगठन

निर्माण---उत्तर प्रदेश की जिला मण्डलियों की व्यवस्था सन् १९२२ के जिला मण्डलियों के कानून के अधीन निर्धारित थी, परन्तु सन् १९४७ और १९४८ में इस कानून में कुछ आवश्यक संशोधनों द्वारा इस बात का प्रबंध कर दिया गया कि गावों की वयस्क जनता को मताधिकार मिल सके, जिला मण्डली में एक कार्यकारिणी का निर्माण हो सके, जिला मंडली के अध्यक्ष का चुनाव 'बोर्ड' के सदस्यों के स्थान पर सीधा जनता द्वारा किया जा सके, तथा गावों के बीच से भी, नगरों की भांति, दूषित पृथक निर्वाचन प्रणाली का अन्त हो सके। विदित है कि जिला मंडलियों के कानून में इस प्रकार के संशोधन उसी आधार पर किये गये हैं जैसे वह नगर पालिकाओं के संगठन में किये गये हैं तथा जिनका वर्णन हम पीछे दे चुके हैं। संशोधित कानून में मुसलमानों तथा हरिजनों के अधिकारों की रक्षा के लिये सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था कायम रक्खी गई है। ऐसा इसलिये किया गया कि जिस समय जिला मंडलियों का संशोधित कानून पास किया गया था, उस समय तक हमारे देश की संविधान सभा ने मुसलमानों के लिये सुरक्षित स्थानों की प्रथा को निषेध नहीं ठहराया था। परन्तु अब स्वतन्त्र भारत के धर्म निर्पेक्ष स्वरूप को कायम रखने के लिये यह आवश्यक हो गया है कि केवल धर्म के आधार पर किसी जाति को विशेष सुविधाएं न दी जाँय। हमारे प्रांत की सरकार इसलिये नगर-पालिकाओं तथा जिला मंडलियों के कानूनों में और आवश्यक परिवर्तन करने का शीघ्र ही विचार कर रही है।

सदस्य संख्या---सन् १९२२ के कानून के अधीन हमारे प्रांत में जिला

मंडलियों के सदस्यों की संख्या १५ और ४० के बीच निश्चित की जाती थी। संशोधित कानून में यह संख्या बढ़ाकर ३० और ८० के बीच कर दी गई है। एक और भारी परिवर्तन पहिले कानून में यह किया गया है कि मनो- नीत सदस्यों की प्रथा को तोड़कर उसके स्थान पर को-औप्टिड सदस्यों की प्रथा को चालू किया गया है। १९२२ के कानून के अधीन प्रत्येक जिला मंडली में ३ सदस्य प्रांतीय सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते थे। संशोधित कानून में इन मनोनीत सदस्यों के स्थान पर इस बात का प्रबंध किया गया है कि प्रांतीय सरकार जिला मंडलियों को ,अपने चुने हुए कुल सदस्यों की संख्या का अधिक से अधिक दसवाँ भाग सदस्य, कोऔप्टिड सदस्यों के रूप में निर्वाचित करने का अधिकार देसकती है। इन सदस्यों में, कानून में कहा गया है, कि कम से कम २ महिलाएं तथा १ ऐसी जाति का व्यक्ति होना चाहिये जिसे आम चुनाव में प्रतिनिधित्व न मिला हो। तीसरा संशोधन कानून में यह किया गया है कि जिला मंडली का दिन प्रति दिन का कार्य चलाने के लिये एक कार्य कारिणी का आयोजन किया गया है। इस कमेटी के सदस्यों में जिला मंडली का अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, ३ दूसरे जिला मंडली के सदस्य तथा सब सब- कमेटियों के प्रधान होंगे। जिला मंडली का मन्त्री इस कमेटी का मन्त्री होगा। यह कमेटी वह सारे कार्य भी करेगी जो पहिले राजस्व कमेटी करती थी।

अध्यक्ष (President) —जिला मंडली के अध्यक्ष के निर्वाचन के संबंध में भी संशोधित कानून में आमूल परिवर्तन किया गया है। सन् १९२२ के कानून के अधीन अध्यक्ष का चुनाव जिला मंडली के सदस्यों द्वारा किया जाता था। यह सदस्य अध्यक्ष को जब चाहते, अविश्वास का प्रस्ताव करके, निकाल सकते थे। इस प्रथा के अधीन जिला मंडली साजिश तथा दलबन्दी का अखाड़ा बनी रहती थी और सदस्य एक अध्यक्ष को निकाल कर दूसरे व्यक्ति को उसके स्थान पर रखने का निरं-

तर प्रयत्न करते रहते थे । संशोधित कानून में इसलिये इस बात का आयोजन किया है कि ज़िला मंडली के अध्यक्ष का चुनाव सीधा जनता द्वारा किया जाय। इस चुनाव के लिये जिले में रहने वाला प्रत्येक वह व्यक्ति उम्मीदवार के रूप में खड़ा हो सकता है जिसका नाम मतदाता सूची में दर्ज हो तथा जिसकी आयु कम से कम ३० वर्ष हो । अध्यक्ष के पद की अवधि ३ वर्ष रखी गई है परन्तु जब तक नये अध्यक्ष का चुनाव नहीं हो जाता पहिला व्यक्ति ही उस पद पर कार्य करता रहेगा ।

अविश्वास के प्रस्ताव के संबंध में जिला मंडलियों के संशोधित कानून में उसी प्रकार का प्रबंध किया गया है जैसा नगर पालिकाओं के साथ । यदि कोई जिला मंडली अपने अध्यक्ष में अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे और अध्यक्ष को यह विश्वास हो कि जनता उसके साथ है तो वह प्रांतीय सरकार से प्रार्थना कर सकता है कि जिला मंडली को भंग कर दिया जाय और नये चुनाव किये जाँय । इस प्रार्थना को स्वीकार या अस्वीकार करने का अंतिम अधिकार प्रांतीय सरकार को ही है, परन्तु साधारणतया वह अध्यक्ष की सम्मति का पालन करेगी । आम चुनाव के पश्चात् यदि दूसरी चुनी हुई जिला मंडली भी अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे तो तीन दिन के अन्दर अन्दर अध्यक्ष को अपने पद से त्याग पत्र देना होगा। यदि वह ऐसा न करे तो प्रांतीय सरकार उसे उसके पद से हटा सकती है । परन्तु यदि प्रांतीय सरकार अध्यक्ष की बात न माने और अविश्वास का प्रस्ताव हो जाने के पश्चात जिला मंडली को भंग न करे तो कानून में कहा गया है कि अध्यक्ष को तीन दिन के अन्दर अपने पद से अलग हो जाना होगा । इस प्रकार खाली हुये, अध्यक्ष पद के रिक्त स्थान के लिये, दोबारा सीधा चुनाव किया जायगा, और उसमें पहिले अध्यक्ष को यह अधिकार होगा कि वह चुनाव में खड़ा हो सके, परन्तु यदि अध्यक्ष अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाने के पश्चात , प्रांतीय सरकार के कहने पर भी, तीन दिन के अन्दर अपना पद त्याग न करे, तो उसे दोबारा होने वाले चुनाव में खड़ा होने का अधिकार नहीं होगा । इस प्रकार हम देखते हैं कि संशोधित कानून के अनु-

सार जिला मंडलियों के मुख्य अधिकारी एवं कार्यकर्ता–अर्थात् अध्यक्ष को सदस्यों के षड़यन्त्रों से दूर रखने का समुचित प्रबंध किया गया है ।

अवधि––जिला मंडली की कार्य अवधि पहिले के समान ही तीन वर्ष रखी गई है, परन्तु प्रांतीय सरकार को अधिकार दिया गया है कि यदि वह उचित समझे तो उसे पहिले भी भंग कर सकती है अथवा उसकी अवधि को बढ़ा सकती है ।

चुनाव––जैसा पहिले बताया जा चुका है, चुनावों में मतदाताओं की योग्यता के संबंध में, कानून में कहा है कि यह योग्यताएं वही होंगी जो प्रांतीय विधान सभा के निर्वाचकों के लिये निश्चित हैं । नये संविधान में प्रत्यक्ष रूप से कहा गया है कि भारत के प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को चुनावों में भाग लेने का अधिकार होगा । इसलिये जिला मंडलियों के चुनावों में भी गावों में रहने वाले प्रत्येक बालिग स्त्री व पुरुष को भाग लेने का अधिकार प्राप्त होगा ।

पदाधिकारी––जिला मण्डली का सबसे मुख्य पदाधिकारी अध्यक्ष होता है । उसकी सहायता के लिये एक उच्च (सीनियर) तथा एक कनिष्ठ (जूनियर) अध्यक्ष की व्यवस्था होती है । यह दोनों सदस्य अध्यक्ष की अनुपस्थिति में काम करते हैं । इन तीन निर्वाचित पदाधिकारियों के अतिरिक्त जिला मण्डली के दिन-प्रतिदिन प्रबंध संबंधी काम चलाने के लिये अनेक वैतनिक कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं । इनमें निम्न मुख्य होते हैं––(१) मन्त्री, (२) इंजीनियर (३) स्वास्थ्य अधिकारी (४) मुख्य-सफाई निरीक्षक (५) शिक्षा अधिकारी

जिला मण्डलिओं के विधान में इस बात की व्यवस्था है कि मण्डली के अधिवेशनों में अध्यक्ष की आज्ञा से जिले के कुछ सरकारी अधिकारी जैसे सिविल सर्जन, एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स या कोई

और ऐसे ही अधिकारी जिनको प्रांतीय सरकार इस बात की आज्ञा दे, सम्मिलित हो सकते हैं। इस प्रकार का प्रबंध इस दृष्टि से किया गया है जिससे इन विशेषज्ञों की राय से जिला-मण्डली के कार्य में लाभ उठाया जा सके। परन्तु जहाँ इन अधिकारियों को मण्डली के अधिवेशनों में उपस्थित रहने तथा बोलने का अधिकार दिया गया है वहाँ उन्हें किसी प्रकार का मत देने का अधिकार नहीं दिया गया है।

नगर-पालिकाओं की भांति जिला मण्डलियाँ भी अपने कार्य का संचालन विशेष कमेटियों द्वारा करती हैं। पूरी जिला मण्डली का कार्य केवल नीति का संचालन करना होता है। शेष कार्य मण्डली की कमेटियों द्वारा पूरा किया जाता है। प्रत्येक जिला मण्डली में निम्न कमेटियाँ मुख्य रूप से व्यवस्थित की जाती हैं---

(१) राजस्व-कमेटी---जिला-मण्डली की यह सबसे मुख्य कमेटी समझी जाती है। यही कमेटी बजट बनाती है एवं आय व खर्च का हिसाब रखती है। इस कमेटी के ६ सदस्य होते हैं। जिला मंडली का अध्यक्ष, इस कमेटी का अध्यक्ष तथा उसका मन्त्री इस कमेटी का मन्त्री होता है। मण्डली की कमेटियों में बाहर के सदस्य भी लिये जा सकते हैं परन्तु उनकी संख्या एक तिहाई से अधिक नहीं हो सकती।

तहसील-कमेटी---जिला मण्डली के आधीन प्रत्येक तहसील के लिये एक तहसील कमेटी होती है। यह कमेटी तहसील से संबंध रखने वाले समस्त कार्यों को पूरा करने में मंडली की सहायता करती है। इस कमेटी के उस तहसील के निर्वाचित समस्त व्यक्ति सदस्य होते हैं। बाहर के लोग भी इस कमेटी में सहायक सदस्यों के रूप में मनोनीत किये जा सकते हैं।

शिक्षा-कमेटी---राजस्व-कमेटी के पश्चात् जिला-मण्डली की यह सबसे महत्त्वपूर्ण कमेटी होती है। शिक्षा संबंधी विषयों में इस कमेटी को पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं। चुनाव के पश्चात यह कमेटी मण्डली से स्वतन्त्र रहकर कार्य करती है। इसके १२ सदस्य होते हैं---८ जिला

मण्डली के सदस्य तथा ४ बाहर से लिये हुए सहायक सदस्य। अंतिम ४ सदस्यों में २ सदस्य प्रांतीय-शिक्षा-विभाग के अधिकारी होते हैं, एक महिला तथा एक मुसलमानी मकतबों का प्रतिनिधि होता है। इस कमेटी का सभापति, कमेटी के सदस्य स्वयं निर्वाचित करते हैं। वह कोई सरकारी नौकर नहीं हो सकता। कमेटी के मन्त्री-पद पर जिले के डिप्टी-इन्स्पेक्टर-आफ-स्कूल्स कार्य करते हैं। जिले की ग्रामीण जनता की साधारण तथा औद्योगिक शिक्षा के लिये यही कमेटी उत्तरदायी होती ह। इसके अधीन अनेक पाठशालायें तथा स्कूल कार्य करते हैं। प्राइवेट-स्कूलों को भी यह कमेटी आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

इस कमेटी के निर्णय जिला-मण्डली के अधिवेशनों में केवल सूचनार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं। मण्डली को उनमें परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। मण्डली के अध्यक्ष शिक्षा-कमेटी के अध्यक्ष पर भी किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रख सकते। शिक्षा कमेटी का अध्यक्ष स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है। वह जिला मण्डली के अध्यक्ष के मातहत अधिकारो के रूप में कार्य नहीं करता।

जिला-मंडलियों के आय के साधन

जिला मण्डलियों को अपना काम सुचारु रूप से चलाने के लिये, विधान द्वारा, कुछ 'कर' लगाने के अधिकार दिये गये हैं। इन 'करों' के अतिरिक्त और भी कुछ स्त्रोतों से जिला मंडलियों को आय होती है। इन सब का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है:—

(१) भूमि कर पर जिला मंडली का टैक्स—प्रांतीय सरकार द्वारा जो मालगुजारी जमींदारों से वसूल की जाती है, उस पर जिला-मंडली का टैक्स लगाया जाता है। यह टैक्स प्रांतीय सरकार द्वारा वसूल किया जाता है, परन्तु इसकी आय जिला मंडलियों को दे दी जाती है। जिला-मंडलियों की आय का यही सबसे मुख्य साधन है। पहिले इस टैक्स की दर १ आना

रुपया थी परन्तु १९४८ के संशोधित कानून द्वारा यह बढ़ा-कर लगभग २ आने रुपया कर दी गई है ।

(२) हैसियत कर---गावों में रहने वाले जो व्यक्ति मालगुजारी नहीं देते तथा जिनकी वार्षिक आय २०० रुपये से अधिक होती है उन पर, उनकी हैसियत के हिसाब से, जिला मंडली कर लगा सकती है । परन्तु इस कर की दर रुपये में ४ पाई से अधिक नहीं हो सकती । ऐसी रुकावट इसलिये लगाई गई है जिससे जिला मंडलियाँ इन्कम टैक्स की भाँति ही लोगों से कर वसूल न करने लगें ।

(३) फैक्टरी कर---जो कारखाने जिला मण्डली के अधिकार क्षेत्र में काम करते हैं उन पर वह उसी प्रकार टैक्स लगा सकती हैं जिस प्रकार नगर पालिकाएँ अपने क्षेत्र में कारखानों से कर वसूल करती हैं ।

(४) यातायात के साधनों जैसे गाड़ियों, बैल ठेलों, लद्दू पशुओं पर कर ।

(५) बाजार लगाने अथवा पैंठ इत्यादि खोलने पर कर

(६) जिला मंडली की जायदाद से आय

(७) पशुओं की बिक्री पर कर

(८) मेलों से आय

(९) पुल पार करने पर टैक्स या नावों से होने वाली आय

(१०) जिला मंडली की भूमि में उगने वाले पेड़ों व फलों इत्यादि की बिक्री से आय

(११) भूमि की बिक्री से आय

(१२) काँजी हाउस से आय

(१३) दलालों आढ़तियों तथा तोलने वालों पर लाइसेंस कर

(१४) प्रान्तीय सरकार से आर्थिक सहायता
(१५) ऋण

आय के साधनों में वृद्धि के उपाय

नगर पालिकाओं की भाँति भारतवर्ष में जिला मंडलियों की आय के साधन एकदम अपर्याप्त हैं। भारत की समस्त जिला मंडलियों की आय १५ करोड़ रुपये से अधिक नहीं है। इस आय का लगभग ४० प्रतिशत भाग आबवाब अर्थात् मालगुजारी पर जिला मंडली के टैक्स से वसूल होता है। दूसरे साधनों से आय बहुत कम होती है। जिला मंडली के अधीन क्षेत्रों का विस्तार देखते हुए उनके शासन प्रबंध के लिये यह आय बहुत कम है। जिला मंडलियाँ अपनी आय उन्हीं सब उपायों से बढ़ा सकती हैं जिनका वर्णन हमने नगरपालिकाओं की आय का वर्णन देते समय किया था। इसके अतिरिक्त मेले इत्यादि करके, प्रदर्शनियों की व्यवस्था द्वारा, पशुओं की बिक्री को प्रोत्साहन देकर, अपनी भूमि में कृषि के द्वारा अथवा फलों के पेड़ एवं इमारती लकड़ी इत्यादि लगाकर, डाक बंगलों, पिकनिक क्लब, विश्रांति गृह, बोट क्लब, डेयरी, पोल्ट्री फार्म, मोटर बस, छोटी रेलों इत्यादि की व्यवस्था के द्वारा भी जिला मंडलियों की आय में समुचित बढ़ोतरी की जा सकती है। हमारे देश में अनेक ऐसे सुन्दर तथा आकर्षक गाँव हैं जहाँ यदि जीवन की वर्तमान सुविधाओं का प्रबंध किया जा सके तो हजारों परिवार प्रति वर्ष, कुछ समय के लिये, अपना अवकाश का समय व्यतीत कर सकते हैं। यदि ऐसे स्थानों पर डाक बंगलों, विशाल खेल के मैदान, बोट क्लब, शिकार के स्थानों, होटल, रैस्ट्रां, आने जाने आदि के साधनों इत्यादि का कुशल प्रबंध किया जा सके तो न केवल इससे स्थानीय संस्थाओं की आय में भारी बढ़ोतरी हो सकती है वरन् नगरों के थकान पूर्ण जीवन से भी लोग कुछ समय के लिये छुटकारा पाकर, अपने जीवन में कुछ काल के लिये आनंद और उल्लास का अनुभव कर सकते हैं। गंगा, यमुना व भारत की दूसरी नदियों के किनारे एवं प्रकृति के सौंदर्यमयी वातावरण के बीच पहाड़ों पर

हमारे देश में सहस्त्रों ऐसे स्थान हैं, जहाँ इस प्रकार के आमोद-प्रमोद के स्थान बनाये जा सकते हैं। आशा है हमारे देश की जिला मंडलियाँ, स्वतन्त्रता के वातावरण में इस ओर ध्यान देंगी और भारतीय नागरिक जीवन के स्तर को ऊंचा उठाने में सहायक सिद्ध होंगी।

ग्राम पंचायतें

जैसा हम पहिले ही देख चुके हैं, भारतवर्ष में ग्राम पंचायतें आदि काल से ही चली आ रही हैं। सहस्रों वर्षों तक यह पंचायतें शासन की स्थिरता तथा समाज की कुशल व्यवस्था की आधार-शिला थीं, वह समस्त स्थानीय विवादों का चाहे वह सामाजिक हों, अथवा नैतिक, आर्थिक हों अथवा न्याय संबंधी, निर्णय करती थीं। वह केन्द्रीय सरकार से स्वतन्त्र रहकर कार्य करती थीं। केवल कर देने तथा सैनिक सहायता प्रदान करने के लिये वह केन्द्रीय सरकार के आधीन थीं। ब्रिटिश राज्य के आरंभ काल में ही इन पंचायतों का जीवन उस समय समाप्त हो गया, जब सरकार ने शासन तथा न्याय के क्षेत्रों में केन्द्रीयकरण की नीति का अवलंबन कर लिया।

सन् १९०८ में प्रथम बार ब्रिटिश सरकार ने एक अकेन्द्रीयकरण कमीशन नियुक्त करके भारत में ग्राम पंचायतों को पुनर्जीवित करने की ओर एक निश्चित कदम उठाया। इस कमीशन की सिफारिशों के आधार पर विभिन्न प्रांतीय सरकारों ने अपने यहाँ ग्राम पंचायत ऐक्ट बनाये और सन् १९१२ में पंजाब में, सन् १९२० में उत्तर प्रदेश में तथा इसके पश्चात दूसरे सभी प्रांतों में ऐसे ऐक्ट पास कर दिये गये।

हमारे नव संविधान में ग्राम पंचायतों के संगठन का वही प्राचीन आदर्श अपनाने का प्रयत्न किया गया है जो भारतीय इतिहास के स्वर्णिम काल में लागू था, और इसी आधार पर राज्य की समस्त सरकारों को आदेश दिया गया है, कि वह अपने अपने अधिकार क्षेत्र में शीघ्रातिशीघ्र इस प्रकार की ग्राम पंचायतों का संगठन करें। इसी दृष्टि से हमारी देश की विभिन्न प्रांतीय

सरकारों ने अपने पुराने ग्राम पंचायत कानूनों में संशोधन किया है। नये कनूनों में ग्राम पंचायतों के अधिकार अधिक विस्तृत कर दिये गये हैं, तथा उनका संगठन वयस्क मताधिकार के आधार पर किया गया है।

उत्तर प्रदेश में ग्राम पञ्चायतोँ का संगठन।

हमारे अपने प्रांत में ग्राम पंचायत संबंधी कानून दिसंबर सन् १९४७ में पास किया गया। इस कानून के अन्तर्गत ग्राम्य स्वराज्य की जो स्थापना की गई है उसकी रूप-रेखा नीचे दी जाती है:—

निर्माण—इस कानून के अन्तर्गत प्रत्येक ऐसे गाँव के लिये जिसकी जन संख्या १००० से अधिक है, एक ग्राम सभा बनाई गई है। यदि इससे छोटे गाँव हैं तो दो तीन गावों को मिला कर एक ग्राम सभा बना दी गई है, परन्तु तीन मील से अधिक दूरी वाले गावों के लिये अलग सभा बनाई गई है। इस प्रकार यदि छोटे छोटे गाँव एक दूसरे से दूर हैं तो आबादी कम होने पर भी उनमें अलग ग्राम सभाएं बना दी गई हैं। कुछ गाँव ऐसे हैं जहाँ आबादी नहीं है, उनको उस ग्राम सभा में मिलाया गया है जहाँ उनके अधिकाँश किसान बसते हैं।

सदस्यता—इस सभा का सदस्य गाँव का प्रत्येक व्यक्ति—स्त्री और पुरुष जिसकी आयु २१ वर्ष से अधिक है, होता है। परन्तु, पागल दिवालिया भीषण अपराध में सजा पाये हुए अपराधी तथा सरकारी नौकरी करने वाले लोगों को इसकी सदस्यता के अधिकार से वंचित कर दिया गया है।

ग्राम पंचायत—ग्राम सभा अर्थात् गाँव के सभी बालिग स्त्री-पुरुष अपने गाँव का दिन प्रति दिन का प्रबंध करने के लिये एक कार्य कारिणी सभा का चुनाव करते हैं। यह कार्यकारिणी ग्राम पंचायत कहलाती है। ग्राम पंचायतों के पंचों की संख्या गाँव की जन संख्या के आधार पर रक्खी गई है। यह संख्या गाँव सभा के सभापति तथा उप सभापति को छोड़ कर ३० और ५१ के बीच रक्खी गई है। सभापति तथा उप सभापति का चुनाव

सीधा जनता द्वारा किया जाता है, पंचायत के सदस्यों द्वारा नहीं। सदस्यों के पद की अवधि ३ वर्ष निश्चित की गई है, परन्तु गाँव सभा के एक तिहाई सदस्य प्रति वर्ष रिटायर हो जायेंगे और उनके स्थान पर नये चुनाव किये जायेंगे। चुनावों में इस बात का प्रबंध किया गया है कि अल्प संख्यक जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या उनकी आबादी के अनुपात से हो। परन्तु, हरिजनों के लिये यह नियम रक्खा गया है कि ग्राम पंचायतों के लिए जो प्रथम निर्वाचन होगा उसमें तो उनके सदस्य उनकी गाँव में संख्या के हिसाब से चुने जायेंगे परन्तु, बाद में, उनके प्रतिनिधियों की संख्या प्रांतीय धारा सभा द्वारा निश्चित की जायगी। चुनाव प्रणाली संयुक्त रक्खी गई है अर्थात् हिंदू, मुसलमान, हरिजन, सिख, ईसाई सब मिल कर एक दूसरे को राय देते हैं। चुनावों में अल्प संख्यक जातियों के लिये सीटें इसलिये सुरक्षित रक्खी गई हैं जिससे ग्राम के सभी वर्गों का पंचायत को विश्वास प्राप्त हो सके। सुरक्षित स्थान रखने पर भी पृथक निर्वाचन प्रणाली का अन्त कर दिया गया है। इससे गाँव के सभी व्यक्ति एक दूसरे के साथ मेल जोल के साथ रह सकेंगे। ग्राम पंचायतों के पिछले चुनावों में, जो अभी कुछ महीने पहिले हमारे प्रांत के सभी गावों में हुये थे, अल्प संख्यक तथा हरिजन जाति के अनेक सदस्य पंचायतों के सदस्य चुने गये। यह ही नहीं, अनेक पंचायतों में तो हरिजन और मुसलमानों को सरपंच भी चुना गया। इस प्रकार चुनावों में अल्प संख्यक तथा परिगणित जातियों को प्रधानता देकर हमारे प्रांत की जनता ने अपने विशाल हृदय का परिचय दिया है।

पंचायतों के कार्य—ग्राम पंचायतों के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं:—सड़कें, पुल व पुलियाँ बनाना, चिकित्सा तथा सफाई का प्रबंध करना, अस्पताल व औषधालय, पाठशालाएं, प्रायमरी स्कूल, व पुस्तकालय तथा वाचनालय खोलना, उद्योग धन्धों, तथा कृषि की उन्नति का प्रबंध करना, मेला, हाट व बाजार का लगवाना, पशुओं की चिकित्सा व उन्नति, स्वास्थ्य की उन्नति के लिये अखाड़े व खेल कूद का प्रबंध करना, जल की व्यवस्था करना, खाद इकट्ठा करने के लिये स्थान नियत करना, रास्तों के दोनों

ओर पेड़ लगवाना, मवेशियों की नस्ल सुधारना, भूमि को समतल करना, स्वयं सेवक दल बनाना, रेडियो का प्रबंध करना, सब दलों में प्रेम भाव बढ़ाना तथा और इसी प्रकार का काम करना, जिनसे गाँव की जनता की भौतिक और नैतिक उन्नति हो सके ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्राम पंचायतों को वह सभी काम सौंपे गये हैं जो हमारे ग्रामीण जीवन को सुन्दर तथा समुन्नत बनाने के लिये आवश्यक हैं । ग्राम पंचायतें कृषि, व्यापार तथा उद्योग धन्धों की उन्नति के लिये भी समुचित कार्य कर सकेंगी । वह सरकार के अन्य विभागों के कर्मचारियों की आलोचना तथा उनके विरुद्ध रिपोर्ट तथा लिखा पढ़ी भी कर सकेंगी ।

ग्राम सभा की बैठकें—ऐक्ट में कहा गया है कि ग्राम सभा की वर्ष में कम से कम दो बैठकें हुआ करेंगी—एक खरीफ़ कटने पर दूसरी रबी के बाद । खरीफ़ की मीटिंग में बजट अर्थात् आगामी वर्ष की आमदनी तथा खर्च के आँकड़े पेश किये जायेंगे । इस बजट को पास करने तथा उस पर बहस करने का अधिकार ग्राम सभा के सभी सदस्यों अर्थात् गाँव के प्रत्येक बालिग स्त्री और पुरुष को होगा । 'रबी' की मीटिंग में पिछले साल के हिसाब पर विचार किया जायगा । इस मीटिंग में सदस्य यह पूछ सकेंगे कि रुपये का खर्च ठीक प्रकार से किया गया है अथवा नहीं, और क्या उसी प्रकार किया गया है ज़िस प्रकार गाँव सभा ने पहली मीटिंग में उसकी स्वीकृति दी थी । दोनों सभाओं में गावों के लोग अपनी ओर से प्रस्ताव पेश कर सकेंगे जिनमें वह गाँव की दशा सुधारने के लिये पंचों के सम्मुख अपनी योजना रख सकेंगे । गाँव सभा को यह अधिकार होगा कि कि वह दो तिहाई वोटों से सभापति या उप सभापति को उनके पद से अलग कर दे । हर ग्राम पंचायत का एक सेक्रेटरी तथा और आवश्यक कर्मचारी होंगे जिनकी नियुक्ति पंचायत करेगी ।

आमदनी के स्तोत्र—जो काम ग्राम सभाओं के सुपुर्द किये गये हैं

उनको पूरा करने के लिये प्रत्येक गाँव सभा को कुछ टैक्स लगाने या कर आदि वसूल करने के अधिकार दिये गये हैं। ग्राम पंचायत किसानों के लगान पर एक आना फ़ी रुपया और जमींदारों की मालगुजारी पर ६ पाई प्रति रुपया कर वसूल कर सकेगी। इसके अतिरिक्त उसे बाजारों तथा मेलों, व्यापार, कारोबार और पेशों तथा ऐसी इमारतों के स्वामियों पर भी टैक्स लगाने का अधिकार होगा जो दूसरे और टैक्स न देते हों। पंचायतों को प्रांतीय सरकार तथा जिला बोर्डों से भी सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त उनकी आमदनी का एक और बड़ा स्तोत्र न्याय पंचायतों द्वारा किये हुए जुर्माने होंगे। पंचायतों को कुछ नियन्त्रण के साथ ऋण लेने के भी अधिकार होंगे।

ग्राम पंचायतों के आर्थिक अधिकारों को देखने से पता चलता है कि उनको आमदनी का मुख्य स्त्रोत प्रांतीय सरकार तथा जिला बोर्डों की सहायता तथा जुर्माने होंगे। लगान व मालगुजारी पर टैक्स लगाने से उनकी वार्षिक आमदनी ४०० रुपये से अधिक नहीं होगी। कारण, हमारे प्रांत में काश्तकारों के लगान की कुल रकम १५ करोड़ रुपया और जमींदारों की मालगुजारी की कुल आमदनी ६ करोड़ रुपया है। इस प्रकार एक आना व दो पैसे प्रति रुपये के हिसाब से सारे प्रांत की ३०,००० से अधिक ग्राम सभाओं की कुल आमदनी १,२५,००,००० रुपया से अधिक नहीं होगी। इस प्रकार इस आमदनी को ३०,००० सभाओं में बाँटने से प्रत्येक सभा के हक में ४०० रुपये से अधिक नहीं आयेंगे। जमींदारी उन्मूलन के पश्चात यह आमदनी और भी कम हो जायगी। इस प्रकार ग्राम पंचायतों के जन सेवा संबंधी कार्यों को दृष्टि में रखने से प्रतीत होता है कि रुपये की कमी के कारण सभायें अधिक कार्य न कर सकेंगी। इसलिये सरकार को चाहिये कि वह ग्राम पंचायतों को अपनी ओर से आथिक सहायता देने का अधिक प्रयत्न करे।

न्याय पन्चायतें

प्रांत भर में कुछ ग्राम सभाओं को मिलाकर पंचायती अदालतें बनाई गई हैं। प्रायः तीन या चार ग्राम सभाओं के पीछे एक पंचायती अदालत है। इस पंचायती अदालत के चुनाव का तरीका यह है कि प्रत्येक गाँव सभा नियत योग्यता वाले ऐसे पाँच प्रौढ़ पंच चुनती है जो स्थाई रूप से उसके अधिकार क्षेत्र के भीतर रहने वाले हैं। इस प्रकार एक अदालत क्षेत्र के अन्तर्गत सभी ग्राम सभाएं अलग अलग अपने पंचों का चुनाव करती हैं। सारे गावों को मिला कर पंचों के सम्मिलित चुनाव की व्यवस्था इसलिये नहीं की गई है जिससे बड़े गाँव छोटे गाँव के ऊपर न छा जाँय और छोटे गावों के लोगों को अदालतों में प्रतिनिधित्व न मिले। अदालत के इस प्रकार चुने हुए सभी पंच जिनकी संख्या १५-२० के बीच होती है, एक सरपंच चुनते हैं। सरपंच एक ऐसा व्यक्ति होता है जो लिखने पढ़ने की योग्यता रखता हो। प्रत्येक पंच की कार्य अवधि ३ वर्ष होती है। पंच अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है।

पंचायती अदालत के काम का तरीका—सरपंच प्रत्येक मुकदमें, नालिश या कार्यवाही के लिये पंच मंडल में से पाँच पंचों का एक बेंच नियुक्त करता है। इनमें कम से कम एक पंच ऐसा होता है जो लिखने पढ़ने की योग्यता रखता हो। बेंच के इन पाँच पंचों में एक पंच उन दोनों ग्राम सभाओं के क्षेत्रों से लिया जाता है, जिनमें मुकदमें के दोनों फ़रीक रहते हों। कोई भी पंच या सरपंच ऐसे मुकदमों में भाग नहीं ले सकता जिसमें वह या उसका निकट संबंधी, नौकर या मालिक संबंधी हो।

पंचायती अदालतों के अधिकार—न्याय पंचायतों के अधिकार पहिले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ा दिये गये हैं। पहले उनको दाखिल खारिज व जमीन संबंधी अधिकार नहीं थे, अब उन्हें यह अधिकार दे दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें बहुत से फ़ौजदारी मुकदमों की सुनवाई का अधि-

कार भी दे दिया गया है। इन मुकदमों में ५० रुपया तक की चोरी या गबन, या मामूली मारपीट या गाँव की सार्वजनिक इमारतों, जलाशय, तालाब रास्ते इत्यादि को हानि पहुंचाने के अपराध भी शामिल हैं। न्याय पंचायतों को कैद की सजा देने का अधिकार नहीं दिया गया है, परन्तु वह १०० रुपया तक जुर्माने का दंड दे सकती हैं। पुराने अपराधियों के मुकदमे की की सुनवाई करने का भी इन अदालतों को अधिकार नहीं दिया गया है। यह अदालत ऐसे अभियुक्तों को छोड़ सकेंगी जिन्होंने प्रथम बार जुर्म किया हो। दीवानी मामलों में १०० रुपये तक की मालियत के मुकदमों का फ़ैसला करने का पंचायत को अधिकार दिया गया है।

न्याय पंचायत के निर्णय पाँच पंचों की सम्मति से होते हैं। यदि वह सब सहमत न हों तो निर्णय बहुमत से होता है। इन अदालतों के निर्णय आखीरी होते हैं अर्थात् उनकी अपील नहीं होती। परन्तु मुसिफ़ और सब-डिविजनल आफ़ीसर को यह अधिकार दिया गया है कि वह किन्हीं विशेष दशाओं में पंचायतों के फ़ैसलों की निगरानी कर सके। पंचायतों के सम्मुख वकील पेश नहीं हो सकते। इस प्रकार की रोक इसलिये लगाई गई है जिससे पंचायती न्याय, वकीलों की चालबाजियों के कारण दूषित न हो सके।

पन्चायत राज्य ऐक्ट के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में चुनाव

हमारे प्रांत में कुल गावों की संख्या १,१५,२१५ और जन संख्या ५,४०,००,००० है। इन गावों के लिये ३५,००० गाँव सभा बनाने का आयोजन किया गया है। गाँव सभाओं के सब सदस्यों की संख्या वयस्क स्त्री और पुरुषों को मिला कर २,७०,२०,७९० है। इनमें चुने हुए पंचों की सख्या १३,००,००० से ऊपर है। ३५,००० गाँव सभाओं के लिये ८१९० पंचायती अदालतों का आयोजन किया गया है। इन अदालतों में पंचों की संख्या १,२५,००० है। दोनों ग्राम सभाओं तथा पंचायती अदालतों में मिला कर पंचों की संख्या लगभग १५,००,००० है।

यू० पी० के ४६ जिलों में चुनाव फ़रवरी और मार्च सन् १९४९ में पूरे हो गये थे,परन्तु पहाड़ी इलाकों में चुनाव जून से पहिले समाप्त न हो सके। चुनाव अत्यंत ही शाँति पूर्वक समाप्त हुए, और जैसा कि बहुत लोगों को डर था कि इन चुनावों में बड़े उपद्रव होंगे गावों के अन्दर दल बन्दियाँ हो जायेंगी, ऊँच नीच और छूत-अछूत का प्रश्न उठाया जायगा, इत्यादि ऐसा कुछ स्थानों को छोड़कर, शेष जगह देखने में नहीं आया। ३५,००० पंचायतों में से २०,००० पंचायतों का चुनाव सर्व सम्मति से हुआ, शेष स्थानों पर ३३ ग्रामों को छोड़ कर बाकी सब जगह चुनाव शाँति पूर्वक समाप्त हो गये।

आदर्श पंचायतें

प्रांतों की प्रत्येक तहसील में एक आदर्श ग्राम सभा बनाई गई है जिसका कार्य एक ऐसी कमेटी द्वारा किया जाता है जिसके सदस्य डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, जिला काँग्रेस तथा विकास बोर्ड के प्रधान, जिले का इन्स्पेक्टर आफ ऐज्यूकेशन, प्रांतीय रक्षा दल का कमांडर, हेल्थ आफीसर, सिंचाई विभाग, व सहकारी विभाग का अधिकारी, जिले का इन्जीनियर तथा जिले के सूचना विभाग का सचिव होता है। इस सभा के मन्त्री पद पर डिस्ट्रिक्ट पंचायत अफसर काम करता है।

यह सभा इस प्रकार कार्य करती है कि तहसील की दूसरी सभी ग्राम सभाएँ उससे शिक्षा ग्रहण कर सकें। विशेष रूप से यह सभा गाँव में पंचायत घर, छोटे उद्योग धन्धे, अस्पताल, खाद बनाने के केन्द्र, शिक्षा का प्रबंध तथा गाँव की सफाई इत्यादि के लिये आदर्श व्यवस्था करने का प्रयत्न करती है।

पंचायती राज्य को सफल बनाने के लिये पंचों की शिक्षा तथा अधिकारियों की विशेष ट्रेनिंग का भी प्रबंध किया गया है। यह पंचायती राज कहाँ तक सफल होता है इसका अंतिम उत्तरदायित्व हमारी ग्रामीण जनता पर है। यदि हमारी जनता ने जाति पाँति, ऊंच नीच, तथा बिरादरी व

कुटुम्ब के झमेलों में पड़ कर अपनी राय का अनुचित प्रयोग नहीं किया और यदि वह अपने अधिकारों की ओर जागरुक रही, तो कोई कारण नहीं कि हमारा पंचायती राज्य सफल न हो सके।

भारत में स्थानीय स्वशासन की सफलता

इस अध्याय के आरंभ में ही हमने उन उद्देश्यों का उल्लेख किया है, जिनको लेकर भारतवर्ष में स्वायत्त शासन संस्थाओं का संगठन किया गया था। हमें देखना है कि यह उद्देश्य कहाँ तक पूर्ण हुए हैं। स्थानीय संस्थाओं का प्रथम उद्देश्य केन्द्रीय शासन के कार्य भार को कम करना था। हम कह सकते हैं कि यह उद्देश्य समुचित रूप में पूरा हुआ है, कारण कि सरकार के जिला अधिकारी अब उस भारी अरुचिकर तथा अप्रिय काम से मुक्त हो गये हैं, जो उन्हें विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय आवश्यकताओं को देखने तथा उन्हें पूरा करने के लिये करना पड़ता था। परन्तु स्थानीय संस्थाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अर्थात् व्यक्तियों में नागरिक भावनाओं की जागृति उत्पन्न करना पूरा नहीं हो सका है।

इसके विपरीत इन संस्थाओं ने हमारे देश के छोटे छोटे गाँव व नगरों में, स्वार्थ सिद्धि की भावना से पूर्ण, दलबन्दी की प्रथा को जन्म दिया है। स्थानीय संस्थाओं के चुनावों के समय देश में क्षुद्र जातीय, सांप्रदायिक व परिवारिक संबंधों के आधार पर राय माँगी जाती है। योग्य व्यक्तियों को राय नहीं दी जाती, चुनावों में पारस्परिक वैमनस्य से काम लिया जाता है। एक दूसरे उम्मीदवार के विरुद्ध आरोप लगाये जाते हैं तथा बिना किसी सिद्धांत के गावों व नगरों में विरोधी दल खड़े हो जाते हैं। चुनावों के पश्चात भी यह दल बन्दियाँ कायम रहती हैं, और इससे नागरिक जीवन एक हर्ष और उल्लास का केन्द्र बनने के स्थान पर कलह और विषाद का क्षेत्र बन जाता है। यही कारण है, स्थानीय संस्थायें हमारे देश में नागरिक जागृति उत्पन्न करने में सफल न हो सकी हैं। उन्होंने हमारी देश की जनता में उन भावनाओं को जन्म नहीं दिया है जिनके द्वारा ही किसी देश को प्रजातन्त्र शासन

की सफलता प्राप्त होती है ।

भारत में स्वायत्त शासन संस्थाओं की असफलता के अनेक कारण हैं। इनमें सबसे बड़ा यह है कि हमारे देश में इन संस्थाओं की सफलता के लिये आवश्यक वातावरण वर्तमान नहीं है। स्थानीय स्वराज्य की संस्थायें केवल उस दशा में सफल हो सकती हैं जब कि उन मनुष्यों में जिन पर वह शासन करतीहैं, निम्नलिखित गुण विद्यमान हों ।

(१) प्रथम यह कि जनता में नैतिक सदाचार, ईमानदारी तथा सहयोग का उच्च आदर्श और सार्वजनिक कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विद्यमान हो। यदि किसी देश की जनता सामाजिक हित के कार्यों के प्रति उदासीन रहती है या सुस्त, स्वार्थी तथा अभिमानी है तो स्वायत्त शासन संस्थायें सफल नहीं हो सकतीं। इन गुणों का निर्माण करने के लिये जनता का शिक्षित होना अत्यंत आवश्यक है, इसलिये सरकार को चाहिये कि वह स्थानीय संस्था की सफलता के लिये शिक्षा पर अत्यंत जोर दे।

(२) दूसरे, स्थानीय संस्थायें उस समय तक सफल नहीं हो सकतीं जब तक नगरों की जनता अपने प्रतिनिधियों के कार्यों के प्रति पूर्ण रूप से जागरुक न हो। जनता को चाहिए कि वह म्यूनिसिपल संस्थाओं के कार्य की सदा रचनात्मक दृष्टि से आलोचना करती रहे जिससे उनके प्रतिनिधि अपने स्वार्थ की सिद्धी के लिये नहीं वरन् जनता की भलाई के लिये काम करें ।

इसी उद्देश्य से प्रत्येक नगर में मतदाओं की सभायें तथा नागरिक संस्थाएँ बननी चाहिये जिससे वह स्वतन्त्र रूप से सार्वजनिक प्रश्नों पर विचार कर सकें और म्यूनिसिपल सदस्यों को जनता के मत का बोध करा सकें ।

(३) तीसरे, चुनाव के समय निर्वाचकों को चाहिये कि वह अपने प्रतिनिधियों को मत देते समय उनकी योग्यता का ध्यान रक्खें और पारिवारिक बन्धनों से प्रभावित न हों ।

(४) केन्द्रीय सरकार को भी चाहिये कि वह स्थानीय संस्थाओं के काम में अधिक हस्तक्षेप न करें। हस्तक्षेप केवल उसी दशा में किया जाना चाहियें जब कि स्थानीय संस्था का प्रबंध इतना दूषित हो जाय कि उसके सुधारने का और उपाय ही शेष न हो।

(५) स्थानीय संस्थाओं के पास आमदनी के भी समुचित साधन होने चाहिये जिससे वह नागरिकों की सुविधा के लिये अधिक से अधिक काम कर सकें। प्राय: भारतीय स्वायत्त शासन संस्थायें रुपये की कमी के कारण जनता की अधिक सेवा नहीं कर सकतीं।

यदि उपरोक्त सभी सुझावों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया जाय तो कोई कारण नहीं कि भारत में स्वायत्त शासन संस्थायें वही सफलता प्राप्त न कर सकें जो उन्होंने दूसरे प्रगतिशील देशों में की हैं।

अध्याय १५

भारत में शिक्षा

शिक्षा का वास्तविक अर्थ

शिक्षा का अर्थ है मनुष्य जीवन का संपूर्ण विकास व उसकी सर्वोपरि उन्नति। वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य की सुप्त शक्तियों का विकास कर उसको समाज का एक उपयोगी व्यक्ति बनाने में सफल हो सके तथा उसे अपने सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, नागरिक, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय जीवन में सक्रिय भाग लेने के योग्य बनायें। शिक्षा अच्छे सामाजिक जीवन की कुंजी है। यही मनुष्य में उन भावनाओं का संचार करती है जिनके कारण ही एक सभ्य मनुष्य और पशु में अंतर किया जाता है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपनी कुत्सित भावनाओं को अनुचित मार्ग पर जाने से रोक कर एक अनुशासित जीवन व्यतीत करने में सफल होता है।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में नागरिकों को जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है उसके अन्तर्गत मनुष्यों के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास नहीं होता। हमारी शिक्षा प्रणाली चरित्र निर्माण व जीवन के संतुलित विकास की ओर ध्यान नहीं देती। हमारी शिक्षा संस्थायें मस्तिष्क के विकास का तो विचार अवश्य रखती हैं परन्तु वह विद्यार्थियों के हृदय व शरीर के शिक्षण की ओर समुचित ध्यान नहीं देती। यही कारण है कि बहुत कम शिक्षा संस्थायें हमारे देश में ऐसी हैं जहाँ मनुष्य को श्रम का आदर करना सिखाया जाय, जहाँ मनुष्य के हृदय को निर्मल व स्वच्छ विचारों से परिपूर्ण करने

के लिये उसे सब धर्मों की समानता एवं एक रूपता का ज्ञान कराया जाय, तथा जहाँ उसकी कर्मेन्द्रियों के शिक्षण के लिये हर प्रकार की ललित कलाओं जैसे चित्रकारी, संगीत, नृत्य, फोटोग्राफी, तथा भिन्न भिन्न प्रकार के उद्योग धन्धों की शिक्षा प्रदान की जाय। आदर्श शिक्षा वह है जिसे प्राप्त कर मनुष्य जीवन की सर्वोत्मुखी उन्नति हो सके तथा जो व्यक्ति के अन्दर श्रम का आदर, मानव व्यक्तित्व की महत्ता एवं आर्थिक संघर्ष की क्षमता प्रदान कर सके।

प्राचीन भारत में शिक्षा

प्राचीन भारत अपनी शिक्षा व सांस्कृतिक उन्नति के लिये संसार भर के देशों में अग्रगण्य था। हमारे देश के विश्वविद्यालय संसार के बड़े बड़े पंडितों व विद्वानों के ज्ञानोपार्जन के केन्द्र थे। काशी, नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, मिथिला, नवद्वीप, नादिया, व श्रीनगर इत्यादि स्थानों में हमारे देश की अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा संस्थायें स्थापित थीं। इन विश्व विद्यालयों में संसार के कोने कोने से सहस्त्रों विद्यार्थी आकर, मनमोहक प्राकृतिक सौंदर्य के उपवन में, नगरों के कोलाहल व संघर्ष से दूर, अत्यंत सुन्दर व सौम्य वातावरण के बीच शिक्षा ग्रहण करते थे।

प्राचीन भारत में शिक्षा का आदर्श मस्तिष्क व हृदय का शिक्षण था। उस शिक्षा प्रणाली में औद्योगिक शिक्षा को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था। शिक्षा के द्वारा पैसा कमाना, या किसी व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिये उसे एक साधन बनाना, एक हेच आदर्श समझा जाता था। शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य था मनुष्य जीवन की सर्वांगीण उन्नति। इस उन्नति के लिये आर्थिक क्षेत्र में सफलता कोई आवश्यक वस्तु नहीं समझी जाती थी। समाज में उन व्यक्तियों का अधिक मान था जो अत्यंत ज्ञानवान, धर्मनिष्ठ, आचारवान व अपने धर्म शास्त्रों के पंडित थे। ऐसे व्यक्तियों का सर्वत्र सम्मान होता था। राजाओं के दरबार में भी उन्हें विशेष आदर का स्थान दिया जाता था।

वर्तमान युग में, समाज में आदर व सन्मान, किसी व्यक्ति के पांडित्य व ज्ञान पर निर्भर नहीं रहता वह उसकी आर्थिक शक्ति के आधार पर निश्चित किया जाता है। आज का संसार धनिकों का संसार है। इसलिये समाज में केवल वही लोग बड़े समझे जाते हैं तथा उनका सब स्थानों पर आदर व सत्कार होता है जो बड़े बड़े बँगलों में रहते हैं, मोटर गाड़ियों में सवारी करते हैं, तथा जिनका घर धन धान्य से परिपूर्ण होता है। पढ़े लिखे विद्वान व्यक्ति, धनिकों द्वारा, अपनी न बुझने वाली धन पिपासा को शांत करने के लिये, केवल एक साधन (Tool) के रुप में काम में लाए जाते हैं। उनका कहीं सन्मान नहीं होता। उनका मूल्य इस बात से आँका जाता है कि उन्हें कितने रुपये मासिक वेतन मिलता है अन्यथा उनमें रुपया कमाने की कितनी शक्ति है। इसलिये स्वभावतः, आजकल के युग में. शिक्षा के आर्थिक पहलू पर विशेष ज़ोर दिया जाता है।

परन्तु प्राचीन भारत में ये सब बातें न थीं। उस काल में समाज का सबसे महान् व प्रतिष्ठित व्यक्ति वह समझा जाता था जो धन व माया के जाल से दूर रहकर सरस्वती देवी का पुजारी था, जिसकी विद्वत्ता व चरित्र अद्वितीय थी, जो रुपये पैसे से प्यार न करता था तथा जो एक अत्यंत संयमी अनुशासित, सादा एवं निर्मल जीवन व्यतीत करने की क्षमता रखता था। यही कारण था कि प्राचीन शिक्षा प्रणाली में शिक्षा के आर्थिक व औद्योगिक दृष्टिकोण को अधिक महत्व प्रदान नहीं किया जाता था।

प्राचीन भारत के अध्यापक—हमारी वैदिक शिक्षा प्रणाली में इसलिये शिक्षा प्रदान करने का कार्य भी उन्हीं लोगों के हाथ में सौंपा जाता था जो अपने जीवन का ध्येय पैसा कमाना न बना कर, विद्यादान ही सबसे बड़ा धर्म समझते थे। उनके सन्मुख शिक्षा प्रदान करना किसी और उद्देश्य की पूर्ति का साधन नहीं वरन् स्वयं एक आदर्श था। । वह अपना सारा जीवन इसी कार्य के लिये अर्पण कर देते थ। पाठशालाओं में रहकर, एक आश्रम के रूप में, कुछ विद्यार्थियों को एकत्रित कर लेना और फिर उनको निः-

शुल्क शिक्षा प्रदान करना तथा उनके दैनिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर स्वयं दृष्टि रखना, उस काल की शिक्षा प्रणाली का सबसे प्रमुख अंग था। अधिकतर विद्यार्थी अपने घरों पर रहकर नहीं वरन् आश्रमों में रह कर शिक्षा ग्रहण करते थे। इन आश्रमों में धनी और निर्धन, ऊंच और नीच छोटे और बड़े विद्यार्थियों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं बरता जाता था। सब विद्यार्थियों को एक ही प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी तथा उन्हें एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। यही कारण था कि प्राचीन भारत में कृष्ण और सुदामा एक ही पाठशाला में पढ़े और एक ही गुरू के चरणों में बैठ कर उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। आश्रमों का व्यय नागरिकों व राज्य की दानशीलता के आधार पर चलता था। दिन प्रति दिन के व्यय के लिये पाठशाला के शिष्य आस पास के गावों से भिक्षा माँग लेते थे। यह भिक्षा धनी और निर्धन, राज पुत्र और दास पुत्र सभी को माँगनी पड़ती थी। इस प्रकार विद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों के जीवन से ऊंच नीच और छोटे बड़े का भेद भाव नष्ट होकर उनमें भातृभाव व समानता की भावना जन्म लेती थी।

शिक्षा की समाप्ति पर प्रत्येक विद्यार्थी अपनी सामर्थ्य के अनुसार गुरू को भेंट देता था। यह उत्सव गुरु दक्षिणा उत्सव कहलाता था। इस अवसर पर गुरू अपने शिष्यों से रुपये पैसे की भेंट नहीं माँगते थे। वह अपनी योग्यतानुसार उन्हें जन सेवा व लोक कल्याण के लिये कार्य करने की दीक्षा देते थे, और उसी कार्य की सफलता में वह अपनी सबसे बड़ी गुरु दक्षिणा मानते थे। महर्षि कणाद के आश्रम का एक स्थान पर वृतांत मिलता है। उनके तीन शिष्य जिस समय अपनी शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात अपने गुरू से गुरु दक्षिणा माँगने का आग्रह करने लगे तो उन्होंने अपने तीनों शिष्यों से अलग अलग इस प्रकार गुरु दक्षिणा माँगी। उन्होंने एक शिष्य से कहा; "वत्स तुमने वेद वेदाँतों की शिक्षा प्राप्त की है। जैसे मैंने निस्वार्थ भाव से प्रेम के साथ तुम्हें पुत्रवत शिक्षा दी है, तुम भी उसी

प्रकार जाकर संसार के लोगों का कल्याण करो, उन्हें ज्ञान दो, उन्हें सत्य पथ पर चलाओ ।"

दूसरे शिष्य से उन्होंने कहा, "मेरी दक्षिणा यही है कि अपने ज्ञान के आधार पर तुम ब्रम्हचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास आश्रमों के नियम बनाओ, जिनके द्वारा समाज की आदर्श व्यवस्था चल सके ।"

तीसरे शिष्य से उन्होंने कहा, "तुम वैदिक यज्ञों का संविधान करो ।"

इस प्रकार प्राचीन भारत के गुरू त्याग, बलिदान और निस्वार्थ सेवा का आदर्श जनता के सम्मुख रखते थे । इसी काल में भारत में अनेक धर्म ग्रन्थ लिखे गये । वैषेशिक, साँख्य, न्याय, पूर्व मीमाँसा, योग व दूसरे दर्शनों का इसी प्रकार निर्माण हुआ ।

शिक्षा की श्रेणियाँ—प्राचीन भारत में आश्रमों के आधार पर विद्यार्थियों की शिक्षा २५ वर्ष की आयु तक होती थी । कुछ विद्यार्थी इसके पश्चात भी ३५ वर्ष की आयु तक विद्याध्ययन करते थे । विद्याका आरंभ ५ वर्ष की आयु से होता था । इस अवस्था की प्राप्ति पर शिशू का अक्षारंभ संस्कार किया जाता था । इस सस्कार में गुरू बालक की जिह्वा पर सोने या चंदन की लेखनी से ओम् मन्त्र लिखता था । आठ वर्ष की अवस्था में बालक का उपनयन संस्कार होता था । उपनयन का अर्थ है 'पास आना' । इस अवस्था की प्राप्ति के पश्चात बालक इस बात का अधिकारी हो जाता था कि वह गुरू अथवा आचार्य के आश्रम में भर्ती होकर शिक्षा ग्रहण करे ।

विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सभी वर्णों के विद्यार्थियों को प्राप्त था । शूद्र व चाँडालों के बच्चों को गुरू के आश्रमों में उसी प्रकार भरती किया जाता था जैसे किसी राज पुत्र को । शूद्रों को वेदों शिक्षा दी जाती थी । महीदास जिन्होंने तैत्तरीय ब्राह्माण नामक ग्रन्थ का निर्माण किया जन्म से शूद्र थे ।

शिक्षा का विभाजन तीन श्रेणियों में किया जाता था—प्रारंभिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा । उच्च शिक्षा के पश्चात कुछ विद्यार्थी अनु-

संधानात्मिक अध्ययन करते थ और इसके लिये वह भारत की विभिन्न विश्वविद्यालयों में जाकर वहाँ के अध्यापकों तथा विद्वान शिष्यों के साथ शास्त्रार्थ करते थे। इन शास्त्रार्थों के द्वारा नये नये सिधांतों का प्रतिपादन होता था तथा अनेक नये ग्रन्थ लिखे जाते थे।

प्रारंभिक व माध्यमिक श्रेणियों में विद्यार्थियों को संस्कृत व्याकरण, धर्म शास्त्र, आचार शास्त्र, उपनिषद, साहित्य, इतिहास, गणित व भूगोल की शिक्षा दी जाती थी। इसके पश्चात विद्यार्थी विश्व विद्यालयों में प्रवेश करते थे। भिन्न भिन्न विश्व विद्यालयों में अलग अलग विषयों के विशेष अध्ययन का प्रबंध था। उदाहरणार्थ तक्षिला विद्यालय में आयुर्वेद, धर्म शास्त्र, सैन्य शिक्षण व राजनीति की विशेष शिक्षा दी जाती थी। बनारस नृत्य, संगीत व शिल्प कला का प्रधान केन्द्र था, नालन्दा शास्त्र निर्णय का विश्व विद्यालय था। इस अंतिम विद्यालय में २५०० अध्यापक तथा ८५०० से अधिक छात्र थे इसमें प्रति दिन २०० से अधिक व्याख्यान दिये जाते थे।

इन विद्यालयों के अतिरिक्त नगर कोट, गान्धार, पुष्कर, काश्मीर, जालन्धर, मथुरा, प्रयाग, अयोध्या, कौशम्बी, कपिलवस्तु, सारनाथ, आदि प्रदेशों में शिक्षा के केन्द्र थे। इन स्थानों में प्रति वर्ष सहस्रों छात्र बौद्ध तथा वैदिक धर्म की शिक्षा ग्रहण करते थे। उस समय भारत के विद्यालयों में संपूर्ण एशिया के विद्यार्थी पढ़ने आते थे और भारत के विद्वान दूसरे देशों में शिक्षा देने जाते थे।

शिक्षा पद्धति—प्राचीन भारत की शिक्षा संस्थाओं में विद्यार्थियों के ऊपर बाहर का ज्ञान लादने का प्रयत्न नहीं किया जाता था। उन्हें सिखाया जाता था कि वह स्वयं अपने अन्दर विचारने व मनन करने की शक्ति किस प्रकार उत्पन्न कर सकते हैं। विचारों की स्वतन्त्रता उस शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा गुण था। विद्यार्थियों को शास्त्रों के गुण व दोष निकालने व उनकी विवेचना करने का पूर्ण अधिकार था। स्वयं

आचार्य विद्यार्थियों के वाद विवाद में भाग लेते थे और किसी बात की सत्यता स्थिर होने पर अपने शास्त्रों में संशोधन कर लेते थे।

यही कारण था कि प्राचीन भारत में यदि एक ओर चारवाक जैसे विचारक हुए जिन्होंने शरीर के सुख के लिये प्रत्येक काम करना उचित ठहराया तो दूसरी ओर हमारे देश में शंकराचार्य जैसे ऋषि भी हुए जिन्होंने आत्मा की शाँति को ही सबसे अधिक महत्ता दी और इसके लिय शरीर सुख को अत्यंत हेच समझा। शास्त्रार्थ करना तथा सत्य की खोज करना उस समय की शिक्षा का सबसे बड़ा आदर्श था। विश्व विद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद जो विद्यार्थी ३५ वर्ष की आयु तक, अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते थे उनके शिक्षण का ढंग यही था कि वह देश के भिन्न भिन्न भागों में स्थित विश्व विद्यालयों व ऋषियों के आश्रमों में जाकर उनके आचार्यों के साथ दर्शनों व धर्म शास्त्रों के संबंध में शास्त्रार्थ करते थे और इस प्रकार इन विवादों में अपनी योग्यता का परिचय देकर वह देश की सबसे उच्च शिक्षा उपाधि से विभूषित किये जाते थे।

प्राचीन भारत के आश्रमों में शिक्षा देने का ढ़ंग अत्यंत ही मनोरंजक था। प्रातः काल होते ही, नित्य कर्म से निवृत होने के पश्चात, विद्यार्थी अपने गुरु के सम्मुख उपस्थित होते थे। हवन, ईश्वर स्तुति व संध्या के पश्चात, वह अपना पिछला पाठ गुरू को सुनाते थे। गुरू प्रश्नों के द्वारा उनके ज्ञान की गहराई का पता लगाते थे। दोपहर में विद्यार्थी स्वयं अध्ययन करते थे और गुरू केवल उनकी कठिनाइयों को हल करने के लिये उनके पास आते थे। तीसरे पहर गुरू विद्यार्थियों को स्वयं शिक्षा देते थे तथा उन्हें धर्म ग्रन्थों का ज्ञान कराते थे। साँझ ढ़ले, सब विद्यार्थी अपने गुरू के साथ जंगलों की सैर करने जाते थे। वहाँ पर विद्यार्थियों को प्रकृति, विज्ञान, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, आकाश, तारागण, वनस्पति शास्त्र, जन्तु शास्त्र, इत्यादि विद्याओं का ज्ञान कराया जाता था। इस अध्यापन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि विद्यार्थी अनुभव के द्वारा सब बातें बहुत आसानी से

समझ जाते थे और खेल और मनोरंजन के साथ साथ उनके ज्ञान में समुचित वृद्धि हो जाती थी ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली आधुनिक शिक्षा प्रणाली से कहीं अच्छी थी । इसी शिक्षा प्रणाली के गुणों का विचार रखते हुए हमारे यूनीवर्सिटी कमीशन ने जिसके अध्यक्ष डाक्टर सर राधाकृष्णन थे यह सिफारिश की है कि भारत में ग्रामीण विश्व विद्यालय स्थापित किये जाँय जिनमें प्राचीन आदर्शों के आधार पर शिक्षा की व्यवस्था हो । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिंदुओं की शिक्षा पद्धति में निम्नलिखित गुण थे:—

(१) इस शिक्षा पद्धति में मनुष्य के मस्तिष्क के शिक्षण पर ही जोर नहीं दिया जाता था वरन् उसके हृदय के शिक्षण को भी उतना ही आवश्यक समझा जाता था । यही कारण था कि शिक्षा का स्वरूप केवल मानसिक ही नहीं वरन् नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक भी था ।

(२) शिक्षा नगर के गंदे तथा विलासी जीवन से परे ऐसे क्षेत्रों में दी जाती थी जहाँ विद्यार्थी प्रकृति की गोद में बैठकर अत्यन्त सुन्दर वातावरण में अपने ज्ञान की वृद्धि तथा अपने चरित्र का निर्माण कर सकते थे ।

(३) शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी के मस्तिष्क को बाहरी ज्ञान से भर देना नहीं वरन् उसकी सुप्त शक्तियों एवं विचार शक्ति का विकास था ।

(४) इस प्रणाली के अन्तर्गत विद्यार्थी ऊंच नींच, छोटे बड़े और धनी निर्धन का विचार छोड़ कर एक दूसरे के साथ समानता एवं भाई चारे के भाव के आधार पर व्यवहार करते थे । वह आश्रम में रह कर एक अत्यंत संयमी , सादा तथा सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे ।

(५) सब विद्यार्थी एक दूसरे से सगे भाई के समान व्यवहार करते थे तथा एक दूसरे की सेवा सुश्रूषा करने के लिये सदा तत्पर रहते थे ।

(६) गुरू किसी लोभ वश शिक्षा का प्रचार नहीं करते थे । वह सारा जीवन ईश्वर उपासना व विद्यादान में ही लगा देते थे । समाज में

उनका बड़ा मान था। उनका त्यागमय तपस्वी जीवन सब विद्यार्थियों के लिये अनुकरणीय होता था।

(७) प्राचीन भारत में स्त्रियों व शुद्रों को भी शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था, परन्तु आगे चल कर, ब्राह्मणों के युग में, उन्हें इस अधिकार से वंचित कर दिया गया।

मुसलिम काल में शिक्षा

मुसलमानों के काल में शिक्षा का स्वरूप मुख्यत: धार्मिक था। वैसे तो हिंदुओं के काल में भी धार्मिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता था परन्तु इसके साथ साथ उनके समय में दूसरी विद्याओं के अध्ययन का भी समुचित प्रबंध था। विचारों की स्वतन्त्रता हिंदुओं की शिक्षा प्रणाली का सबसे महान् गुण थी। परन्तु मुसलमानों के काल में विद्यार्थियों को जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी उसमें विचार स्वातन्त्र्य के लिये कहीं भी स्थान नहीं था। उनके काल में धर्म का अर्थ कुरान मजीद की शिक्षा थी। यह शिक्षा बिना सोचे समझे सभी विद्यार्थियों को ग्रहण करनी पड़ती थी। कुरान की आयतों को रट कर याद कर लेना ही इस शिक्षा प्रणाली का मुख्य रूप था।

मुसलमानी शिक्षा मस्जिदों में दी जाती थी। उच्च शिक्षा के लिये दिल्ली, मुल्तान, बदायूं, जौनपुर आदि स्थानों में मदरसे थे। इन मदरसों में धर्म, इतिहास, हदीस, राजनीति, व यूनानी हिकमत इत्यादि की पढ़ाई होती थी। मदरसों तथा मकतबों को सरकारी सहायता मिलती थी। हिंदुओं की शिक्षा पाठशालाओं, टोल तथा विद्यापीठों में होती थी। उन्हें किसी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं मिलती थी। कुछ दानी व्यक्तियों की सहायता से ही उनका पूरा व्यय चलता था।

मुसलमानों की स्कूलों की शिक्षा में कई दोष थे। उसमें धर्म का प्रमुख स्थान था। और संगीत तथा चित्र कला आदि विद्याओं की अवहेलना की जाती थी, क्योंकि उन्हें इस्लाम धर्म के विरुद्ध समझा जाता था। दूसरे

धर्मों का अध्ययन न होने से विद्यार्थियों में धार्मिक संकीर्णता व असहिष्णुता आ जाती थी। इस पद्धति में रटाई को समझ से अधिक महत्व दिया जाता था और भारतीय भाषाओं की पढ़ाई नहीं होती थी।

ब्रिटिश काल में शिक्षा

भारत में शिक्षा का सबसे अधिक ह्रास उस समय हुआ जब मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात हमारे देश से केन्द्रीय सत्ता का लोप हो गया और ईस्ट इण्डिया कंपनी ने भारत की राजनीति में भाग लेकर गृह युद्ध की ज्वाला को और भी अधिक भड़का दिया। उस समय कोई कुशल सरकारी व्यवस्था न होने के कारण, प्रायः ३०० वर्षों तक भारत में राज्य की ओर से जनता के शिक्षण में किसी प्रकार का भाग नहीं लिया गया, और समस्त देश में अशिक्षा और अज्ञान का अंधकार फैल गया। ईस्ट इण्डिया कंपनी का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के पश्चात भी, १९ वीं शताब्दि के आरंभ तक, भारत में शिक्षा के संबंध में विशेष उन्नति संभव न हो सकी। इसका मुख्य कारण यह था कि कंपनी के डाइरेक्टरों को भय था कि कहीं शिक्षा के प्रचार से भारतीयों में राजनैतिक चेतना का संचार न हो जाय और उन्हें अपने साम्राज्य से उसी प्रकार हाथ धोना पड़े जैसे अमरीका में हुआ था। अठारहवीं शताब्दि में इसलिये केवल इतना किया गया कि सन् १७९१ में कलकत्ते में एक फारसी मदरसा तथा काशी में एक संस्कृत पाठशाला खोल दी गई। इसके पश्चात सन् १८१३ में प्रथम बार ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारतीयों के प्रति अपने कर्तव्य को समझ कर शिक्षा की वृद्धि के लिये सरकारी खजाना से एक लाख रुपया देना स्वीकार किया। तीस करोड़ व्यक्तियों के देश में, शिक्षा कार्य के लिये, एक लाख रुपये की रकम वैसे तो अत्यंत हास्यास्पद थी, परन्तु इस रकम की स्वीकृति का महत्व इसलिये था कि इस वर्ष के पश्चात ब्रिटिश सरकार की शिक्षा नीति में एक विशेष परिवर्तन हुआ और उसने अपना यह कर्तव्य समझा कि भारतीयों के शिक्षण में सहयोग देना उसका भी एक धर्म है।

भाषा का प्रश्न—शिक्षा के प्रचार के लिये हमारे देश में .. .ड़ी कठिनाई यह थी कि समस्त भारत के लिये कोई ऐसी भाषा नहीं थी जिसके आधार पर सब देश वासियों को उच्च शिक्षा प्रदान की जा सके। प्राचीन भारत में संस्कृत भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम थी। मुसलमानों के काल में इसका स्थान फारसी ने ले लिया था और वही हमारी न्यायालयों की भाषा बन गई थी। परन्तु इन दोनों भाषाओं में सबसे बड़ा दोष यह था कि १९ वीं सदी में वह जनता की भाषा नहीं थी और उसके द्वारा शिक्षा प्रसार का कार्य नहीं किया जा सकता था। इसलिये विवाद यह उठ खड़ा हुआ कि भारत में उच्च शिक्षा संस्कृत और फारसी के माध्यम द्वारा दी जाय अथवा अंग्रेजी के द्वारा। इस समय के एक बहुत बड़े भारतीय नेता, राजा राम मोहन राय, अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में थे। उनका विचार था कि अंग्रेजी के ज्ञान के द्वारा भारतवासी दूसरे प्रगतिशील देशों के साहित्य का अध्ययन, एवं अंग्रेजी सरकार के नीचे उच्च सरकारी पद प्राप्त कर सकेंगे। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने एक दूसरे अंग्रेज मित्र श्री डैविड हारे के साथ मिल कर सन् १८१६ में कलकत्ते में एक कौंसिल की स्थापना की। इसके पश्चात बंबई, मद्रास, तथा बंगाल में दूसरे अंग्रेजी स्कूल खोले गये। इन स्कूल व कालेज के छात्रों को तुरन्त ही अच्छी अच्छी सरकारी नौकरियाँ मिल जाती थीं, इस कारण उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की कभी कमी नहीं रहती थी।

लार्ड मैकाले का लेख—सन् १९३५ में भारत सरकार के न्याय सदस्य लार्ड मैकाले ने सरकार के सम्मुख एक योजना रक्खी जिसमें उन्होंने कहा कि भारत के सब स्कूल व कालिजों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना देना चाहिये। ऐसा उन्होंने इसलिये कहा जिससे हमारे देश में सदा के लिये ब्रिटिश सत्ता की जड़ें मजबूत हो जाँय और जहाँ एक ओर सरकार को सस्ते क्लर्क और बाबू मिल जाँय, वहाँ दूसरी ओर भारत में एक ऐसे प्रभावशाली व्यक्तियों की श्रेणी उत्पन्न हो जाय जो केवल जन्म स्थान व अपने रंग के कारण तो भारतीय प्रतीत हों परन्तु और सभी बातों, जैसे बनाव

शृंगार, ड्रेस, पहनावा, बोली, सभ्यता, धर्म, आचार विचार, खाना पीना इत्यादि में वह अंग्रेजों के समान ही आचरण करें। मैकाले का विचार था कि अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा अनेक भारतवासी ईसाई बन जायेंगे और वह अपने धर्म और संस्कृति से घृणा करने लगेंगे। ऐसे व्यक्तियों से उसे आशा थी कि वह भारत में ब्रिटिश सरकार के सबसे बड़े मित्र व सहयोगी बन सकेंगे।

लार्ड मैकौले की यह नीति ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकार कर ली गई और सन् १८४४ में उसनें यह घोषणा कर दी कि सरकार के आधीन केवल उन्हीं लोगों को नौकरी मिल सकेगी जो अंग्रेजी जानते होंगे। उसी वर्ष न्यायालयों की भाषा भी अंग्रेजी कर दी गई। इन दोनों बातों ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिये विस्तृत क्षेत्र खोल दिया और सहस्त्रों विद्यार्थियों ने अंग्रेजी में शिक्षा प्राप्त करना आरंभ कर दिया। सन् १८५५ तक भारत में अंग्रेजी स्कूलों की तादाद १५१ हो गई।

अंग्रेजी शिक्षा की उचित व्यवस्था के लिये भारत सरकार नें समय समय पर जो कमेटियाँ इत्यादि नियुक्त कीं तथा जिस प्रकार उनकी सिफारिशों के आधार पर कार्य किया उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:—

१. १८५४ में वुड का शिक्षा संबंधी पत्र—सन् १८५३ में शिक्षा की उचित व्यवस्था के लिये भारत सरकार ने श्री वुड से एक योजना बनाने को कहा। यह योजना सन् १८५४ में सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की गई। इस योजना की, जिसके आधार पर आगे चल कर हमारे देश की शिक्षा संस्थाओं का संगठन किया गया, मुख्य मुख्य बातें इस प्रकार थीं:—

(१) भारत के प्रत्येक प्रांत में एक डाइरेक्टर के अधीन शिक्षा विभाग खोला जाय।

(२) देश में जगह जगह विश्व विद्यालय स्थापित किये जाँय।

(३) अध्यापकों की ट्रेनिंग के लिये शिक्षण संस्थायें खोली जाँय।

(४) प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के प्रचार पर जोर दिया जाय।

(५) स्कूलों व कालिजों की संख्या बढ़ाई जाय।

(६) प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को प्रोत्साहन देने के लिये उन्हें सरकार की ओर से आर्थिक सहायता दी जाय।

(७) आरंभ में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

(८) स्त्रियों की शिक्षा के लिये विशेष प्रबंध किया जाय।

श्री वुड की योजना के आधीन सन् १८५७ में भारत में तीन विश्व विद्यालय कलकत्ता, बंबई तथा मद्रास में स्थापित कर दिये गये।

(२) हंटर कमीशन की नियुक्ति—सन् १८८२ में भारत सरकार ने एक दूसरी कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन के प्रधान श्री हण्टर थे और इसमें कई प्रमुख भारतीय व अंग्रेज विद्वान सम्मिलित थे। कमीशन ने सिफारिश की कि सरकार को माध्यमिक शिक्षा की अपेक्षा प्रारंभिक शिक्षा पर अधिक जोर देना चाहिये। प्राइवेट संस्थाओं को अधिक आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिये भी उन्होंने सुझाव रक्खा।

(३) १९०४ यूनिवर्सिटी कमीशन—सन् १९०४ में लार्ड कर्जन के काल में, एक यूनिवर्सिटी ऐक्ट पास किया गया जिसके द्वारा भारत सरका ने विश्वविद्यालयों के ऊपर अपना नियन्त्रण बढ़ा लिया। साथ ही उसने विश्वविद्यालयों को इस बात की स्वतन्त्रता दे दी कि वह माध्यमिक शिक्षा के स्तर को अपनी आवश्यकतानुसार बनाए रखने लिये विशेष नियम बना सकें।

(४) १९१९ के सुधार—सन् १९११ में गवर्नर जनरल की कार्य-कारिणी में एक शिक्षा सदस्य की नियुक्ति कर दी गई जिसका अर्थ विभिन्न प्रांतों की शिक्षा संबंधी नीतियों का समन्वय करना था। सन् १९१९ के सुधारों के अधीन शिक्षा का विषय प्रांतों में लोकप्रिय मन्त्रियों के हाथ में सौंप दिया गया। इसके पश्चात विभिन्न प्रांतों में शिक्षा की समुचित प्रगति हुई। जगह जगह पर विश्व विद्यालय खोले गये, स्कूल और कालिजों की संख्या बढ़ गई, व्यवसायिक शिक्षा का प्रबंध किया गया, तथा माध्यमिक शिक्षा के नियन्त्रण का कार्य हाई स्कूल और इन्टरमीजियेट बोर्डों को दे दिया

गया। परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी अगस्त सन् १९४७ तक जिस समय भारत स्वतन्त्र हुआ हमारे देश में साक्षर जनता की संख्या केवल २२ प्रतिशत थी।

ब्रिटिश राज्य से उत्पन्न शिक्षा की कुछ समस्याएँ

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध सबसे भीषण आरोप यह लगाया जाता है कि २०० वर्ष से भी अधिक लंबे समय में अंग्रेज हमारी केवल १४ प्रतिशत जनता को साक्षर बनाने में सफल हो सके। टर्की, रूस और जापान में वहाँ की सरकारों नें दस वर्ष से भी कम समय में अपनी समस्त जनता को शिक्षित बना दिया। आधुनिक युग में शिक्षा प्रदान करने के इतन सुगम तथा प्रबल साधन हैं कि यदि उन सब की शरण ली जाय तो समस्त देश की जनता को कुछ ही वर्षों में साधारण शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इतना सब कुछ होने पर भी हमारे विदेशी शासकों ने हमें शिक्षित बनाने का कोई शक्तिशाली प्रयत्न नहीं किया और जिस प्रकार की शिक्षा उन्होंने हमें दी वह भारत की विशेष परिस्थिति व आवश्यकता के विचार से बिलकुल अनुपयुक्त थी। इसलिये अगस्त सन् १९४७ में जिस समय अंग्रेज हमारे देश से बिदा हुए तो हमारे देश में शिक्षा की स्थिति इस प्रकार थी:——

(१) निरक्षरता——हमारे देश में सन १९४१ की जन गणना के अनुसार साक्षर जनता की संख्या केवल १४ प्रतिशत थी। इस संख्या में पुरुषों की संख्या २५ प्रति शत तथा स्त्रियों की संख्या केवल ३ प्रतिशत थी। भिन्न भिन्न प्रांतों में पढ़ी लिखी जनता की संख्या अलग अलग थी। सबसे अधिक साक्षर ट्रावनकोर रियासत में थे और सब से कम शिक्षा राजपूताना की रियासतों में था।

(२) शिक्षा संस्थायें——हमारे देश में शिक्षा संस्थाओं की भारी कमी थी। ३५ करोड़ जनता के शिक्षण के लिये हमारे देश में विश्व विद्यालयों की संख्या १८, डिग्री कालेजों की संख्या २३०, इंटर कालेजों की संख्या १८८,

हाई स्कूलों की संख्या ३,६३७, मिडिल स्कूलों की संख्या ४,७८९ तथा प्राइमरी स्कूलों की संख्या केवल १,३४,००० थी। इन सब शिक्षा संस्थाओं पर कुल मिला कर केवल ४५ करोड़ रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता था। इंगलैण्ड में इसके विपरीत जहाँ की जन संख्या केवल ८ करोड़ है शिक्षा संस्थाओं पर ४८० रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता है। जन संख्या के विचार से यदि हमारे देश में एक विद्यार्थी पर २ रुपया ४ आना व्यय किया जाता है तो इंगलैंड में ८० रुपया और अमरीका में १२० रुपया व्यय किया जाता है।

(३) व्यवसायिक शिक्षा—हमारे देश में विद्यार्थियों को जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी उसे प्राप्त कर वह केवल सरकारी दफ़तरों में क्लर्की का काम कर सकते थे। उनमें इस बात की योग्यता उत्पन्न नहीं होती थी कि वह कारखानों में नौकरी कर सकें या किसी प्रकार का स्वतन्त्र व्यवसाय कर सकें। कला कौशल व व्यवसायिक शिक्षा संबंधी संस्थाओं की हमारे देश में भारी कमी थी। सन् १९४६-४७ में ऐसी संस्थाओं की संख्या इस प्रकार थी :—

	संस्थासंख्या	विद्यार्थी संख्या
१. कृषि कौलिज	१२	३,३८७
२. व्यापारिक कौलिज	१४	७,७८३
३. इंजीनियरिंग कॉलिज	१४	३,९७२
४. मैडिकल कालिज	२६	८,३५६
५. आर्ट स्कूल	१४	१,६९८
६. टैकनीकल स्कूल	४९०	२७,९४०
७. व्यापारिक स्कूल	२९६	१४,७८४
८. मैडीकल स्कूल	२४	४,३९५

(४) स्त्री शिक्षा—स्त्रियों की शिक्षा की हमारे देश में और भी हीन अवस्था थी। कुल मिला कर स्त्रियों के लिये हमारे देश में केवल ३१ आर्टस् कौलिज ,९ व्यावसायिक कौलिज, ४१० हाई स्कूल, १०३० मिडिल स्कूल

तथा ३२,००० प्राइमरी स्कूल थे। यह देखते हुए कि हमारे देश में सह शिक्षा का अधिक रिवाज नहीं है इन संस्थाओं की संख्या बहुत ही कम थी। किसी भी देश में प्रजातन्त्र शासन उस समय तक सफल नहीं हो सकता जब तक पुरुषों के साथ साथ उस देश की स्त्रियों को भी शिक्षित न बनाया जाय। यह शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे स्त्रियाँ कुशल गृहिणी बनने के साथ साथ समाज के नागरिक जीवन में भी उपयोगी भाग ले सकें। परन्तु दुर्भाग्य-वश जिस प्रकार की शिक्षा हमारे स्कूल और कालिजों में स्त्रियों की दी जाती थी उससे दोनों में से कोई भी आदर्श पूर्ण नहीं होता था।

(५) शिक्षा प्रणाली—हमारे अंग्रेज शासकों ने जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली हमारे देश पर लादनी चाही वह हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल न थीं। हमारी शिक्षा संस्थाओं में हमें अपने देश की संस्कृति, सभ्यता, धर्म, आचार, विचार, इतिहास व साहित्य की बातें नहीं पढ़ाई जाती थीं। हम शेक्सपियर और मिल्टन, बायरन कौर कीटस का साहित्य पढ़ते थे परन्तु स्वयं अपने प्राचीन कवियों व साहित्यकों के संबंध में हमें कुछ भी ज्ञान प्रदान नहीं किया जाता था। हम दूसरे देशों का इतिहास पढ़ते थे परन्तु स्वयं अपने देश के इतिहास से अनभिज्ञ रहते थे। हम 'श्रम का आदर' करना नहीं सीखते थे और पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त कर अपने पारिवारिक व्यवसाय व हाथ के काम से घृणा करने लगते थे।

(६) शिक्षा का माध्यम—अंग्रेजों के काल में हमें माध्यमिक व उच्च शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम के द्वारा दी जाती थी। इससे न केवल हम अपनी भाषा व अपने साहित्य से ही अपरिचित रहते थे वरन् अपने विद्यार्थी जीवन का अमूल्य समय, ज्ञानोपार्जन के स्थान पर, अंग्रेजी व्याकरण के नियमों को रटने में ही लगा देते थे। यह सच है कि अंग्रेजी के ज्ञान के कारण हमें दूसरे देशों के साहित्य को पढ़ने का अवसर मिलता था परन्तु इसके लिये यदि अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य विषय न बना कर उसे केवल एक ऐच्छिक विषय ही बनाया जाता तो अधिक उपयुक्त होता। आज भी अंग्रेजी हमारी विश्व

विद्यालयों में अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है परन्तु आशा है बहुत शीघ्र हमारी अपनी राष्ट्रभाषा उसका स्थान ग्रहण कर लेगी ।

(७) योजना की कमी—अंग्रेजों के काल में हमारी शिक्षा प्रणाली का एक और बड़ा दोष यह था कि शिक्षा का प्रसार किसी विशिष्ट योजना के आधीन नहीं किया गया । जिस समय ईस्ट इण्डिया कंपनी को अपने आरंभ काल में बहुत से सस्ते भारतीय क्लर्कों की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उसने बहुत से स्कूल और कौलिज खोल दिये । बाद में इन स्कूलों और कौलिजों में तैयार होने वाले क्लर्कों की संख्या शासन की माँग से कहीं अधिक बढ़ गई । फल यह हुआ कि हमारे देश में बेकारी निरंतर बढ़ती गई, परन्तु उसे कम करने के लिये शिक्षा योजना में किसी प्रकार का सुधार नहीं किया गया । भारत के विभिन्न प्रांतों में शिक्षा का प्रसार अलग अलग ढंग से हुआ और समस्त देश के लिये एक ही प्रकार की शिक्षा नीति का अवलंबन नहीं किया गया । इसी प्रकार प्रारंभिक , माध्यमिक व उच्च शिक्षा का स्तर , अलग अलग प्रांतों में अपने ही ढ़ंग का रहा और सब प्रांतों में उसे एक ही स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न नहीं किया गया ।

स्वतंत्र भारत में इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस समय अंग्रेज हमारे देश से गये तो उन्होंने एक इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था हमारे देश में छोड़ी जो हर प्रकार से दोष पूर्ण थी और जो भारत की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थीं । आज हमारे देश को स्वतन्त्र हुए कुछ ही वर्ष हुए हैं । इतने थोड़े समय में भी भारत सरकार ने अपनी शिक्षा प्रणाली को सुधारने का समुचित प्रयत्न किया है । परन्तु सैकड़ों वर्षों के दोष किसी जादू के प्रयोग से दूर नहीं किये जा सकते । उन्हें दूर करने के लिये वर्षो के सतत एवं निरंतर परिश्रम की आवश्यकता पड़ेगी । अभी तक भारत सरकार एवं हमारे देश की प्रांतीय सरकारों ने इस दिशा में जो रचनात्मक कार्य किया है उसका विवरण इस प्रकार है:—

(१) साक्षरता आँदोलन---भारत से निरक्षरता दूर करने के लिये प्रायः प्रत्येक प्रांत की सरकार ने साक्षरता आँदोलन आरंभ किया है जिसके अन्तर्गत प्रौढ़ व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान की जाती है। इस आँदोलन में रेडियो, सिनैमा, मैजिक लैंटर्न, थ्येटर, स्टेज, संगीत, पोस्टर, चार्ट प्रदर्शनी व हर प्रकार के उपायों को काम में लाया जा रहा है। देश के प्रायः प्रत्येक भाग म ही प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र स्थापित कर दिये गये हैं और प्रत्येक प्रांतीय सरकार ने इस प्रकार की योजनाएं बनाई हैं जिसके अन्तर्गत लगभग १० वर्ष में हमारे देश की अधिकतर जनता शिक्षित हो सकेगी।

(२) प्रारंभिक शिक्षा---हमारे देश की प्रारंभिक शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह था कि जिस प्रकार के स्कूलों में ४ वर्ष तक यह शिक्षा प्रदान की जाती थी उन स्कूलों में विद्यार्थियों के आकर्षण व उनके व्यक्तित्व के विकास के लिये उपयुक्त वातावरण विद्यमान नहीं था। हमारी पाठशालाएं हर्ष और उल्लास का केन्द्र नहीं थीं। उनमें विद्यार्थियों की ज्ञानेन्द्रियों के शिक्षण के लिये उपयुक्त साधन नहीं थे। उनके अध्यापक शिक्षा के आधुनिक तरीकों से अपरिचित थे ; उन्हें इतना वेतन नहीं दिया जाता था कि वे अपने काम में पूर्ण रुचि ले सकें और बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिये नये नये उपाय काम में [illegible] अथवा नये नये प्रयोगों का उपयोग करें। शिक्षा को जीवन की आवश्यकताओं से संबंधित कराने का भी कोई प्रयत्न नहीं किया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों के बालक स्कूलों में पढ़ने के पश्चात खेती व घरेलू उद्योग धन्धों से घृणा करने लगते थे। अनिवार्य शिक्षा न होने के कारण केवल २० प्रति शत बालक ही चौथी कक्षा तक पहुंच पाते थे। शेष बच्चे बीच में ही शिक्षा छोड़ देते थे। इसका परिणाम यह होता था कि वर्षों का प्रयत्न निष्फल हो जाता था और अध पढ़े लिखे बालक शीघ्र ही पढ़ा लिखा भूल कर अशिक्षितों की श्रेणी में मिल जाते थे। इन सब दोषों के अतिरिक्त प्रारंभिक शिक्षा में सबसे बड़ा दोष यह था कि उनका प्रबंध नगर पालिकाओं और जिला मंडलियों के हाथ

में छोड़ दिया जाता था। इन संस्थाओं के पास रुपयों की कमी होती थी और वह शिक्षा के प्रसार में अधिक धन व्यय नहीं कर सकती थीं।

सुधार—प्रारंभिक शिक्षा के इन सभी दोषों को दूर करने के लिये हमारी प्रांतीय सरकारों ने समुचित कार्य किया है। उन्होंने अनेक क्षेत्रों में अनिवार्य शिक्षा की घोषणा कर दी है जिससे विद्यार्थी कुछ वर्षों पश्चात विद्याध्ययन का कार्य न छोड़ दें। अनेक स्कूलों में बुनियादी शिक्षा (Basic Education) के आधार पर शिक्षा दी जाती है। इन स्कूलों में ६ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया है। अक्षर ज्ञान के अतिरिक्त इन स्कूलों में विद्यार्थियों को कृषि, पौधों की रक्षा, कताई, बुनाई, ग्रामीण अर्थ शास्त्र व विविध उद्योग धन्धों की शिक्षा दी जाती है। अध्यापकों के वेतन में समुचित बढ़ोतरी कर दी गई है तथा उन्हें नई तालीम की शिक्षा देने के लिये स्थान स्थान पर शिक्षण केन्द्र खोल दिये गये हैं। नगर पालिकाओं और जिला मंडलियों को भी प्रांतीय सरकारें शिक्षा प्रसार के काय के लिये विशेष आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं।

यह सच है कि अभी तक आर्थिक साधनों की कमी के कारण हमारे देश की प्रारंभिक शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन नहीं हुआ है परन्तु इस ओर धीरे धीरे अत्यंत ठोस कार्य किया जा रहा है और आशा है कि कुछ ही वर्षों में हमारे देश के सभी प्रारंभिक स्कूल बुनियादी शिक्षा के आधार पर बालकों को ६ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक अनिवार्य शिक्षा प्रदान कर सकेंगे।

(३) माध्यमिक शिक्षा—प्रारंभिक शिक्षा के अतिरिक्त हमारी प्रांतीय सरकारों ने माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में भी सुधार करने का प्रयत्न किया है। माध्यमिक शिक्षा वर्नाकुलर मिडिल स्कूल, इंगलिश मिडिल स्कूल, हाई स्कूल तथा इंटरमीजियेट कालेजों में दी जाती है। विभिन्न प्रांतों में माध्यमिक शिक्षा की श्रेणियों का विभाजन अलग अलग प्रकार से किया जाता है। कहीं चौथी कक्षा से दसवीं कक्षा तक, कहीं सातवीं से

१२ वीं तक और कहीं पाँचवीं से ११ वीं तक माध्यमिक शिक्षा का क्षेत्र माना गया है। देहली प्रांत में ५ वीं कक्षा से ११ वीं कक्षा तक माध्यमिक शिक्षा दी जाती है। उत्तर प्रदेश में यही शिक्षा बारहवीं कक्षा तक दी जाती है। कुछ प्रांतों में माध्यमिक शिक्षा का प्रबंध हाई स्कूल बोर्डों के हाथ में है, कुछ दूसरे प्रांतों में यही प्रबंध रजिस्ट्रार आफ डिपार्टमैंटल एक्जामिनेशन्स के द्वारा किया जाता है। कहीं कहीं इंटरमीजियेट शिक्षा का प्रबंध यूनिवर्सिटियों के हाथ में भी है। हमारे अपने प्रांत में माध्यमिक शिक्षा का प्रबंध एक 'शिक्षा बोर्ड' द्वारा किया जाता है। वर्नाकुलर फाईनल की परीक्षा के लिये हमारे प्रांत में एक दूसरी संस्था है। यह संस्थायें अपने अधीन सभी स्कूलों का निरीक्षण करती हैं, विभिन्न कक्षाओं के लिये पाठ्य क्रम का निश्चय करती हैं। परीक्षाओं का आयोजन करती हैं तथा विभिन्न श्रेणियों के लिये पुस्तकों का चुनाव करती हैं।

दोष––हमारी इस शिक्षा प्रणाली में सबसे बड़ा दोष यह है कि भिन्न भिन्न प्रांतों में माध्यमिक शिक्षा का संगठन अलग अलग ढंग से किया जाता है। इसीलिये विद्यार्थियों को एक प्रांत से दूसरे प्रांत में शिक्षा प्राप्त करने में भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस दोष को दूर करने के लिये भारत सरकार ने निश्चय किया है कि वह सारे देश की माध्यमिक शिक्षा प्रणाली की जाँच करने के लिये एक कमेटी नियुक्त करेगी। अभी तक इस कमैटी के सदस्यों के नामों की घोषणा नहीं की गई है, परतु आशा है कि अब शीघ्र ही यह कमेटी नियुक्त कर दी जायगी। हमारी वर्तमान माध्यमिक शिक्षा प्रणाली के दूसरे दोष यह हैं:––

(१) माध्यमिक शिक्षा का संबंध विद्यार्थियों के बाहरी जीवन से नहीं है। जिस प्रकार की शिक्षा हमारे स्कूलों में दी जाती है उसे प्राप्त कर विद्यार्थी अपने व्यावहारिक जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

(२) शिक्षा प्रदान करते समय विद्यार्थियों की रुचि व उनके मानसिक कोण दृष्टिका विचार नहीं रक्खा जाता। सभी विद्यार्थियों को प्राय: एक

ही प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है। हमारे स्कूलों में मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञों को नौकर नहीं रक्खा जाता जो विद्यार्थियों की योग्यता व उनकी विशेष विषयों में रुचि का पता लगा सकें।

(३) वर्तमान शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास में सहायता प्रदान नहीं करती, न ही उसके द्वारा उनमें साधारण ज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। विद्यार्थियों को ऐसे विषयों की शिक्षा कम दी जाती है जिसे प्राप्त कर वह अपने देश के सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठा सकें अथवा उनमें इस बात की योग्यता उत्पन्न हो जाय कि वह अपने देश व संसार की समस्याओं पर स्वतन्त्र रूप से विचार कर सकें।

(४) हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति में परीक्षाओं को विशेष महत्व दिया जाता है। विद्यार्थी किसी प्रकार पुस्तकों को रट कर परीक्षाओं को पास कर लेने में ही शिक्षा की इतीश्री समझ लेते हैं। वह वास्तविक ज्ञान व सत्य की खोज मे नहीं निकलते। उनका ज्ञान अत्यंत सीमित होता है। उनमें तार्किक शक्ति का विकास नहीं होता।

(५) इस शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। पाठ्य पुस्तकें अधिकतर अंग्रेजी में होती हैं। इससे विद्यार्थियों को बहुत सा अमूल्य समय विषय को समझने की अपेक्षा अंग्रेजी समझने में लग जाता है।

(६) स्कूल के अध्यापकों को बहुत कम वेतन दिया जाता है जिससे वह पूरी रुचि के साथ अपने काम में भाग नहीं लेते। स्कूलों में केवल ऐसे ही लोग अध्यापन का कार्य करते हैं जो दूसरे हर स्थान में नौकरी प्राप्त करने के प्रयत्न में निराश होकर अंतिम दशा में अध्यापक बनना स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे लोग सदा इसी प्रयत्न में लगे रहते हैं कि किसी प्रकार उन्हें सरकारी नौकरी मिल जाय। वह अध्यापन के कार्य को अपने जीवन का आदर्श नहीं बनाते। इससे न केवल शिक्षा संस्थाओं के कार्य में ही रुकावट पड़ती है वरन् अध्यापकों के बदलते रहने से विद्यार्थियों की शिक्षा

पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थियों के हृदय में अपने गुरू के प्रति श्रद्धा का निर्माण नहीं होता और वह समझने लगते हैं कि उनके गुरू विद्या की अपेक्षा रुपये से अधिक प्रेम करते हैं।

(७) माध्यमिक शिक्षा में व्यवसायिक शिक्षा पर जोर नहीं दिया जाता। हमारी शिक्षा संस्थाओं में इस बात का प्रबंध नहीं है कि जो विद्यार्थी पाठ्य विषयों में रुचि न लें उन्हें विभिन्न उद्योग धन्धों व ललित कलाओं की शिक्षा दी जा सके। हमारे देश के कितने ही होनहार नवयुवक ज्योमेट्री, गणित, अंग्रेजी, भूगोल, विज्ञान व इसी प्रकार के विषयों में प्रवीण न होने के कारण प्रति वर्ष परीक्षाओं में फैल हो जाते हैं। ऐसे विद्यार्थियों की योग्यता का उन्हें किसी प्रकार के उद्योग धन्धों व कला कौशल के काम में लगा कर उपयोग नहीं किया जाता।

सुधार——स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हमारे देश की प्रांतीय सरकारों ने माध्यमिक शिक्षा के इन दोषों को दूर करने का सक्रिय प्रयत्न किया है। देहली प्रांत में जो केन्द्रीय सरकार के आधीन है माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया गया है। इस प्रांत में आठवीं कक्षा के पश्चात विद्यार्थी के माता पिता का इस बात का निश्चय करना पड़ता है कि वह अपने बालक को क्या बनाना चाहता है, इंजीनियर, डाक्टर, कारीगर, व्यापारी, वैज्ञानिक अथवा साधारण ग्रैज्युएट। आठवीं कक्षा के पश्चात, ३ वर्ष तक, विद्यार्थी को, ऐसे विषयों की शिक्षा दी जाती है जिसका ज्ञान प्राप्त कर वह एक विशेष दशा में अपने जीवन का मार्ग निश्चित कर सकता है। परन्तु इस प्रांत में भी अभी तक विद्यार्थियों के औद्योगिक शिक्षण के लिये समुचित प्रबंध नहीं किया गया है। देहली में केवल एक ही 'पौलीटैक्-निक" संस्था है। हमारे देश में इस प्रकार की सहस्रों संस्थाओं की आवश्यकता है जिससे विद्यार्थी पढ़ाई के समय विभिन्न उद्योग धन्धों का अध्ययन करें और फिर अपने मन में इस बात का निश्चय कर सकें कि उन्हें किस प्रकार का कार्य अधिक रुचिकर प्रतीत होता है ? बहुत से उद्योग

धन्धों व कला कौशल के कामों को स्वयं देखे बिना हम विद्यार्थियों से किस प्रकार आशा कर सकते हैं कि वह अपने माता पिता को यह बता सकेंगे कि उनकी रुचि अमुक काम में है। सरकार को चाहिये कि वह प्रत्येक शिक्षा संस्था में इस प्रकार के प्रवीण मनोवैज्ञानिक रक्खे जो पाँचवी से आठवीं कक्षा के बीच प्रत्येक विद्यार्थी के कार्य की जाँच पड़ताल करें और फिर उसके आधार पर बच्चों के माता पिताओं को इस बात का परामर्श दें कि उनका बालक किस उद्योग व विषय में प्रवीणता प्राप्त कर सकता है।

उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा भी माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था में समुचित परिवर्तन किया गया है। वहाँ पर हायर सेकेण्डरी स्कूलों की योजना स्वीकार कर ली गई है। सरकार ने निश्चय किया है कि वह इन्टर-मीजियेट कौलिजों को तोड़ कर उन्हें हायर सेकेण्डरी स्कूलों में बदल देगी। परन्तु दिल्ली प्रांत की भांति वहाँ पर हायर सेकेण्डरी स्कूलों का पाठ्य क्रम ३ वर्ष का नहीं रक्खा गया है। उसके स्थान पर यह पाठ्य क्रम ४ वर्ष का ही निश्चित किया गया है। हायर सेकंडरी स्कूलों के नीचे जूनियर हाई स्कूलों की व्यवस्था की गई है जिनमें दसवीं कक्षा तक पढ़ाई होगी। शिक्षा का माध्यम हिंदी कर दिया गया है और अंग्रेजी को केवल एक ऐच्छिक विषय बना दिया गया है। गणित को भी अंग्रेजी के समान ऐच्छिक विषय का स्थान दिया गया है। अध्यापकों के वेतनों में भी बढ़ोतरी करने का प्रयत्न किया गया है और जगह जगह उनके शिक्षण के लिये ट्रेनिंग कौलिज खोल दिये गये हैं।

भारत के दूसरे प्रांतों में भी रसी प्रकार के सुधार किये गये हैं, परन्तु उन सुधारों से केवल उस समय विशेष लाभ हो सकता है जब भारतीय संघ के अन्तर्गत सभी राज्यों में एक ही योजना के अधीन कार्य किया जाय। इसी बात को दृष्टि मे रख कर जैसा पहिले भी बताया जा चुका है, भारत सरकार ने निश्चय किया है कि वह [illegible]निक शिक्षा की जाँच के लिये शीघ्र ही एक विशेषज्ञों की कमेटी नियुक्त करेगी।

उच्च शिक्षा

विश्वविद्यालय

हमारे देश की विश्व विद्यालयों में जिनकी संख्या २४ है, कला, विज्ञान, कामर्स, इंजीनियरिंग, कानून व डाक्टरी की शिक्षा प्रदान की जाती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहिले हमारे देश में विश्व विद्यालयों की संख्या केवल १८ थी। इस समय हमारे देश में जो विश्व विद्यालय हैं उनके नाम इस प्रकार हैं :—

आगरा (१९२७), अलीगढ़ (१९२०), अलाहाबाद (१८८७), आँध्र (१९२६), अन्नामलाई (१९२९), बड़ौदा (१९४९) बंबई, (१८५७), कलकत्ता (१८५१), दिल्ली (१९२२), पंजाब (१८८२) गोहाटी (१९४९), काश्मीर (१९४९), लखनऊ (१९२०), मद्रास (१८५७), मैसूर (१९१६), नागपुर (१९२३), उस्मानिया (१९१८), पटना (१९१७), पूना (१९४९) राजपूताना (१९४७), रुड़की (१९४९), सागर (१९४६), ट्रावनकोर (१९३८), उत्कल (१९४८)।

इन विश्व विद्यालयों में गोहाटी, काश्मीर, पूना, राजपूताना, रुड़की, सागर व उत्कल की यूनिवर्सिटियाँ अभी हाल ही में बनाई गई हैं। रुड़की यूनिवर्सिटी इंजीनियरिंग की शिक्षा प्रदान करने के लिये भारत की प्रथम यूनिवर्सिटी है। गोरखपूर में एक और यूनिवर्सिटी बनाई जा रही है जिसका उद्देश्य विद्यार्थियों को प्राचीन आदर्श पर, ग्रामीण वातावरण में, शिक्षा प्रदान करना होगा। बनारस में एक और संस्कृत यूनीवर्संटी बनाने की भी योजना है।

भारत की विश्व विद्यालयों को हम श्रेणियों में बाँट सकते हैं—(१) शिक्षक (टीचिंग) विश्व विद्यालय और (२) सम्मेलक (ऐफलियेटिंग) विश्व विद्यालय। कुछ विश्व विद्यालय दोनों ही प्रकार के काम करती हैं—शिक्षा प्रदान करने का कार्य और अपने आधीन कौलिजों में परीक्षा लेने व उनकी देख भाल करने का कार्य। कलकत्ता, बंबई, मद्रास, नागपुर, आँध्र व जयपुर में इसी प्रकार के विश्व विद्या-

लय हैं। हमारे अपने प्रांत में इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस, अलीगढ़ व रुड़की में शिक्षक विश्व विद्यालय हैं जहाँ विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। आगरा का विश्व विद्यालय केवल सम्मेलक विश्व विद्यालय है जिसका मुख्य कार्य कालिजों को स्वीकृति प्रदान करना, उनका निरीक्षण करना एवं उनमें परीक्षाओं की व्यवस्था करना है। सम्मेलक विश्व विद्यालयों की अपेक्षा शिक्षक विश्व विद्यालयों में अध्यापन व अनुसंधान के कार्य का स्तर ऊंचा होता है और वहाँ पर अत्यंत योग्य व अनुभवी आचार्यों द्वारा शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है।

विश्व विद्यालयों का प्रबंध एक 'सीनेट' अथवा 'कोर्ट' द्वारा किया जाता है जिसके कुछ सदस्य निर्वाचित होते हैं और कुछ मनोनीत। प्रत्येक विश्व विद्यालय में एक वाइस चाँसलर होता है जिसका चुनाव 'सीनेट' अथवा 'कोर्ट' के सदस्यों द्वारा किया जाता है और जिसे विश्व विद्यालय का दिन प्रति दिन का कार्य चलाने के लिये हर प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं। विश्व विद्यालय स्वायत्त संस्थाओं के रूप में कार्य करती है और प्रांतीय व केन्द्रीय सरकार उनके काम में हस्तक्षेप नहीं करती। देहली, अलीगढ़ व बनारस की विश्व विद्यालयों का सीधा संबंध केन्द्रीय सरकार से है। दूसरी विश्व विद्यालय प्रांतीय कानूनों के अन्तर्गत कार्य करती हैं। विश्वविद्यालयों का व्यय सरकारी सहायता व फीस के आधार पर चलता है। सब प्रांतों में मिला कर यूनिवर्सिटी की शिक्षा पर ३ करोड़ ४० लाख रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता है। जिसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार अपने कोष में से ४६ लाख रुपया वार्षिक विश्वविद्यालयों की शिक्षा पर व्यय करती है।

सन् १९४७-४८ में हमारे देश की विश्व विद्यालयों में कुल विद्यार्थियों की संख्या १,२६,००० थी। इनमें से इन्टरमीजियेट कक्षाओं में ८२,००० विद्यार्थी, बी० ए० व बी० एस सी० कक्षाओं में ३८,००० विद्यार्थी और एम० ए० व एम० एस सी० कक्षाओं में ६००० विद्यार्थी

थे। इसी वर्ष मैट्रिक की परीक्षा में ४,१०,००० विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। इसका अर्थ यह हुआ कि मैट्रिक की परीक्षा पास करने के पश्चात लगभग ७५ प्रति शत विद्यार्थी अपनी पढ़ाई जारी नहीं रखते।

कुछ लोगों का विचार है कि हमारे देश में बहुत अधिक विद्यार्थी विश्व विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं और उनकी संख्या कम करने के लिये हमें विश्व विद्यालयों व कौलिजों की संख्या कम कर देनी चाहिये। इस संबंध में कुछ दूसरे देशों के आँकड़े नीचे दिये जाते हैं। इन्हें देखने से प्रतीत होगा कि हमारा देश यूनिवर्सिटी के क्षेत्र में कितना पिछड़ा हुआ है, और विश्व विद्यालयों अथवा कौलिजों की संख्या कम करने के स्थान पर हमारे देश में ऐसी और अनेक संस्थाओं की आवश्यकता है।

नाम देश	जन संख्या जिसके पीछे एक विद्यार्थी बिश्व विद्यालयमें शिक्षा प्राप्त करता है
भारत	२,८००
इंगलैण्ड	८८५
फ्राँस	५१७
दक्षिणी अफ्रीका	२३८
कैनाडा	२२७
अमरीका	१२४

(१) हमारे देश में सबसे अधिक कमी इंजीनियरिंग कौलिज, मैडिकल कौलिज, टैक्निकल संस्थाओं की है। सब मिला कर हमारे देश में केवल २,५०० विद्यार्थियों को प्रति वर्ष इंजीनियरिंग शिक्षा प्रदान की जाती है। अमरीका में इस प्रकार की संस्थाओं में २,४०,००० विद्यार्थी प्रतिवर्ष शिक्षा ग्रहण करते हैं।

(२) हमारी विश्व विद्यालयों में पुस्तकों का ज्ञान सैद्धांतिक होता है व्यवहारिक नहीं। रसायन शास्त्रमें एम० एस सी० की परीक्षा पास करने के पश्चात् भी विद्यार्थियों में इतना व्यवहारिक ज्ञान नहीं आता कि वह अपने घर के लिये साधारण साबुन अथवा बूट पालिश भी बना सकें। इसी प्रकार अर्थ शास्त्र, व्यापार शास्त्र, राजनीति, नागरिक शास्त्र इत्यादि विषयों का अध्ययन मनुष्य के व्यवहारिक जीवन में अधिक सहायक सिद्ध नहीं होता।

(३) विश्व विद्यालयों में अधिकतर विद्यार्थी इसलिये भरती होते हैं कि उनके पास कुछ और काम करने के लिये नहीं होता। उन्हें यूनिवर्सिटी के विषयों में रुचि नहीं होती, फिर भी वह बेकारी की समस्या को कुछ वर्षों के लिये स्थगित करने के लिये पढ़ने के कार्य में लग जाते हैं। वह कभी विज्ञान पढ़ते हैं तो कभी समाज शास्त्र, कभी एक विषय में एम० ए० की परीक्षा पास करते हैं तो कभी किसी दूसरे विषय में, कभी वकालत पढ़ते हैं तो कभी जनरलिज्म। और इसी प्रकार वह बेकारी के भूत से बच निकलने का सतत प्रयत्न करते रहते हैं।

(४) हमारी विश्व विद्यालयों की विभिन्न कक्षाओं में इतने विद्यार्थी होते हैं कि अध्यापक भाषण देने के अतिरिक्त उनसे किसी प्रकार का संबंध स्थापित नहीं कर सकते। बहुत बार अध्यापकों को यह भी पता नहीं होता कि अमुक विद्यार्थी उनके कौलिज में भी पढ़ता है अथवा नहीं। सच्ची शिक्षा प्रदान करने के लिये विद्यार्थियों तथा उनके अध्यापकों के बीच का संपर्क निताँत आवश्यक है। यही कारण है कि जहाँ प्राचीन भारत के आश्रमों में विद्यार्थियों के जीवन पर उनके गुरू के चरित्र की गहरी छाप पड़ती थी, वहाँ आजकल के कौलिज व यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थी एक सच्चे गुरू के अभाव में अपने व्यक्तित्व का विकास करने में सफल नहीं होते।

(५) विश्व विद्यालयों के अन्दर शिक्षा प्राप्त करने में इतना अधिक

धन व्यय होता है कि गरीब माता पिताओं के बच्चे कभी उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा तक नहीं कर सकते। इतना ही नहीं हमारे कौलिजों और यूनिवर्सिटी के छात्रों का जीवन इतना फैशन प्रिय और विलासी बन जाता है कि परीक्षा पास करने के पश्चात जब उन्हें नौकरी नहीं मिलती तो वह अपने पारिवारिक जीवन के साथ सामंजस्य पैदा नहीं कर सकते। इस दशा में न केवल उनका अपना ही जीवन निरर्थक हो जाता है वरन् वह अपने माता पिताओं के लिये भार स्वरूप हो जाते हैं।

(६) हमारी यूनिवर्सिटियों में अंग्रेजी की शिक्षा को बहुत अधिक प्रधानता दी जाती है। प्रायः सभी विषय अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही पढ़ाए जाते हैं। इससे विद्यार्थियों की समस्त शक्ति अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करने में लग जाती है और उन्हें इतना अवकाश नहीं मिलता कि वह अपने विषय का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकें।

परीक्षाओं को यूनीवर्सिटी शिक्षा में अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। विद्यार्थी अपनी कक्षा में दिन प्रति दिन क्या कार्य करता है, वह अपने विषय में कितनी रुचि लेता है, उसके अध्यापक उसके कार्य के विषय में क्या राय रखते हैं, इन बातों की ओर परीक्षा के समय कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। परिणाम यह होता है कि परीक्षा से कुछ ही महीने पहिले विद्यार्थी कुछ आवश्यक प्रश्नों के उत्तर रट लेते हैं और फिर उन्हें परीक्षा के समय दोहरा कर पास हो जाते हैं। ऐसे विद्यार्थियों में अपने विषय की वास्तविक योग्यता नहीं होती और वह जीवन में सच्ची सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

(८) सब विश्व विद्यालयों में एक ही प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है। उनमें इस बात का प्रयत्न नहीं किया जाता कि अलग अलग विषयों में विशेषता प्राप्त की जाय। उदाहरणार्थ यदि एक यूनिवर्सिटी में अर्थ शास्त्र के विशेषज्ञ तैयार हों तो दूसरी यूनिविर्सिटी में राजनीति

के और तीसरे में दर्शन शास्त्रों के, इत्यादि। प्राचीन भारत में विश्व विद्यालयों में जैसा हम पहिले देख चुके हैं, इसी प्रकार की व्यवस्था थी।

यूनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट

हमारी उच्च शिक्षा प्रणाली के इन्हीं दोषों का विचार रखते हुए भारत सरकार ने सन् १९४९ में सर राधा कृष्णन के नेतृत्व में एक कमेटी बिठाई थी और उसे आदेश दिया था कि वह इन दोषों को दूर करने के लिये अपने रचनात्मक सुझाव सरकार के सम्मुख रक्खे। इस यूनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट मार्च सन् १९५० में प्रकाशित कर दी गई। संक्षेप में हम कमीशन के सुझावों का विवरण इस प्रकार दे सकते हैं :—

(१) भारत में प्राचीन आदर्श पर ग्राम्य यूनिवर्सिटियाँ खोली जाँय, जहाँ विद्यार्थियों को कृषि व ग्राम सुधार संबंधी इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाय कि वह परीक्षा पास करने के पश्चात भारतीय गावों के जीवन में सक्रिय भाग ले सकें।

(२) यूनिवर्सिटी कक्षाओं में केवल ऐसे ही विद्यार्थियों को भरती किया जाय जो वहाँ के विषयों की पढ़ाई से वास्तविक लाभ उठा सकें। शेष विद्यार्थियों के लिये औद्योगिक व टैक्निकल शिक्षा का समुचित प्रबंध किया जाय।

(३) यूनिवर्सिटी व उसके आधीन कौलिजों में विद्यार्थियों की अधिक से अधिक संख्या क्रमशः ३,००० व १,५०० निश्चित की जाय, जिससे अध्यापक अपने शिष्यों के साथ वैयक्तिक संपर्क स्थापित कर सकें।

(४) विश्व विद्यालयों में छुट्टियों की संख्या कम की जाय जिससे अधिक पढ़ाई की जा सके।

(५) विद्यार्थियों के साथ अध्यापकों का वैयक्तिक संपर्क स्थापित करने के लिये प्रत्येक यूनिवर्सिटी व कौलिज में ट्यूटोरियल क्लास खोली

जाँय । इन क्लासों में अध्यापक विद्यार्थियों के लिखित काम की जाँच करें एवं उन्हें पुस्तकालय से अधिक से अधिक पुस्तकें पढ़ने के लिये प्रोत्साहन दें ।

(६) यूनिवर्सिटी कक्षाओं में किन्हीं विशेष पुस्तकों के द्वारा पढ़ाई नहीं की जाय । अध्यापकों को चाहिये कि वह विद्यार्थियों को उस विषय की सभी उपयोगी पुस्तकों को पढ़ने के लिये बाध्य करें ।

(७) यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों का प्रवेश स्कूल की १२ कक्षाओं कों पास करने के पश्चात किया जाय । प्रथम डिगरी कोर्स तीन वर्ष का रक्खा जाय । आनर्स की परीक्षा पास कर लेने के पश्चात एम० ए० की परीक्षा का समय एक वर्ष हो और बी० ए० की परीक्षा पास करने के पश्चात दो वर्ष ।

(८) राष्ट्र भाषा हिंदी का अध्ययन प्रत्येक छात्र के लिये अनिवार्य कर दिया जाय । अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन एक ऐच्छिक विषय बना दिया जाय । कमीशन ने अभी यह उचित नहीं समझा कि सभी विषयों का अध्ययन हिंदी के माध्यम के द्वारा ही किया जाय । इस संबंध में कमीशन को सबसे बड़ा डर यह था कि हिंदी में प्रमाणिक पुस्तकों का अभाव है और जब तक भिन्न भिन्न विषयों की बहुत सी पुस्तकें हिंदी में नहीं लिखी जातीं, उस समय तक राष्ट्र भाषा को सभी विषयों के पठन पाठन के लिये साध्यम नहीं बनाया जा सकता ।

(९) यूनिवर्सिटी के अध्यापकों का वेतन बढ़ाने के संबंध में भी कमीशन ने अपने सुझाव रक्खे हैं । उसने कहा है कि किसी कौलिज के अध्यापक को १५० रुपये मासिक से कम और यूनिवर्सिटी के अध्यापक को २०० रुपये मासिक से कम वेतन नहीं मिलना चाहिये ।

भारत सरकार ने यूनिवर्सिटी कमीशन की उपरोक्त सभी सिफारिशें मान ली है और आशा है कि अब शीघ्र ही हमारे देश में यूनिवर्सिटी शिक्षा के इतिहास में एक नया अध्याय आरंभ होगा ।

निष्कर्ष

भारत की प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा के विवरण से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि हमारे अंग्रेज शासकों ने जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली हमारे देश में छोड़ी वह भारत की विशेष परिस्थिति के प्रतिकूल थी। हमारे देश की प्रांतीय सरकारों व केन्द्रीय सरकार ने इस अवस्था में सुधार करने का समुचित प्रयत्न किया है परन्तु कोई भी सरकार इस प्रकार का कार्य कुछ ही दिनों में पूर्ण नहीं कर सकती। यह सच है कि शिक्षा अच्छे सामाजिक जीवन की कुंजी है। उसी के प्रसार पर किसी देश में प्रजातन्त्र शासन की सफलता निर्भर करती है। वह किसी राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करती है। उसी के द्वारा नागरिकों को अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान होता है। और इसलिये यह नितांत आवश्यक है कि हमारी शिक्षा प्रणाली से उन दोषों को शीघ्रातिशीघ्र दूर किया जाय जिनके कारण हम अपनी नवप्राप्त स्वतन्त्रता से पूर्ण लाभ उठाने में असमर्थ हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जो हमारे जीवन का सर्वांगीण विकास कर सके। हमें अपनी शिक्षा पद्धति में प्राचीन भारत व आधुनिक समाज की सभी अच्छी बातों का समन्वय करना चाहिये। हमें अपने नागरिकों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करनी चाहिये जिसके द्वारा हम अपनी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता से प्रेरणा प्राप्त कर सकें। साथ ही हमारी शिक्षा प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिये जो हममें किसी भी प्रकार के संकीर्ण विचार व संकुचित भावना का संचार न करे। विचारों की स्वतन्त्रता हमारी शिक्षा पद्धति का सदा से गुण रहा है और इस गुण का किसी दशा में भी हमें परित्याग नहीं करना चाहिये। हमारे नव संविधान के नियामक सिद्धांतों में स्पष्ट आदेश दिया गया है कि भारत सरकार संविधान लागू होने के १० वर्ष के अन्दर इस बात का प्रयत्न करेगी कि भारत का प्रत्येक नागरिक १४ वर्ष की आयु तक निःशुल्क और अनिवार्य रूप में एक इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर सके जिसका आधार विचारों की स्वतन्त्रता, मानव व्यक्तित्व की गरिमा, धर्म, विश्वास और उपासना

की स्वतन्त्रता, और राष्ट्र की एकता हो। हमें पूर्ण आशा है कि बहुत शीघ्र हमारी प्रांतीय व केन्द्रीय सरकारें इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में सफल होंगी और हमारे देश में एक इस प्रकार की आदर्श शिक्षा प्रणाली का प्रादुर्भाव होगा जिस पर हमारी आने वाली पीढ़ियाँ गर्व कर सकेंगी।

शिक्षा विभाग का संगठन

वैसे तो शिक्षा का विषय एक प्रांतीय विषय है और भारतीय संघ के अन्तर्गत राज्यों की सरकारों को इस बात का पूर्ण अधिकार है कि वह अपने अधिकार क्षेत्र में जिस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था रखना चाहें रक्खें परन्तु केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत भी सारे राज्यों के शिक्षा संबंधी कार्य का समन्वय करने तथा समस्त देश के लिये एक ही शिक्षा नीति का संचालन करने के लिये, एक शिक्षा विभाग होता है। यह विभाग एक ही शिक्षा मन्त्री के अधीन कार्य करता है। वैसे तो सन् १९११ के पश्चात से वायसराय की कार्यकारिणी में सदा एक शिक्षा सदस्य नियुक्त किया जाता था, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहिले उसे शिक्षा के अतिरिक्त तीन और विभागों की देख भाल करनी पड़ती थी। पिछले तीन वर्षों में शिक्षा का विषय पूर्ण रूप से एक कैबिनेट मन्त्री के आधीन सौंप दिया गया है। भारत सरकार इस विषय को कितना महत्व प्रदान करती है तथा किस प्रकार समस्त देश के लिये एक ही शिक्षा नीति का संचालन करना चाहती है, यह परिवर्तन उसी बात का द्योतक है।

शिक्षा मन्त्री की सहायता के लिये उनके आधीन एक पूरा सचिवालय कार्य करता है जिसका अध्यक्ष शिक्षा मन्त्री एवं शिक्षा सलाहकार कहलाता है। उसके आधीन संयुक्त शिक्षा सलाहकार, डिप्टी शिक्षा सलाहकार तथा कई सहायक शिक्षा सलाहकार कार्य करते हैं।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय को उनके नीति संबंधी कार्य में सहायता प्रदान करने के लिये कई समितियाँ होती हैं। इन समितियों में सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों ही प्रकार के सदस्य होते हैं।

दूसरे देशों में भारतीय विद्यार्थियों की सहायता करने के लिये शिक्षा सचिवालय अपने प्रतिनिधि नियुक्त करता है। विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों में अपने साँस्कृतिक दूतों की नियुक्ति करना भी केन्द्रीय शिक्षा सचिवालय का ही कार्य है।

केन्द्रीय सरकार अपनी ओर से कई शिक्षा संस्थाओं का स्वयं संचालन करती है। उदाहरणार्थ पबलिक स्कूल लवडेल, मद्रास, प्रिंस आफ वेल्स स्कूल देहरादून, केन्द्रीय शिक्षा इन्स्टीट्यूट, देहली इत्यादि। इसके अतिरिक्त अलीगढ़, बनारस, व देहली की विश्व विद्यालयों का सीधा संपर्क केन्द्रीय सरकार से है। वह उन्हें स्वयं आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

आजकल देश की कठिन आर्थिक स्थिति के कारण हमारी केन्द्रीय सरकार भारत में शिक्षा के प्रसार के लिये अधिक कार्य नहीं कर रही है परन्तु जैसे ही इस स्थिति में सुधार होगा वह अनेक योजनाओं पर एक साथ कार्य करेगी।

शिक्षा की प्रान्तीय व्यवस्था

केन्द्र की भांति भारतीय संघ के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य के मन्त्री मंडल में एक शिक्षा मन्त्री होता है। उसके आधीन एक शिक्षा सचिवालय कार्य करता है जिसका सर्वोच्च अधिकारी डाइरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन्स कहलाता है। उसकी सहायता के लिये कई डिप्टी तथा असिस्टेंट डाइरेक्टर होते हैं। शिक्षा को प्रबंध की दृष्टि से सारा राज्य कुछ डिविजनों, जिलों तथा तहसीलों में बाँट दिया जाता है। इन भागों के शिक्षा कर्मचारी क्रमशः इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स, डिस्ट्रिक्ट इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स तथा सब डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स कहलाते हैं। प्रांतीय सरकार अपनी ओर से कितने ही इन्टरमीजियेट कौलिज, हाई स्कूल तथा

व्यवसायिक स्कूलों का स्वयं प्रबंध करती है। इसके अतिरिक्त प्राइवेट संस्थाओं द्वारा भी अनेक हाई स्कूल, मिडिल स्कूल, प्रायमरी स्कूल तथा कौलिज इत्यादि खोले जाते हैं। इन सब संस्थाओं पर नियन्त्रण रखना भी प्रांतीय शिक्षा विभाग का कार्य है।

प्रायः प्रत्येक राज्य में ही प्रारंभिक शिक्षा का प्रबंध नगर पालिकाओं व जिला मंडलियों द्वारा किया जाता है। शिक्षा विभाग के अधिकारियों का काम इन संस्थाओं के कार्य की देख रेख करना होता है। माध्यमिक शिक्षा की देख भाल हाई स्कूल व इन्टरमीजियेट शिक्षा बोर्डों द्वारा की जाती है। उच्च शिक्षा का प्रबंध विश्व विद्यालय करते हैं।

दूसरे प्रगतिशील देशों की अपेक्षा हमारे अपने देश में शिक्षा विभाग एवं शिक्षा संस्थाओं की स्थिति अधिक अच्छी नहीं है। शिक्षा विभाग को सरकार के दूसरे सभी विभागों से कम आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। जब कभी कटौती का प्रश्न उठता है तो सब से पहिले उसका प्रभाव शिक्षा विभाग पर ही पड़ता है। हमारे देश की अधिकतर शिक्षा संस्थाओं की स्थिति भी इस प्रकार की है। उनकी आर्थिक दशा अत्यंत खराब होती है और वह इस प्रकार की व्यवस्था नहीं कर सकतीं जिसके अन्तर्गत विद्यार्थी एक सुन्दर वातावरण में, अत्यंत योग्य तथा अनुभवी अध्यापकों के द्वारा आदर्श शिक्षा ग्रहण कर सकें। भारतवर्ष के परिवर्तित वातावरण में हमें पूर्ण आशा है कि अब इन दोषों को शीघ्र ही दूर करने का प्रयत्न किया जायगा और हमारे देश में एक इस प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का जाल बिछा दिया जायगा जिनमें शिक्षा प्राप्त कर भारत के भावी नागरिक अपने चरित्र का निर्माण एवं अपने राष्ट्र की अधिकाधिक सेवा कर सकेंगे।

अध्याय १६

धर्म तथा धर्म सुधार आंदोलन

संसार के आरंभ से ही मनुष्य समाज, धर्म को विशेष महत्व देता रहा है। यदि धर्म के वास्तविक तत्व को समझा जाय तो यह मनुष्य को मानसिक वेदना, क्लेश और साँसारिक दुखों से छुड़ाकर उसे संतोष, प्रसन्नता और शाँति प्रदान करता है। गार्हस्थ जीवन का स्थायित्व और अस्तित्व धर्म के परिणाम स्वरूप ही होता है। धर्म के प्रभाव से ही मनुष्य परमात्मा की सर्वज्ञता में विश्वास रखते हैं और परस्पर वैर भाव और द्वेष को छोड़कर प्रेम पाश में बंध जाते हैं। धर्म में आस्था रखने वाले पुरुष मृत्यु लोक को तुच्छ मान कर परलोक और अक्षय जीवन की बातें सोचते हैं और पाप और पुण्य के सिद्धांतों को मान कर अच्छे कामों में प्रवृत्त होते हैं, जिससे उन्हें मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग तथा मुक्ति प्राप्त हो सके।

परन्तु शोक है कि मतवादियों ने धर्म को बिगाड़कर उसके मिथ्या अर्थ निकाले हैं। प्रेम और सहानुभूति के स्थान पर उसे वैर भाव और निष्ठुरता तथा स्वार्थ सिद्धि का साधन बना दिया है। अपने मनमाने सिद्धांतों, भ्रमात्मक रीतियों, धर्मांधता और साँप्रदायिकता जैसे दुर्गुणों का प्रयोग आज धर्म की दुहाई देकर ही किया जाता है। सब प्रकार के पाप और कुकर्म आज धर्म के नाम पर ही होते हैं। यहाँ तक कि रक्तपात, मनुष्यों की बलि, मदिरापान, जुआ, वेश्यावृत्ति, व्यभिचार और अस्पृश्यता आदि भी धर्म के नाम पर ही स्तुत्य ठहराये जाते हैं।

धर्म का वास्तविक स्वरूप

भारत में, जो कि मतमताँतरों का केन्द्र है, उपरोक्त बुराइयाँ सर्वत्र

फैली हुई हैं। हमारा देश जो कभी संसार का गुरू था आज अधःपतन की पराकाष्ठा को पहुंच गया है। यहाँ के लोग, बाल विवाह, देवदासीपन, स्त्रियों का परदा, जात पाँत तथा बाल्यकाल में भी विधवा होने पर पुनर्विवाह का विरोध केवल धर्म का आश्रय लेकर ही करते हैं। हम यह भूल गये हैं कि धर्म, अविद्या, भय और दुराग्रह का नाम नहीं। धर्म तो वह जीवन है जो कि स्त्री पुरुषों की आत्मा में उस शक्ति और उष्णता का संचार करता है जो उन्हें ऊंचे और उत्तम काम करने में सहायक होती है। वास्तव में धर्म रीतिरिवाज, आचार शास्त्र तथा लोक मत का नाम भी नहीं है। यह तो वह ज्योति है जो मनुष्य को उसके अपने अन्दर निहित परमात्मा का साक्षात्कार कराती है और उसे बताती है कि यदि वह अपने आत्मा के स्वरूप को पहचाने तो वह इस मृत्युलोक को भी स्वर्गलोक बना सकता है।

भारत में धर्म का प्रभाव

भारतीय जनता धर्म के तत्व को भूलकर आडम्बरवाद में फंस गई है। धर्म की बाहरी वेष भूषा का यहाँ इतना प्रभाव है कि करोड़ों लोगों की जीवन चर्या का आधार यही धार्मिक आडम्बर ही हैं। हम समझते हैं कि सन्ध्या, गंगास्नान, दरिद्रों को दान, और बड़े बूढ़ों की आज्ञापालन करके पांडित्य के सूत्र में बद्ध हो जाना ही धर्म के मुख्य अंग हैं। इसी कल्पित धर्म के प्रमाद में हम छूत अछूत, बाल विवाह, मूर्ति पूजा और चूल्हे चौके की पवित्रता को भी सम्मिलित कर लेते हैं। धर्म यह नहीं है। धर्म वह है जो कि प्रत्येक समय की परिस्थिति के अनुसार हमें ठीक मार्ग पर चलने का आदेश दे। वह काल और समय के साथ साथ परिवर्तित हो जाय। जाति पाँति की पद्धति उस समय तो ठीक थी जब कि जाति को, परम्परागत एक ही कार्य करने वालों की आवश्यकता थी। परन्तु आजकल, इस कला और यन्त्र के युग में, इस जर्जरित विधान से चिपटे रहना मूर्खता

मात्र ही तो है । इस प्रकार बाल विवाह, घूंघट, बुरका, छूत छात और संयुक्त गृह पद्धति भी समय के प्रतिकूल है ।

हम यह तो भूल ही जाते हैं कि धर्म एक वैयक्तिक विषय है । वह परमात्मा और सत्य को पाने का मार्ग है । हमारी सामाजिक , राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं से इसका कोई संबंध नहीं । लेकिन कितने दुःख की बात है कि भारत में उपरोक्त सब समस्याएं भी धार्मिक दृष्टिकोणों से ही देखी जाती हैं ।

हमारे देश में हिंदू और मुसलमान आपस में इसलिये नहीं मिल सके कि उनका धर्म अलग अलग है । वह एक दूसरे के पर्व, त्यौहारों, शादी और सहभोज अथवा सामाजिक और धार्मिक समागमों में सम्मिलित नहीं होते । मुसलमान का छुआ पानी हिंदू नहीं पीते । वह मुसलमानों की बस्ती में रहना पसन्द भी नहीं करते । अपने ही हिंदू भाइयों के साथ उनका व्यवहार संकोच रहित नहीं होता । हरिजन अर्थात् अछूत हिंदुओं से मेल जोल नहीं रखते । अपनी उपजाति से बाहर वह शादी ब्याह नहीं करते । शादी तो दूर रही, कई ऊंची जाति वाले अपनी जाति छोड़कर दूसरे के हाथ का खाना भी ग्रहण करना पसन्द नहीं करते । कुछ साल पहिले समुद्र यात्रा को भी वर्जित समझा जाता था ।

परन्तु अब धीरे धीरे काल और परिस्थिति के प्रभाव से यह सब ःः मात्मिक शंकाएं हटती जाती हैं । परन्तु ग्रामीण लोगों में अब भी जाग्रति नहीं हो पाई है ।

आर्थिक क्षेत्र में भी कौन सी जाति को क्या क्या काम धन्धा करना है इसका निर्णय भी धर्म धुरंधरों ने किया है । कोई अछूत (हरिजन) ब्राम्हण, क्षत्री और वैश्यों का व्यापार नहीं कर सकता । धर्माचार्यों ने उसके भाग्य में सदा के लिये पानी भरना और भार ढ़ोना ही लिख दिया है ।

राजनैतिक क्षेत्र में स्वराज्य प्राप्ति के लिये भी हिंदू और मुसलमान एक नहीं हो सके, क्योंकि वे धार्मिक भेद भाव के कारण एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखते रहे। देश में इसी संदेह के कारण और धार्मिक संदेहों को भड़काने से हिंदू मुसलिम बलवे होते रहे। इसी धर्मान्धता के कारण पाकिस्तान की रचना हुई और इससे पूर्व प्रथक निर्वाचन प्रणाली का प्रारंभ हुआ।

हिंदू विश्व-विद्यालय और मुसलिम कौलिज, हिंदू अनाथालय और मुसलिम यतीमखाना, हिंदू पानी और मुसलिम पानी की जड़ में भी यही भेद काम करता है।

भारत में धर्म से एक दूसरे को विभक्त करने का ही काम लिया गया है। यहाँ धर्म के नाम पर कत्ल होते हैं। आरती और नमाज के कारण महाउपद्रव होते हैं। यह भुला दिया गया है कि धर्म का आधार तो प्रेमऔर सहिष्णुता है। कोई भी धर्म एक दूसरे के सिर फोड़ने या पीठ में छुरा भोंकने की शिक्षा नहीं देता। धर्म का सच्चा अनुगामी तो वह है जो मनुष्य मात्र से प्रेम करता है।

धर्म के कारण भारत में आर्थिक तथा राजनैतिक अवनति

हमारी राजनैतिक दासता और पराजय के कारणों में हिंदू धर्म की वैराग्य और त्याग भाव की शिक्षा का भी बहुत कुछ हाथ था। हमारे आचार्य साँसारिक जीवन और उसके वैभव को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखते रहे। सदैव परलोक पर ही उनकी दृष्टि लगी रही। इस संसार के सुखों को त्याग कर जंगलों, वनों, अथवा तीर्थ स्थानों पर जा कर भगवान का चिंतन करना ही उनका अंतिम लक्ष्य रहा-आया। हमारे पूर्वजों ने हमें अलौकिक शक्तियों और दिव्य सिद्धियों में विश्वास करना सिखलाया। इस प्रकार हमारा दृष्टिकोण यथार्थवाद से बहुत परे हट गया। इसलिये जब मुसलमान इस देश में लूट मार करते आये तो उनका संगठित विरोध करने के स्थान पर हम देवी देवताओं से रक्षा की याचना करने लगे। इससे पहिले जब

भारतवासी स्वतन्त्र थे, तो उन्होंने समुद्र यात्रा की छूत के भय से विदेश विजय का प्रयत्न नहीं किया। जब अंग्रेज आये तो हमने अपनी धर्म पुस्तकों को छोड़कर, मुसलमानों के साथ मिल कर, उनका मुकाबिला नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों ने भी यहाँ लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक राज्य किया।

आर्थिक क्षेत्र में भी धर्म ने हमें सतोष का पाठ पढ़ाकर रुपये पैसे की ओर से मुंह मोड़े रखने का उपदेश दिया। उसने हमें सिखाया कि भगवान तो दरिद्रों के घर में वास करते हैं। चारों वर्णों के लिये स्थाई कर्म नियत करके उसने लोगों को स्वतन्त्रता पूर्वक व्यापार करने के मार्ग में बाधा डाली। लोग पराक्रम और साहस छोड़कर दब्बू और एक स्थान वासी बन गये। धर्म ने हमें भाग्य पर आश्रित करके कर्म करने से रोका। परिणाम यह हुआ कि हम दरिद्रता में प्रसन्न, और दुर्भाग्य में संतुष्ट रहने वाले बन गये।

भारतीय धार्मिक आंदोलन

आँदोलनों के कारण—मुसलमानों के भारत में आने से पूर्व ही हिंदू धर्म में इतनी कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई थीं कि लोग इस धर्म के अपनाने में लज्जा का अनुभव करने लगे थे। इसलिये जव अंग्रेजी राज्य के काल में ईसाई मत के सीधे साधे सिद्धांतों का प्रचार हुआ तो हिंदू नवयुवक उससे अति प्रभावित हुये। सहस्रों की संख्या में वह ईसाई धर्म में प्रविष्ट होने लगे। ऐसा प्रतीत होने लगा कि हिंदू धर्म की इतीश्री हो जायगी। ऐसे समय में भारत में ऐसे हिंदू सुधारक और विचारक पैदा हुये जिन्होंने हिंदू धर्म की पुरानी विचारमाला का संशोधन करके उसे तार्किक नींव पर ला खड़ा किया। यह धार्मिक क्रांति उन्नीसवीं शताब्दि में हुई। कुछ ऐसे महत्वपूर्ण धार्मिक आँदोलनों का वर्णन करते हैं जो हिंदू धर्म के सुधार के कारण हुये।

१९ वीं शताब्दी में सबसे पहली धर्म सुधारक संस्था ब्रम्ह समाज थी। इसके प्रवर्तक उस काल के अद्वितीय महा- पुरुष राजा राम मोहन राय थे। इनका जन्म सन् १८७२ में बंगाल के एक कुलीन ब्राह्मण घराने में हुआ था जिसका बंगाल के शाही घराने से पुराना संबंध था। राजा राम मोहन राय हिंदी, अरबी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, यूनानी, भाषाओं के भारी विद्वान् थे। आप ईसाई, मुसलिम और हिंदू धर्म से पूरी जानकारी रखते थे। उन्होंने देखा कि प्राचीन हिंदू धर्म और उपनिषदादि ग्रन्थों में जाँति पाँति, छूआछूत, मूर्ति पूजा, बहु विवाह, भ्रूण हत्या और सती आदि की कुप्रथाओं की कहीं भी आज्ञा नहीं है। इसलिये उन्होंने इनका घोर विरोध किया। उन्होंने अपने अनुयायियों को बताया कि वैदिक हिंदू धर्म बड़ा सरल, संपूर्ण और युक्त संगत है। राम मोहन राय ने हिंदू धर्म को ईसाइयों के आक्रमणों से बचाया जिसके प्रभाव से हजारों हिंदू ईसाई बनते चले जा रहे थे। वह एक बहुत बड़े सुधारक थे। उन्होंने विधवा विवाह का प्रचार किया, सती प्रथा, पशुओं की बलि और मूर्ति पूजा का भी खंडन किया। लार्ड विलियम बैंटिक ने भी सती बन्दी का कानून राजा राम मोहन राय के आग्रह से ही लागू किया था।

राजा राम मोहन राय पर ईसाई मत का काफी प्रभाव पड़ा था। परन्तु उन्होंने ईसाई धर्म और अंग्रेजी शिक्षा से लाभदायक अंश ही अपनाये। बन्दरों की तरह विदेशियों की नकल को वह बहुत बुरा समझते थे। परायी अच्छी बातों को स्वीकार करने पर भी आप पूरे भारतीय थे।

आप नये युग के ऋषि थे। आपने अपनी जाति को पुनर्जीवित करने और सामाजिक तथा जातीय पुनरुत्थान के लिये योरुप की सब अच्छी बातों को संकलित करने की शिक्षा दी। इसी कार्य के प्रोत्साहन के लिये उन्होंने अगस्त सन् १८२८ में ब्रम्ह समाज की नींव डाली।

ब्रम्ह समाज के नियम

ब्रम्ह समाज के मुख्य मुख्य नियम निम्न लिखित हैं:—

१. परमात्मा एक व्यक्ति है जो कि संपूर्ण सद्गुणों का केन्द्र और भण्डार है ।

२. परमात्मा ने कभी जन्म नहीं लिया न देह ही धारण किया है ।

३. परमात्मा प्रार्थना सुनता है और स्वीकार करता है ।

४. सब जाति और वर्णों के लोग परमात्मा की पूजा कर सकते हैं। परमात्मा की पूजा और भक्ति के लिये मन्दिर, मस्जिद और आडम्बरा की आवश्यकता नहीं । केवल आत्मा से उसकी पूजा होनी चाहिये ।

५. पाप का त्याग और पाप कर्म से पश्चात्ताप ही मोक्ष के साधन हैं।

६. मानसिक ज्योति और विशाल प्रकृति ही परमात्मा के ज्ञान के साधन हैं। किसी पुस्तक को दैवी मानने की आवश्यकता नहीं , क्योंकि कोई पुस्तक त्रुटि रहित नहीं होती ।

ब्रम्ह समाज की स्थापना के चार वर्ष बाद ही राम मोहन राय का इंगलैण्ड में देहान्त हो गया । उनकी मृत्यु के पश्चात ब्रम्ह समाज में फूट पड़ गई और उसमें दो दल बन गये । एक दल के नेता जगत् विख्यात कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता श्री देवेन्द्र नाथ टैगोर थे । वह हिंदू धर्म के अधिक निकट थे और उपनिषदों में विश्वास रखते थे । वह जाँति पाँति तोड़ने पर अधिक बल न देते थे । दूसरा दल श्री केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में ईसाई मत के अधिक निकट था और वह ईसा की बहुत प्रशंसा करते थे । वह हिंदू समाज में समूल परिवर्तन करना चाहते थे, इस दल को 'प्रार्थना समाज' भी कहते हैं । श्री टैगोर की शाखा को आदि समाज'' कहते हैं ।

ब्रम्ह समाज एक विचार सुधारक संस्था थी । जिस पर कि ईसाई धर्म का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था । इसीलिये यह आँदोलन सर्वसाधारण में लोक प्रिय नहीं हुआ । आजकल इसके अनुयायी केवल बंगाल में ही हैं और वह भी पाँच छः हजार से अधिक नहीं ।

ब्रह्म समाज के कृत्य

ब्रम्ह समाज ने ऐसे काल में हिंदू समाज की बहुत सेवा की जब बाहरी और आँतरिक आक्रमणों से वह अत्यंत पीड़ित थो। उसने उसे ईसाई मत का आहर वननेसे बचाया। 'सती' की प्रथा का बन्दीकरण, स्त्रियों का उद्धार, और अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार भी उसी के प्रयत्न के फल हैं।

आर्य समाज

आर्य समाज की स्थापना गुजरात, काठियावाड़, के रहने वाले एक सन्यासी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने की। वह एक अत्यंत शक्तिशाली तथा प्रभावशाली वक्ता थे। ब्रम्ह समाज ने तो बंगाल के अंग्रेजी पठित समाज पर ही अपना प्रभाव डाला था, परन्तु आर्य समाज का प्रभाव सर्व साधारण में फैला।

स्वामी दयानन्द काठियावाड़ प्रांत के एक साधारण से ग्राम (टंकरा) में सन् १९२४ में उत्पन्न हुए थे। बाल्यकाल से ही वह धर्म के प्रेमी और वैदिक ग्रन्थों के रसिक थे। उनके पिता पंडित अंबाशंकर ने २२ वर्ष की आयु में ही उन्हें ब्याहने की योजना रची। परन्तु, नवयुवक मूल शंकर चोरी चोरी घर से भाग निकला और एक सद्गुरू की खोज में भारत का चक्कर लगाने लगा। अन्त में १४ वर्ष के अनुसंधान के पश्चात सन् १८६० में उसे एक अंधे दंडी सन्यासी मथुरा में मिले जिनका नाम पंडित बृजानन्द सरस्वती था। इनकी शिक्षा से दयानन्द को संतोष और साँत्वना प्राप्त हुई। बृजानन्द ने कहा कि वेद में पूर्ण सत्य विद्यमान है और पाश्चात्य शिक्षाने संसार में मिथ्या मतान्तरों का प्रचार किया है।

स्वामी दयानन्द ने सन् १८६३ की मई में अपने गुरू से बिदा ली और उत्तरी भारत में अपने विशेष उत्साह और पराक्रम से प्रचार कार्य आरंभ किया। उन्होंने हिंदी और संस्कृत में कई पुस्तकें लिखीं। सत्यार्थ प्रकाश में जो कि उनकी सबसे महत्वपूर्ण रचना है उन्होंने हिंदू धर्म की सब दूसरे धर्मों से श्रेष्ठता सिद्ध की है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि वेदों में

१. सब पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं और सब सत् विद्या का मूल कारण परमात्मा है ।

२. परमात्मा, सत्य, ज्ञान, और सौंदर्य का केन्द्र है । वह दयालु और न्यायकारी है ।

३. वेद ही सब सत्य विद्या का स्तोत्र है और हर आर्य का धर्म उनका पाठ करना है ।

४. सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग में हर आर्य को उद्यत रहना चाहिये ।

५. सब कर्म धर्म के अनुसार करने चाहिये ।

६. संसार का कल्याण सामाजिक, शारीरिक और आत्मिक उन्नति द्वारा करना और मनुष्य मात्र की भलाई करना समाज का मुख्य उद्देश्य है ।

७. सबसे प्रीति पूर्वक . न्याय युक्त तथा योग्य व्यवहार करना चाहिये ।

८. अज्ञान का नाश और ज्ञान का प्रचार करना चाहिये ।

८. अज्ञान का नाश और ज्ञान का प्रचार करना चाहिये ।

९. हर एक को अपनी भलाई म संतुष्ट न रहकर समाज का कल्याण करना चाहिये ।

१०. सामाजिक व्यवहारों में जातिगत प्रतिबन्ध हटा देने चाहिये ।

आर्य समाज के कृत्य

आज उत्तरी भारत के कोने कोने में आर्य समाज की शाखाएं विद्यमान हैं । यह एक जीवित संस्था है जिसके कार्यकर्ताओं का समूह उत्थान से परिपूर्ण है । आर्य समाज ने हिंदुओं को व्यर्थ के भ्रमजाल और मिथ्या आडम्बरों से मुक्त करा कर अपने पुरातन धर्म में निष्ठावान होना सिखाया है । शुद्धि करना और अन्य मतावलम्बियों को मिलाना इसी ने दर्शाया ह । जातीय ज्योति का जागरण और सुव्यवस्थित सामाजिक तथा शिक्षा संबंधी सुधार इसी के प्रताप से आविर्भूत हुए हैं । गुरुकुल, दयानन्द कौलिज

और अन्य संस्थायें स्थापित करके इसन वैदिक शिक्षा और अध्ययन का प्रचार किया है। लड़कियों और अछूतों को शिक्षित करने में भी इसका बहुत बड़ा हाथ है। विधवा आश्रम और अन्य आश्रम स्थापित करके विधवाओं और अनाथों को अन्य धर्मों में जाने से रोकना और हिन्दुओं के मरण जीवन शादी ब्याह आदि की रीतियों को सरल करने के कार्य भी इसी ने किये हैं।

परन्तु आर्य समाज जिसने सामाजिक सुधार के क्षेत्र में इतनी सफलता प्राप्त की जनता को सहिष्णुता का पाठ पढ़ाने में बिलकुल असफल रही। उसने यह भुला दिया कि सहिष्णुता ही सब धर्मों की नींव है। आर्य समाज संसार के सब धर्मों का खण्डन करती है। जैन, सिख, इस्लाम, ईसाई, सब धर्मों की निंदा करती है। उसने दूसरे मतों का खण्डन करके अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न किया। कुछ अंशों में भारत म धर्मान्धता और वैर भाव का बीज बोने में उसका भी हाथ है। उसने बहुत संख्या में साँप्रदायिक संस्थाओं को जन्म दिया और इस प्रकार फट का प्रचार किया।

सन् १८८२ में ब्रम्ह समाज के समान आर्य समाज म भी फूट पड़ गई। एक पक्ष कौलिज पार्टी और दूसरा महात्मा या गुरुकुल पार्टी के नाम से घोषित हुआ। कौलिज पार्टी खान पान में स्वतन्त्र और गुरुकुल पार्टी निरामिष भोजी है।

आर्य समाज अब अपने लाभदायक जीवन के दिन बिता चुकी है। सनातन धर्म ने भी अब उसके समाज सुधार कार्य को अपना लिया है। शेष कार्य काँग्रेस कर रही है। यदि आर्य समाज ने कोई और सजग काय क्रम न अपनाया तो उसका अन्त अनिवार्य है। जीवन गति के मन्द पड़ जाने के चिन्ह तो उसमें अभी से दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

थियोसाफिकल सोसाइटी

थियोसाफिकल सोसायटी की स्थापना मैडम, ब्लैंवटस्की और कनल

अल्काट ने ७ दिसंबर १८७५ को न्यूयार्क में की। इसके चार साल पश्चात दोनों संस्थापक भारत में आये और मद्रास प्रांत के अन्तर्गत अदयार में उन्होंने अपना मुख्य केन्द्र स्थापित किया। मैडम ब्लैवैत्सकी के जीवन के विषय में बहुत सी भ्रमोत्पादक बातें कही जाती हैं और उसके आजीवन ब्रम्हचारिणी होने पर भी बहुत संदेह किया जाता है। परन्तु हम उसके व्यक्तिगत जीवन से संपर्क न रखते हुये उसके सिद्धांतों और शिक्षा का ही उल्लेख करेंगे।

थियोसोफी समस्त धर्मों की मौलिक सत्यता में विश्वास रखती है। इसकी दृष्टि में सब धर्मों की शिक्षा और सार एक ही हैं। परन्तु वह बौद्ध तथा हिंदू धर्मा को सत्य का सबसे उत्तम तथा पूर्ण रूप मानती है। यह धर्म परिवर्तन में विश्वस नहीं रखती और सब धर्मावलम्बी इसके सदस्य बन सकते हैं। यह आवागमन और कर्म के सिद्धांत में भी विश्वास रखती है और जाति पाँति ,ऊंच नीच, काले गोरे के भेद को नहीं मानती। यह एक ऐसे भेद भाव रहित व्यक्तियों के समाज की रचना करना चाहती है जो कि सत्य का अनुसंधान और मनुष्य मात्र की सेवा करना चाहते हैं। इसके निम्न तीन ध्येय हैं:—

१. जाति, उपजाति, धर्म और रंग के भेद को हटा कर विश्व व्यापी भ्रातृत्व के लिये एक केन्द्र स्थापित करना।

२. समस्त धर्मों, सिद्धांतों और विज्ञान का साक्षेप अध्ययन करना।

३. मनुष्य की गुप्त शक्तियों और प्रकृति के गूढ़ नियमों का स्पष्टीकरण करना।

थियोसाफिकल सोसायटी को जगद् विख्यात करने में एक अयारिश महिला श्रीमती एनी बीसेंट का बहुत बड़ा हाथ है। वह भारत को अपनी मातृ भूमि मान कर हिंदू बन गई थीं। उन्होंने हिंदू धर्म की ईसाइयत के आक्रमणों से रक्षा की और भारत के लिये राजनैतिक और सामाजिक सुधार

का बहुत काम किया । पूरे ४० वर्ष तक इस महान् महिला ने भारत में रह कर अपनी समस्त शक्तियाँ हिंदू जाति की सेवा में लगा दीं । उसने मूर्ति पूजा आदि का भी जिसे युक्ति युक्त सिद्ध करना कठिन था प्राचीन और अर्वाचीन विज्ञान की सहायता से मंडन किया । सत्य तो यह है कि किसी भी एक व्यक्ति ने हिंदू धर्म की श्रेष्ठता स्थापित करने में इतना काम नहीं किया जितना एनी बीसेंट ने ।

थियासाफिकल सोसाइटी के कृत्य

थियासाफिकल सोसायटी ने भारतीय समाज की बड़ी सेवाएं की हैं । इसने सब धर्मों में सद्भाव बढाने के लिये सहिष्णुता का प्रचार किया और अपनी सभ्यता पर हमें गर्व करना सिखाया । इसने संसार भर में हिंदुत्व का प्रचार किया । इसके नेताओं ने राजनैतिक क्षेत्र में भी काम किया ।

वेदान्त समाज

थियासाफिकल सोसायटी यद्यपि हिंदू धर्म और भारत की प्राचीन संस्कृति का मण्डन करती थी परन्तु वह समस्त हिंदू धर्म का आख्यान न करता थी और न ही अपने कथन का आधार वेदान्त पर स्थापित करती थीं । यह काम एक बंगाली साधु श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने किया । उन्होंने सारे संसार में उपनिषदों की शिक्षा का प्रचार किया और संसार को हिंदू फिलासफी का प्रशंसक बना दिया ।

स्वामी रामकृष्ण—श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस सन् १८३४ में हुगली परगने के एक धनहीन ब्राम्हण के कुल में उत्पन्न हुए थे । बाल काल से ही उनकी स्मृति तीव्र और धर्म प्रेम असाधारण था । वह बहुत पठित नहीं थे और इसीलिये एक साधारण पुजारी के व्यवसाय से ही अपना निर्वाह करते थे । काली देवी को वह संसार की और अपनी माता समझते थे, और उनके चिंतन में लीन होकर तन मन की सुधि भुला देते थे । उनका

विश्वास था कि परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है, इसलिये कई वर्षों तक उन्होंने कठिन तपस्या और भक्ति का जीवन बिताया। एक बार ६ मास तक समाधि अवस्था में रहे और इसके पश्चात उन्हें अनुभव हुआ कि उन्हें भगवान कृष्ण के साक्षात दर्शन हुए हैं। उनकी इस सिद्धि में उन्हें एक परम विद्वान ब्राम्हण साध्वी संन्यासी तोता पुरी महंत से बहुत सहायता मिली। उन्होंने परमहंस जी को वेदाँत और योग के गूढ रहस्य बतलाए।

परमात्मा के दर्शन के पश्चात श्री रामकृष्ण ने अछूतों और अन्य मतावलंबियों से घृणा दूर करने का अभ्यास किया। इसके लिये उन्होंने चाँडाल की वृत्ति धारण की और पाखाना और गन्दी नालियाँ साफ कीं। मुसलमान और ईसाइयों का धर्म समझने के लिये उन्होंने उन जैसा रहन सहन अख्तियार किया। अन्त में उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि सब धर्म सच्चे हैं और एक ही स्थान पर पहुंचने के वे भिन्न भिन्न साधन हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी—परमहंस श्री रामकृष्ण के सबसे योग्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द हुए जो कलकत्ता के एक बड़े घराने के उच्च शिक्षा पाय हुए नवयुवक थे। सन् १८८६ में गुरू के स्वर्गवास पर उन्होंने गुरू के संदेश को चारों ओर फैलाने का भार अपने कन्धे पर लिया, वह कोलंबो होते हुए अमेरिका, कनैडा और इंगलैण्ड पहुंचे और इन सब देशों में उन्होंने हिंदू धर्म का प्रचार किया। सन् १८९३ में शिकागो के सर्व धर्म सम्मेलन में आपने हिंदू सिद्धांतों का वह महत्व बताया कि समस्त सदस्य उनकी भारी प्रशंसा करने लगे। इसी समय न्यूयार्क हेरल्ड पत्र ने लिखा:—

"सर्व धर्म सम्मेलन में विवेकानन्द की दिव्य मूर्ति ही समस्त सभा मंडल पर छा रही है। उनके प्रवचन सुनने के बाद हम ऐसा अनुभव करते हैं कि इतनी महान् शिक्षित जाति को ईसाई मिशनरी भेजन में हम कितनी मूर्खता करते हैं।"

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरू के नाम पर रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और प्रचारक तैयार करने के लिये कलकत्ता के निकट बैलूर और अल्मोड़ा के निकट मायावती में मठ स्थापित किये। जब कभी देश में कहीं अकाल, बाढ़ या माहमारी पड़ जाती है तो इन्हीं मठों के सन्यासी पीड़ितों की सहायता के लिये सबसे आगे होते हैं।

स्वामी रामतीर्थ--वेदान्त के प्रचार कार्य में स्वामी रामतीर्थ नें भी बहुत बड़ी सहायता दी। वह आरंभ में लाहौर के गवर्नमेंट कालेज में प्रोफेसर थे परन्तु बाद में नौकरी छोड़ कर वह सन्यासी हो गये। उन्होंने जापान, अमेरिका, तथा योरोप में भ्रमण करके वेदान्तवाद का प्रचार किया। उनके भाषण की शैली इतनी प्रभाव युक्त तथा मनमोहिनी थी कि हजारों की संख्या में पुरुष और स्त्रियाँ उनका भाषण सुन्ने के लिये उतावली रहती थीं। अमेरिका के पूर्व प्रधान रूजवेल्ट भी आपके भक्त बन गये थे। इनकी मृत्यु सन् १९०३ में बहुत अल्प आयु में ही हो गई जब वह केवल ३० वर्ष के ही थे।

वेदाँतवाद के मुख्य सिद्धांत इस प्रकार हैं:--

१. सब धर्म एक समान अच्छे और सत्य हैं। अतः हर व्यक्ति को अपने ही धर्म में रहना चाहिये।

२. पमात्मा अव्यक्त, अज्ञेय, और प्रतिबन्ध रहित है। उसका साक्षातकार संसार के किसी भी भाग में सभी मनुष्यों को हो सकता है। मनुष्य की आत्मा सचमुच ईश्वरीय है। सब मनुष्य सन्त हैं। मूर्ति पूजा, अति शुद्ध और उच्च कोटि की आत्मिक पूजा है। हिंदू धर्म के सब अंग सच्चे और रक्षणीय हैं।

३. हिंदू सभ्यता अति प्राचीन और सुन्दर है तथा आध्यात्मिकता से से परिपूर्ण है।

४. पाश्चात्य सभ्यता, स्थूल, स्वार्थी और लंपट हैं इसलिये हर एक हिंदू को अपने धर्म जाति और समाज को पाश्चात्य सभ्यता के विष से बचाने के लिये भरसक प्रयत्न करना चाहिये।

वेदान्त वादियों के कृत्य

वेदान्तवादियों ने भारत के पढ़े लिखे नवयुवकों को बहुत प्रभावित किया है। उन्होंने भारतीयों को अपने पाँव पर खड़ा होना और स्वावलंबी बनना सिखलाया है। उन्होंने हिंदू संस्कृति का पोषण किया है। उन्होंने रोगियों की सेवा और शिक्षा के प्रचार का भी बहुत बड़ा कार्य किया है। अमेरिका के नगरों न्यूयार्क, बोस्टन, वाशिंगटन, पिटसबर्ग और सान्फ्रांसिस्को में भी वेदाँत सभा विद्यमान हैं।

राधास्वामी मत

राधास्वामी विचार धारा उन मतों में से एक है जिनका कार्य क्षत्र अधिक विस्तृत नहीं और जिसने सार्वजनिक रूप धारण नहीं किया है। राधास्वामी सत्संग की स्थापना सन् १८६१ में आगरा के एक क्षत्री श्री विश्व दयाल जी महाराज ने की थी। उन्होंने घोषणा की कि परमात्मा न स्वयं उनको राधास्वामी का सन्त सतगुरू बना कर भेजा है। उनका देहाँत १८७८ में हो गया।

इनके पश्चात राय सालिग्राम और श्री ब्रम्ह शंकर जी गुरू की गद्दी पर बैठे। चौथे गुरू आनन्द स्वरूप जी ने धार्मिक शिक्षा के अनन्तर उद्योगिक उन्नति की ओर भी ध्यान दिया और दयाल बाग आगरे का सुन्दर नगर बसाया जहाँ इन्जीनियरिंग कालिज, गोशाला और कई अन्य प्रकार के कारखाने हैं।

सत्संग की शिक्षा सदस्यों के अतिरिक्त और किसी को नहीं बताई जाती। सत्संगी गुरू को ही सब क्रियाओं का केन्द्र तथा भगवान का अवतार और साँसारिक विकास का उच्चतम स्वरूप मानते हैं। वह हर पदार्थ

को जिसे गुरू छू लेता है अति पवित्र मानते हैं। वह समझते हैं कि गुरू की पूजा से ही भगवान की प्राप्ति हो सकती है।

सत्संगी जाति पाँति में विश्वास नहीं रखते और आपस में मातृ-भाव से बर्ताव करते हैं। यह धर्म सनातन धर्म का ही एक अंग है। इसके सदस्य भक्ति मार्ग में विश्वास रखते हैं।

राधास्वामियों ने औद्योगिक विकास के लिये कई उद्योग शालाएं स्थापित की हैं। जाति पाँति का भाव नष्ट करने तथा स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने कार्य किया है। हिंदुओं के भक्ति मार्ग को पुनर्जीवित करने में भी उनका हाथ है।

सब धार्मिक आंदोलनों में समान बातें।

१८ वीं शताब्दी में हिंदू धर्म और सभ्यता का अधःपतन पराकाष्ठा को पहुंच चुका था। ऐसे समय में देश में कई धार्मिक प्रचारक और समाज सुधारक प्रकट हुए जिन्होंने हिंदू धर्म का पुनरोत्थान किया। इन धार्मिक आँदोलनों का संक्षिप्त वर्णन हमने ऊपर दिया है। अब हम इन आँदोलनों की मौलिक समानताओं का वर्णन करेंगे।

१. सब आँदोलनों ने प्रेरणा प्राचीन हिंदू संस्कृति से ली है।

२. अधिकाँश आँदोलनों का ध्येय हिंदू धर्म से कुरीतियों तथा अंध विश्वासों को दूर करना था।

३. एक परमात्मा की पूजा सब आँदोलनों का ध्येय था।

४. सबने शुद्ध आचार और निराकार ईश्वर की पूजा सिखाई।

५. केवल आर्य समाज को छोड़ कर शेष सब आँदोलनों ने सब धर्मों की एकता तथा सहिष्णुता का प्रचार किया है।

६. सब मतों ने भारतीय स्त्रियों को उनका वास्तविक ऊंचा स्थान दिलवाने का प्रयत्न किया है।

७. सबने जाति पाँति के कड़े प्रतिबन्धों को हटाकर समयानुकूल युक्ति युक्त समाज निर्माण करने का प्रयत्न किया है।

८. सब आँदोलनों ने भारतीय विचारधारा और हिंदू विचारधारा को प्रगतिवाद की ओर अग्रसर किया है।

९. इनका प्रभाव भारत की समस्त जातियों को संगठित करने और उनके भेद भावों को मिटाने में परिणित हुआ।

१०. भारत में राष्ट्रीयता के निर्माण के लिये उन्होंने बहुत बड़ा कार्य किया है।

धर्म और राष्ट्रीय भावना

हम बता चुके हैं कि सामाजिक, राजनैतिक और भारत के आर्थिक जीवन में धर्म का बड़ा भारी प्रभाव है। हम यहाँ यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि वास्तविक धर्म राष्ट्रीय भावना का विरोधी है या पोषक।

सच्चा धर्म राष्ट्रीयता अथवा अन्तर्राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं वरन् उसका रक्षक होता है। वह हमें एक अच्छा अनुशासनपूर्ण, सेवाभाव से ओतप्रोत, ईश्वर भक्त नागरिक बनना सिखाता है। वह हममें सहानुभूत, सेवा, सौंदर्य तथा त्याग के भाव उत्पन्न करता है जो कि एक देशभक्त व्यक्ति के लिये आवश्यक गुण हैं।

भारत में अज्ञानवश लोग धर्म का वास्तविक अर्थ नहीं समझते। वह धर्म के नाम पर एक दूसरे का सिर फोड़ते हैं। संसार का कोई धर्म भी घृणा और असहिष्णुता की शिक्षा नहीं देता। सब धर्म परमात्मा की प्राप्ति का उपदेश देते हैं। धर्म को राजनीतिक क्षेत्र में न लाकर उसे परमात्मा और आत्मा के संबंध तक ही सीमित रखना चाहिये। इस दृष्टिकोण से यदि हम धर्म को देखें तो वह राष्ट्रीय भावना का शत्रु नहीं वरन् उसका पोषक है।

अध्याय १७

सामाजिक सङ्गठन तथा समाज सुधार आंदोलन

हमारा धर्म परायण सामाजिक जीवन

हमारे देश के सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता उस पर धर्म का सर्वोपरि प्रभाव है। हमारी साधारण जनता प्राय: प्रत्येक विषय में ही धर्म और अधर्म की भावना से प्रेरित होती है और किसी भी काम को करने से पहिले यह सोचती है कि कहीं वह कार्य धर्म के विरुद्ध तो नहीं है, खान पान, रहन सहन, रीति रिवाज, उत्सव, त्यौहार, शादी-विवाह, जन्म-मरण, गृह-प्रवेश-गृह त्याग, यात्रा, संस्कार, अर्थात् जीवन संबंधी प्रत्येक विषय में ही वह धार्मिक विचारों से प्रभावित होती है। यह सच है कि भारत की नगरों में रहने वाली पढ़ी लिखी जनता के जीवन से धर्म का प्रभाव अब बहुत कुछ उठता चला जा रहा है, परन्तु भारत की असली जनता तो आज भी गावों में ही रहती है और यही जनता हमारे देश की आत्मा कहलाती है। इसी जनता के सामाजिक जीवन को हम भारतीय जीवन का तत्व कह सकते हैं। हमारे गाँव के लोग हल चलाने के समय, खेती काटने के समय, अपनी फसल की बिक्री के समय, घर बनाने के समय, कोई यात्रा करने से पहिले, पुत्र जन्म, नाम करण, जन्म दिन, यज्ञोपवीत, परोजन, विवाह, कन्यादान, भात, छूछक, काज अर्थात् संक्षेप में दिन प्रति दिन के जीवन में किसी काम को करने से पहिले अपने ब्राह्मण, पंडे, पुजारी अथवा पुरोहित से पूछते हैं कि उस काम को करने के लिये शुभ मुहूर्त है अथवा नहीं।

भारत के सामाजिक जीवन का यह धर्म का प्रभाव आज से नहीं इतिहास के आरंभ से चला आ रहा है। वंश परम्परागत् से हम अपने त्यौहार, उत्सव, व्रत, संस्कार तथा धार्मिक कृत्य एक विशेष पद्धति के अनुसार करते चले आ रहे हैं। एकादशी को व्रत रखना चाहिये, मंगल के दिन मन्दिर में जाकर हनुमान की पूजा करनी चाहिये, शनिवार को तेल का दान देना चाहिये, कार्तिक में गंगा स्नान करना चाहिये, वर्षा ऋतु में शादी-विवाह नहीं रचाने चाहिये, कोई शुभ काम करने से पहिले किसी विद्वान पंडित से राय लेनी चाहिये, विशेष अवसरों पर यज्ञ तथा सहभोज करना चाहिये, दीवाली, होली, रक्षा बन्धन, दशहरा, संक्रांति, नाग पंचमी, अमावास्या, पूर्णिमा, शिव चतुर्दशी, राम नौमी, और न जाने कितने इसी प्रकार के त्यौहारों को एक विशेष परम्परा के अनुसार मनाना चाहिये। यह कुछ बातें हैं जो हमारी ग्रामीण जनता के जीवन को ही नहीं, नगर में में रहने वाली शिक्षित और विदेशी वातावरण में पली जनता के जीवन को भी प्रभावित करती हैं और जीवन में एक धार्मिक दृष्टिकोण को बनाये रखने में सहायता देती हैं।

परन्तु, कैसे दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे धर्म परायण देश में भी अधिकतर व्यक्ति ऐसे हैं जो इन रीति रिवाजों, उत्सव व त्यौहारों को किसी विशेष धार्मिक भावना अथवा श्रद्धा व भक्ति भाव से नहीं देखते, ना ही इन कार्यों को करने से पहिले वह यह ही सोचते हैं कि उनका वास्तविक महत्व क्या है या वह इस प्रकार क्यों मनाये जाते हैं या उनके पीछे क्या इतिहास छिपा है या समाज की वर्तमान दशा में उनमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता है अथवा नहीं, या हमारी बुद्धि की कसौटी पर वह रीति रिवाज अथवा रस्म पूरे उतरते हैं कि नहीं? पढ़े लिखे शिक्षित और बुद्धिवादी नव युवक भी इन सब बातों को अपने जीवन का साधारण अंग मानकर उदासीन वृत्ति से उनको मना लेते हैं। परन्तु, आज तक इतने विशाल जन समाज में किसी संस्था अथवा व्यक्ति न यह प्रयत्न किया कि वह हमारे विभिन्न रीति

रिवाजों, रस्मों, उत्सवों, इत्यादि का वैज्ञानिक विश्लेषण करे, उनके इतिहास अथवा उद्‌गम की खोज करे, उनकी उपयोगिता के विषय में अनुसंधनात्मिक अध्ययन करे तथा संसार के शिक्षित एवं सभ्य समाज को समझाने का प्रयत्न करे कि भारत के धार्मिक जीवन का आधार कितना वैज्ञानिक है अथवा उसमें बदले हुये जमाने में किन्हीं परिवर्तनों की आवश्यकता है। हमें ऐसे अध्ययन की आवश्यकता है जिससे धर्म की वास्तविकता का ज्ञान हो सके और हम उस सभी घास फूस तथा कूड़ा करकट को अपने धार्मिक कृत्यों के ऊपर से दूर कर सकें जिसके कारण हमारे धर्म का वास्तविक निर्मल स्वरूप छिप गया है और हम बाहरी दिखावे, रीति-रिवाजों, रहन सहन, पूजा, माला, मन्दिर, उत्सव व तीर्थों में ही अपने धार्मिक कर्तव्यों की इति श्री समझने लगे हैं।

भारत एक राष्ट्र

बहुत से लोग भारत में विभिन्न धर्मों, मत मतांतरों तथा विश्वासोंके लोगों की बहुतायत देखकर कहते हैं कि हमारा देश एक राष्ट्र नहीं वरन विभिन्न जातियों एवं उपजातियों का एक अजायबघर है। वास्तव में ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि हमारे देश की सबसे बड़ी विशेषता अनेकता में एकता है। यह सच है कि हमारे देश में अनेक मत मतान्तरों, धर्म, भाषा, नस्ल, तथा जातियों के लोग रहते हैं, परन्तु हमारे देश को एक रूप करके एक ही संस्कृति का अविच्छिन्न अंग बना लिया है। हमारे देश की संस्कृति में विभिन्न जातियों तथा धर्मों का सामंजस्य होकर एक मिली जुली संस्कृति का निर्माण हो गया है। सब लोग जानते हैं कि एशिया के भिन्न भिन्न हिस्सों से द्रविण, आर्य, शक, मंगोल, अरब, तुर्क, तातार, अफ़गान, आदि जातियाँ हमारे देश में आईं, परन्तु वह सब यहाँ आकर एक रूप हो गईं। आज हममें से कोई यह नहीं कह सकता कि वह शुद्ध आर्य, या शुद्ध तुर्क या शुद्ध मुसलमान हैं, और उसकी जाति के रक्त

में किसी दूसरी जाति के रक्त का मिश्रण नहीं हुआ है। हमारे संगीत, चित्रकला, मंदिर व भवन निर्माण कला में सब धर्मों व जातियों की क़लायें सम्मिलित हैं, और उन सब की विशेषताएं विद्यमान हैं। भारत के किसी भी प्रांत में रहने वाले हिंदू विभिन्न भाषाओं तथा रीति रिवाज में विश्वास रखते हुए भी सब समान मूलगत सिद्धांतों में विश्वास रखते हैं। वह सब वेदों, स्मृतियों, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा गीता को पवित्र धर्म पुस्तक मानते हैं, सब राम और कृष्ण की पूजा करते हैं, गऊ को अपनी माता के तुल्य मानते हैं, सब गंगा, यमुना तथा गोदावरी के जलों को पवित्र समझते हैं। उनके तीर्थ स्थान भारत के सभी प्रांतों में स्थित हैं और सब प्रांतों के लोग अपनी आत्मा की शाँति के लिये इन स्थानों पर जाना अपना धर्म समझते हैं। पुरी, द्वारिका, बद्रीनाथ, तथा रामेश्वरम्, हमारे देश के पावन तीर्थ हैं। राष्ट्रीय एकता के निर्माण की दृष्टि से यह तीर्थ देश के चार कोनों में बसे हुए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न प्रांतों में रहते हुय, विभिन्न रीति रिवाजों पर चलते हुए तथा विभिन्न भाषाएं बोलते हुए भी सब हिंदू एक विशाल हिंदू समाज के अविभाज्य अंग हैं। वह सब गंगा, गायत्री, गीता, और गौ को पवित्र मानते हुये, एकादशी, अमावस्या, व पूर्णिमा के पुण्य पर्वों में विश्वास रखते हुये, तथा एक ही धर्म की डोरी में पिरे हुए, एक राष्ट्र के अंग हैं।

इसी प्रकार बाहर से देखने पर चाहे हिंदू और मुसलमान ऐसे लगें कि उनमें किसी प्रकार की समानता नहीं है और वह भिन्न राष्ट्रों के सदस्य हैं, परन्तु यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि उनके रीति रिवाज विश्वास, रहन सहन, खान पान, तथा संस्कारों में एक दूसरे के धर्म का गहरा पुट है। हिंदू और मुसलमानों की कला, आर्ट, भाषा, रीति रिवाज, उत्सव मेले, शादी विवाह, भाषा, पूजा के तरीकों, पहिनाव, व्यवहार, तथा रहन सहन पर एक दूसरे धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा है। हमारे गावों में रहने वाले हिंदू और मुसलमानों में कोई आदमी किसी प्रकार का भेद भाव नहीं

कर सकता। दोनों एक ही प्रकार के वस्त्र पहनते हैं, एक ही प्रकार की वंदना करते हैं, एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं तथा सब एक दूसरे के उत्सवों, त्यौहारों, तथा मेलों ठेलों में भाग लेते हैं। मुसलिम लीग की साँप्रदायिक नीति के कारण हमारे देश के हिंदू और मुसलमानों में कुछ मन मुटाव हो गया था, परन्तु पाकिस्तान बन जाने के पश्चात मुसलमान अब समझ गये हैं कि वह एक ही राष्ट्र के घटक हैं और उन सब के समान हित हैं।

हिंदुओं का सामाजिक जीवन

हिंदुओं के सामाजिक जीवन में दो बातें मुख्य रूप से पाई जाती हैं (१) जाति व्यवस्था और (२) सम्मिलित कुटुम्बों की प्रथा।

जाति प्रथा (Caste System)

जाति पाँति की प्रथा हमारे समाज की एक अत्यंत प्राचीन परंपरा है। इस प्रथा का वेदों में तो वृत्तांत नहीं मिलता परन्तु स्मृतियों में इसका वर्णन किया गया है। जातियों की उत्पत्ति के संबंध में एक स्मृति में कहा गया है कि **ब्राह्मण ब्रह्मा** के मुख से, क्षत्री उसकी भुजाओं से, वैश्य जंघा से, तथा शूद्र पैरों से उत्पन्न हुए हैं। **ब्रह्मा** के पुत्र होने के कारण प्राचीन काल में सब वर्णों में समानता थी। एक वर्ण दूसरे से नीचा नहीं समझा जाता था। सब वर्णों के लोगों को बराबर के अधिकार प्राप्त थे। वर्णों का विभाजन काम करने की योग्यता तथा कार्य विभाजन के सिद्धांत पर किया गया था। ब्राह्मण शिक्षा देने तथा ज्ञान का प्रसार करने का कार्य करते थे, क्षत्रियों पर राष्ट्र के शासन तथा उसकी रक्षा का भार था, वैश्य कृषि, व्यापार व व्यवसायों को संगठित करते थे और शूद्रों के जिम्मे दूसरे वर्णों की सेवा का कार्य था। इस काल में वर्ण व्यवस्था का निश्चय जन्म से नहीं वरन् कर्म से किया जाता था। यदि किसी शूद्र की सन्तान ब्राह्मण कर्म के योग्य होती थी तो वह ब्राह्मण वर्ण में सम्मिलित मान ली जाती थी। सभी वर्गों में सहयोग और पारस्परिक प्रेम की भावना थी।

लाभ---इस वर्ण व्यवस्था के मुख्य रूप से निम्न लाभ थे :---

(१) कार्य कुशलता---सर्व प्रथम इस व्यवस्था के कारण प्राचीन काल में समाज का कार्य अत्यंत सुचारु रूप से चलता था। प्रत्येक वर्ण के लोग अपना निर्दिष्ट काम करते थे। पिता की मृत्यु के पश्चात पुत्र का काम पहिले से ही निश्चित रहता था। वह वंश परम्परागत से होने वाले कार्यों को ही करता था। इससे प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में अत्यंत दक्ष तथा कुशल होता था। इस काल में शिक्षा संस्थाओं के अभाव में वर्ण व्यवस्था के कारण ही लोग एक प्रकार की टैक्निकल शिक्षा प्राप्त करते थे।

(२) सामाजिक उन्नति---वर्ण व्यवस्था के कारण एक जाति व बिरादरी के लोगों में अधिक प्रेम, तथा सहानुभूति देखने को मिलती थी। जाति के लोग एक दूसरे से भली भांति परिचित होते थे तथा एक दूसरें के दुख व सुख में काम आते थे। जाति एक प्रकार के क्लब तथा बीमे कंपनी की संस्था का काम करती थी। जाति के लोग अपने सदस्यों की सुविधा के लिये अनेक प्रकार के आमोद प्रमोद के केन्द्र, धर्म शाला, मंदिर, सार्व-जनिक कुंए इत्यादि बनाते थे। एक वर्ण के लोग दूसरे की सहायता करना भी अपना परम धर्म समझते थे।

(३) व्यक्तित्व का विकास---जाति पाँति की प्रथा के कारण जनता को अपने व्यक्तित्व का विकास करने का भी अधिक अवसर मिलता था। कारण, एक जाति के लोग आज की तरह एक व्यक्तिगत नहीं वरन् सा-मूहिक जीवन व्यतीत करते थे। जाति के बड़े वयोवृद्ध नेता छोटे बच्चों, असहाय परिवारों तथा निर्धन कुटुम्बों की सहायता करना अपना सबसे बड़ा धर्म समझते थे। एक जाति के अन्दर पूर्ण समानता का व्यवहार किया जाता था। सब व्यक्ति, धन दौलत, जमीन, जायदाद, बड़े छोटे के भेद भाव के बिना बराबर समझे जाते थे और जाति की संस्था इस बात का

प्रबंध करती थी कि प्रत्येक छोटे से छोटे व्यक्ति के लिये शिक्षा तथा रोजगार की पूर्ण सुविधा प्राप्त होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में जब तक वर्ण व्यवस्था ने जटिल रूप धारण नहीं किया था, इस प्रथा से बहुत से लाभ थे। परन्तु, धीरे धीरे हिंदुओं की यह वर्ण व्यवस्था अत्यंत जटिल रूप धारण करती चली गई। वर्णों का विभाजन कर्म के स्थान पर जन्म से किया जाने लगा और प्रत्येक वर्ण में सहस्त्रों जातियाँ और उप जातियाँ उत्पन्न हो गईं। आजकल इन जातियों की संख्या तीन हजार से चार हजार के बीच आँकी जाती है। जाँति पाँति के बन्धनों में कठोरता आ जाने से शादी विवाह, लेन देन तथा गोद इत्यादि की रस्मों में जाति पाँति का विचार रक्खा जाने लगा और एक जाति के लोग दूसरी जाति को अपने से नीचा मानने लगे। इसी काल में शूद्रों का पतन हुआ और उन्हें हर प्रकार के अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

जाति पाँति की व्यवस्था के दोष—वर्तमान युग में जाति पाँति की प्रथा से लाभ तो बहुत कम है परन्तु दोषों की भरमार है:—

(१) सर्व प्रथम, यह प्रथा अप्रजातन्त्रवादी है। यह मनुष्य के दृष्टिकोण को अत्यंत संकुचित बना देती है। यह एक ही समाज के व्यक्तियों में एक गहरी खाई उत्पन्न कर उनमें मेल जोल तथा परस्पर प्रेम की भावना को कम कर देती है।

(२) यह समानता के सिद्धांत की विरोधी है और ऊंच नींच तथा छोटे बड़े की भावना की पोषक है।

(३) इसके कारण, समाज की आर्थिक उन्नति में भी बाधा पड़ती है, कारण सब व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से कोई भी व्यवसाय नहीं कर सकते। उनका पेशा उनकी जाति के आधार पर निश्चित किया जाता है। अनेक

लोग, जो अपनी जाति के बाहर का पेशा करके देश की दौलत व पैदावार को बढ़ा सकते हैं, स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं कर पाते। उनके रास्ते में तरह तरह के रोड़े अटकाये जाते हैं।

(४) इस प्रथा के आधीन सब लोग बराबर का काम नहीं करते। कुछ लोग जीवन भर काम करते हैं फ़िर भी भूखों मरते हैं और कुछ दूसरे आराम से खाली बैठ कर मौज उड़ाते हैं। हमारे देश के ब्राह्मण, पंडे, पुजारी व साधुओं का उदाहरण ही ले लीजिये। यह लोग अपने उच्च वर्ण के कारण, बिना काम करे ही दान पुण्य के सहारे मौज उड़ाते हैं और किसी प्रकार का काम नहीं करते। इससे न केवल समाज ही निर्धन बनता है वरन् परोपजीवी व्यक्तियों का चरित्र भी भ्रष्ट हो जाता है।

(५) इस प्रथा के कारण उच्च वर्ण के लोगों में व्यर्थ का दम्भ तथा घमण्ड उत्पन्न हो जाता है और वह केवल उच्च जाति में जन्म लेने के कारण अपने आपको बड़ा समझने लगते हैं।

(६) चुनावों में इस प्रथा के कारण साँप्रदायिकता का खुला खेल खेला जाता है। उम्मीदवार मतदाताओं से यह कह कर राय माँगते हैं कि हम उन्हीं की बिरादरी के सदस्य हैं और इसलिये हमको राय पड़नी चाहिये। नौकरियों के क्षेत्र में भी इसी प्रकार की माँग दोहराई जाती है कि वह अपनी ही बिरादरी के लोगों को नौकरी पर लगायें।

(७) अन्त में, इस प्रथा के कारण स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। जाति के ठेकेदार उन्हें किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं देते। उन्हें घर की चहार दिवारी में बन्द रक्खा जाता है। स्त्रियों के स्वतन्त्र रूप से विवाह करने या अपने पति का स्वयं चुनाव करने की तो इस प्रथा के अन्तर्गत बात ही नहीं उठती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान , मशीन, विज्ञान, तथा प्रजातन्त्र शासन के काल में यह प्रथा अत्यंत हानिकारक बन गई है। वर्तमान युग में इस प्रथा के साथ चिमटे रहने से कोई भी लाभ नहीं। इस प्रथा का जितना भी शीघ्र अन्त हो जाय उतना ही अच्छा है।

शिक्षा की प्रगति से हमारे जाति पाँति के बन्धन स्वतः टूटते जा रहे हैं परन्तु यदि यह भीषण दोष हमारे सामाजिक संगठन से समूल नष्ट नहीं हो सका है तो इसके मुख्य रूप से दो कारण हैं। एक यह कि हम अपने नामों के सम्मुख शर्मा, वर्मा, गुप्ता, टंडन, कक्कड़, ठाकुर, मित्तल, वालमीकि, इत्यादि लिखने से परहेज नहीं करते। और इस कारण, हमें सदा इस बात का आभास रहता है कि हम एक विशेष जाति के सदस्य हैं दूसरे कायस्थ सभा, भटनागर सभा, माथुर सभा, राजपूत सभा, जाट सभा, वैश्य सभा इत्यादि—एक जाति के लोगों में पृथक करण की भावना बनाये रखती है और उन्हें समाज के दूसरे अंगों के साथ घुल मिल कर रहने नहीं देती। शादी, विवाह, जन्म मरण, इत्यादि अवसरों पर जाति बिरादरी के लोगों को ही निमन्त्रित किया जाता है और इस कारण हमारा आपसी भेद भाव दूर नहीं हो पाता। परन्तु, अब धीरे धीरे शिक्षा के प्रसार से यह बन्धन भी ढ़ीले पड़ते चले जा रहे हैं। इन बन्धनों को तोड़ने में हम बहुत बड़ी सहायता कर सकते हैं यदि हम सब अपने नाम के आगे अपनी जाति लिखना बन्द करदें और विवाह के अवसर पर अपनी जाति की कन्या से ही रिश्तेदारी करने पर जोर न दें। आशा है हमारे आगे आने वाली संततियाँ इन दोनों सुझावों पर अवश्य विचार करेंगीं।

हमें यह पूर्ण रूप से समझ लेना चाहिये कि यदि भारत में हमें एक सच्चे प्रजातन्त्र राज्य को जन्म देना है और अपने नये विधान को सफ़ल बनाना है तो हमें जाति पाति के भेद भावों को भुलाना पड़ेगा। डा० अंबेदकर ने विधान सभा में ठीक ही कहा था "यदि हमारा समाज सहस्त्रों जातियों में विभक्त रहा, और चुनावों में हमने जाति पाँति की भावना से

काम किया तो फ़िर हमारे देश में कागजी विधान कितना ही अच्छा हो, एक सच्चे जन राज्य की स्थापना नहीं हो सकती। " प्रत्येक भारतवासी विशेषकर आज के विद्यार्थियों का इसलिये परमधर्म है कि वह हिंदू समाज के इस कलंक को मिटाने का सतत् प्रयत्न करे।

संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली

हमारे सामाज़िक जीवन की दूसरी बड़ी विशेषता सम्मिलित कुटुम्बों की प्रणाली है। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा का अर्थ है कि एक ही परिवार में कई दम्पत्ति तथा बच्चे रहते हैं। उन सब का एक दूसरे के साथ बहुत घनिष्ट रक्त का संबंध होता है, उदाहरणार्थ एक परिवार में माता-पिता बाबा-दादी, चाचा-चाची, भाई-भाभी, चचेरे भाई तथा बहिन और इसी प्रकार के संबंधित लोग रहते हैं। परिवार के सभी व्यक्तियों का भोजन एक ही चौके में बनता है तथा वह सब मिल कर एक ही मकान में रहते हैं तथा एक ही व्यवसाय करते हैं। कुटुम्ब के सबसे प्रौढ़ व्यक्ति पर परिवार के पालन की सारी जिम्मेदारी रहती है। संपूर्ण कुटुम्ब का भरण पोषण, बच्चों की शिक्षा तथा विवाहों का प्रबन्ध करना उसी का कार्य होता है। कुटुम्ब की मर्यादा तथा प्रथाओं की रक्षा करना भी उसी का काम होता है। परिवार के दूसरे सभी व्यक्ति उसकी आज्ञा के अनुसार कार्य करते हैं।

प्रथा से लाभ——संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली के अनेक लाभ हैं:——

(१) सर्व प्रथम ऐसे कुटुम्ब में नागरिकता के कतिपय गुणों की विशेष शिक्षा मिलती है। इस प्रथा के कारण कुटुम्ब के सदस्यों में सहभोज, मेल जोल, सहिष्णुता, त्याग, बलिदान, प्रेम, सहानुभूति, तथा आज्ञा पालन के वह सभी भाव विद्यमान हो जाते हैं जो एक अच्छे सामाजिक जीवन की जड़ है और जिनके कारण ही एक मनुष्य अच्छा नागरिक कहा जा सकता है।

(२) दूसरे, संयुक्त परिवार बुढ़ापे, बीमारी, बेकारी, तथा दुर्घटना के समय एक बीमे की संस्था का काम देता है। परिवार के दूसरे सदस्य संकट के समय एक दूसरे की सहायता करना अपना धर्म समझते हैं। आज कल जब हमारी सरकार, दूसरे प्रगतिशील देशों की भांति, सामाजिक बीमे (Social Insurance) का प्रबंध नहीं करती तो संयुक्त परिवार प्रणाली ही इस काम को पूरा करती है।

(३) संयुक्त परिवार में खर्चे की भारी बचत होती है। थोड़े ही धन के खर्च से सारे गृहस्थी का काम चल जाता है। यदि घर के सभी व्यक्ति अलग-अलग खाना पकाएं, अलग-अलग मकान किराये पर लें, इत्यादि, तो इससे खर्चे में भारी बढ़ोतरी हो जाती है।

(४) संयुक्त कुटुम्ब की प्रणाली से घर की इज्जत तथा शान अधिक कायम रहती है। परिवार के सभी व्यक्ति अपना धन एक ही जगह जमा करते हैं, सब मिल कर एक साथ कमाते हैं, जायदाद खरीदते हैं तथा दान पुण्य करते हैं। इससे उनकी इज्जत बढ़ती है और परिवार का समाज में नाम होता है।

(५) संकट तथा मुसीबत के समय परिवार के सदस्य ही सबसे अधिक एक दूसरे की मदद करते हैं। अकेला मनुष्य अपने आप को असहाय तथा मित्रहीन पाता है।

हानि—परन्तु इन लाभों के होते हुए भी वर्तमान युग में संयुक्त परिवार की प्रथा धीरे धीरे समाप्त होती चली जा रही है। इसके अनेक कारण हैं:—

(१) सर्व प्रथम इस प्रथा के कारण परिवार के सदस्यों को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर नहीं मिलता। गृहकर्ता पर निर्भर रहने के कारण उनमें नेतृत्व तथा स्वतन्त्र निश्चय की भावना नष्ट हो जाती है।

(२) दूसरे, परिवार के भरण पोषण की सारी जिम्मेदारी घर के सबसे बड़े व्यक्ति पर होने के कारण, दूसरे सदस्य अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण रूप से अनुभव नहीं करते और वह आलसी, सुस्त, काहिल तथा परोपजीवी बन जाते हैं ।

(३) इस प्रथा के अन्तर्गत परिवार के सभी सदस्यों पर बराबर का भार नहीं पड़ता। घर के कर्ता को गृहस्थ का सारा भार सहना पड़ता है। उसे दूसरों के सुख के लिये बहुत बड़ा त्याग करना पड़ता है। उसकी बीमारी या मृत्यु के कारण सारा प्रबंध गड़बड़ हो जाता है ।

(४) सम्मिलित कुटुम्बों में अक्सर छोटी छोटी बातों पर झगड़े हुआ करते हैं। विशेषकर स्त्रियाँ परस्पर सहयोग से नहीं रह पातीं। किसी एक भाई का परिवार बड़ा है, दूसरे का छोटा, एक भाई थोड़ा कमाता है दूसरा अधिक, एक अधिक खर्चीला है दूसरा कम---ऐसी छोटी छोटी बातों पर आये दिन झगड़े होते रहते हैं और परिवार एक शाँति और सुख के केन्द्र के स्थान पर संघर्ष और कलह का घर बन जाता है ।

(५) इस प्रथा के कारण घर की स्त्रियों को स्वतन्त्र वातावरण में रहने का अवसर नहीं मिलता। उन्हें सदा सासू, श्वसूर तथा जेठ जिठानी के कड़े नियन्त्रण मं रहना पड़ता है। परदे प्रथा की भी यही प्रणाली पोषक है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लाभ के स्थान पर संयुक्त कुटुम्ब से हानि अधिक हैं। आजकल के युग में वैयक्तिक जीवन व्यतीत करने की भावना के कारण संयुक्त कुटुम्बों की प्रथा धीरे धीरे नष्ट होती चली जा रही है। भारत की नव विवाहित स्त्रियाँ सासू तथा श्वसुर के कड़ें नियन्त्रण में रहना पसन्द नहीं करतीं। वह अपने पति के थां रह कर एक स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करना चाहती हैं। यह मुख्य कारण है जिससे हमारे संयुक्त

परिवारों की संख्या बराबर कम होती चली जा रही है । आर्थिक कठि-नाइयाँ तथा स्वतन्त्र-व्यवसाय को छोड़ कर पढ़े लिखे नव युवकों में नौकरी करने की भावना से भी इन परिवारों का नाश हो रहा है ।

जिस तेजी तथा जिन कारणों से हमारे संयुक्त परिवार नष्ट होते चले जा रहे हैं उन सब पर एक संतोष की नजर डालना कोई अच्छी बात नहीं; कारण, हमारे जीवन में स्वार्थ-परिता, तथा वैयक्तिक भावना का विकास कोई वाँछनीय प्रगति नहीं । यदि हम अपने माता पिता, सगे भाई बहिन, तथा निकट संबंधियों के साथ प्रेम के साथ मिल कर नहीं रह सकते तो फिर हम किस प्रकार अपने समाज या राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं । आज हम देखते हैं कि नगर में रहनेवाले लोग अपने पड़ोसी का नाम नहीं जानते, उन्हें यह पता नहीं होता कि उन्हीं के मकान के दूसरे हिस्से में कौन सा किरायेदार रह रहा है । हम अपने स्वतः के जीवन में ही मस्त रहते हैं और कभी अपने पड़ोस, नगर, जाति, अथवा राष्ट्र की समस्याओं पर विचार नहीं करते । सहिष्णुता, वैयक्तिक भावना, त्याग की कमी, तथा संकुचित दृष्टिकोण—यह मुख्य कारण हैं जिनसे हमारे संयुक्त परिवार टूटते चले जा रहे हैं । हमें चाहिये कि हम इन परिवारों के दोषों को दूर करें न कि इतनी लाभकारी तथा उपयोगी प्राचीन संस्था को ही कुछ बुराइयों के कारण जड़ मूल से नष्ट कर दें ।

भारतीय जीवन में स्त्रियों का स्थान

प्राचीन भारत—हमारे देश के प्राचीन इतिहास में स्त्रियों का स्थान अत्यंत उच्चतम रहा है । वैदिक काल में स्त्रियों को ऊंची से ऊंची शिक्षा दी जाती थी । वह ऋषियों के आश्रमों में शिक्षा प्राप्त करती थीं । उन्हें धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार था । वह शास्त्रार्थों में भाग लेती थीं । स्वयंवरों में उन्हें अपने पति स्वयं चुनने का अधिकार था । वह परदा नहीं करती थीं और पुरुषों के समान स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती थीं । देश

के शासन, राजनीति, साहित्य तथा कला के क्षेत्र में उनका स्थान ऊंचा था। गार्गी, मैत्रेयी, लीलावती, शकुन्तला, सीता, दमयन्ती, कुन्ती जैसी स्त्रियों के नाज आच भी हमारे इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं।

जिस समय संसार के दूसरे देश अभी मध्य कालीन युग के अंधकार में पड़े अभी भूत और प्रेतों में ही विश्वास करते थे तो भारत में एक ऐसी संस्कृति का विकास हो चुका था जिसके अन्तर्गत, पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ भी वेद मन्त्रों की व्याख्या तथा धर्म ग्रन्थों का भाष्य करती थीं। उन्हें गृह लक्ष्मी तथा शक्ति का अवतार मान कर उनकी पूजा की जाती थी। परन्तु, भारत के इतिहास में एक समय ऐसा भी आया जब ब्राह्मणों के अत्याचार के कारण हमारी स्त्रियों को अज्ञानता व अंधकार के गर्त में ढकेल दिया गया। उन्हें सभी अधिकारों से वंचित कर दिया गया। उच्च शिक्षा प्राप्त करना, धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करना, यज्ञोपवीत धारण करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना—उनके लिये निषेध ठहरा दिया गया। बौद्ध धर्म ने उनकी स्थिति सुधारने का कुछ प्रयत्न किया, परन्तु शंकराचार्य ने आकर तथा उन्हें 'नरक के द्वार' के नाम से संबोधित करके एक बार फिर उन्हें घरेलू जीवन की चहार दीवारी में बन्द कर दिया।

मुसलमानों के काल में स्त्रियों की स्थिति और भी खराब हो गई। आतताइयों के भय से छोटी आयु में ही उनकी शादियाँ की जाने लगीं। इसी काल में परदा प्रथा का भी रिवाज हुआ और स्त्रियों को घर की नौकरानी तथा बच्चों के पालन पोषण के लिये दासी का स्थान दे दिया गया।

स्त्रियों की दशा को सुधारने के लिये आँदोलन

इस हीन अवस्था में स्त्रियों का उद्धार करने के लिये हमारे समाज सुधारकों ने अनेक प्रयत्न किये। कारण, हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता सदा से ही स्त्रियों के अधिकारों तथा

उनके समाज में एक अत्यंत ऊंचे स्थान की पोषक रही है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि जिस घर में स्त्रियों का आदर नहीं होता वहाँ देवता नहीं बसते। अर्द्धांगिनी के बिना हमारे गृहस्थ धर्म का कोई जप, तप अथवा यज्ञ, सफल नहीं होता। स्त्रियों को वही प्राचीन वैभव दिलाने के लिये इसलिये हमारे इन समाज सुधारकों ने भरसक यत्न किया। परन्तु उन्हें अपने कार्य में विशेष सफलता न मिली। इसका मुख्य कारण यह था कि हमारी अपनी स्त्रियाँ, अशिक्षिता के कारण अपने अधिकारों के प्रति स्वतः जागरुक नहीं थीं। इसलिये हमारी स्त्रियों की अवस्था में उस समय तक कोई विशेष सुधार नहीं हुआ जब तक बीसवीं शताब्दि के आरंभ में महात्मा गाँधी के नेतृत्व के कारण हमारे देश के नर और नारियों में एक नई राजनीतिक चेतना का संचार नहीं हुआ। हमारे राष्ट्र पिता के सत्याग्रह आँदोलन ने जनता में कुछ ऐसी नव शक्ति का संचार किया कि पुरुष ही नहीं उसके प्रभाव से स्त्रियाँ भी न बच सकीं। सन् १९२१, ३०, ३२ तथा ४२ के सत्याग्रह आँदोलन में हमारे देश की सहस्रों स्त्रियाँ जेलों में गईं और उन्होंने पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर देश के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, शराब व विलायती कपड़ों की दुकानों पर पिकेटिंग, पुलिस की लाठियाँ व गोलियाँ सहने का काम, जलसों व जुलूसों के नेतृत्व—अर्थात् स्वातन्त्र्य संग्राम के प्रत्येक क्षेत्र में ही उन्होंने पूर्ण भाग लिया। यही सबसे मुख्य कारण था कि शताब्दियों से त्रस्त तथा अधिकारहीन स्त्रियों की अवस्था में २० वर्ष से भी कम समय में एक ऐसा क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ कि हमारी नारियों को प्रायः वही अधिकार प्राप्त हो गये जो आज पुरुषों को प्राप्त हैं। दूसरे देशों की स्त्रियों को अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये एक नहीं न जाने कितनी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। इंगलैण्ड में ही स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त करने के लिये ६० वर्ष तक (सन् १८६७ से लेकर १९२९ तक) निरन्तर आंदोलन करना पड़ा। आज भी कितने

ही देशों में स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं और दूसरे देशों में वहाँ के सामाजिक व राजनीतिक जीवन में स्त्रियाँ इतना प्रमुख भाग नहीं लेतीं जितना आज वह भारत में ले रही हैं।

स्त्रियों की संस्थाएं

देश के स्वातन्त्र संग्राम में भाग लेने के अतिरिक्त दूसरा मुख्य कारण जिससे हमारी स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ वह यह था कि स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने के लिये, आर्य समाज, तथा स्त्रियों की अनेक महिला संस्थाओं ने उनके लिये जगह जगह स्कूल व कौलिज खोले, जिनमें शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियाँ स्वयं अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हो गईं और उन्होंने अपनी अवस्था को सुधारने के लिये स्वयं प्रयत्न किया तथा कई संस्थाएं स्थापित कीं। इन संस्थाओं में जिन्होंने स्त्रियों की ओर से उनके अधिकारों की रक्षा के लिये विशेषरूप से आन्दोलन किया निम्न मुख्य हैं:—

(१) वीमेंस इण्डियन एसोसियेशन, जिसकी स्थापना सन् १९१७ में हुई। (२) नैशनल कौंसिल आफ वीमेंस (जिसकी स्थापना १९२५ में की गई) तथा (३) आल इण्डिया वीमेंस कान्फ्रेंस—जिसका संगठन सन् १९२६ में किया गया। इनमें से अंतिम संस्था ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये सबसे अधिक भाग लिया है। इस संस्था का नेतृत्व जिन नारियों ने किया है उनमें भारत की अनेक घरानों की देवियाँ सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ के नाम ये हैं:—श्रीमती सरोजिनी देवी, मिसेस एनीबेसेंट, सरला देवी चौधरानी, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित, हंसा मेहता, कमला देवी चटोपाध्याय, अनुसूया बाई काले, लेडी रामा राव, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, लेडी अबदुल कादिर, भोपाल की बेगम, तथा बड़ौदा की महारानी। भारत के विभिन्न नगरों तथा प्रांतों में इस संस्था की २०० से अधिक शाखाएं हैं तथा इसके सदस्यों की

संख्या २०,००० से अधिक बताई जाती है। इस संस्था की राष्ट्र संघ द्वारा भी सराहना की गई है।

विधान में स्त्रियों का स्थान

आज भारत की प्रत्येक नारी को नये विधान में पुरुषों के समान ही अधिकार प्रदान किये गये हैं। विधान में कहा गया है कि स्त्रियों को समान कार्य के लिये पुरुषों के समान ही वेतन मिलेगा। वह पुरुषों के समान सरकार के प्रत्येक विभाग में नौकरी कर सकेंगी। वह देश की ऊंची से ऊंची ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस में अधिकारी का आसन ग्रहण कर सकेंगी। चुनावों में उन्हें पुरुषों के समान ही राय देने का अधिकार होगा। लिंग, जाति, धर्म, नस्ल, विश्वास अथवा विचार के कारण किसी व्यक्ति के साथ किसी प्रकार का भेद भाव नहीं किया जायगा और सब स्त्री पुरुषों को बराबर के अधिकार प्राप्त होंगे तथा उन्हें हर प्रकार की व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा शैक्षिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि कलम की एक खरोंच से हमारे नये विधान में स्त्रियों को पूर्ण सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं।

आज की समाज में स्त्रियों का स्थान

भारत में आज हम देखते हैं कि स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भाग ले रही हैं। परदे की प्रथा अब एक पुरानी बात हो गई है। कुछ कट्टर पंथी पुराने विचार वाले मुट्ठी भर लोगों को छोड़ कर शेष जनता इस प्रथा में विश्वास नहीं करती। हमारे दक्षिण के प्रांतों में तो कभी से परदा प्रथा थी ही नहीं, गावों में भी स्त्रियाँ स्वतन्त्रता पूर्वक खेतों में तथा घरों से बाहर काम करती थीं, उत्तर के प्रदेशों में भी, सिंध तथा पंजाब के प्रभाव के कारण, जहाँ की स्त्रियाँ पाश्चात्य देशों की नारियों की भांति स्वतन्त्र जीवन में विश्वास रखती

हैं, इस प्रथा का प्रायः पूर्ण रूप से ही लोप हो गया है। स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है और वह न केवल अपनी संस्थाओं में ही शिक्षा ग्रहण करती हैं वरन् लड़कों के साथ भी उन्हीं की संस्थाओं में सह शिक्षा प्राप्त करती हैं। पढ़े लिखे घरों में प्रायः प्रत्येक माता पिता ही अपनी कन्याओं को शिक्षित बनाने का प्रयत्न करते हैं। और कुछ नहीं तो, पंजाब यूनिवर्सिटी की भूषण तथा प्रभाकर, और प्रयाग विद्यापीठ की विद्या विनोदिनी, विदुषी, इत्यादि परीक्षाएं तो प्रत्येक लड़की पास कर लेती है। आज हमारे देश की स्त्रियाँ उच्च से उच्च सरकारी पदों पर विद्यमान हैं। हमारी अपनी एक बहिन श्रीमती राज कुमारी अमृत कौर हमारी केन्द्रीय सरकार की मन्त्री हैं। दूसरी बहिन श्रीमती विजया लक्ष्मी अमरीका में हमारे देश की राजदूत हैं। श्रीमती सरोजिनी नायडू, अपनी मृत्यु से पहिले, उत्तर प्रदेश की गवर्नर थीं। अनेक स्त्रियाँ प्रांतीय धारा सभा व सकेन्द्रीय संसद की सदस्य हैं। उनमें से अनेक प्रांतों में मन्त्रियाँ, तथा इसी प्रकार के उच्च पदों पर कार्य कर रही हैं। हमारी नारियाँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेती हैं तथा राष्ट्र संघ की बैठकों में भारत का प्रतिनिधित्व करती हैं। अभी हाल ही में पिछले राष्ट्र संघ के सम्मेलन में श्रीमती सुचेता कृपलानी हमारे देश के प्रतिनिधि मंडल की सदस्य बन कर लेक सक्सेस गई थीं।

नौकरियों के क्षेत्र में हमारी स्त्रियाँ अब केवल डाक्टर, नर्स, तथा अध्यापक का कार्य ही नहीं करतीं, वह दफ़्तरों में क्लर्क, सुपरिन्टेंडेंट, तथा उच्च अफ़सरों का कार्य करती हैं, पुलिस में भर्ती होती हैं, सेना में अनेक पदों पर कार्य करती हैं, मजिस्ट्रेट तथा न्यायाधीशों की कुर्सियों पर बैठ कर मुकदमों की सुनवाई करती हैं वकील तथा बैरिस्टर का कार्य करती हैं, कारखानों में नौकरियाँ करती हैं, इंजीनियर, संपादक, कला विशेषज्ञ, लेखिका, साहित्यिक का कार्य करती हैं तथा पुरुषों के समान ही प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने का प्रयत्न करती हैं।

हिंदू कोड बिल तथा स्त्रियों के आर्थिक अधिकार

हमारे नये विधान में स्त्रियों को सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार तो पूर्णतः प्रदान कर दिये गये हैं परन्तु अभी तक हमारी समाज में उन्हें पुरुषों के समान आर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं। उन्हें अपने पिता की संपत्ति में भाइयों के समान भाग नहीं दिया जाता, अपने पति के देहावसान पर उन्हें उसकी छोड़ी हुई जायदाद पर पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं होता, वह स्वेच्छा से किसी लड़के को गोद नहीं ले सकतीं, वह स्त्री धन को छोड़ कर शेष जमीन जायदाद को नहीं बेच सकतीं। यह सब अधिकार स्त्रियों को प्रदान करने के लिये हिंदू कोड बिल बनाया गया है जो इस समय केन्द्रीय संसद के विचाराधीन है। इस बिल के पास हो जाने पर स्त्रियों को पुरुषों के समान ही आर्थिक अधिकार भी प्राप्त हो जायेंगे। वह अपने पिता की संपत्ति में भागी दार बन जायेंगी तथा उन्हें जमीन जायदाद बेचने अथवा खरीदने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जायगा। विवाह विच्छेद के लिये भी हिंदू कोड बिल में प्रबन्ध किया गया है, परन्तु दूसरे देशों की भांति नहीं, जहाँ एक स्त्री को ब्याहना और दूसरी को छोड़ देना हंसी खेल समझा जाता है। विवाह विच्छेद का अधिकार केवल उस दशा में होगा जब किन्हीं विशेष कारणों से गृहस्थ जीवन एक सुख और उल्लास के केन्द्र के स्थान पर आए दिन के लिए कलह विषाद, संघर्ष तथा लड़ाई झगड़े का क्षेत्र बन जाय।

स्त्रियों की आज की माँगें

हिंदू कोड बिल के पास हो जाने के पश्चात भारत की स्त्रियों को कानूनी तथा वैधानिक दृष्टि से वह हर प्रकार के अधिकार प्राप्त हो जायेंगे जिनके लिये अखिल भारतीय महिला सम्मेलन सन् १९४७ के पश्चात से निरंतर आन्दोलन करती आ रही है। अपने

सन् १९४९ के ग्वालियर अधिवेशन में इस संस्था ने निम्न और माँगें देश के सम्मुख रक्खीं:—

(१) भारत सरकार तथा प्रांतीय सरकारों के अन्तर्गत एक ऐसे मन्त्री की नियुक्ति की जाय जिसका कार्य समाज सेवा संस्थाओं के कार्य का संचालन तथा निरीक्षण करना हो। सरकार के इस विभाग को 'मिनिस्ट्री आफ़ सोशल अफ़ेयर्स'' कहा जाय। इस विभाग का मुख्य कार्य सामाजिक क्षेत्र से प्रत्येक प्रकार की असमानता तथा शोषण की भावना को दूर करना हो।

(२) लड़कियों को अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिये देश के हर प्रांत, नगर तथा गाँव में प्रबंध किया जाय।

(३) हाई स्कूल की श्रेणी तक लड़कियों को उसी प्रकार शिक्षा दी जाय जैसी लड़कों को, जिससे वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पदार्पण कर सकें तथा प्रतियोगिता परीक्षाओं इत्यादि में बैठकर हर प्रकार की सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकें।

(४) विवाहित स्त्रियों के लिये बहुत अधिक संख्या में जच्चा घर तथा शिशु गृह खोले जाँय। जिससे उन स्त्रियों तथा बच्चों को मौत के मुंह से बचाया जा सके जो आजकल शिक्षित दाइयों तथा चिकित्सालयों के अभाव के कारण सहस्रों की संख्या में प्रति वर्ष काल की भेंट हो जाती हैं।

(५) गर्भवती स्त्रियों की देख भाल के लिये देश भर में सैंटर खोले जाँय।

(६) परिवारों के योजनात्मक विकास के लिये देश भर में गर्भ निरोधक संस्थाएं स्थापित की जाँय जिनसे अशिक्षित स्त्रियाँ

भी लाभ उठा सकें ।

(७) स्कूल और कौलिजों में लड़कों तथा लड़कियों को परिवार संबंधी शिक्षा प्रदान की जाय जिससे भारत की बढ़ती हुई जन संख्या, गरीबी तथा दुखी परिवारों की समस्या हल की जा सके ।

(८) हिंदू कोड बिल को शीघ्र से शीघ्र स्वीकार किया जाय ।

यह ऐसी माँगें हैं जिनका अधिकतर संबंध सिद्धांतिक नहीं व्यवहारिक कार्यों से है और प्रांतीय तथा केन्द्रीय सरकारें, स्वतः ही अपने साधनों के अनुसार इन कार्यों की पूर्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न कर रही हैं ।

सावधानी की आवश्यकता—यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि जहाँ भारत सरकार तथा देश की जनता स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये सतत प्रयत्न कर रही है वहाँ हमारे देश की स्त्रियों में एक ऐसी भावना दृष्टिगोचर हो रही है जिसके कारण समाज के प्रतिष्ठित तथा वयोवृद्ध व्यक्ति यह समझने लगे हैं कि स्त्रियाँ, अपना स्वाभाविक कार्य छोड़कर, एक स्वच्छन्द, विलासितापूर्ण तथा फ़ैशन प्रिय जीवन व्यतीत करने की ओर अधिक अग्रसर हो रही हैं । आजकल जहाँ देखिये स्त्रियाँ, अपने घर का काम छोड़ कर, बच्चों को नौकरानियों के सुपुर्द करके, लिपस्टिक तथा गालों पर सुर्खी लगाकर तथा उत्तेचनात्मक वस्त्र पहिन कर, सिनेमाओं, बाजारों, तथा मेले ठेलों में घूमती हुई नजर आती हैं । स्त्रियाँ अच्छी प्रकार रहें, स्वच्छ वस्त्र पहिनें, श्रृंगार भी करें—इन सब का विरोध करने का हमारा प्रयोजन नहीं—परन्तु हम यह उचित नहीं समझते कि बिना सोचे समझे, स्त्रियाँ अपनी प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता को भूल कर, पाश्चात्य देशों की स्त्रियों की भांति, नैतिकता की दृष्टि से गिरा हुआ आचरण करें, सिगरेट पीती हुई बाजारों में घूमें, होटलों में बैठकर शराब पियें, नाच व रंगेलिया मनायें, दूसरे पुरुषों के साथ स्वच्छंद

रूप से घूमें, अपने बच्चों की परवाह न करें, उन्हें आयाओं के सहारे छोड़ दें, घर के काम से घृणा करें, तथा अपने सास-श्वसूर, पति व संबंधियों का आदर सत्कार न करें। आजकल कुछ इसी प्रकार की प्रवृति हमारी पढ़ो-लिखी स्त्रियों में देखने को मिलती हैं। प्रतीत होता है कि नव स्वतन्त्रता के नशे में स्त्रियाँ अपना संतुलन खो बैठी हैं और ऐसा आचरण करने लगी हैं जो हमारी प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता के बिलकुल प्रतिकूल है। हमारी देवियों को चाहिये कि वह शिक्षा तथा स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ समझें और इस प्रकार का आचरण करें जिस पर सभ्य समाज गर्व कर सके तथा जिससे संसार की दूसरी महिलाएं भी शिक्षा ग्रहण कर सकें।

हरी जनों की समस्या

स्त्रियों की भांति कुछ काल पहिले तक हमारे देश में हरिजनों के साथ अत्यंत अत्याचार पूर्ण व्यवहार किया जाता था। उन्हें हर प्रकार के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकारों से वंचित रक्खा जाता था। अस्पृष्यता की प्रथा हमारे हिंदू धर्म का सबसे महान कलंक थी। जिस धर्म ने विश्व को शाँति, अहिंसा, प्रेम तथा आध्यात्मवाद का पाठ पढ़ाया, जिसकी शिक्षा, ज्ञान तथा दार्शनिक ज्योति के आगे सारा संसार नत मस्तक हो गया, जिसके अखंड ज्ञान भंडार की चमक ने दुनिया के धर्म विशेषज्ञों को चकाचौंध कर दिया, कैसे आश्चर्य की बात है कि उसी धर्म की दुहाई देकर, सहस्त्रों वर्षों तक, हमारी जनता ने अपनी समाज के एक सबसे आवश्यक अंग को बहिष्क्रित तथा तिरस्कृत होते देखा। हरि-जनों के साथ हमने पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया। जो जाति दूसरी सब जातियों की सेवक थी, जो जनता के दूसरे सदस्यों के आराम तथा सुविधा की खातिर नीच से नीच काम करने में भी परहेज नहीं करती थी, जो हमारा मैला, कुचैला, गंद तथा नरक साफ़ करती थी, जो हमें इस योग्य बनाती थी कि हम महलों, प्रासादों तथा नगरों में रहकर ऐश

और आराम से अपना जीवन व्यतीत कर सकें, कितने दु:ख की बात है कि उसी को हमने अपने गले से लगाने के बजाय, दूध की मक्खी की तरह निकाल कर अवनति के गर्त में ढ़केल दिया। उस जाति की छाया मात्र से हम यह अनुभव करने लगे कि हम अपवित्र हो जायेंगे, उसे मन्दिरों में प्रवेश का अधिकार देकर हमारे देवता रूठ जायेंगे, उसे धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकार देकर हमारा ज्ञान भंडार लूट जायगा, उसे अपनी बस्तियों में रहने की सुविधा देकर हम नीच बन जायेंगे। आज पिछली यह सब बातें याद करके हमें विश्वास नहीं होता कि हमारे पूर्वज, या माता पिता, या कुछ काल पहले हम स्वयं इतने निर्दयी, पिशाच या हृदयहीन थे।

हरिजनों की अवस्था

ोई बहुत पुरानी बात नहीं है, भारत में ही ऐसे पिछड़े हुए भाग हैं जहाँ हमारे अछूत कहे जाने वाले भाइयों के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता है। नगरों और नई रोशनी के नौजवानों में चाहे इस दशा में भारी परिवर्तन हो गया हो, परन्तु आज भी हमारे देश की अधिकाँश गावों में रहने वाली तथा अशिक्षित जनता ऐसी है जो हरिजनों को महापातकी समझती है, उसके साथ भिट जाने पर घर लौट कर स्नान करती है, उनके हाथ की छुई हुई वस्तु को ग्रहण करने में मरने मारने पर उद्यत हो जाती है, उनको पानी पिलाने के समय नलकी का प्रयोग करती है, उनके बीच रास्ते में आ जाने पर दुर दुर करके में उन्हें पीछे हटा देती है, उनके जमीन या जायदाद खरीदने' या पक्का हवादार मकान बनवाने पर उनके विरुद्ध तरह तरह के लाँछन लगाती है, उनको दावतें करने, बरात चढ़ाने, स्वच्छ वस्त्र पहिनने, या अच्छा जीवन व्यतीत करने से रोकती है। उत्तर के प्रांतों में तो फ़िर भी हमारे हरिजन भाइयों की अवस्था कुछ अच्छी है परन्तु दक्षिण के प्रदेशों में तो उनकी दशा बहुत

ही बुरी है। वहाँ के ब्राह्मण किसी अछूत को दूर से आता देख, दो फ़र्लांग के परे से ही चिल्लाते हैं, "दूर हट जावो, हम आते हैं।" यदि दक्षिण के किसी पाखण्डी ब्राम्हण पर अछूत की परछाईं पड़ जाय तो फ़िर वह नर्मदा या गोदावरी में स्नान किये विना पवित्र नहीं होता। मन्दिरों की तो बात ही क्या उस प्रांत में हरिजनों के आम सड़कों पर चलने पर भी उच्च वर्ण लोग ऐतराज करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे हरिजन भाइयों की आज भी कितनी हीन दशा है। उन्हें न किसी प्रकार के सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं, न आर्थिक और राजनीतिक।

हरिजन सुधार आँदोलन

हरिजनों की इस दयनीय दशा को सुधारने के लिये हमारे समाज सुधारकों ने सदा से प्रयत्न किया है। आरंभ में महात्मा बुद्ध तथा महावीर जी ने वर्ण संबंधी भिन्नताओं को दूर कर हरिजनों की अवस्था सुधारने का प्रयत्न किया। इसके पश्चात चौदहवीं शताब्दी में रामानन्द स्वामी ने जाति व्यवस्था के थोथेपन को सिद्ध किया। मुसलमानों के काल में कबीर, नानक, तुकाराम, एकनाथ तथा नामदेव इत्यादि भक्ति मार्ग के प्रवर्तकों ने हरिजनों की अवस्था सुधारने के लिये भारी आन्दोलन किया। उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राम मोहन राय तथा स्वामी दयानन्द ने उनके उद्धार का बीड़ा उठाया। आर्य समाज की संस्थाओं ने इस कार्य पर सबसे अधिक जोर दिया और देश भर में उनकी शिक्षा तथा उन्नति के लिये स्कूल, पाठशालाएं, तथा अछूत उद्धार सभाएं स्थापित कीं। इसके पश्चात महात्मा गाँधी ने अपने जीवन की सारी शक्ति इस कार्य में लगा दी। उन्होंने हिंदू धर्म से इस कलंक को मिटाने के लिये, कितने ही बार आमरण अनशन किये, देश के कोने कोने का दौरा किया, मंदिर प्रवेश आँदोलन चलाया, हरिजन बस्तियों में जाकर रहे, अपने आप को

भंगी कह कर पुकारा, हरिजन सेवक संघ की स्थापना की, हरिजन पत्र चलाया, लाखों व करोड़ों रुपया जमा करके, उनके लिये शिक्षा तथा दूसरी संस्थायें खोलीं, परन्तु जाति पाँति का भेद भाव हमारे सामाजिक संगठन में इतना घर कर चुका था, कि उसका जड़ मूल से अन्त न हो सका। 'बापू' के प्रयत्नों के फ़लस्वरूप हरिजनों की सामाजिक अवस्था में तो काफ़ी प्रगति हुई, सैकड़ों हिंदू मंदिरों के द्वार उनके लिये खुल गये, उनके प्रति घृणा का भाव दूर हो गया, सवर्ण हिंदू उनके साथ मिलने और बैठने लगे, उनके लिये नये नये उद्योग-मंदिर और पाठशालाएं खोली गईं, परन्तु उनकी आर्थिक अवस्था में अधिक सुधार न हो सका, और जहाँ तहाँ हिंदू धर्म के पंडे और पुजारी, उन पर तरह तरह के अत्याचार करते ही रहे।

हमारा नया विधान और हरिजन—

जो काम सहस्त्रों वर्षों के सतत तथा निरन्तर परिश्रम के पश्चात भी हमारे अनेक समाज सुधारक तथा राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी न कर सके, भारत के नये विधान के अन्तर्गत उसे पूर्ण कर दिया गया है। भारतीय विधान की १५ वीं धारा में कहा गया है कि:—

"राज्य धर्म, नसल, जाति पाँति, स्त्री-पुरुष या इनमें से किसी भेद भाव के बिना प्रत्येक व्यक्ति को बराबर के अधिकार प्रदान करेगा। भारत के प्रत्येक नागरिक को अधिकार होगा कि वह—

(१) दुकानों, चाय घरों, होटलों तथा मनोरंजन के स्थानों में बिना किसी रोक टोक के आ जा सके।

(२) कुओं, तालाबों, सड़कों और सार्वजनिक स्थानों का उपयोग कर सके।

(३) किसी भी प्रकार का व्यवसाय या व्यापार करे।

(४) सरकारी संगठन में उच्च से उच्च पद प्राप्त करें।

इस प्रकार नये संविधान में हरिजनों को सामाजिक समानता का अधिकार प्रदान किया गया है। इसके पश्चात विधान की १७ वीं धारा में 'अस्पृश्यता' का बीज जड़ मूल से ही नष्ट कर दिया गया है। इस धारा में कहा गया है "भारतवर्ष से छुआ छूत का अन्त कर दिया जाता है, छुआ छूत बरतने की मनाही की जाती है। छुआछूत के आधार पर यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे पर किसी भी प्रकार की रोक टोक लगायेगा तो उसे राज्य की ओर से दंड दिया जायगा।

आगे चल कर विधान में जहाँ राज्य नीति के नियामक सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है वहाँ पर ४६ वीं धारा में कहा गया है "राज्य विशेष रूप से जनता की पिछड़ी हुई जातियों जैसे हरिजन, कबीली जातियाँ, इत्यादि के अधिकारों की रक्षा करेगा और उन्हें हर प्रकार के सामाजिक शोषण से बचायेगा।"

नौकरियों तथा व्यवस्थापिका सभाओं में हरिजनों के अधिकारों की रक्षा के लिये, भारतीय विधान में विशेष रूप से व्यवस्था की गई है। उसमें कहा गया है:—

"प्रत्येक प्रांत की विधान सभा में हरिजनों के लिये उनकी आबादी के हिसाब से स्थान सुरक्षित रक्खे जायेंगे। नौकरियाँ देते समय उनके हितों का विशेष रूप से ध्यान रक्खा जायगा।"

इसके अतिरिक्त यह देखने के लिये कि विधान में दिये गये हरिजनों के प्रत्येक अधिकार की समुचित रक्षा की जाती है, राज्य द्वारा केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों में ऐसे अफ़सरों की नियुक्ति की जायगी जो यह देखें कि उनके अधिकारों की सुचारु रूप से रक्षा की जाती है या नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नव विधान द्वारा हमारे देश में एक ऐसे समाज की रचना करने का प्रयत्न किया गया है जिसमें किसी भी प्रकार

की ऊंच नींच, छुआ छूत तथा छोटे बड़े का प्रश्न न हो, प्रत्येक नागरिक बराबर हो, तथा वह अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रकार का व्यवसाय करके अपना जीवन निर्वाह कर सके तथा अपने व्यक्तित्व का पूर्ण रूप से विकास कर सके ।

स्वयं हरिजनों का कर्तव्य

भारतीय विधान ने हिंदू धर्म से 'अस्पृ- श्यता' का कलंक तो मिटा दिया परन्तु भारतीय विधान की इन धाराओं का हरिजन कहाँ तक लाभ उठाते हैं, तथा कहाँ तक दूसरे मनुष्यों का मुंह ताकने के बजाय, अपने पैरों पर खड़ा होना सीखते हैं, यह अब उन्हीं का काम है। प्रत्येक हरिजन का धर्म है कि वह अब अपने मन से छोटे पन का भाव निकाल दें और यह समझने लगें कि समाज की दूसरी ऊंची जाति के मनुष्यों की भांति, वह भी एक मनुष्य हैं और समाज के संगठन में ऊंचे से ऊंचा पद प्राप्त करने का उसको भी उतना ही अधिकार है जितना किसी दूसरे मनुष्य को ।

हरिजनों को चाहिये कि वह अपने बीच से भी छोटे बड़े का भेद भाव मिटा दें। आज हमारे कितने ही हरिजन भाई अपनी ही बीच की जातियों को ऊंचा नीचा मानते हैं। धोबी समझते हैं कि चमार नीच है, चमार समझते हैं कि मेहतर बुरे हैं, मेहतर समझते हैं कि हमसे तो कंजर घृणित हैं, इत्यादि। सबसे पहिले हरिजनों को आपस का भेदभाव मिटाना होगा, इसी के पश्चात वह सर्वण हिंदुओं के सम्मान का पात्र बन सकेंगे। हरिजनों को अपनी बुरी आदतों को छोड़ देना चाहिये तभी हरिजन समाज में अपना खोया हुआ मान पा सकते हैं। नये भारत में हरिजनों का भविष्य अत्यंत उज्वल है, परन्तु इसकी कुंजी उन्हीं के हाथ में है ।

हिन्दू समाज की दूसरी सामाजिक कुरीतियाँ

जाँति पाँति, संयुक्त कुटुम्ब, तथा हरिजनों की समस्या के अतिरिक्त

हमारे सामाजिक जीवन की कुछ और कुरीतियाँ हैं जो हिंदू धर्म की जड़ों को खोखला कर रही हैं और हमारे देश में एक सच्चे प्रजातन्त्रवादी शासन की स्थापना की विरोधी हैं। इन कुरीतियों में हम बाल विवाह वृद्ध विवाह, बहु विवाह, पर्दा प्रथा, देवदासी प्रदा, चौका प्रथा, विधवापन दहेज प्रथा इत्यादि के नाम ले सकते हैं। विवाह विच्छेद, गर्भ निरोध तथा वैज्ञानिक पारिवारिक संगठन के अभाव का उल्लेख भी हम इन्हीं कुरीतियों में कर सकते हैं। यह सच है कि धीरे धीरे शिक्षा के प्रसार से यह कुरीतियाँ स्वतः ही हमारे सामाजिक संगठन से दूर होती जाती हैं, उदाहरणार्थ बाल विवाह, पर्दा प्रथा, देवदासी प्रथा, चौका प्रथा इत्यादि सामाजिक कुरीतियाँ अब इतिहास का विषय रह गई हैं। बहुत कम लोग अब ऐसे हैं जो इन प्रथाओं में विश्वास रखते हैं या उन्हें अच्छा समझते हैं। जो थोड़े बहुत उदाहरण बाल विवाह अथवा पर्दा देखनें को मिलते भी हैं वह न के बराबर हैं और हमारी नई पीढ़ी के लोग जिन्होंने हाल ही में अपने जीवन में पदार्पण किया है, उन कुरीतियों का जड़ मूल से नष्ट कर देंगे। परन्तु दुर्भाग्य तो यह है कि हमारी समाज से एक कुरीति दूर नहीं होती कि दूसरी सामने आ खड़ी होती है। हम पर्दा प्रथा को दूर किया परन्तु इस लिपस्टिक और पेट तक ब्लाउज पहनने की प्रथा का क्या करें ? हमने मन्दिरों से देवदासी प्रथा को दूर किया, परन्तु इन बनी ठनी, पाश्चात्य फ़ैशन प्रिय सड़कों पर घूमने वाली देवदासियों का क्या करें ? हमने बाल विवाह की कुरीति को नष्ट किया परन्तु यह लंबे चौड़े दहेज माँग कर लड़कों को बेचने की प्रथा का क्या करें ? आज हमारा सामाजिक संगठन कुछ इतना खोखला हो गया है कि हम एक संयमी, नियन्त्रित तथा नैतिक जीवन व्यतीत करने में घोर कष्ट का अनुभव करते हैं। हम यह समझनें का प्रयत्न नहीं करते कि स्वतन्त्रता नियन्त्रण का नाम है, अधिकार कर्तव्य

पूर्ति का नाम है। अपनी स्त्री के मरने पर, चाहे हमारी कितनी ही अवस्था हो हम चाहते हैं कि और विवाह कर लें, परन्तु यदि हमारी अपनी ही कोई जवान बहन घर में विधवा बन कर बैठी हुई है तो हम उससे नहीं पूछते 'बहिन तुम्हारे लिये कोई योग्य वर तलाश कर दें।" हम स्त्री के कुरूप होने, या उसमें और किसी प्रकार के दोष होने पर उसे घर से निकालने पर उतारू हो जायेंगे, परन्तु हम हिंदू कोड में वर्णित स्त्रियों के अपने पति को त्याग देने के अधिकार का विरोध करेंगे।

हम अपने हिंदू समाज से सामाजिक कुरीतियों को केवल उस समय दूर कर सकते हैं जब हम अधिकारों तथा कर्तव्यों का पारस्परिक संबंध समझ लें।

मुसलमानों का सामाजिक जीवन

हिंदू और मुसलमानों के सामाजिक जीवन में भारी अंतर है, यद्यपि हिंदुओं की भांति उनका जीवन भी धार्मिक भावना से अधिक प्रभावित होता है। हिंदू धर्म एक अत्यंत सनातन और प्राचीन धर्म होने के नाते उसके अनुयायियों में अंध विश्वास तथा कट्टरपन की भावना कम होती जा रही है, परन्तु मुसलमानों का धर्म केवल १३०० वर्ष ही पुराना है, दूसरे उनके अनुयायी अधिकतर अशिक्षित हैं। इससे उनमें कट्टरपन, अनुदारपन तथा अंध विश्वास की भावना अधिक है। यही कारण है कि धर्म के नाम पर जहाँ अधिकतर हिंदुओं में कोई हलचल पैदा नहीं होती वहाँ मुसलमान हर प्रकार का नीच काम करने के लिये तैयार हो जाते हैं।

अंध विश्वास के अतिरिक्त, हिंदुओं की भांति, मुसलमानों के सामाजिक जीवन में भी अनेक सामाजिक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। वैसे तो मुसलमानों का धर्म हिंदू धर्म की अपेक्षा अधिक जनतन्त्रवादी है, उसमें किसी प्रकार का जाति बंधन नहीं, सब मुसलमान, ऊंच नीच, छोटे बड़े, निर्धन मालदार, के विचार के बिना बराबर समझे जाते हैं, वह एक ही थाली में बैठकर खाना खा सकते हैं, सब एक ही हुक्के का प्रयोग करते

हैं, साथ मिल कर एक ही मस्जिद में नमाज पढ़ते हैं, परन्तु हिंदुओं के रीति रिवाजों का उन पर भी प्रभाव पड़ा है और वह भी एक प्रकार की जाति व्यवस्था में विश्वास करने लगे हैं। शिया और सुन्नी एक दूसरे को अलग तथा विरोधी मतों का सदस्य समझते हैं। इसके अतिरिक्त पठान, मुगल, मेव, सैयद और शेख एक प्रकार से अपने आपको भिन्न भिन्न जातियों का सदस्य मानते हैं। वह एक दूसरे के साथ विवाह संबंध नहीं करते। इसके अतिरिक्त हिंदू धर्म से परिवर्तित मुसलमानों को भी नीचा समझा जाता है।

मुसलमानों में बहु विवाह की प्रथा का भी बहुत अधिक जोर है। चार स्त्रियाँ तो प्रत्येक मुसलमान हदीस की आज्ञानुसार ही रख सकता है। स्त्रियों के साथ अक्सर मुसलमान अच्छा व्यवहार नहीं करते। उनके धर्म में, हिंदुओं की भांति, अर्धांगिनी को जीवन साथी, तथा विवाह को दो आत्माओं का मेल नहीं माना जाता, वरन् स्त्री को पुरुष की वासना की तृप्ति का साधन माना जाता है। उनके धर्म में विवाह एक प्रकार का 'ठेका' है जो इच्छानुसार तोड़ा जा सकता है। यही कारण है कि बहुत से मुसलमानों में 'मुता' विवाह का भी प्रचार है जिसके कारण कोई पुरुष किसी स्त्री से एक सप्ताह, एक माह अथवा एक वर्ष के लिये भी विवाह कर सकता है। वैसे तो मुसलनानों के धर्म में विवाह विच्छेद की प्रथा है, स्त्रियों को सपत्ति में भी अधिकार दिया जाता है, परन्तु विवाह विच्छेद की आज्ञा केवल पुरुषों को है, स्त्रियाँ अपने पति का त्याग नहीं कर सकती, उन्हें पर्दे के पीछे रक्खा जाता है और घर से बाहर बिना बुर्का ओढ़े निकलने की आज्ञा नहीं दी जाती। यही कारण है कि अधिकतर मुसलमानियाँ तपेदिक के रोग से पीड़ित पाई जाती हैं।

मुसलमानों में बाल विवाह तथा निकट संबंधियों से विवाह का भी बहुत बुरा रिवाज प्रचलित है। छोटी छोटी लड़कियों की शादी सगे भाई

और बहिन को छोड़ कर, और किन्हीं के साथ हो सकती यह प्रथा न केवल नैतिक दृष्टि से बुरी है वरन मैडिकल विज्ञान की दृष्टि से भी घृणित समझी जाती है। इसके कारण मुसलमानोंका मानसिक विकास रुक जाता है और वह प्रायः हिंदुओं की अपेक्षा कम बुद्धिमान पाये जाते हैं।

मुसलमानों से सामाजिक कुरीतियाँ दूर करने के लिये राज्य अधिक प्रयत्न नहीं कर सकता, कारण मुसलमान भारतवर्ष में एक अल्प संख्यक जाति हैं और सरकार कितनी ही अच्छी नीयत से उनके उद्धार के लिये काम करना चाहे, मुसलमान यही समझेंगे कि उनके धर्म के साथ हस्तक्षेप किया जा रहा है। दूसरे नव विधान के अन्तर्गत हमारा राज्य असाँप्रदायिक है। उस दृष्टि से भी वह किसी धर्म के सिद्धांतों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। सामाजिक सुधार की अंतिम जिम्मेदारी इसलिये स्वयं हमारी जनता, तथा उसकी धार्मिक व शिक्षा संस्थाओं की है।

अध्याय १८

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन

हम पिछले अध्याय में बता चुके हैं कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में अनेक विभिन्नताएं होते हुए भी हमारा देश सदा एक संयुक्त राष्ट्र ही रहा है। साँस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से हम एक राष्ट्र हैं। यह सच है कि एक अविच्छिन्न राष्ट्रीयता की भावना, अभी हाल तक, हमारी जनता में अधिक घर नहीं कर पाई थी। यही कारण है कि विदेशियों के आक्रमण के समय सारे भारतवासी एक होकर, आतताइयों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा कायम न कर सके। आपसी द्वेष भाव तथा राष्ट्रीय एकता की भावना की कमी के कारण ही हमने मुसलमानों के हाथों अपनी स्वतन्त्रता खोई और इसके पश्चात जब अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कंपनी के रूप में, हमारे देश में आये तो हम आपसी भेद भावों को भुला कर उनका मुकाबिला न कर सके। हमारी राजनीतिक दासता नें हमारे नैतिक चरित्र को और भी नीचे गिरा दिया। हम अपनी प्राचीन परम्परा, सभ्यता तथा संस्कृति को भूल गये और बन्दरों की तरह अपने विदेशी शासकों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान तथा बोल चाल के तरीकों को अपनाने लगे। बहुत से भारतीयों ने अपने धर्म को भी छोड़ कर ईसाई धर्म भी अपनाना आरम्भ कर दिया। इन्हीं सब कारणों से उन्नीसवीं शताब्दि के आरंभ में हमारे देश में एक धार्मिक तथा सामाजिक क्रांति का प्रादुर्भाव हुआ। इस क्रांति के जन्म दाता हमारे

धर्म सुधारक नेता श्री राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, तथा रामकृष्ण परमहंस थे, जिन्होंने न केवल भारतवासियों को उनके वास्तविक धर्म तथा प्राचीन संस्कृति, गौरव और सभ्यता का ही ज्ञान कराया वरन् जनता में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में भी अत्यंत सहायता प्रदान की। इसी बीच हमारे देश में श्री बंकिम चन्द्र चटर्जी जैसे लेखक जिन्होंने 'वन्दे मातरम्' गीत लिखा तथा अनेक और पत्रकारों ने जन्म लिया। इन सब नेताओं ने भारत वर्ष में राष्ट्रीय चेतना की भावना जागृत करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भाग लिया।

राष्ट्रीय जागृति के विभिन्न कारण

भारत में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में जिन तत्वों ने भाग लिया उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है :—

१. राजनीतिक एकता की स्थापना—ईस्ट इण्डिया कंपनी के राज्य में प्रथम बार भारत में कश्मीर से कन्याकुमारी और आसाम से द्वारिका तक राजनीतिक एकता का प्रादुर्भाव हुआ। इस एकता के कारण सारा देश एक ही शासन सूत्र में बंध गया और भारत की ३० कोटि जनता को सहस्त्रों वर्ष के खंडित इतिहास के पश्चात प्रथम बार अंग्रेजी काल में अपने देश का प्राचीन विशाल स्वरूप देखने को मिला।

२. अंग्रेजी शिक्षा—भारत में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में दूसरा महत्वपूर्ण भाग अंग्रेजी शिक्षा का था। इस शिक्षा के द्वारा सारे भारतवासियों को एक दूसरे पर अपने विचार प्रकट करने की सुविधा प्राप्त हो गई। इससे पहिले हमारे देश के विभिन्न प्रांतों में अलग अलग भाषाएं बोली जाती थीं और सब भारतवासी एक ही भाषा के द्वारा दूसरों पर अपने विचार व्यक्त न कर सकते थे। दूसरे, अंग्रेजी के ज्ञान के कारण हमारे देश-वासियों को दूसरे देशों का साहित्य तथा इतिहास पढ़ने का अवसर मिला। उन्होंने देखा कि संसार के दूसरे देशों ने अपनी स्वाधीनता किस प्रकार

प्राप्त की थी। उन्हें स्वतन्त्र देशों की जनता के राजनीतिक अधिकारों का भी ज्ञान हुआ और वह समझने लगे कि प्रजातन्त्र शासन का क्या अर्थ होता है।

३. पश्चिमी सभ्यता—पश्चिमी सभ्यता के संपर्क ने भी भारत वासियों में एक ऊंचे रहन-सहन तथा सभ्य जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता का ज्ञान कराया और वह समझने लगे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बिना वह एक समृद्धि -शाली प्रथा प्रगतिशील जीवन व्यतीत न कर सकेंगे।

४. विदेशी यात्रा—अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नव युवक जब दूसरे देशों में गये और वहाँ उन्होंने स्वतन्त्रता के वातावरण में साँस लिया तो उन्हें अनुभव हुआ कि अपने देश की हीन अवस्था का वास्तव में क्या कारण है और दूसरे देशों के लोग भारतवासियों को इतनी घृणा की दृष्टि से क्यों देखते हैं। मन ही मन ऐसे नवयुवकों ने अपने देश को स्वतन्त्र करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली, और उनमें से कितनों ने ही हमारे देश के राष्ट्रीय आँदोलन का नेतृत्व धारण किया।

५. धार्मिक सुधार आँदोलन तथा भारत की प्राचीन संस्कृति का पुनरुत्थान—उन्नीसवीं शताब्दि के धार्मिक सुधारकों ने जिनमें राजा राम मोहन राय तथा स्वामी दयानन्द मुख्य थे भारतवासियों के हृदय में अपनी प्राचीन हिंदू संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति श्रद्धा उत्पन्न की। उन्होंने भारतीयों को बताया कि किस प्रकार उनका अपना देश संसार का गुरू तथा विश्व का सबसे गौरवशाली देश था। इस प्रकार इन नेताओं द्वारा जागृत धार्मिक भावना ने राष्ट्रीयता को जन्म दिया।

६. आर्थिक असंतोष तथा बढ़ती हुई गरीबी—आरंभ से ही हमारे अंग्रेज शासकों ने भारत में एक ऐसी आर्थिक नीति का अवलंबन किया जिसके कारण हमारा देश दरिद्रता, अकाल, तथा भुखमरी की ज्वाला में झुलसता चला गया। उसके काल में हमारे प्राचीन उद्योग धन्धे नष्ट हो गये और

हमारे बाजारों में विदेशों की बनी हुई सस्ती चीजें बिकने लगीं। हमारा व्यापार भी नष्ट हो गया और हमारे देश में बेकारी और गरीबी बढ़ती चली गई। इन्हीं सब कारणों से जनता में विदेशी शासन के विरुद्ध एक भारी असंतोष की लहर दौड़ गई।

७. भारतीय समाचार पत्र तथा साहित्य की प्रगति—अंग्रेज तथा भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों तथा हिंदी के साहित्य ने भी राजनीतिक चेतना के कार्य में भारी सहयोग दिया। उन्नीसवीं शताब्दि में हमारे देश में अनेक समाचार पत्र प्रकाशित किये गये और छापेखाने के आविष्कार से अनेक पुस्तकें लिखी गईं। इसी काल में भारत में बंकिम, टैगोर, सरला देवी तथा रजनीकाँत सेन जैसे साहित्यिक, कवि और लेखकों ने जन्म लिया। उन्होंने देश भक्ति से ओत प्रोत साहित्य को जन्म देकर भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना निर्माण करने के कार्य में अत्यंत महत्वपूर्ण भाग लिया।

८. यातायात के साधनों में उन्नति—अंग्रेजों के काल में हमारे देश में आने जाने तथा परस्पर संपर्क के साधनों जैसे रेल, तार, डाक तथा सड़कों इत्यादि की भी भारी उन्नति हुई जिसके कारण सारा देश एक सूत्र में बंध गया और जनता को इस बात का अवसर मिला कि वह सारे देश की समस्याओं पर विचार कर सके। राष्ट्रीय नेताओं को भी इन्हीं सुविधा के कारण सारे देश में भ्रमण तथा राजनीतिक आँदोलन करने का अवसर प्राप्त हो सका।

९. १८५७ का प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम—सन् १८५७ में भारत वासियों ने अपने विदेशी शासकों के विरुद्ध प्रथम बार एक संयुक्त मोर्चा कायम किया। यह सच है कि इस स्वाधीनता संग्राम में भारतवासियों को सफलता प्राप्त न हुई और आजादी के सिपाहियों को बुरी तरह कुचल डाला गया। उनके दल के दलों को रस्सियों से बांध कर पेड़ों की डालियों पर लटका कर फांसी दे दी गई, और इस प्रकार उनका आजादी

की भावना को बिलकुल पीस डालने का प्रयत्न किया गया। परन्तु, इस सब दमन से , अंग्रेज, भारतीयों के हृ दय से देश प्रेम की भावना का अन्त न कर सके और रह रह कर सन् १८५७ की याद भारतीयों के हृदय में टीस उत्पन्न करती रही।

१०. लार्ड लिटन का शासन——सन् १८८० के लगभग, जिस समय लार्ड लिटन भारत के गवर्नर जनरल थे, तो अंग्रेजी शासको ने कुछ ऐसी भीषण गलतियाँ भारत के शासन के संबंध में कीं कि उनके कारण भारतीय जनता में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध असंतोष की लहर फैल गई। इसी समय सन् १८७७ में दिल्ली में दरबार किया गया। यह वह समय था जब सारे देश में भीषण अकाल फैला हुआ था और लाखों मनुष्य भूख और प्यास की ज्वाला से तड़प तड़प कर अपने प्राण खो चुके थे। इसी समय अफगानिस्तान के विरुद्ध भारतीय कोष से भारी रकम खर्च करके युद्ध लड़ा गया। लार्ड लिटन के ही काल में समाचार पत्रों पर तरह तरह की रोक लगाई गई। उसी ने लंका शायर के कपड़े के व्यापारियों को प्रसन्न करने के लिये, इंगलैण्ड के कपड़े पर से आयात कर, उठा लिया। उसी ने भारतीय सेना के खर्चे को बढ़ाया।

११. एल्बर्ट बिल आँदोलन——सन् १८८३ में लार्ड रिपन के काल में कानूनी सदस्य मि० एल्बर्ट ने वायसराय की कौंसिल में एक बिल रक्खा जिसके द्वारा न्याय के क्षेत्र से जाति, नस्ल और रंग का भेद भाव मिटाने का प्रयत्न किया गया था। इस बिल के द्वारा भारतीय जजों को इस बात की आज्ञा दी गई थीं कि वह अंग्रेजों के विरुद्ध भी मुकदमों का फैसला कर सकें। परन्तु, इस बिल ने भारत के समस्त अंग्रेजों को एक क्रोध और आवेग की भावना से भर दिया और उन्होंने इस बिल का विरोध करने के लिये जगह जगह योरोपियन डिफेंस एसोसियेशन बनाये। उनके द्वारा बिल को रद्द करने का आँदोलन किया। लार्ड रिपन की सरकार इस आँदोलन का सामना न कर सकी और उसे एल्बर्ट बिल वासिप लेना पड़ा। परन्तु,

अंग्रेजों की इस हलचल ने भारतीयों को भी आँदोलन का मार्ग सिखा दिया और उन्होंने यह समझ लिया कि जब तक वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिये किसी संस्था को जन्म नहीं देंगे तब तक वह अंग्रेज शासकों के नीचे इसी प्रकार पिसते रहेंगे ।

१२. पूर्व के देशों में राजनीतिक जागृति—जिस समय उपरोक्त कारणों से भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध एक असंतोष की लहर दौड़ रही थी तो पूर्व के देशों में कुछ इस प्रकार की राजनीतिक घटनाएं हुई जिनसे भारतीयों के हृदय में एक नव उत्साह तथा विश्वास का निर्माण हुआ। सन् १८९६ में ऐबीसीनियाँ जैसे छोटे हब्शियों के देश ने इटली को हरा दिया और सन् १९०४ में जापानियों ने रूसियों को एक युद्ध में पराजित कर दिया। इन दोनों घटनाओं से भारतीयों को विश्वास हो गया कि योरोप के देशों की सेनाओं को हराना कोई असंभव बात नहीं। इसी समय यूनान, टर्की तथा इटली के देशों में स्वतन्त्रता संग्राम हुए और उनकी सफलता के पश्चात भारत वासियों ने भी सोचा कि उन्हें अपने देश को स्वतन्त्र करने के लिये आँदोलन करना चाहिये ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त सभी कारणों से भारत वासियों के हृदय में एक राजनीतिक चेतना का संचार हुआ और उन्हें इस बात का अनुभव होने लगा कि उनके अपने देश के लिये एक ऐसी अखिल भारतीय संस्था की आवश्यकता है जो अंग्रेजी शासन के विरुद्ध लोहा ले सके, और भारतवासियों को राजनीतिक अधिकार दिलाने के लिये आँदोलन कर सके। यहाँ यह समझ लेने की आवश्यकता है कि इस प्रकार राजनीतिक जागृति भारतीयों के हृदय में एक दम उत्पन्न नहीं हो गई। यह जाग्रति धीरे धीरे हुई। जिस समय सन् १८८५ में राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हो गई तो उसके पश्चात इस संस्था ने स्वयं देश में राजनीतिक चेतना को बलशाली बनाने में भारी सहयोग दिया ।

काँग्रेस की स्थापना के पहिले हमारे देश में कुछ प्रांतीय संस्थाय तो थीं, जैसे ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन, (१८५१), इण्डियन एसोसियेंशन (१८७६), पूना पब्लिक एसोसियेशन (१८७०), मद्रास महाजन सभा बाँम्बे प्रेसिडेंसी एसोसियेशन, इत्यादि, परन्तु सारे भारतवर्ष के लिये कोई अखिल भारतीय संस्था नहीं थी। इसलिये जब १८८५ में इस संस्था का जन्म हुआ तो सब देश वासियों ने उसका खुले हृदय से स्वागत किया।

काँग्रेस का इतिहास

काँग्रेस का जन्म सन् १८८५ में हुआ। इसके पूर्व इसके संगठन की योजना सन् १८८४ में मद्रास में दीवान बहादुर रघुनाथ राव के घर पर बनाई गई थी जहाँ आदियार के थियोसाफिकल सम्मेलन के पश्चात उनके घर पर कुछ लोग जमा थे। इन लोगों ने निश्चय किया कि वह एक अखिल भारतीय काँग्रेस की स्थापना करेंगे। एक रिटायर्ड अंग्रेज सिविलियन ऐलन आक्टेविनन ह्यूम ने इस कार्य में अत्यंत दत्तचित्तता से काम किया। बहुत से लोग तो इसीलिये श्री ह्यूम को काँग्रेस का जन्मदाता भी कहकर पुकारते हैं। मार्च सन् १८८५ में इस संस्था का विधान बनाने के लिये एक छोटी सी कमेटी बना दी गई जिसका निश्चय था कि काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन पूना में, दिसंबर के मास में, बुलाया जाय।

मि० ह्यूम ने काँग्रेस के संगठन में भाग लेने से पहले भारत के वायसराय लार्ड डफरिन से सलाह ली थी कि वह इस प्रकार की संस्था में भाग ले अथवा नहीं। लार्ड डफरिन ने यह समझ कर कि काँग्रेस भारत में वही कार्य कर सकेगी जो इंगलैण्ड की पार्लियामेंट में विरोधी दल करता है और इस प्रकार अंग्रेज शासकों को भारतीय जनता की राजनीतिक आकाँक्षाओं का भी पता चल जायगा, मि० ह्यूम को काँग्रेस का कार्य करने की अनुमति दे दी।

काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन—काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन हैजे के प्रकोप के कारण पूना में न हो सका। इसलिये काँग्रेस की पहिली सभा श्री

उमेश चन्द्र बनर्जी के सभापतित्व में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कौलेज हाल बंबई में हुई। इस सम्मेलन में समस्त भारत के ७२ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनमें श्री ह्यूम, दादाभाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, रानाडे, दिन शाह वाचा तथा श्री चन्द्रवाकर मुख्य थे। आरंभ में काँग्रेस ने अपना ध्येय स्वराज्य प्राप्ति नहीं बनाया वरन् राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये अंग्रेजों से प्रार्थना करने तथा आवेदन पत्र भेजने के मार्ग का अवलंबन किया। इसलिये आरंभ में सरकार ने काँग्रेस को सहयोग दिया और मि० ह्यूम के अतिरिक्त और बहुत से अंग्रेज तथा सरकारी कर्मचारी इसमें सम्मिलित हो गये। महात्मा गाँधी के काँग्रेस में पदार्पण करने से पहिले, इस राष्ट्रीय संस्था का अधिवेशन भारत के बड़े बड़े नगरों में किया जाता था। इनमें अधिकतर अंग्रेजी पढ़े लिखे वकील और बैरिस्टर, डाक्टर और प्रोफेसर और बड़े बड़े जमींदार और व्यापारी भाग लेते थे। यह लोग वार्षिक सम्मेलनों के अवसर पर तो बड़े बड़े भाषण देते थे और प्रस्ताव पास करते थे, परन्तु इसके पश्चात दूसरे अधिवेशन के आरंभ होने तक वह और किसी प्रकार का कार्य नहीं करते थे।

काँग्रेस के प्रस्तावों में ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की जाती थी कि वह भारतीयों को देश की सेना, सिविल सर्विस, न्यायालय तथा व्यवस्थापिका सभाओं में भाग लेने का अधिक अवसर प्रदान करे तथा उन्हें उच्च सरकारी नौकरियों पर पहुंचने की सुविधाएं दें।

सन् १८९० में काँग्रेस ने सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल लंदन भेजा और इस प्रकार प्रथम बार उस वर्ष में काँग्रेस न अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये राजनीतिक आँदोलन का मार्ग पकड़ा। सन् १८८९ में काँग्रेस की एक शाखा भी लंदन में खोली गई। इन सब आँदोलनों का यह परिणाम हुआ कि सन् १८९२ में ब्रिटिश पार्लियामेंट न इंडियन कौंसिल ऐक्ट पास किया जिसके द्वारा भारतीयों को लेजिस्लेटिव कौंसिल की सदस्यता का अधिकारी बना दिया गया।

काँग्रेस के सदस्यों को इस ऐक्ट से अत्यंत निराशा हुई, कारण, वह समझते थे ब्रिटिश सरकार कुछ थोड़े से मुट्ठी भर भारतीयों को कौंसिल की सदस्यता बख्शने के अतिरिक्त कुछ वास्तविक राजनीतिक अधिकार भी प्रदान करेगी। काँग्रेस चाहती थी कि प्रांतों में धारा सभाएं स्थापित की जाँय, आई० सी० एस० की परीक्षा में भारतीयों को अंग्रेजों के समान ही भाग लेने का अवसर दिया जाए, कार्य कारिणी तथा न्याय विभाग को अलग किया जाय, स्थानीय स्वराज्य की नींव डाली जाय, तथा भारतीयों की उच्च पदों पर नियुक्ति की जाय । १८९२ के ऐक्ट में काँग्रेस की यह माँगें स्वीकार नहीं की गईं । परिणाम यह हुआ कि देश में अंग्रेजों के विरुद्ध राजनीतिक असंतोष बढ़ने लगा और काँग्रेस ने देश की राजनीति में सक्रिय रूप से अधिक भाग लेना आरंभ कर दिया । सन् १८९० में काँग्रेस को अपने हाथों से निकलता हुआ देख कर अंग्रेजों ने सरकारी नौकरों को उसके अधिवेशनों में भाग लेने से मनाही कर दी थी। परन्तु इसके पश्चात जब भी राष्ट्रीय आँदोलन का प्रभाव कम न हुआ तो उसने एक दूसरी चाल सोची। उसने मुसलमानों को हिंदुओं के विरुद्ध भड़काना आरंभ कर दिया और कहा 'काँग्रेस तो हिंदुओं की संस्था है ।' इस प्रकार अंग्रेजों की शै पाकर मुसलमानों के एक नेता सर सैयद अहमद ने धार्मिक आधार पर मुसलमानों की एक अलग संस्था बना डाली।

असंतोष की प्रगति––इधर अनेक कारणों से देश में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक घोर असंतोष की भावना जागृत हो रही थी । सन् १८९७ में हमारे देश में एक भीषण अकाल पड़ा जिसमें लाखों नर और नारी भूख और प्यास से तड़प-तड़प कर परलोग सिधार गये । इसी के थोड़े दिन पश्चात हमारे देश में प्लेग की महामारी फैली । सरकार इन दोनों अवसरों पर जनता के दुख को दूर करने के लिये कुछ भी उपाय न कर सकी। इधर दक्षिणी अफ्रीका में भारतीय नागरिकों पर वहाँ की सरकार तरह तरह के जुल्म ढा रही थी और भारतीय सरकार चुप खड़ी यह सब

तमाशा देखती जा रही थी। पूना में इसी समय दो अंग्रेज अफसरों को किसी ने कत्ल कर दिया। भारतीय सरकार को गोरी चमड़ी के इन दो लोगों की जानें इतनी प्यारी थीं कि उसने सैकड़ों भारतवासियों को मौत के घाट उतार कर बदला लिया। इसके पश्चात राजनीतिक असंतोष को दबाने के लिये उसने राजद्रोह का कानून पास किया। इन सब कारणों से भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में एक गरम दल का जन्म हुआ। इसके नेता लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, तथा विपिन चन्द्र पाल थे। इन तीनों नेताओं ने नरम दलीय काँग्रेस जनों से राष्ट्रीय संस्था की बागडोर अपने हाथों में लेने का प्रयत्न किया। काँग्रेस के बाहर भी बंगाल में एक क्रांतिकारी बम पार्टी का संगठन किया गया जिसने अंग्रेज शासकों को मारना तथा सरकार के पिट्ठुओं को भयभीत करना अपना ध्येय बना लिया।

बंग-भंग आँदोलन—सन् १८९८ में लार्ड कर्जन गवर्नर-जनरल बन कर भारत में आये। उनकी नीति ने सारे देश में राजनीतिक ज्वाला को और भी भड़का दिया। वह भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को अत्यंत हेच समझते थे। उन्होंने भारतीयों के आत्म गौरव को भारी ठेंस पहुंचाई और अन्त में मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये बंगाल के दो टुकड़े करने की योजना रक्खी। इस योजना ने सारे देश में एक ऐसे शक्तिशाली आँदोलन को जन्म दिया कि उसके रोष तथा प्रताप के सम्मुख ब्रिटिश सरकार के पैर न जम सके और उसे बंगाल के दो टुकड़ों को दो वर्ष पश्चात ही एक कर देना पड़ा।

कलकत्ता अधिवेशन—इधर सरकार की दमन नीति के कारण काँग्रेस नरम दल के नेताओं के हाथों से निकल कर गरम दलीय काँग्रेस जनों के हाथों में चली जा रही थी। सन् १९०६ में काँग्रेस का जो अधिवेशन कलकत्ते में हुआ उसमें 'लाल' 'बाल' 'पाल' की पार्टी का बहु मत था

इस अधिवेशन में डर था कि कहीं नरम दल और उग्र दल में संघर्ष न हो जाय परन्तु दादा भाई नौरोजी के नेतृत्व के कारण जो इस समय काँग्रेस के प्रधान थे इन दोनों दलों में मुठ भेड़ न हो सकी और यह अधिवेशन विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रस्ताव पास करके निर्विघ्न समाप्त हो गया। नरम दल के नेता सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी तथा सर फिरोजशाह मेहता इस प्रस्ताव से सहमत नहीं थ परन्तु उन्हें गरम दल के बहुमत के सामने झुकना पड़ा।

काँग्रेस में फूट——सन् १९०७ में काँग्रेस का अगला अधिवेशन सूरत में हुआ। इस अधिवेशन में काँग्रेस के नरम दल के नेता अपने पूरे दल बल के साथ सम्मेलन में सम्मिलित हुये। वह गरम दल के नेताओं से टक्कर लेना चाहते थे। इसलिये इस अधिवेशन में उन्होंने कलकत्ता अधिवेशन में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार संबंधी प्रस्ताव को बदलना चाहा। इस प्रस्ताव से काँग्रेस में खूब गड़बड़ी मची। गलम दल के नेताओं ने पूरी शक्ति के साथ प्रस्ताव का विरोध किया। परन्तु इस अधिवेशन में वह नरम दल वालों की भांति अपनी पूरी तैयारी के साथ जमा नहीं हुये थे। परिणाम यह हुआ कि नरम दल के नेताओं की विजय हुई और उन्होंने गरम दल के नेताओं को काँग्रेस से निकाल दिया। काँग्रेस का विधान बदल दिया गया और उसमें इस प्रकार के नियम बनाये गये, जिससे उग्रदलीय काँग्रेस जन उसमें सम्मिलित न हो सकें।

गरम दलीय काँग्रेस जनों का दमन——ब्रिटिश सरकार काँग्रेस की इस फूट से अत्यंत प्रसन्न हुई। उसने अब एक दोहरी नीति का आश्रय लिया। नरम दल वाले काँग्रेस नेताओं को तो उसने मिंटो मोर्ले के सन् १९०९ के सुधारों का प्रलोभन देकर अपने साथ मिला लिया और गरम दल वाले काँग्रेसी नेताओं को उसने तरह तरह के अभियोग लगा कर दबाना आरंभ कर दिया। इसी बीच उसने 'तिलक' को छै वर्ष के लिये माँडले की जेल

में नजर बन्द कर दिया। लाला लाजपत राय को बिना मुकदमें किये ही हिंदुस्तान से निकाल कर अमरीका भेज दिया गया और विपिन चन्द्र पाल को छ महीने की सख्त सजा देकर जेल में बन्द कर दिया गया। इसके अतिरिक्त उसने राष्ट्रीय आँदोलन के पीठ में छुरा भोंकने के लिये मुसलमानों को हिंदुओं के विरुद्ध खुली सहायता देनी आरंभ कर दी। इस समय के स्थानापन्न गवर्नर जनरल ने नवाब मोहिसिन उल्मुल्क और आगा खां को अपनें पास बुलाया और कहा कि तुम एक अलग मुस्लिम लीग संस्था की स्थापना करो और सरकार से कहो कि वह तुम्हें हिंदुओं से अलग धारा सभाओं में सुरक्षित स्थान तथा पृथक निर्वाचन का अधिकार दे। अंग्रेजों के इन पिट्ठुओं ने ऐसा ही किया और भारत में सदा के लिये साँप्रदायिकता का वह विष बो दिया जिसके कारण हमारे देश के दो टुकड़े हो गये। उन्होंने सरकार से पृथक निर्वाचन प्रणाली की माँग की। यह माँग तुरन्त ही स्वीकार कर ली गई। सन् १९०६ में मुस्लिम लीग का जन्म हुआ और सारे प्रतिक्रिया वादी मुसलमानों ने काँग्रेस के विरुद्ध मोर्चा कायम करने तथा ब्रिटिश सरकार का साथ देने के लिये इसका सहयोग दिया।

सन् १९१६ तक काँग्रेस नरम दलीय काँग्रेस जनों के हाथ में रही आई। कारण इस समय तक सब गरम दल वाले नेता जेलों में थे। इसलिये नरम दल के नेताओं ने मिंटों मौर्ले सुधारों को कार्यान्वित करने में पूरा सहयोग दिया।

प्रथम महायुद्ध—परन्तु नरम दल के नेताओं की इस सरकार परस्त नीति से देश पूरी तरह ऊब चुका था और भारत के कोने कोने में एक असंतोष की लहर फैल रही थी। इसी बीच सन् १९१४ में संसार में दूसरा महायुद्ध आरंभ हो चुका था। इसके कुछ दिन पश्चात ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों से सरकार को युद्ध में सहयोग देने की अपील की। तिलक जेल से छोड़ दिये गये और महात्मा गाँधी इस समय दक्षिण अफ्रीका में

भारतीयों की ओर से एक सफल नेतृत्व करने के पश्चात भारत लौटे। ब्रिटिश सरकार के संकट के समय सभी कांग्रेस के नेताओं ने सरकार को सहयोग देना ही उचित समझा और उन्होंने जनता से प्रार्थना की कि वह सरकार की पूरी मदद करें। नेताओं की इस अपील के कारण, भारत वासियों ने अपनी अतुल धन संपत्ति तथा लाखों नव युवकों से अंग्रेजों का लड़ाई में साथ दिया।

युद्ध के पश्चात---भारतवासियों को आशा थी कि युद्ध में इस प्रकार सहयोग देने के बदले में उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में कुछ वास्तविक अधिकार प्रदान कर दिये जायेंगे। भारत मन्त्री मि० मान्टैग्यू की सन् १९१७ की उस घोषणा से जिसमें उन्होंने भारत को धीरे धीरे उत्तरदायी शासन देने का वचन दिया था उसकी यह आशा और भी प्रबल हो गई थी। परन्तु, युद्ध के तुरन्त पश्चात, जिस समय राष्ट्र के नवयुवक स्वराज्य प्राप्ति का सुखद स्वप्न देख रहे थे, तो भारत वासियों को मिला रौलट ऐक्ट और पंजाब का वह निर्मम हत्याकाँड जिसमें देश प्रेम के अपराध में पंजाब के सहस्त्रों व्यक्तियों को मार्शल ला के आधीन गोलियों का शिकार बना कर मौत के घाट उतार दिया गया। इसी समय अमृतसर में जलियाँवाला बाग का वह नारकीय दृश्य भी रचा गया जिसमें दो अंग्रेज अफसरों के मारे जाने के बदले में २०,००० व्यक्तियों की एक शाँति पूर्ण सभा पर गोलियों की बौछार कर दी गई और जनता के भागते हुए व्यक्तियों की पीठों में गोलियाँ दाग दी गईं। सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार जलियाँवाला बाग में ३७९ व्यक्ति मारे गये और १२०० व्यक्ति जख्मी हुये। इस जुल्म ने जनता को एक क्रोध तथा प्रतिकार की भावना से भर दिया। महात्मा गाँधी ने इस समय देश की बाग डोर अपने हाथों में संभाल ली। नवम्बर सन् १९१८ में नरम दल वाले नेता कांग्रेस की उग्र नीति से तंग आकर उससे पहिले ही अलग हो चुके थे और उन्होंने अपनी एक अलग लिबरल पार्टी बना ली

थी । १ अगस्त सन् १९२० को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भी इस संसार से चल बसे । गाँधी जी ही इस समय ऐसे नेता थे जिन पर देश की दृष्टि लगी थी । उन्होंने तुरन्त मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित करने के लिये तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत करने के लिये मुसलमानों के खिलाफत आँदोलन का साथ दिया । पिछले महायुद्ध में टर्की के लड़ाई में हार जाने के कारण मुसलमानों के धार्मिक पैगंबर खलीफा को उस देश की गद्दी से उतार दिया गया था । हिंदुस्तान के मुसलमान, अंग्रेजों के इस कृत्य से अंत्यंत क्रोधित थे और उन्होंने अली बन्धुओं के नेतृत्व में कांग्रेस का साथ देने का निश्चय किया ।

असहयोग आँदोलन---काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सन् १९२० में कलकत्ते में हुआ । इस अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने धारा सभाओं, कचहरियों, शिक्षा संस्थाओं तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा अंग्रजी सरकार से असहयोग का प्रस्ताव काँग्रेस के सम्मुख रक्खा । प्रस्ताव पास हो गया । इसके तुरन्त पश्चात देश भर में आँदोलन की आग धधक उठी । हजारों नर और नारियों ने हंसते हंसते जेल की यातनाएं सहीं । जगह जगह विलायती कपड़ों की होली जलाई गई । परन्तु जिस समय आंदोलन इस प्रकार जोरों पर चल रहा था तो दुर्भाग्यवश ५ फरवरी सन् १९२२ को संयुक्त प्रांत के गोरखपुर जिले में एक ऐसी घटना हो गई जिसनें इस विशाल आन्दोलन का पासा ही पलट दिया । उन दिनों चौरीचौरा गाव में एक काँग्रेसी जुलूस निकला और पुलिस के हस्तक्षेप करने पर जुलूस की भीड़ ने आवेश में आकर थाने-दार और २१ सिपाहियों समेत थाने को जला डाला । उधर मद्रास में भी युवराज के स्वागत समारोह के अवसर पर एक ऐसा ही हिंसा काँड हुआ । महात्मा गाँधी जो असहयोग आँदोलन का नेतृत्व अहिंसात्मक उपायों से करना चाहते थे, हिंसा के इस प्रदर्शन से बेचैन हो गये और १२ फरवरी

१९२२ को उन्होंने असहयोग आँदोलन को स्थगित कर दिया। गाँधी जी ने ऐसा उस समय किया जब २३,००० से अधिक व्यक्ति जेलों में जा चुके थे और जनता एक वर्ष के अन्दर स्वराज्य प्राप्ति का स्वप्न पूरा होते देखने के लिये अपना तन, मन और धन स्वातन्त्र्य संग्राम में न्यौछावर कर रही थी। गाँधी जी के सत्याग्रह वापस लेने के प्रस्ताव से जनता ऊब उठी और गिरफ़तार नेताओं में पंडित मोतीलाल नहरू और लाला लाजपत राय ने गाँधी जी के इस काम की घोर निंदा की। सफलता की ओर बढ़ते हुए आन्दोलन को पीछे हटाने से बहुत से गाँधी भक्त लोग भी उनके विरोधी बन गये और बंगाल और महाराष्ट्र के लोग उन पर खुल्लमखुल्ला आक्रमण करने लगे।

गाँधी जी को जेल और साँप्रदायिकता का ताँडव नृत्य—भारत सरकार ने जब यह देखा कि गाँधी जी की लोक प्रियता काफी घट गई है तो उसने १३ मार्च, सन् १९२२ को उन्हें गिरफ़तार करके राजद्रोह के अपराध में छै साल की सजा सुना दी। गाँधी जी की इस गिरफ़तारी के पश्चात देश म निराशा का वातावरण छा गया और राजनीतिक क्षेत्र में एक प्रकार की उदासी छा गई। सरकार ने इस अवसर को देश में साँप्रदायिक द्वेष की भावना भड़काने के लिये अत्यंत उपयुक्त समझा। इसी काल में हिंदू सभा की नींव डाली गई और मुस्लिम लीग का नेतृत्व मि० जिन्ना ने अपने हाथों में ले लिया। सरकार की चाल बाजी का यह फल हुआ कि देश में जगह जगह साँप्रदायिक झगड़े हुये। मुल्तान में भीषण उपद्रव हुये और हिंदू मुसलमानों का खूब रक्त बहा।

काँग्रेस का कौंसिल प्रवेश कार्यक्रम—इधर काँग्रेस के कुछ नेताओं ने जनता को साँप्रदायिक संस्थाओं के फेर से बचाने के लिये देश के सम्मुख 'कौंसिल प्रवेश' का कार्यक्रम रक्खा। इस आन्दोलन के नेता पंडित मोती लाल नहरू व देशबन्धु चित्तरंजन दास थे। आरंभ में काँग्रेस के अपरि-

वर्तन वादी नेताओं ने इस कार्यक्रम का विरोध किया, परन्तु बाद में जब नेहरू और दास ने मिल कर अपनी एक अलग स्वराज्य पार्टी बना ली तो काँग्रेस के दूसरे नेताओं ने भी उसे सहयोग देना आरंभ कर दिया। इस पार्टी को कौंसिल प्रवेश के कार्यक्रम में भारी सफलता मिली और कई प्रांतों में काँग्रेस के उम्मीदवार जबर्दस्त बहुमत से धारा सभाओं में चुने गये। केन्द्रीय असेम्बली में भी श्री विट्ठल भाई पटेल धारा सभा के अध्यक्ष बन गये।

सन् १९२५ में देशबन्धु श्री चित्तरंजन दास की मृत्यु हो गई और इससे स्वराज्य पार्टी के काम में भारी धक्का लगा। इधर हिंदू मुसलिम फिसाद बराबर बढ़ते जा रहे थे और देश में ऐसे दलों की लोकप्रियता बढ़ रही थी जिनका आधार साँप्रदायिकता था। सन् १९२६ के कौंसिल के चुनावों में इसलिये स्वराज्य पार्टी को पहले की भांति सफलता प्राप्त नहीं हुई।

साइमन कमीशन का आगमन—सन् १९२७ में ब्रिटिश सरकार की ओर से शासन संबंधी सुधारों की जाँच पड़ताल करने के लिये एक श्वेत साइमन कमीशन भारत में आया। इस कमीशन के आगमन पर देश में फिर एक बार राजनीतिक चेतना की लहर दौड़ गई। देश के सभी राजनीतिक दलों ने इस पूर्ण गौराँग कमीशन का बहिष्कार करने का बीड़ा उठाया। हर जगह इस कमीशन के सदस्यों का काले झंडों से स्वागत किया गया। इस समय ब्रिटिश सरकार ने भारत वासियों से कहा कि तुम आपस में मिलकर एक संयुक्त माँग सरकार के सम्मुख रक्खो। अंग्रेज जानते थे कि भारत में हिंदू और मुसलमान एक हो कर काम नहीं कर सकते। इसी लिये उन्होंने भारत की जनता को यह कह कर एक प्रकार की 'ललकार' दी थी।

नेहरू रिपोर्ट—परन्तु काँग्रेस के नेताओं ने ब्रिटिश सरकार की यह ललकार स्वीकार की और लखनऊ में सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया

जिसमें पंडित मोतीलाल नेहरू की रिपोर्ट के आधार पर हिंदू ओर मुसलमानों ने मिलकर कुछ संयुक्त माँगे ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रक्खीं परन्तु, सदा की भांति, ब्रिटिश सरकार ने यह सिफारिशें भी स्वीकार न कीं ।

पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा—सन् १९२९ में काँग्रेस का अधिवेशन लाहोर में हुआ । इसके सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरू थे । ३१ दिसंबर की अर्द्धरात्रि को इस अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने काँग्रेस का पूर्ण स्वतन्त्रता ध्येय संबंधी वह प्रस्ताव सम्मेलन के सम्मुख रक्खा जिसकी पूर्ति अभी हाल ही में २६ जनवरी, सन् १९५० को हमारे देश में हुई है । इस प्रस्ताव द्वारा ब्रिटिश सरकार से कहा गया कि यदि वह ३१ दिसंबर तक भारत को स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करेगी तो देश में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में एक असहयोग आँदोलन आरंभ कर दिया जायगा ।

१९३० का असहयोग आन्दोलन—ब्रिटिश सरकार ने काँग्रेस की माँग नहीं मानी और ६ अप्रैल १९३० को महात्मा गाँधी ने सारे देश में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' आरंभ कर दिया । जगह जगह नमक कानून तोड़े गये, मद्रास व पेशावर में गोलियाँ चलीं, अनगिनत स्थानों पर लाठी प्रहार हुए, शोलापुर में मार्शल ला जारी किया गया, काँग्रेस कमेटियाँ गैर कानूनी करार दी गईं, एक लाख से अधिक आदमियों ने ब्रिटिश सरकार की जेलें भर दीं, विदेशी कपड़े का बहिष्कार किया गया और जगह जगह शराब की दुकानों पर पिकेटिंग लगाया गया ।

गाँधी-इरविन समझौता—इस सब आन्दोलन का प्रभाव यह हुआ कि अंग्रेजी सरकार का तख्त हिलने लगा और १९३१ में ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि, लार्ड इरविन को, गाँधी जी से समझौता करना पड़ा । सारे राजनीतिक बन्दी जेलों से मुक्त कर दिये गये और महात्मा गाँधी दूसरी गोल मेज सभा में सम्मिलित होने के लिये अगस्त के अंतिम सप्ताह में लंदन के लिये रवाना हो गये ।

फिर असहयोग आन्दोलन—परन्तु ब्रिटिश सरकार ने काँग्रेस के

साथ समझौता किसी अच्छी नियत से नहीं किया था। वह तो उसकी एक चाल-मात्र थी। समझौते के तुरन्त पश्चात लार्ड इरविन के स्थान पर एक कट्टरपंथी लार्ड विलिंगडन को वायसराय बना कर भारत भेज दिया गया। उधर, दूसरी गोल मेज सभा में ब्रिटिश सरकार ने महात्मा गाँधी से कहा 'तुम मुसलमानों के साथ मिल कर धारा सभाओं में सीटों के बंटवारे के संबंध में आपस में समझौता कर लो, उसके पश्चात हम तुम्हारे साथ बात करेंगे, यह समझौता न हो सका दूसरी गोल मेज सभा से इसलिये महात्मा गाँधी खाली हाथ भारत लौटे। यहाँ आकर उन्होंने देखा कि ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र पूरे वेग से चल रहा है और उनकी अनुपस्थिति में अनेक देश भक्त नेता जेल के सींकचों के पीछे बन्द कर दिये गय हैं। उन्होंने वायसराय से मिलने की प्रार्थना की परन्तु, लार्ड विलिंगडन को तो इंगलैण्ड की टोरी सरकार ने यही कह कर भारत भेजा था कि तुम्हें काँग्रेस को पूर्ण रूप से कुचल डालना है और किसी दशा में भी काँग्रेस के उस जादूगर महात्मा गाँधी से नहीं मिलना है, जो व्यक्तियों पर कुछ ऐसा प्रभाव डालता है कि उसकी बात टाले नहीं टाली जाती। वायसराय ने इसलिये महात्मा गाँधी से मिलने से इंकार कर दिया और इसके बजाय उन्हें गिरफ़तार करके जेल भेज दिया। इसके पश्चात अत्याचार और दमन का खुला नृत्य रचा जाने लगा। काँग्रेस को गैर कानूनी करार दे दिया गया, देश में आर्डिनेंसों का राज्य लागू कर दिया गया। गिरफ़तार शुदा लोगों पर भारी जुर्माने किये गये और उनकी जायदादें जब्त कर ली गईं। पुत्र के जुर्म पर बाप को जेल भेजा जाने लगा और कितने ही सरकारी नौकरों को उनके संबंधियों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण नौकरी से अलग कर दिया गया। परन्तु, इस सब दमन चक्र की जबर्दस्त आँधी के चलने पर भी दूसरा 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन" पूरे वेग से चला। विलायती माल का बहिष्कार पहिले से भी अधिक

हुआ । 'लगान बन्दी आन्दोलन' ने भी जोर पकड़ा । सन् १९३२ और ३३ म काँग्रेस के गैर कानूनी घोषित होने पर भी उसके वार्षिक अधिवेशन दिल्ली और कलकत्ते की सड़कों पर हुये ।

पूना समझौता—अगस्त सन् १९३२ में जब महात्मा गाँधी जेल में बन्द थे तो ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० रैमजे मेकडानलड ने अपना साँप्रदायिक निर्णय प्रकाशित कर दिया । इस निर्णय में पृथक निर्वाचन प्रणाली के आधार पर अछूतों को हिंदुओं से अलग करने का प्रयत्न किया गया । महात्मा गाँधी को जिस समय जेल के अन्दर इस निर्णय का पता चला तो उन्होंने हिंदू समाज की एकता को कायम रखने के लिये आमरण व्रत रखने का ऐलान किया । गाँधी जी के जीवन को बचाने के लिये हिंदू और हरिजन नेता पूना में जमा हुए और वहाँ उन्होंने एक ऐसे समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये जिसके द्वारा हरिजन हिंदू समाज के अन्दर रह कर ही अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें । इसके पश्चात महात्मा गाँधी ने हिंदू समाज से 'अस्पृश्यता' का कलंक दूर करने के लिये २१ दिन का एक और व्रत रक्खा । ८ मई १९३३ को वह जेल से मुक्त कर दिये गये और १ वर्ष पश्चात् उन्होंने 'अवज्ञा आन्दोलन' वापिस ले लिया ।

फिर कौंसिल प्रवेश—राजनीतिक क्षेत्र में शिथिलता आ जाने से सन् १९२३ की भांति फिर काँग्रेस ने कौंसिल प्रवेश की ओर ध्यान दिया । उसने केन्द्रीय धारा सभा के चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया । इस चुनाव में उसे अत्यंत सफलता प्राप्त हुई और उसके ४४ सदस्य केन्द्रीय धारा सभा में चुन लिये गये ।

काँग्रेस में समाजवादी दल का जन्म—इसी वर्ष काँग्रेस के अन्दर उसके कार्यक्रम में समाजवादी दृष्टिकोण लाने के लिये उसके अन्दर श्री जय प्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, यूसुफ मेहर अली, डा० लोहिया, अशोक मेहता तथा श्री अच्युत पटवर्धन द्वारा एक समाजवादी दल का संगठन किया गया ।

प्रांतों म काँग्रेस मन्त्रि मंडलों का निर्माण—सन् १९३५ म ब्रिटिश सरकार न तीन गोल मेज सभा करने के पश्चात भारत का नया विधान पास कर दिया। इस विधान के अन्तर्गत केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली का आरम्भ किया गया तथा प्रांतों में गवर्नरों के हाथ विशेष अधिकार सौंपे गये। सारे देश ने इसलिये इस विधान के विरुद्ध आन्दोलन किया। सन् १९३७ में इस नये विधान के अनुसार प्रांतों में चुनाव लड़े गये। काँग्रेस ने इन चुनावों में इस दृष्टि से भाग लिया कि कहीं राष्ट्रीय विरोधी शक्तियाँ प्रांतीय धारा सभाओं में जाकर देश को हानि न पहुंचायें। चुनावों के पश्चात् काँग्रेस ने पाया कि उसे देश के छै प्रांतों में बहुमत प्राप्त है और शेष प्रांतों में भी उसके उम्मीदवार भारी संख्या में चुने गये हैं। आरंभ में काँग्रेस का यह विचार नहीं था कि वह प्रांतों में मन्त्रि मंडल बनाये परन्तु फिर गवर्नरों के यह आश्वासन देने पर कि वह मन्त्रियों के काम में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करेंगे उसने पहले छै और फिर आठ प्रांतों में अपने मन्त्रि मंडल बनाये। इन मन्त्रि मंडलों ने देश की आर्थिक तथा सामाजिक दशा को सुधारने के लिये अत्यंत प्रशंसनीय कार्य किया।

द्वितीय महायुद्ध का आरंभ—परन्तु सितंबर सन् १९३९ में संसार में द्वितीय महायुद्ध आरंभ हो गया। इस युद्ध में ब्रटिश सरकार ने काँग्रेस मन्त्रि मंडलों की सलाह लिये बिना ही भारत को युद्ध की अग्नि में झोंक दिया। इस पर काँग्रेस के सभी मन्त्रियों ने अपने पदों से त्याग पत्र दे दिये और नवंबर सन् १९४० में काँग्रेस ने 'वैयक्तिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ कर दिया। इस आन्दोलन का उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश सरकार को मालूम हो जाय कि काँग्रेस लड़ाई में उसके साथ नहीं है।

क्रिप्स आगमन—मार्च सन् १९४१ में सर स्टैफोर्ड क्रिप्स कुछ सुधार संबंधी योजनाओं के साथ भारत आये। काँग्रेस ने यह सुझाव स्वीकार नहीं किये।

१९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन—क्रिप्स मिशन के पश्चात् देश

में राजनीतिक असंतोष इतना बढ़ गया था कि सन् १९४२ में काँग्रेस ने फिर ब्रिटिश सरकार से टक्कर लेने की ठानी। बंबई के अधिवेशन में उसने अपना प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' आन्दोलन और 'करो या मरो' प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव के पास होने के तुरन्त पश्चात् हमारे देश में सरकार की ओर से जो नृशंस, एवं अमानुषिक, हिंसा और अत्याचार का ताँडव नृत्य रचा गया वह कल की कहानी है। इस आन्दोलन में ६०,२२९ व्यक्तियों को जेल भेजा गया, १८,००० आदमियों को बिना मुकदमे 'भारत रक्षा कानून' के आधीन नजरबन्द किया गया, २५७० व्यक्तियों को गोलियों का शिकार बनाया गया, ५३८ अवसरों पर पुलिस ने गोलियाँ चलाईं, ६० स्थानों पर फौजी शासन कायम किया गया, कुछ स्थानों पर हवाई जहाजों से भी बम गिराये गये, देश के प्रायः सभी राष्ट्रवादी पत्रों को बन्द कर दिया गया, काँग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों को अहमदनगर जेल में बन्द कर दिया गया और महात्मा गाँधी को आगा खां महल में नजरबन्द कर दिया गया।

गाँधी जी का व्रत—महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश सरकार के अत्याचार पूर्ण दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिये आगा खां जेल में २१ दिन का व्रत करने की घोषणा की। इस व्रत द्वारा महात्मा जी यह सिद्ध करना चाहते थे कि काँग्रेस अहिंसात्मक सिद्धांतों में विश्वास रखती है और अगस्त सन् १९४२ के पश्चात होने वाले उपद्रवों की सारी जिम्मेदारी सरकार की उत्तेजनात्मक नीति पर है। जिस समय भारतीय जनता को गाँधीजी के इस निश्चय का पता चला तो देश के कोने कोने से वायसराय से प्रार्थना की जाने लगी कि वह गाँधी जी को छोड़ दें। वायसराय की कौंसिल के तीन सदस्यों ने भी सरकार पर दबाव डालने के लिये अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। परन्तु ब्रिटिश सरकार टस से मस न हुई और ईश्वर ने ही भारत वासियों के भाग्य पर कृपा करके महात्मा गाँधी के प्राण बचाये।

बंगाल का भीषण दुर्भिक्ष—सन् १९४३ के अन्त में भारत के बंगाल

प्रांत में एक भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। यह दुर्भिक्ष अनाज की कमी से इतना नहीं जितना सरकारी कुप्रबंध के कारण पड़ा। इस दुर्भिक्ष में बंगाल की ३०,००,००० जनता ने अपने प्राण गंवाये। कलकत्ते की गली गली में इन दिनों अस्थि और हड्डियों के नर पिंजर देखने को मिल सकते थे, जिन पर कुत्ते और जंगली जानवर अपनी क्षुधा शान्त करते थे। यह नारकीय दृश्य उस समय दृष्टिगोचर होता था जब उसी स्थान के बड़े बड़े होटलों, महलों तथा धनिकों के प्रासादों में बड़ी बड़ी दावतें, नाच और रंगरेलियाँ मनाई जाती थीं और नीचे सड़कों पर भूख और प्यास से पीड़ित चलते फिरते हड्डियों के ढांचे अन्न के एक एक दाने की तलाश में कूड़ों के ढ़ेर और सड़क पर पड़े हुए गन्दगी के ड्रमों की घंटो तलाश करते रहते थे। यह दुर्भिक्ष ईश्वर कृत नहीं वरन् मनुष्य कृत था। इस दुर्भिक्ष के कारण जनता को पता चल गया कि ब्रिटिश सरकार कितनी निकम्मी है और उसकी दृष्टि में भारतीयों के जीवन का क्या मूल्य है।

लार्ड वेवेल का आगमन—सन् १९४४ में लार्ड लिनलिथगो के स्थान पर लार्ड वेवेल वायसराय नियुक्त होकर भारत आये। लार्ड वेवल ने आकर तुरन्त ही दुर्भिक्ष की समस्या को सुलझाने के लिये कड़ा प्रयत्न किया। मई सन् १९४४ में उन्होंने गाँधी जी को जेल से मुक्त कर दिया। जेल से रिहाई के तुरन्त पश्चात् महात्मा गाँधी ने मि० जिन्ना से मिल कर हिंदू मुस्लिम समझौते के लिये प्रयत्न किया, परन्तु यह वार्ता सफल न हो सकी।

वेवल सुझाव—मार्च सन् १९४४ में लार्ड वेवल भारत के राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिये ब्रिटिश सरकार से बातचीत करने इंगलैण्ड गये। वह जून में भारत लौटे और तुरन्त ही उन्होंने भारत के राजनीतिक नेताओं से प्रार्थना की कि वह उनकी कार्यकारिणी में सम्मिलित हो जाँय। अपने सुझाव में लार्ड वेवल ने कहा कि वह अपनी कौंसिल में काँग्रेस को ६ और मुस्लिम लीग को ५ सीटें देने के लिये तैयार हैं।

काँग्रेस इस सुझाव को मानने के लिये तैयार थी परन्तु मुस्लिम लीग के नेता इस बात पर अड़ गये कि काँग्रेस किसी भी राष्ट्रवादी मुसलमान को वायसराय की कौंसिल में मनोनीत न करे। यह बात काँग्रेस को अमान्य थी, कारण, वह सदा से ही देश के सभी धर्मावलंबियों तथा हितों की संस्था रही थी। वह केवल हिंदू प्रतिनिधियों को वायसराय की कौंसिल में नामजद करके अपने आपको हिंदू संस्था घोषित नहीं करना चाहती थी। परिणाम यह हुआ कि लार्ड वेवल की योजना असफल रही और राजनीतिक दलों के नेता वायसराय की कार्यकारिणी में सम्मिलित नहीं हुए।

आम चुनाव—इसके तुरन्त पश्चात देश की प्रांतीय तथा केन्द्रीय धारा सभाओं के लिये चुनाव लड़े गये। इन चुनावों में प्रायः सभी हिंदू सीटों पर काँग्रेस को विजय प्राप्त हुई। सीमा प्रांत, पंजाब तथा यू० पी० में बहुत सी मुस्लिम सीटें भी काँग्रेस के हाथ लगीं। परन्तु मुसलमानी निर्वाचन क्षेत्रों में अधिकतर विजय मुस्लिम लीग की ही हुई। चुनावों के पश्चात काँग्रेस ने ८ प्रांतों में अपने मन्त्रि मंडल बनाये। पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी के सहयोग से एक मिला जुला मन्त्रि मंडल बनाया गया। मुस्लिम लीग केवल सिंध और बंगाल में ही अपने मन्त्रि मंडल बना सकी।

इंगलैण्ड में आम चुनाव—जिस समय भारत में आम चुनाव हो रहे थे तो इंगलैण्ड में भी पार्लियामेंट को तोड़ कर चुनावों की घोषणा की गई। इन चुनावों में चर्चिल की अनुदार सरकार हार गई और इसके स्थान पर मि० एटली के नेतृत्व में मजदूर दल की सरकार बनी। मजदूर दल के नेता सदा से ही काँग्रेस के स्वतन्त्रता संग्राम के पक्षपाती रहे थे। मि० एटली ने इसलिये सरकार का कार्य भार संभालने के तुरन्त पश्चात भारत में राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिये एक रचनात्मक कार्रवाई की। आरंभ में उन्होंने दिसंबर सन् १९४५ में एक शिष्ट मंडल भारत भेजा और उसके थोड़े दिन पश्चात एक मन्त्री प्रतिनिधि

मंडल' भारत आया। इस प्रतिनिधि मंडल के सदस्य लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफोर्ड क्रिप्स तथा मि० अलेक्जेंडर थे। प्रतिनिधि मंडल ने भारत आकर राजनीतिक नेताओं से समझौते की बातचीत की। उन्होंने मुस्लिम लीग को समझाया कि पाकिस्तान की माँग अव्यवहारिक है। अपने १६ मई, १९४६ के बयान में भी उन्होंने यही बात दुहराई। उन्होंने कहा कि काँग्रेस तथा लीग को मिल कर भारत में एक ऐसी सरकार की स्थापना करनी चाहिये जिसके अन्तर्गत प्रांत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हों और केन्द्रीय सरकार को उनके ऊपर केवल विदेशी नीति, रक्षा तथा यातायात संबंधी अधिकार प्राप्त हों। प्रतिनिधि मंडल ने वायसराय की कौंसिल में भी परिवर्तन करने की बात कही। काँग्रेस कैबिनेट मिशन की यह बातें मानने को बहुत कुछ तैयार हो गई परन्तु मुस्लिम लीग पाकिस्तान की माँग पर अड़ी रही।

संविधान सभा के चुनाव—नवंबर सन् १९४६ में प्रतिनिधि मंडल की योजना के अन्तर्गत भारत की संविधान सभा के लिये चुनाव किये गये। इन चुनावों में काँग्रेस को २०५, तथा मुस्लिम लीग को केवल ७३ सीटें मिलीं। परन्तु चुनाव लड़ने के पश्चात् भी मुस्लिम लीग के नेताओं ने संविधान सभा में भाग लेने से इन्कार कर दिया और उसने ब्रिटिश सरकार के सम्मुख यह माँग रक्खी कि भारत तथा पाकिस्तान के लिये दो अलग अलग संविधान सभा बनाई जाँय।

अंतरिम सरकार में काँग्रेस का सहयोग—चुनाव के पश्चात् ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास हो गया कि काँग्रेस ही भारत की सबसे शक्तिशाली संस्था है। इसलिये वायसराय ने काँग्रेस के प्रधान पंडित, जवाहरलाल नेहरू से प्रार्थना की कि वह उनकी अंतरिम सरकार बनाने में सहायता करें। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने यह सरकार २ सितंबर, १९४६ को बना ली। इसके कुछ दिन पश्चात खीझे हुये मुस्लिम लीग के ५ सदस्य

भी इस सरकार में सम्मिलित हो गये। परन्तु, इन सदस्यों ने सरकार में आकर उसके काम में सहयोग देने के बजाय हर जगह रोड़े अटकाने शुरू कर दिये ।

लार्ड माउन्टबैटन आ आगमन—मार्च सन् १९४७ में लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउन्टबैटन गवर्नर जनरल बन कर भारत आये। उन्होंने आते ही देश की वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया और काँग्रेस के नेताओं को समझाया कि देश में शान्ति बनाये रखने के लिये बंटवारे के अतिरिक्त दूसरा चारा नहीं है। परिस्थिति से बाध्य होकर काँग्रेस को लार्ड माउन्टबैटन का यह सुझाव स्वीकार करना पड़ा और ३ जून, १९४७ को भारत के सब राजनीतिक दलों ने देश के विभाजन की योजना स्वीकार कर ली। १५ अगस्त, १९४७ को यह योजना कार्यान्वित हुई और उसी दिन, २०० वर्ष की घोर परतन्त्रता के पश्चात्, भारत स्वतंत्र हो गया, और इस प्रकार काँग्रैस का ध्येय पूरा हो गया।

आज की काँग्रैस

आजकल काँग्रेस के सदस्यों की संख्या लगभग ३ करोड़ है। काँग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य २० हैं। उनके नीचे २२ प्रान्तों में प्रांतीय काँग्रेस कमेटियाँ कार्य करती हैं। नये विधान के अन्तर्गत काँग्रेस में तीन प्रकार के सदस्य हैं:— (१) प्रारंभिक सदस्य, (२) योग्य सदस्य और (३) कर्मठ सदस्य ।

काँग्रेस का प्रारंभिक सदस्य देश का वह प्रत्येक व्यक्ति बन सकता है जिसकी आयु २१ वर्ष से अधिक हो तथा जो काँग्रेस के ध्येय में विश्वास रखता हो। योग्य सदस्य केवल वह व्यक्ति बन सकते हैं जो आदतन खादी पहनते हों, मादक द्रव्यों का उपयोग न करते हों तथा जो सब धर्मों की एकता में विश्वास रखते हों। 'कर्मठ' सदस्य केवल वह व्यक्ति बन सकते

हैं जो काँग्रेस द्वारा निर्धारित किसी राष्ट्रीय या रचनात्मक कार्य में नियमित रूप से अपना कुछ समय लगाते हों।

१८ फरवरी, १९५० को अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी का एक विशेष अधिवेशन दिल्ली में हुआ। इस अधिवेशन में यह निश्चय किया गया कि काँग्रेस के केवल कर्मठ सदस्य ही काँग्रेस कमेटियों में भाग ले सकेंगे, दूसरे प्रकार के सदस्य नहीं। काँग्रेस के विधान में यह संशोधन इस कारण से किया गया कि काँग्रेस के कुल लगभग ३ करोड़ सदस्यों में से २ करोड़ सदस्यों को धोखा धड़ी से, काँग्रेस कमेटियों पर कब्जा करने के लिये, योग्य सदस्य बना लिया गया था।

आजकल काँग्रेस की आन्तरिक अवस्था अधिक अच्छी नहीं है। धीरे धीरे जनता का काँग्रेस के नेताओं से विश्वास उठता चला जा रहा है। इसका मुख्य कारण यही है कि काँग्रेस के सदस्यों का नैतिक चरित्र बहुत गिर गया है और वह महात्मा गाँधी की जय तो बोलते हैं, खद्दर भी पहिनते हैं और टेढ़ी टोपी भी लगाते हैं पर वास्तव में वह उस महान् आत्मा के आदर्शों को भूल गये हैं। यदि जनता के हृदय में अब भी काँग्रेस के प्रति कुछ श्रद्धा बाकी है तो इसका मुख्य कारण हमारे देश के नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा सरदार वल्लभ भाई पटेल हैं, जिनका व्यक्तित्व इतना महान् तथा जिनकी देश के प्रति इतनी सेवाएं हैं कि जनता उनका अहसान आसानी से नहीं भूल सकती। परन्तु संस्था के रूप में काँग्रेस का भविष्य उसके नेताओं के प्रभाव के सहारे उज्वल नहीं रह सकता, वह काँग्रेस के प्रत्येक साधारण सदस्य के नैतिक चरित्र पर ही निर्भर रह सकता है। इसलिये काँग्रैस जनों को चाहिये कि वह अपने नैतिक चरित्र को ऊंचा उठाने का सतत् प्रयत्न करें।

समाजवादी दल

काँग्रेस के पश्चात हमारे देश में दूसरी राजनीतिक संस्था जिस

का प्रभाव जनता पर धीरे धीरे बढ़ता जा रहा है समाजवादी दल है। मार्च सन् १९४८ से पहिले जब तक प्रांतीय काँग्रेस कमेटियों के प्रधान तथा मन्त्रियों के एक सम्मेलन ने अपनी एलाहाबाद की बैठक में यह निश्चय नहीं कर लिया था कि राष्ट्रीय महा सभा के अन्तर्गत किसी ऐसे दल का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता जिसके अपने अलग सदस्य, कोष तथा उद्देश्य हों, यह संस्था काँग्रेस के अन्दर ही रह कर एक अलग 'ग्रुप' के रूप में काम करती थी। परन्तु मई सन् १९४९ में अपने पटने अधिवेशन में वह उससे अलग हो गई।

भारत का समाजवादी दल जनतन्त्रात्मक, समाजवाद में विश्वास रखता है। वह ऐसे साम्यवाद का हामी नहीं जिसमें जनता पर एक निरंकुश शासन लाद दिया जाय। उसका ध्येय है कि किसानों को जमीन दी जाय और उनको पंचायतों के रूप में संगठित किया जाय। उद्योग के क्षेत्र में वह राष्ट्रीयकरण की नीति में विश्वास रखता है। राष्ट्र मंडल के साथ भारत के संबंध के विषय में उसका बिश्वास है कि हिंदुस्तान को स्वतन्त्र औपनिवेशिक स्थिति स्वीकार नहीं करनी चाहिये।

सर्व प्रथम काँग्रेस के अन्दर समाजवादी दल का निर्माण सन् १९३४ में हुआ था। इससे पहिले इस दल की नींव नासिक जेल में उस समय रक्खी गई थी जब १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन के फलस्वरूप श्री जय प्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन तथा अशोक मेहता उस जेल में बन्द थे। वहाँ उन्होंने सर्व प्रथम इस दल को बनाने का निश्चय किया था।

आज कल इस दल के नेताओं में, उनके अतिरिक्त जो नासिक जेल में थे, आचार्य नरेन्द्र देव, डा० राम मनोहर लोहिया, अरुणा आसफ अली, तथा श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय हैं। आजकल इसके सदस्यों की संख्या लगपग १०,००० बताई जाती है। इस दल के अपने २२ साप्ताहिक पत्र हैं जिनमें 'जनता' मुख्य है। इस दल का विशेष प्रभाव

बाम्बे प्रांत में है। दूसरे प्रांतों के किसानों तथा मजदूरों में भी इसका प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

दूसरे वामपक्षी दल

समाजवादी दल के अतिरिक्त हमारे देश में कुछ और छोटे मोटे राजनीतिक दल भी हैं जो एक आर्थिक कार्यक्रम में विश्वास रखते हैं तथा जो किसानों और मजदूरों के क्षेत्र में विशेष रूप से कार्य करते हैं। इन दलों में कम्युनिस्ट पार्टी, श्री शरत्चन्द्र बोस की सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी, फारवर्ड ब्लाक, किसान सभा, तथा पंजाब की देश सेवक पार्टी मुख्य हैं। इन दलों में कम्यूनिस्ट दल का संगठन सबसे अच्छा है। हमारे देश की अनेक ट्रेड यूनियन संस्थाओं पर इस पार्टी का प्रभुत्व है। कुछ काल से इस पार्टी के नेताओं ने तोड़ फोड़ तथा हिंसा का मार्ग अपनाया है और इस कारण यह जनता में बहुत बदनाम हो गई है। कुछ प्रांतों में इसे अवैध भी घोषित कर दिया गया है।

सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी का मुख्य प्रभाव बंगाल प्रांत में ही सीमित है। आजाद हिंद फौज के लोग इस पार्टी में अधिक आस्था रखते हैं।

किसान सभा का प्रभाव अधिकतर महाराष्ट्र तथा मद्रास प्रांत तक सीमित है। दूसरे प्रांतों में इस दल की शाखाएं भी नहीं खोली गई हैं।

मुसलिम लीग

मुस्लिम लीग का जन्म जैसा हम काँग्रेस के इतिहास में देख चुके हैं सन् १९०६ में हुआ था। इस संस्था के जन्म के पीछे अंग्रेजों का स्पष्ट हाथ था और जब तक भारतवर्ष के दो टुकड़े नहीं हो गये इसके नेता सदा प्रतिक्रियावादी, अंग्रेजों के हाथों में खेलते रहे। आरंभ में इस संस्था का मुख्य ध्येय मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करना था, परन्तु सन् १९१३ में इसने अपना उद्देश्य बदल कर औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति बना लिया। इसके पश्चात

कांग्रेस और लीग ने मिल कर कार्य किया। १९१६ में दोनों संस्थाओं में एक प्रकार का समझौता भी हो गया, परन्तु यह मैत्री अधिक समय तक कायम न रह सकी। लीग का शक्तिशाली संगठन, मि० जिन्ना द्वारा, सन् १९३७ के आम चुनावों के पश्चात किया गया। उससे पहिले लीग केवल कुछ पढ़े लिखे मध्यम श्रेणी के मुसलमानों की संस्था थी। परन्तु, इन चुनावों के तुरन्त पश्चात् मुस्लिम लीग की हर प्रांत और नगर में शाखाएं खोल दी गईं। इसके कार्य को सबसे अधिक प्रोत्साहन अंग्रेजों की हिंदू विरोधी नीति से मिला। मुस्लिम लीग के नेताओं ने अंग्रेजों से शह पाकर हिंदुओं के विरुद्ध जहर उगलना तथा कांग्रेस को भला बुरा कहना अपना ध्येय बना लिया। लीग ने कभी भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम में सहयोग नहीं दिया, इसके नेता कभी जेलों में नहीं गये, उसने किसी सार्वजनिक आन्दोलन का नेतृत्व नहीं किया। उसने केवल एक कार्य किया और वह था कांग्रेस की प्रत्येक स्वतन्त्रता संबंधी माँग के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करना और अंग्रेजों से कहना कि "भारत को उस समय तक स्वतन्त्र न किया जाय जब तक मुसलमानों को एक अलग राष्ट्र मान कर उनके लिये एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना न कर दी जाय।" अंग्रेज तो चाहते ही थे कि भारतवासियों की स्वतन्त्रता संबंधी माँग के पूरा होने में जितना विलंब लगे उतना ही अच्छा है। स्वभावतया उसने मुस्लिम लीग का खुल्लमखुल्ला साथ दिया और अन्त में यह कह कर कि देश में शाँति बनाये रखने के लिये कोई दूसरा चारा नहीं है भारत के दो टुकड़े कर दिये।

पाकिस्तान के बन जाने के पश्चात् मुस्लिम लीग का प्रभाव हमारे देश से कम हो गयाहै, कारण, इसके प्रायः सभी नेता पाकिस्तान चले गये हैं और १५ अगस्त सन् १९४७ के पश्चात भारत में जो देश व्यापी साँप्रदायिक झगड़े हुये, जिनके कारण लाखों स्त्री और पुरुषों की निर्मम हत्या की गई, करोड़ों रुपये की संपत्ति नष्ट हुई, नव जवान लड़कियों के साथ व्यभिचार किया गया, स्त्रियों और बच्चों को भगाया गया, उसकी सारी

जिम्मेदारी मुस्लिम लीग के सिर पर रक्खी गई। इस सब हत्याकाँड के पश्चात भारत की जनता को आशा थी कि हिंदुस्तान के मुसलमान अब 'लीग' का नाम न लेंगे और इस संस्था को स्वतः तोड़ देंगे। परन्तु आज भी हमारे देश में अनेक ऐसे मुसलमान हैं जिनकी मनोवृत्ति पहिले की भांति साँप्रदायिक है और जो इस असांप्रदायिक राष्ट्र में भी लीग के ढांचे को पहिले के समान ही बनाये रखना चाहते हैं। परन्तु विदित है कि अब अधिक दिनों तक ऐसे लोग अपने लक्ष्य में सफल न हो सकेंगे और गणतन्त्रीय लौकिक भारत में यह संस्था अधिक दिन तक जीवित न रह सकेगी।

मुसलमानों की दूसरी संस्थायें

लीग के अतिरिक्त मुसलमानों की दूसरी संस्थाओं में जमीयत उल उल्माए हिंद, शिया राजनीतिक सम्मेलन, मोमिन पार्टी तथा अहरार पार्टी के नाम मुख्य हैं। मुस्लिम लीग की प्रभुता के काल में इनके सदस्यों की संख्या बहुत थोड़ी थी और मुस्लिम जनता पर इनका प्रभाव अत्यंत सीमित था। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् मुसलमानों की इन संस्थाओं का प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता जाता है। इन संस्थाओं में अधिकतर जमीयत उल्‌उलेमाए हिंद, मौलाना आजाद, हफीजुर्रहमान, और हुसैन अहमद मदनी के नेतृत्व के कारण अधिक लोक प्रिय है। अपने लखनऊ के मार्च सन् १९४९ के अधिवेशन में जमीयत ने यह निश्चय किया कि वह राजनीति में भाग न लेगी और उसका एकमात्र कार्य मुसलमानों की सामाजिक तथा साँस्कृतिक उन्नति करना होगा।

सिखों के राजनैतिक दल

सिक्खों में मुख्यतया तीन विचार धाराओं के लोग पाये जाते हैं, एक वह जो पूर्णरूप से राष्ट्रवादी दृष्टिकोण रखते हैं, और काँग्रेस के साथ मिल कर भारत में एक जनसत्तात्मक असाँप्रदायिक राज्य की स्थापना करना चाहते हैं। इस विचार के नेताओं में बाबा खड़ग सिंह, सरदार प्रताप सिंह, तथा ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर हैं। दूसरे, वह लोग है जो

इस विचार के बिलकुल विपरीत सिक्खों के लिये भारत में एक अलग राज़्य की स्थापना करना चाहते हैं । इन लोगों के विचार से सिक्ख हिंदुओं से अलग एक धार्मिक जाति है जिनका अपना एक अलग इतिहास, संस्कृति तथा भाषा है । इन हितों की रक्षा के लिये वह भारत में एक अलग सिख प्रांत की माँग करते हैं । इस विचार धारा के लोगों को 'अकाली' भी कहा जाता है । इनके नेता मास्टर तारा सिंह तथा ज्ञानी करतार सिंह हैं । तीसरे, सिखों में वह लोग हैं जो इन दोनों विचारधाराओं के बीच के मार्ग का अवलंबन करते हैं । वह सिखों के लिये किसी अलग राज्य अथवा प्रांत की माँग तो नहीं करते परन्तु वह सिख पंथ की एकता बनाये रखने के लिये काँग्रेस से कुछ विशेष अधिकारों की प्राप्ति चाहते हैं । इस दल के नेताओं में सरदार ऊधम सिंह नगोके तथा महाराजा पटियाला हैं । नये विधान के अन्तर्गत सिखों की पिछड़ी हुई जातियों को छोड़ कर जिनमें रामदासी तथा कबीर पंथी सिख शामिल हैं शेष सिखों के लिये धारा सभाओं अथवा नौकरियों में सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था नहीं की गई है । इसलिये आशा है कि शीघ्र ही साँप्रदायिकता का भूत सिखो के बीच से नष्ट हो जायगा तथा मा० तारा सिंह का अकाली दल अधिक समय तक सिखों का पथ भ्रष्ट न कर सकेगा ।

हिंदू सभा

हमारे देश के हिंदुओं में वैसे तो साम्प्रदायिकता की भावना बहुत कम है, अधिकतर हिंदू राष्ट्रवादी विचार-धारा के ही पाये जाते हैं, परन्तु २८ करोड़ की जन संख्या में कुछ ऐसे हिंदू भी अवश्य हैं जो भारत में एक हिंदू राज्य की स्थापना का स्वप्न पूरा होता देखना चाहते हैं । ऐसे हिंदुओं ने हमारे देश में हिंदू महासभा की संस्था को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भी एक राजनीतिक संस्था के रूप में जीवित रक्खा है । इस संस्था का अस्तित्व उस समय तो समझ में आता था जब हमारा देश गुलाम था और मुसलमानों के आक्रमण के विरुद्ध हिंदुओं की रक्षा करने के लिये इस प्रकार की सस्था

की नितान्त आवश्यकता थी। इसी दृष्टि से हिंदू महासभा के जन्म दाता हमारे राष्ट्रीय नेता लाला लाजपत राय तथा पंडित मदन मोहन मालवीय थे। उन्होंने सन् १९२३ में हिंदुओं का संगठन करने तथा हिंदू धर्म से सामाजिक कुरीतियों का विनाश करने के लिये इस संस्था को जन्म दिया। परन्तु आरंभ से ही यह संस्था कुछ ऐसे प्रतिक्रियावादी नेताओं के हाथ में रही है जिन्होंने इसके द्वारा अपनी राजनीतिक आकाँक्षाओं को पूर्ण करना चाहा है और सुधार तथा संगठन के कार्य के बजाय 'हिंदू धर्म खतरे में' का नारा लगा कर समाज की पिछड़ी हुई धर्मांध जनता की सहानुभूति प्राप्त करनी चाही है। इसी कारण यह संस्था हमारे देश के स्वतन्त्रता संग्राम के काल में काँग्रेस के साथ मिलकर नहीं चली वरन् सदा राष्ट्रवादी शक्तियों का विरोध करती रही।

महात्मा गाँधी की मृत्यु के पश्चात कुछ काल के लिये हिंदू महा सभा ने राजनीति के क्षेत्र से अलग रहने की नीति को अपना लिया था। परन्तु सितंबर सन् १९४९ के अपने कलकत्ते के अधिवेशन में उसने फिर यह घोषणा की है कि वह सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेगी और आने वाले चुनावों में अपने उम्मीदवार खड़ा करेगी। इस संस्था के वर्तमान नेताओं में वीर सावरकर, डा० खरे, मि० भोपतकर, आशुतोष लाहिड़ी, एन० सी० चैटर्जी तथा सर गोकलचन्द नारंग के नाम मुख्य हैं।

लिबरल पार्टी

भारत के राजनीतिक क्षेत्र में एक और छोटी सी संस्था है जिसके नेता गण तो बहुत हैं परन्तु जिसके जनता में अनुयायी बहुत कम हैं। इस संस्था का नाम "नैशनल लिबरल फिडरेशन" है। इनके नेताओं में पं० हृदयनाथ कुंजरू, मि० चिमनलाल सीतलवाद, काउसवाजी जहाँगीर, सर महाराज सिंह, रामस्वामी मुदालियर, तथा सर अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर मुख्य हैं। यह सब नेता समाज के अत्यंत प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। अपने अनुभव, बुद्धि चमत्कार तथा गूढ़ अध्ययन के कारण इनकी सारे देश में मान्यता है।

काँग्रेस ने भी इन नेताओं का सहयोग प्राप्त करने के लिये संविधान सभा के चुनावों में इनमें से अनेक व्यक्तियों को नामजद किया था। भारत का संविधान बनाने में इन नेताओं ने काफी भाग लिया। परन्तु जिस नरम विचारधारा का यह लोग प्रतिनिधित्व करते हैं उसके आज हमारे देश में अधिक अनुयायी नहीं हैं। भारत की भूख और प्यास से पीड़ित कोटि कोटि जनता आज देश में एक आर्थिक क्रांति चाहती है। इसीलिये वह काँग्रेस तथा वामपक्षी संस्थाओं का साथ देती है। 'लिबरल पार्टी' की विकासवादी योजना पर कार्य करने के लिये आज के वातावरण में हमारे देश की जनता तैयार नहीं है। यही कारण है कि लिबरल नेताओं का व्यक्तिगत दृष्टि से अत्यंत मान होने पर भी उनकी संस्था के लिये अभी हमारे देश में कोई स्थान नहीं है।

अध्याय १६

हमारा आर्थिक जीवन

किसी देश की जनता के नागरिक जीवन पर उसकी आर्थिक स्थिति का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। कोई भी व्यक्ति उस समय तक एक सभ्य तथा समुन्नत जीवन व्यतीत नहीं कर सकता जब तक उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये समुचित आय का प्रबंध न हो। निर्धन, बेकार तथा रोटी की समस्या से त्रस्त लोग न केवल वैयक्तिक दृष्टि से ही एक अच्छे सामाजिक जीवन व्यतीत करने के अयोग्य होते हैं वरन् वह समाज की शाँति तथा स्थिरता के लिये भी एक खतरा बन जाते हैं। प्रायः ऐसे ही लोगों की श्रेणी में से हमारी समाज के अधिकतर शत्रु-चोर, डाँकू, लुटेरे, जाल साज, धोकेबाज, हत्यारे इत्यादि—भरती होते हैं। वह सामाजिक संगठन अथवा उसके नियमों का विचार किये बिना ही, चाँदी के कुछ थोड़े से टुकड़ों के लोभ से, नीच से नीच काम करने पर उतारू हो जाते हैं। इस प्रकार विदित है कि समाज की शाँति तथा प्रगति और नागरिक जीवन की अच्छाई के लिये, आर्थिक साधनों की प्रचुरता तथा उसका उचित विभाजन निताँत आवश्यक है।

हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं कि भारतीयों के नागरिक जीवन का स्तर अत्यंत नीच कोटि का है। हमारे सामाजिक जीवन में अनेक कुरीतियाँ—अंध विश्वास, अविद्या, साँप्रदायिकता की भावना, आडम्बरवाद, व्यर्थ के रीति रिवाज—घर कर गय हैं। इन सब बुराइयों के दो मुख्य

कारण हमारी अशिक्षिता तथा निर्धनता हैं। निर्धनता के कारण न हमें अपने बच्चों को शिक्षित बना सकते हैं, न अपने रहन सहन के स्तर को ऊंचा कर सकते हैं, न एक सभ्य तथा सुसंस्कृत जीवन व्यतीत कर सकते हैं और न ही समाज के सभ्य तथा शिक्षित लोगों की श्रेणी में बैठकर उनकी अच्छी आदतों को ग्रहण कर सकते हैं।

इस अध्याय में इसलिये हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे जिनसे हमारा आर्थिक जीवन इतना असंतोषप्रद है और हमारी जनता संसार के सभ्य देशों में सबसे अधिक निर्धन और गरीब है।

भारतीय कृषि

हमारे देश की अधिकतर जनता खेती क्यारी से अपना जीवन निर्वाह करती है। पिछले ५० वर्षों में अनेक उद्योग धन्धों के स्थापित हो जाने पर भी हमारी ७५ प्रतिशत जन संख्या खेती पर ही निर्भर है। कृषि की उन्नति पर ही हमारे उद्योग धन्धों तथा व्यापार की भी प्रगति निर्भर रहती है।

परन्तु कैसे दुर्भाग्य की बात है कि सहस्त्रों वर्षों से यह व्यवसाय करने पर भी हमारी कृषि की उत्पत्ति दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत कम है और इतने अधिक व्यक्तियों के इस व्यवसाय में लगे रहने पर भी हमारे देश की जनता को अपनी क्षुधा शान्त करने के लिये करीब ४० लाख मन अन्न विदेशों से मंगाना पड़ता है। हमारे देश में भूमि अत्यंत उपजाऊ है, सिंचाई के साधन भी अब बढ़ते जा रहे हैं, धूप तथा वर्षा की भी कोई कमी नहीं, परन्तु फिर भी हम कृषि के क्षेत्र में कितने पिछड़े हुवे हैं। इसके निम्न मुख्य कारण हैं:—

(१) किसानों की अशिक्षिता तथा उनके खेती के क्षेत्र में नये तजु-र्बों—मशीनों, खाद, बीज इत्यादि को उपयोग में लाने के प्रति उदासीनता।

(२) किसानों की भाग्य वादिता या कट्टरपन जिसके कारण अपनी आर्थिक दशा को सुधारने के लिये उनमें आन्तरिक प्रेरणा उत्पन्न नहीं होती ।

(३) हमारे किसानों की जमीनों का जगह जगह बिखरा हुवा तथा छोटे छोटे टुकड़ों में बंटा रहना ।

(४) जिन स्थानों पर वर्षा की कमी है वहाँ सिंचाई के साधनों की कमी ।

(५) किसानों की निर्धनता तथा गावों में सहकारी समितियों, बैंकों, तथा उचित ब्याज पर ऋण देने वाली संस्थाओं की कमी ।

(६) कृषि अनुसंधान संस्थाओं की कमी जो नये नये आविश्कारों तथा प्रयोगों द्वारा खेती की उपज बढ़ाने के लिये सुझाव दे सकें तथा उपज को, कीड़ों, कीटाणुओं, चूहों इत्यादि के प्रकोप से बचा सकें ।

इन दशाओं में सुधार करने के लिये हमारे प्रांतों की सरकारों ने अनेक प्रयत्न किये हैं । जगह जगह सहकारी समितियाँ किसानों को ऋण देने, उपज की बिक्री का उचित प्रबंध करने, अच्छा बीज एवं, लोहे के हल तथा मशीनें इत्यादि देने, जमीनों को इकट्ठा करने इत्यादि का कार्य करती हैं । सरकार का कृषि विभाग, नये खेती के तरीकों को लोक प्रियं बनाने का प्रबंध करता है । प्रांतों में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन भी किया जा रहा है जिससे किसानों को उनकी जमीन का मालिक बनाया जा सके तथा वह उनमें रुपया लगा कर स्थाई सुधार कर सकें ।

भारतीय किसान

कुछ काल पहले हम कह सकते थे कि हमारे किसानों की आर्थिक दशा अत्यंत खराब है । वह ऋण में ग्रस्त है या खेती क्यारी की आमदनी से उनका काम नहीं चलता । परन्तु पिछले दस वर्षों में इस दशा में क्रांतिकारी

परिवर्तन हुवा है । पिछले महायुद्ध के पश्चात से हमारी खेती की उपज की चीजों की कीमतें इतनी बढ़ गई हैं कि हमारे किसानों का भाग्य चमक उठा है, और वह साहूकार के ऋण के नीचे दबे हुवे न रह कर, संपत्तिशाली बन गये हैं । लड़ाई के पश्चात चीजों की कीमतें बढ़ गई हैं । यदि सन १९४० में गेंहूंढ़ाई रुपये मन बिकता था, तो आज उसकी कीमत २०रुपये मन से अधिक है, जिस गन्ने को यू० पी० के किसान चार आने मन कीमत पर नहीं बेंच सकते थे, आज उसी गन्ने को २ रुपये मन पर नखरों के साथ बेचते हैं । किसी समय गुड़ की कीमत दो रुपये मन थी, आज वही गुड़ २५ रुपये मन बिकता है । कीमतों में इस भारी बढ़ोतरी के हो जाने से हमारे किसान भाइयों को सबसे अधिक लाभ हुवा है । इसके अतिरिक्त हमारे प्रांतों की सरकारें जमींदारी उन्मूलन, ग्राम सुधार योजनाओं तथा ग्राम पंचायतों के संगठन के द्वारा उनकी अवस्था में और भी अधिक उन्नति करने का निरंतर प्रयत्न कर रही हैं । नये विधान के अन्तर्गत भी हमारे किसान भाइयों को ही वयस्क मताधिकार के द्वारा भारत का भाग्य विधाता बना दिया गया है । वह अपने मत का उचित उपयोग करके अब देश में जिस प्रकार की चाहें सरकार का निर्माण कर सकेंगे तथा अपनी आर्थिक व सामाजिक उन्नति के लिये, विशेष आदेश, अपने प्रतिनिधियों को दे सकेंगे ।

परन्तु, हमारे किसानों की आर्थिक अवस्था में यह परिवर्तन शायद स्थाई न रह सके, कारण, अधिक समय तक खेती की वस्तुओं की कीमतें बढ़ी हुई न रह सकेंगी । आज भी आने वाली मन्दी के युग के स्पष्ट चिन्ह हमें दिखाई देते हैं । क्या उस समय हमारे किसानों की अवस्था फिर एक बार पहिले जैसी हो जायगी ? इस प्रश्न का उत्तर हमारे कृषकों की वर्तमान काल में बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता पर निर्भर है । यदि आजकल जब किसानों की आय अधिक है, उनके पास कुछ धन तथा संपत्ति भी इकट्ठा

हो गई है—उन्होंने अपने रुपये का उचित उपयोग नहीं किया तथा उसे व्यर्थ के रीति रिवाजों, सहभोज, उत्सवों, व त्यौहारों, इयादि में लगाया तो भविष्य में उनकी आर्थिक अवस्था ठीक न रह सकेगी। आज हम देखते हैं कि हमारे गाँव के किसान रुपये का बुरी तरह उपयोग कर रहे हैं। हमारे प्रांत की सरकार ने जो किसानों को भूमिधारी अधिकार प्रदान करने की योजना बनाई है उसका भी वह पूर्ण लाभ नहीं उठा रहे हैं। यदि समय रहते हमारे किसानों ने अपनी आय के उचित उपयोग पर ध्यान नहीं दिया और वह इसी प्रकार अपने धन का अपव्यय करते रहे तो वह दिन दूर नहीं जब मन्दी के काल में वह अनुभव करेंगे कि अपने रुपये को लाभकारी उद्योग धन्धों में न लगा कर उन्होंने अपने पैरों स्वयं कुल्हाड़ी मारी है।

भूमि रहित मजदूर—किसानों के अतिरिक्त हमारे देश के गावों में जनता की एक और श्रेणी है जिसकी आर्थिक अवस्था आजकल भी अधिक अच्छी नहीं है और जिसे लड़ाई के कारण खेती की चीजों की कीमतों म भी बढ़ोतरी होने से कोई लाभ नहीं हुआ है। यह श्रेणी गाँव के भूमि रहित मजदूरों की श्रेणी कहलाती है। यह लोग बड़े बड़े किसानों के यहाँ मजदूरी करके अपना पेट पालते हैं। इन्हें वर्ष में केवल तीन या चार महीने के लिये ही रोजगार मिलता है, शेष समय वह ठाली बैठकर ही अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। इन मजदूरों की अवस्था सुधारने के लिये सरकार को चाहिये कि वह गावों में छोटे छोटे घरेलू उद्योग धन्धे कायम करे। गाँव के किसान, स्त्री व बच्चे भी इन उद्योग धन्धों में अपने बेकार समय का उपयोग कर सकते हैं और इस प्रकार अपनी आय को बढ़ा कर अपने रहन सहन के स्तर को ऊंचा कर सकते हैं। हमारी सरकार ने जापान से बहुत सी ऐसी छोटी छोटी मशीनें मंगाई हैं जो गावों में लगाई जा सकती हैं और जिनके

चलाने के लिये बहुत बड़े सरमाये अथवा टैकनिकल ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। ग्रामीण जनता को शिक्षित बनाने की ओर भी सरकार का विशेष ध्यान होना चाहिये। शिक्षित किसान ही खेती के तरीकों में क्रांति कर हमारे देश की अन्न समस्या को सुलझा सकते हैं।

भारतीय उद्योग धंधे

एक समय था जब हमारा देश घरेलू उद्योग धंधों के क्षेत्र में संसार का सबसे उन्नत देश था। परन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज्य में वह सब नष्ट हो गये। विलायत की बनी हुई सस्ती चीज़ें हमारे देश में बिकने लगीं और हमारे अपने कारीगर बेकार हो गये। महात्मा गांधी ने अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना कर के इस दिशा में कुछ परिवर्तन करने का उद्योग किया, परन्तु स्वराज्य प्राप्ति से पहिले इस दशा में अधिक प्रगति न हो सकी। जहाँ तहाँ कुछ गाँवों में छोटे छोटे उद्योग धंधे आरम्भ किये गये परन्तु आर्थिक कठिनाइयों, मशीनों के अभाव, विक्री की कमी तथा सरकारी सहायता के न मिलने से इस दशा में अधिक सफलता न हो सकी।

घरेलू उद्योग धंधों की उन्नति हमारे देश में उस समय अधिक हो सकती है जब भारत के अधिकतर गांवों में सस्ती मशीनों के मिलने का प्रबन्ध हो जाय। हमारी सरकार इस समय अनेक नदियों व घाटियों के पानी की सहायता से बिजली बनाने की योजनाओं पर कार्य कर रही हैं। यदि वह सब योजनाएं कार्यान्वित हो गईं तो फिर हमारे गांवों में उसी प्रकार सस्ती बिजली मिल सकेगी जैसे जापान, डेनमार्क, हालैंड, या योरुप के बहुत से देशों में मिलती है, और फिर हमारे किसान घर घर में छोटे छोटे उद्योग धंधे आरम्भ कर सकेंगे। इन उद्योग धंधों की उन्नति के लिये सरकार को निम्न और उपाय काम में लाने चाहिये:—

(१) किसानों की आर्थिक सहायता के लिये जो इस प्रकार के उद्योग धंधे आरम्भ करना चाहें सस्ते ब्याज पर ऋण का प्रबन्ध।

(२) विदेशों से ऐसी मशिनों की आयात जो गांवों में आसानी से लगाई जा सकें और वे पढ़े लिखे लोग भी उनका उपयोग कर सकें।

(३) इन कारखानों में बनी हुई चीजों की देश व विदेशों में बिक्री का उचित प्रबन्ध।

(४) सरकार द्वारा ऐसी अनुसंधान संस्थाओं की स्थापना जो इन उद्योग धंधों की उन्नति के लिये निरन्तर प्रयत्न करती रहें।

बड़े उद्योग धन्धे

हमारे देश में बड़े बड़े उद्योग धंधे पिछले ८० वर्षोंमे ही स्थापित हुए हैं। इस समय हमारे देश में लगभग १०,००० ऐसे बड़े बड़े कारखानें हैं जिनमें २० से अधिक मज़दूर काम करते है, तथा जिनमें 'पावर' का प्रयोग होता है। इन उद्योग धंधों में लगभग ४२८ कपड़े की मिलें हैं जिन पर लड़ाई के पहिले की कीमतों के हिसाब से ४०करोड़ से अधिक रुपया लगा हुआ है तथा जिनमें ४ लाख से अधिक मज़दूर काम करते हैं; १०४ जूट मिलें हैं जिनमें ३ लाख से अधिक मज़दूर काम करते हैं। इन कारखानों में सबसे बड़ा टाटा नगर का कारखाना है। चीनी के कारखानों की संख्या हमारे देश में १३४ है, जिनमें सब मिला कर, लगभग १२ लाख टन चीनी पैदा की जाती है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में लगभग १६ कागज की मिलें, कुछ रबड़, प्लास्टिक, सिल्क, वैजिटेबिल घी, चाय, ऊन सिमैन्ट, दियासलाई, कैमिकल, तेजाब, व दवाइयों, के कारखानें हैं तथा अनेक छोटे छोटे चावल, तेल, दाल, कोल्हू ढ़लाई, रूई के कारखानें तथा इंजीनियरिंग वर्क शाप इत्यादि हैं।

पिछली लड़ाई के काल में हमारे देश में अनेक और कारखाने तथा उद्योग धंधे खोले गये। इनमें हवाई जहाज, समुद्री जहाज, मोटर, बाइ-

सिकिल, तेजाब, बिजली का सामान, कैमिकल, दवाइयाँ, छोटी मशीनें, स्टेशनरी का सामान, बटन, ट्यूब, टायर, इत्यादि बनाई जाती थीं। लड़ाई के पश्चात् इनमें से बहुत से छोटेछोटे कारखाने बन्द हो गये हैं, कारण वह विदेशों से आने वाली सस्ती चीजों का मुकाबिल न कर सके और उन्हें सरकार की ओर से किसी प्रकार की सहायता नहीं दी गई।

यदि उपरोक्त आकड़ों की ओर ध्यान से देखा जाय तो विदित होगा कि हमारे देश में उद्योग धन्धों की संख्या बहुत कम है। भारत जैसे देश के लिये जिसकी जन संख्या चीन को छोड़ कर संसार के और सभी देशों से अधिक है तथा जहाँ के प्राकृतिक साधन सबसे ज्यादा हैं, उद्योग धन्धों के क्षेत्र में हमारे देश का पीछे रहना कुछ युक्ति युक्त मालूम नहीं पड़ता। परन्तु, फिर भी यदि हमारे देश का औद्योगीकरण कम हो पाया है तो इसके निम्न कारण हैं:—

(१) अगस्त, १९४७ से पहिले हमारे देश की गुलामी, जिस काल में अंग्रेजों की सदा यह नीति रही कि हमारा देश औद्योगिक क्षेत्र में अधिक उन्नति न करे और इंगलैण्ड तथा योरप के देशों को कच्चा माल ही भेजता रहे।

(२) कारखानों को चलाने के लिये बिजली व दूसरी शक्ति के साधनों की भारी कमी।

(३) देश में टैकनिकल शिक्षा संस्थाओं तथा अनुभवी होशियार कारीगरों की कमी।

(४) मशीन बनाने के कारखानों का अभाव तथा इस क्षेत्र में हमारी दूसरे देशों पर पूर्ण निर्भरता।

(५) बुनियादी कारखानों की कमी जिस पर किसी देश का पूर्ण औद्योगिककरण निर्भर है।

(६) मूल धन की कमी तथा उसका ऐसे व्यक्तियों के हाथ में जमाव जिनमें उद्योगिक उत्साह की भारी कमी है ।

इन सब कमियों के होते हुए भी पिछले महायुद्ध के काल में तथा उसके कुछ समय पश्चात् तक हमारे देश में अनेक नये कारखाने खोले गये तथा सैकड़ों लिमिटेड कंपनियाँ नये नये काम आरंभ करने के लिये संगठित की गई । परन्तु इसके पश्चात् हमारे देश में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जिनके कारण या तो कारखानों में रुपया लगाने वाली जनता का विश्वास कम हो गया या ऐसे बहुत से लोग पाकिस्तान बनने या उसके पश्चात् होने वाले उपद्रवों के कारण, बिलकुल बरबाद हो गये । इसलिये पिछले तीन वर्षों में कोई बड़ा कारखाना, बैंक, बीमा कंपनी अथवा कोई और उद्योग धन्धा कायम नहीं हो सका । आज हमारे वर्तमान उद्योग धन्धों की अवस्था भी अधिक अच्छी नहीं है । कारखानों तथा कंपनियों के हिस्सों के दाम बराबर गिरते जा रहे हैं । मध्यम श्रेणी के लोगों को इस मन्दी के कारण भारी हानि का सामना करना पड़ा है । अनुमान लगाया गया है कि शेयर बाजार में मन्दी के कारण जनता को १२०० करोड़ रुपये का घाटा हुआ है । बहुत से परिवारों की तो वर्षों की संपूर्ण बचत पर पानी फिर गया है और अब वह नये कारखानों में एक पैसा लगाने से भी डरते हैं । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस दुर्अवस्था के निम्न कारण हैं:—

(१) पंजाब तथा सिंध के हिंदुओं का आर्थिक विनाश,

(२) जमींदारों तथा राजाओं का उन्मूलन,

(३) हमारी राष्ट्रीय सरकार की अव्यवहारिक आर्थिक नीति,

(४) सरकार द्वारा राष्ट्रीयकरण की नीति की घोषणा

(५) सरकार की अयोग्य तथा हानिकारक नीति,

(६) विदेशी व्यापार के क्षेत्र में सरकार की निश्चित नीति का अभाव

(७) इन्कम टैक्स जाँच कमेटी की नियुक्ति और उसके द्वारा अनेक उद्योगपतियों के पिछले हिसाब किताबों की जाँच और उनको परेशान करने की भावना

(८) बाजार में चोर बाजार रुपये की अधिकता और उसको देश के औद्योगिक करण में प्रयोग करने की नीति का अभाव

(९) मजदूरों द्वारा हड़ताल तथा वेतन में बढ़ोतरी का आन्दोलन

(१०) सरकारी खर्चे में भारी फैलाव तथा उसको पूरा करने के लिये नये नये टैक्सों तथा करों की वसूली और जनता का शोषण

(११) चीजों की कीमतों में बढ़ोतरी और उसके कारण साधारण जनता द्वारा रुपया बचाने में असमर्थता ।

व्यापार और तिजारत

हमारे देश की जन संख्या तथा उसका आकार देखते हुये, हमारे वैदिशिक तथा आन्तरिक व्यापार की मात्रा बहुत कम है। इसका मुख्य कारण हमारे देश की गरीबी है। हमारी अधिकतर जनता की इतनी आय नहीं है कि वह रोटी कपड़े के अतिरिक्त आराम तथा विलासिता की सामिग्री पर अपनी गाढ़ी कमाई का कोई भाग व्यय कर सके। हमारे देश के वैदिशिक व्यापार का कुल मूल्य सन् १९४६-४७ में ५८३ करोड़ रुपया था। अमरीका के कुल व्यापार का यह दसवां भाग भी नहीं। इस व्यापार में हमारे देश से वाहर जाने वाली वस्तुओं का मूल्य २९६ करोड़ रुपया तथा देश के अन्दर आने वाली वाली वस्तुओं का मूल्य २८७ करोड़ रुपया था। आयात के आकड़ों में वह रकम शामिल नहीं की गई है जिसके द्वारा भारत पिछले वर्षो में ६० करोड़ रुपयें का अन्न प्रति वर्ष विदेशों से मँगाता था। इस रकम को आयात में सम्मिलित कर लेने से हमारे देश के वैदेशिक व्यापार की बाकी हमारे प्रतिकूल हो जाती है,

अर्थात् विदेशी व्यापार के क्षेत्र में हम दूसरे देशों के रिणी बन जाते हैं। भारत सदा से ही विदेशी व्यापार के क्षेत्र में दूसरे देशों का साहूकार रहा है, परन्तु युद्ध के पश्चात् हमारे देश की आर्थिक अवस्था कुछ इतनी हीन हो गई कि इस दशा में हम व्यापारिक संतुलन बनाये रखने में सफल न हो सके। इसी कारण हमारी सरकार को ब्रिटेन की मुद्रा के साथ अपने रुपये का अवमूयन करना पड़ा और विदेशों से आने वाले माल पर भारी रोक लगानी पड़ी।

कुछ काल पहले हमारे देश से अधिकतर कच्चा माल दूसरे देशों को भेजा जाता था। परन्तु पिछले वर्षों में इस दशा में भारी परिवर्तन हो गया है। सन् १९४९ से पिहले हम लगभग ५० प्रतिशन कच्चा और ३० प्रतिशत तैयार माल विलायत भेजते थे। युद्ध के समय तथा उसके पश्चात् हमारे बाहर जाने वाले कच्चे माल की औसत घट कर २० प्रतिशत और तैयार माल की औसत बढ़ कर ५२ प्रतिशत हो गई। विदेशों से आने वाले माल में अधिकतर मशीनरी, धातु, तेल, मोटर, औज़ार, कपड़ा, तथा स्टेशनरी का सामान होता है। हमारे देश से बाहर जाने वाले माल में इसके विपरीत अधिकतर संख्या जूट तथा जूट के सामान, रूई, कपड़ा चाय, खाल और चमड़ा धातु, ऊन, तेल के बीज, कोयला, चीनी तथा और छोटी छोटी बनी बनी हुई चीज़ों की होती है।

हमारा विदेशी व्यापार अधिकतर राष्ट्र मंडल के सदस्य देशों तथा तथा अमरीका के साथ होता है, परन्तु मध्य पूर्व तथा सुदूरपूर्व के देशों के साथ भी अब इस व्यापार की मात्रा, निरन्तर बढ़ रही है।

आने-जाने के साधन

किसी देश के व्यापार में आने जाने के साधन, उसकी जीवात्मा का काम करते हैं। इन साधनों के बिना न उत्पत्ति ही बढ़ सकती है, न

व्यापार ही चल सकता है, और न ही देश किसी प्रकार की आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक उन्नति ही कर सकता है ।

दुर्भाग्य वश हमारे देश में आने जाने के साधनों की भारी कमी है । १२ लाख वर्ग मील के विस्तृत क्षेत्रके लिये हमारे देश में रेलों की कुल लम्बाई ३२००० वर्ग मील से भी कम है। इसी प्रकार सड़कों की लम्बाई केवल ३ लाख वर्ग मील हैं, जिसमें से पक्की सड़कें १ लाख ६४ हज़ार मील और कच्ची सड़कें १ लाख ३६ हज़ार मील हैं। हमारे देश के अधिकतर गाँव ऐसे हैं जो सड़कों तथा रेलों से बहुत दूर प्रान्तों के आन्तरिक भाग में स्थित हैं। इन गाँवों के लोगों को शहरों तथा मंडियों से अपना सम्पर्क बनाये रखने में भारी असुविधा का सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि हमारे देश के अधिकतर गाँव आर्थिक उन्नति नहीं कर पाते। कुछ काल से हमारी प्रान्तीय सरकारें गावों तथा मंडियों को जोड़ने के लिये सड़कों तथा मोटर बसों की व्यवस्था कर रही हैं। परन्तु इस काम को पूरा करने के लिये जितने अधिक धन की आवश्कता है उसका प्राप्त करना देश की वर्तमान आर्थिक अवस्था में सम्भव नहीं । इसी लिये यह काम धीरे धीरे ही सम्पन्न हो रहा है।

भारतवर्ष में बेकारी की समस्या

बेकारी की समस्या हमारे देश में सदा से ही उग्र रूप धारण किये हुये है। पिछले महा युद्ध के काल में सैनिक भर्ती, युद्ध पर व्यय, नये नये कारखानों तथा उद्योग धंधों की स्थापना, सरकारी दफ़तरों में बढ़ोतरी, तथा जगह जगह सैनिक इमारतों, हवाई अड्डों, इत्यादि के बनने के कारण यह समस्या कुछ हल सी हो गई थी। गाँवों तथा नगरों में बेकारों की संख्या बहुत कम रह गई थी और अधिकतर लोग किसी न किसी लाभ-

दायक काम में जुट गये थे। परन्तु, युद्ध के पश्चात् यह समस्या फिर एक बार अपने विकराल रूप में देश के सन्मुख आ खड़ी हुई है। सरकारी दफतरों में छटनी आरम्भ हो गई है। युद्ध के समय सरकारी ठेकों के कारण जो छोटे छोटे कारखानें खोले गये थे वह बन्द हो चुके हैं। दूसरे कारखानों में मंदी के कारण व्यापार में अत्यन्त शिथिलिता आ गई है। केवल गाँवों में भूमि की उपज की वस्तुओं के मूल्य में किसी प्रकार की कमी न आने के कारण रोज़गार की स्थिति पूर्वतः बनी हुई है। परन्तु, वहाँ पर भी यह दशा अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकती, कारण हम देखते हैं कि आर्थिक संकट के बादल चारों ओर मँडरा रहे हैं। हमारी बेकारी की समस्या के मुख्य रूप से पाँच अंग हैं :— (१) गाँवों में किसानों तथा भूमि हीन मज़दूरों की वर्ष में छै मास से अधिक के काल के लिये बेकारी की समस्या (२) छोटे छोटे कारीगरों तथा घरेलू उद्योग धंधों में काम करने वाले मजदूरों की बेकारी की समस्या (३) शहरों में बड़े बड़े कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की बेकारी की समस्या और (५) नगरों में रहने वाले मध्यम श्रेणी के छोटे व्यापारी, दूकानदारों, ज़मीदार, तथा साहूकारों की बेकारी की समस्या।

पिछले महायुद्ध से पहिले हमारी बेकारी की समस्या के केवल चार पहलू थे परन्तु पिछले महायुद्ध ने हमारे देश के मध्यम श्रेणी के लोगों को भी बेकार कर दिया।

किसानों की बेकारी

हमारे देश की बेकारी की प्रथम समस्या, जैसा इस अध्याय में पहिले भी बताया जा चुका है, केवल उस समय हल हो सकती है जब हमारे गाँवों में छोटे छोटे उद्योग धंधे खोल दिये जांय। परन्तु इन धंधों की सफलता के लिये आवश्यक है कि सर्व प्रथम गाँवों

में सस्ती बिजली का प्रबन्ध किया जाय और घरेलू उद्योग धंधों में बनी हुई चीज़ों की बिक्री का समुचित प्रबन्ध हो।

कारीगरो की बेकारी की समस्या

छोटे कारीगरों तथा कलाकारों जैसे, बढ़ई, जुलाहे खिलौने, चित्र, तस्वीर' लकड़ी का फैंसी सामान, काँच की चीज़ें, फरनीचर तथा इसी प्रकार की कारीगरी की चीज़ें बनाने वाले कलाकारों की बेकारी की समस्या इतनी विकट नहीं है जितनी दूसरी श्रेणी के मज़दूरों की। 'येन केन प्रकारेण' यह व्यक्ति अपना निर्वाह कर लेते हैं, यद्यपि इनकी बनाई हुई चीज़ें विदेशों से आने वाली सस्ती वस्तुओं के मुकाबिले में मंहगी होती हे। फिर भी हाथ की कारीगरी के शौकीन कला प्रेमी इन वस्तुओं के खरीदनें में एक प्रकार के गर्व का अनुभव करते है और अधिक क़ीमत होने पर भी खरीद लेते हैं। यह सच है कि ऐसे व्याक्तियों की संख्या हमारे निर्धन देश में बहुत कम है, परन्तु शिक्षा की प्रगति के साथ जनता की रुचि में भी शनैः शनै-परिवर्तन आ रहा है और और इन कलाकारों की वस्तुएं आदर और सम्मान की दष्टि से देखी जाने लगी हैं।

पढ़े लिखे नवयुवकों की बेकारी की समस्या

यह समस्या हमारे देश की सबसे कठिन समस्या है, कारण इस समस्या के पीछे अंग्रेजी राज्य के दो सौ वर्षों का इतिहास छिपा है। अंग्रेजों ने हमारे देश वासियों को इस प्रकार की शिक्षा दी कि उन्हें दफ़तरों में काम करने के लिये पर्याप्त संख्या में बाबू मिल सकें। उन्होंने हमारी जनता को टेकनिकल अथवा औद्योगिक शिक्षा प्रदान नहीं की। इस शिक्षा प्रणाली का दूसरा बड़ा दोष यह था कि अंग्रेजी पढ़े लिखे नवयुवक अपने प्राचीन व्यवसाय से घृणा करने लगे और

एक प्रकार के श्रम के प्रति श्रद्धा का का सिद्धांत भूल गये। फल यह हुआ कि सरकारी नौकरियाँ सीमित थीं और जैसे जैसे पढ़े लिखे नवयुवकों की संख्या बढ़ी देश में बेकारी फैलती गई।

इस समस्या का उचित निवारण अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन तथा देश का औद्योगिक-करण ह। यदि हमारी सरकार औद्योगिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दे सकी तथा ऐसी अनेक संस्थाओं की स्थापना कर सकी जहाँ शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात विद्यार्थी तरह तरह के कारोबार व व्यवसाय में लग सकें तो इस समस्या का समुचित हल हो सकता है। परन्तु, कोई भी सरकार यह काम एकदम पूरा नहीं कर सकती। इसके लिये वर्षों के सतत् तथा निरन्तर परिश्रम की आवश्यकता है।

मध्यम श्रेणी के दूकानदार, जमींदार तथा व्यापारियों की बेकारी

जैसा पहिले बताया जा चुका है यह समस्या पिछले महायुद्ध के फलस्वरूप हमारे देश के सम्मुख उपस्थित हुई है। युद्ध के काल में हमारे देश की सरकार को अनेक कन्ट्रोल, परमिट, तथा राशन संबंधी कानून बनाने पड़े। इनसे देश में व्यापारिक स्वतन्त्रता का नाश हो गया और माल के आने जाने, क्रय-विक्रय, आयात-निर्यात पर तरह तरह की रोक लगा दी गई। इन सब कानूनों का यह परिणाम हुआ कि अनेक कपड़े, अनाज तथा दूसरी कन्ट्रोल की वस्तुओं के व्यापारी बेकार हो गये। इधर गावों में जमींदार उजड़ गये और शहरों में किराया संबंधी कानून पास होने से जायदाद के मालिकों की किराये की आमदनी कम हो गई। लड़ाई के पश्चात जनता को आशा थी कि वस्तुओं की कीमतें स्वत: ही गिर जायेंगी और सरकार द्वारा कन्ट्रोल हटा लिये जायेंगे। परन्तु युद्ध के पश्चात देश की आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई और दिन प्रति दिन काम आने वाली वस्तुओं की कीमतों में कमी होने के स्थान पर उल्टे बढ़ोतरी हो गई। फल यह हुआ कि सरकार को कन्ट्रोल कायम रखने पड़े। इधर मंहगाई के कारण

मध्यम श्रेणी के लोगों का खर्चा पहिले से बहुत अधिक बढ़ गया और किसी प्रकार का व्यवसाय न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति अत्यंत चिंता-जनक हो गई। आज परिस्थिति यह है कि हमारे समाज में मध्यम श्रेणी के लोगों का प्रायः लोप सा होता जा रहा है। इस श्रेणी के लोग जो सरकारी व दूसरी नौकरियाँ करते हैं, उनकी दशा भी अच्छी नहीं है। कारण, बढ़ती हुई मंहगाई, उनके रहन सहन के स्तर को निरन्तर नीचे की ओर ढ़केल रही है। आज इस श्रेणी के लोग जिन पर समाज की नींव कायम है—न अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे सकते हैं, न एक स्वास्थ पूर्ण जीवन को व्यतीत करने के लिये घर में भोजन सामग्री ही जुटा सकते हैं और न अपनी स्थिति के अनुसार शादी-विवाह, उत्सव व त्यौहार, पर दिल खोल कर रुपया ही खर्च कर सकते हैं। अनुमान लगाया गया है कि ६० प्रतिशत से अधिक ऐसे लोग, आजकल ऋण में ग्रस्त हैं और उनकी दशा गाँव के किसानों तथा शहर में काम करने वाले मजदूरों से भी बदतर है। इस श्रेणी के लोगों की अवस्था में केवल उस समय सुधार हो सकता है जब मुद्रा स्फीति दूर हो, चीजों की कीमतें घटें, कन्ट्रोल हटा लिये जाँय तथा व्यापार के क्षेत्र में फिर एक बार स्वतन्त्रता का वातावरण निर्माण हो जाय।

भारतवर्ष में ग़रीबी

इस अध्याय में हमने भारत की जिस आर्थिक स्थिति का विवरण दिया है उससे स्पष्ट हो गया होगा कि हमारे देश की अधिकतर जनता क्यों गरीब है तथा उसे दो समय भर पेट भोजन भी क्यों नहीं उपलब्ध होता? फिर भी संक्षेप में हम यहाँ इन सब कारणों को दोहरा देना उचित समझते हैं जिससे भारतवासी तथा हमारी राष्ट्रीय सरकार उन कारणों को दूर करने तथा हमारे देश में एक सच्चे आर्थिक लोक तन्त्र की स्थापना के लिये कार्य कर सकें। हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी भी देश की जनता के लिये स्वतन्त्रता का उस समय तक कोई मूल्य नहीं

होता जब तक उस देश की भूख और प्यास से पीड़ित जनता की रोटी की समस्या का हल नहीं निकलता। हमारी गरीबी के संक्षेप में निम्न कारण हैं:—

(१) देश की ७५ प्रतिशत से अधिक जनता का कृषि पर निर्भर होना।

(२) कृषि का आधुनिक, उपायों की अपेक्षा पुराने ढंग से किया जाना।

(३) देश में अधिक उद्योग धन्धों तथा बड़े बड़े बुनियादी कारखानों की कमी।

(४) अनेक उद्योग धन्धों पर विदेशियों का प्रभुत्व।

(५) जन-संख्या में प्रति वर्ष ५० लाख से भी अधिक बढ़ोतरी का हो जाना।

(६) सरकार की आर्थिक नीति की अनिश्चितता।

(७) हमारे शासकों का व्यापार, उद्योग तथा उत्पत्ति के क्षेत्र में अनुभवहीन होना।

(८) जनता की अशिक्षिता।

(९) देश में औद्योगिक शिक्षा तथा टेकनिकल संस्थाओं की कमी।

(१०) राष्ट्रीय आय का अनुचित विभाजन।

(११) जनता द्वारा अर्थशास्त्र के नियमों की अनभिज्ञता।

(१२) व्यर्थ के रीति रिवाज, शादी विवाह, सहभोज, इत्यादि पर धनता का अनुचित व्यय।

इन सब कारणों को दूर करने से ही हम अपने देश की आर्थिक समस्याओं को हल कर सकते हैं तथा भारत में एक सच्चे आर्थिक लोक तन्त्र को जन्म दे सकते हैं।

अध्याय २०

भारत और राष्ट्रसंघ

हमारा धर्म परायण देश सदा से ही सारे विश्व को अपने एक वृहद परिवार का अंग मानता चला आ रहा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' यही हमारे धर्म शास्त्रों में प्रतिपादित सबसे महान् आदर्श है। समस्त मानव समाज को एक रूप समझना तथा पृथ्वी के सभी प्राणियों की सेवा सुश्रुषा करना हमारे धर्म ग्रन्थों की दीक्षा का निचोड़ है। हमारे राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी ने भी अपने संपूर्ण जीवन में यही सिद्धांत जनता के सम्मुख रक्खा। उन्होंने बताया कि संसार में सत्य, अहिंसा, भातृभाव एवं न्याय के सिद्धांतों का प्रचार करना सबसे महान् जन सेवा का कार्य है। वह उत्कृट राष्ट्रीयता की भावना के घोर विरोधी थे। उनके जीवन का ध्येय था संसार में सत्य एवं अहिंसा के सिद्धांतों पर चल कर विश्व शाँति कायम करना तथा समस्त मानव समाज को अटूट प्रेम के बंधन में बाँध कर एक विश्व सरकार का निर्माण करना। यही कारण है कि सदा से ही हमारे देश ने उन सभी योजनाओं में सहयोग प्रदान किया है जो योजनाएं विश्व शांति एवं एक शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाने के लिये समय समय पर बनाई गई हैं।

भारत का राष्ट्रसंघ के कार्य में योगदान

जिस समय सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के पश्चात् संसार में राष्ट्र संघ (लीग आफ नेशन्स) की स्थापना की गई तो परतन्त्रता की अवस्था में भी भारतवर्ष ने उस संस्था के कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

इसके पश्चात जब अक्तूबर सन् १९४५ में एक दूसरे संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था की गई तो हमारा देश उस संस्था के जन्म दाताओं में सबसे अग्रगण्य था। आज हमारा देश उन थोड़े से देशों में से एक है जो संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों में पूर्णतया विश्वास करता है तथा उसकी सफलता के लिये निरंतर प्रयत्नशील रहता है। विश्व शान्ति के क्षेत्र में हमारे देश का योगदान किसी से कम नहीं है। हमारे देश ने संयुक्त राष्ट्र संघ के दो विरोधी दल के बीच की खाई को पाटने का सदा प्रयत्न किया है। उसने कभी एक शक्ति के साथ मिल कर सत्य तथा न्याय के मार्ग का परित्याग नहीं किया। वह दोनों दलों से ऊपर उठ कर कार्य करता रहा है। उसकी सबसे बड़ी नैतिक शक्ति तटस्थता की नीति का अवलंबन करने में रही है। आज जब संसार के सभी महान् देश दो परस्पर विरोधी दलों में बंटे हुए हैं और संसार की शांति एक सूत के बारीक धागे के साथ लटक रही है तो भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जिस पर विश्व की त्रस्त एवं पीड़ित जनता की आखें गड़ी हुई हैं और वह आशा कर रही है कि शायद गाँधी और बुद्ध का यह महान् देश विश्व की शान्ति की रक्षा करने में सफल हो सके।

हमारे देश के प्रतिनिधियों ने संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठकों में सबसे महत्वपूर्ण भाग लिया है। हमारे देश की समस्त शक्ति सदा उन राष्ट्रों का साथ देती रही है जो साम्राज्यवादी ताकतों के जुल्मों का शिकार रहे हैं। हमारे प्रतिनिधियों की विद्वत्ता, सूझ बूझ एवं काम करने की शक्ति को सभी ने सराहा है। वे अनेक बार जटिल प्रश्नों को हल करने वाली समितियों के सदस्य और अध्यक्ष रहे हैं। इस संबंध में आर्थिक और सामाजिक परिषद के अध्यक्ष श्री रामस्वामी मुदालियर, कोरिया कमीशन के अध्यक्ष श्री के० पी० एस० मेनन, यूनैस्को की कार्य कारिणी के प्रधान डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णनन, प्राकृतिक विज्ञान शाखा के अध्यक्ष डा० भाभा तथा हाल ही में निर्वाचित विश्व स्वास्थ्य संगठन

की प्रधाना राजकुमारी अमृत कौर तथा अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के प्रधान श्री जगजीवन राम के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अणुबम समिति में डा० बी० एन० राव तथा संरक्षित प्रदेशों की समिति में शिवाराव के नाम की भी सभी ने सराहना की है। इसके अतिरिक्त भारत के प्रयत्नों के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में मानवी अधिकारों और मूल स्वतन्त्रता वाली धाराएं जोड़ी गई हैं। हमारे प्रतिनिधियों ने फासिस्ट स्पेन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनने से रोका है। दक्षिण पश्चिमी अफ्रीका हमारे प्रतिनिधियों की सजगता के कारण ही अफ्रीका द्वारा हड़प लिये जाने से बचा है। संयुक्त राज्य हिंदेशिया एवं इटली के पुराने उपनिवेशों को स्वतन्त्रता दिलाने में भी हमारे प्रतिनिधियों का भाग सबसे अधिक रहा है। हिंदेशिया के प्रश्न को लेकर हमारे देश ने ही सबसे पहिले आन्दोलन किया था। पिछड़े हुए प्रदेशों के हितों का सबसे बड़ा प्रहरी हमारा देश ही रहा है। रंगी हुई जातियों के ऊपर किये जाने वाले अत्याचार के विरुद्ध भी हमारे देश ने ही सबसे पहिले कदम उठाया है। अफ्रीका में रंगभेद की नीति के विरुद्ध जहाद करने में भी हमारे ही प्रतिनिधि सबसे आगे रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ के छोटे से जीवन में हमारे देश के प्रतिनिधियों ने समुचित भाग लिया है।

यहाँ संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था के संबंध में संक्षिप्त विवरण देना अनुचित न होगा। प्रश्न उठता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ क्या है, वह क्या करता है तथा उसके कार्य करने का क्या तरीका है ?

संयुक्त राष्ट्रसंघ क्या है ?

संयुक्त राष्ट्र संघ वह संस्था है जो संसार के देशों में युद्ध की भावना का अन्त करने तथा विश्व में एक ऐसी अटूट शान्ति

की स्थापना के लिये बनाई गई है जिसका आधार मानव अधिकारों की रक्षा, राष्ट्रों का आत्म निर्णय का सिद्धांत तथा संसार के देशों का आपस में आर्थिक, सामाजिक एवं साँस्कृतिक गठबंधन होगा ।

इस संस्था का जन्म उस समय हुवा जब पिछले महायुद्ध के काल में साथी राष्ट्रों की सरकारों ने डम्बार्टन ओक्स के एक सम्मेलन में यह निश्चय किया कि संसार के शान्ति प्रिय देशों के पारस्परिक सहयोग को स्थाई रूप देने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता है । इसके पश्चात सानफ्रांसिस्को में २५ अप्रैल से २६ जून १९४५ तक दुनिया के राष्ट्रों की एक सभा हुई । इस सभा में ५० राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने २६ जून १९४५ को संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर पर हस्ताक्षर कर दिये, और इसके पश्चात २४ अक्तूबर सन १९४५ को इस संस्था ने नियमित रूप से कार्य करना आरंभ कर दिया ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य

संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था को जन्म देने में उसके प्रवर्तकों ने सदा उन कठिनाइयों को अपने सन्मुख रक्खा जिनके कारण प्रथम राष्ट्र संघ की संस्था असफल सिद्ध हुई थी । उन्होंने इस संस्था को एक स्थाई रूप दिया तथा इसे वास्तविक शक्ति प्रदान करने के लिये इसकी सुरक्षा परिषद को अनेक अधिकार सौंपे । इस संस्था के जन्म दाताओं ने संसार के देशों से उन आर्थिक, सामाजिक एवं आर्थिक मतभेदों को मिटाने का भी प्रयत्न किया जिनके कारण विश्व शान्ति को खतरा पहुंचता है । संक्षेप में हम संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धांतों का वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं:—

१. सब राष्ट्र-सदस्य सार्वभौम-शक्ति-संपन्न और समान हैं ।

२. सब राष्ट्र चार्टर के अनुसार अपने कर्तव्यों का सद्भावना से पालन करने के लिये वचनबद्ध हैं ।

३. सब राष्ट्र अपने झगड़ों का शान्तिमय तरीके से इस प्रकार फैसला

करने के लिये वचनबद्ध हैं, जिससे किसी प्रकार शान्ति, सुरक्षा और न्याय के भंग होने का भय न हो।

४. अपने अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में कोई राष्ट्र-सदस्य किसी प्रदेश या किसी देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध न शक्ति का प्रयोग करेगा और न उनको धमकी देगा और न ऐसा आचरण करेगा जो संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों के विपरीत हो।

५. जब चार्टर के अनुसार संयुक्त-राष्ट्र कोई कार्रवाई करेगा, तो सब राष्ट्र-सदस्य उसे सब प्रकार की सहायता देने के लिये वचन-बद्ध हैं और वे किसी ऐसे देश को सहायता नहीं देंगे, जिसके विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र शान्ति और सुरक्षा के लिये कोई कार्रवाई कर रहा हो।

६. शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के लिये जहाँ तक आवश्यक होगा, यह संस्था व्यवस्था करेगी कि जो देश सदस्य नहीं हैं, वे भी चार्टर के सिद्धांतों के अनुसार आचरण करेंगे।

७. शान्ति रक्षा के लिये जब तक आवश्यक न होगा संयुक्त राष्ट्र उन मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा, जो किसी देश के आन्तरिक कार्य क्षेत्र में आते हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का संगठन

संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य वह सभी शान्ति प्रिय देश हो सकते हैं जो उसके सिद्धांतों में विश्वास रखते हैं तथा जो चार्टर में निर्धाति अपने कर्तव्यों को पूरा करने का वचन दें। आजकल इस संस्था के ५९ सदस्य हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के ६ प्रमुख विभाग हैं:—

१. साधारण सभा (General Assembly) —इस सभा में सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधि रहते हैं। हरेक राष्ट्र पाँच प्रतिनिधि तक भेज सकता है यद्यपि उन सब की एक ही राय मानी जाती है। इस सभा में चार्टर में बताये गये प्रत्येक विषय पर विचार हो सकता है। दूसरे सभी

विभाग इस सभा के सन्मुख अपनी अपनी रिपोर्ट भेजते हैं । यह सभा उनके कर्तव्य और अधिकारों के बारे में भी विचार करती है । नये सदस्यों के चुनाव तथा सचिवालय के प्रधान सचिव (सैक्रैटरी जनरल) के संबंध में यह सभा अपनी सिफारिश सुरक्षा परिषद के सम्मुख रखती है । बजट का निश्चय भी यही सभा करती है । इसके निर्णय साधारणतया ब्रहुमत तथा विशेष कामों के लिये दो तिहाई बहुमत से लिये जाते हैं । सुरक्षा परिषद के संसार के बह सब राष्ट्र सदस्य हैं जिनको महान् शक्ति कहा जाता है ।

२. सुरक्षा परिषद—सुरक्षा परिषद के कुल ११ सदस्य होते हैं, जिनमें से ५ सदस्य स्थाई होते हैं तथा ६ सदस्य साधारण सभा द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं । सदस्य राष्ट्रों नें शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था का कार्यभार इस परिषद पर डाला है । अपने कर्तव्य-पालन में सुरक्षा परिषद सदस्य राष्ट्रों की ओर से कार्य करती है, जिन्होंने इसके निर्णय को मानना और उनका पालन करना स्वीकार कर लिया है ।

परिषद् के पाँच स्थाई सदस्य ये हैं:—चीन, फ्रांस, रूस, युनाइटेड किंगडम और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका । अस्थाई सदस्य दो वर्ष के लिये साधारण-सभा द्वारा चुने जाते हैं ।

सुरक्षा परिषद् के प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है । कार्यक्रम संबंधी विषयों का निर्णय ११ सदस्यों में से ७ सदस्यों के बहुमत से हो सकता है । मूल विषयों के संबंध में भी निर्णय के लिए ७ मतों की ही आवश्यकता होती है, लेकिन इनमें से पाँच स्थायी सदस्यों की सहमति जरूरी है । यह सिद्धांत महान् शक्ति (ग्रेट पावर्स) की एकता का सिद्धांत कहा जाता है । इसे निर्णायिक मत (वीटो) का अधिकार भी कहते हैं । जब परिषद् किसी विवाद में शान्तिपूर्वक समभौते की कोशिश करती हैं तो कोई संबंधित देश इसमें वोट नहीं दे सकता ।

शान्ति-व्यवस्था के लिये लगातार सावधानी जरूरी है और इसलिये

संयुक्त राष्ट्र संघ के विधान में कहा गया है कि सुरक्षा परिषद् एक स्थाई संस्था होगी, और इसकी बैठकें पखवाड़े में कम से कम एक बार अवश्य होंगी। यदि परिषद् चाहे तो इसकी बैठकें मुख्य कार्यालय के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी हो सकती हैं।

सुरक्षा परिषद् किसी भी ऐसे विवाद की जाँच कर सकती है, जिससे दो या अधिक देशों के बीच आपसी संघर्ष बढ़ने की संभावना हो। ऐसे विवाद या स्थिति की सूचना परिषद् को इसके सदस्य, सदस्य राष्ट्र साधारण सभा अथवा प्रधान सचिव (सेक्रेटरी जनरल) दे सकते हैं। कुछ हालतों में यह सूचना वह राष्ट्र भी दे सकते हैं, जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं।

सुरक्षा-परिषद् शान्तिमय तरीके से समझौते की सिफारिश कर सकती है और कुछ हालतों में वह समझौते की शर्तें भी निर्धारित कर सकती है।

जब शान्ति भंग होने की आशंका हो अथवा शान्ति भंग हो गई हो अथवा कोई आक्रमण हुआ हो, तो सुरक्षा परिषद्, सुरक्षा और शान्ति की पुनः स्थापना के लिये जरूरी कार्रवाई कर सकती है। वह आक्रमणकारी राज्य के विरुद्ध यातायात, आर्थिक और कूटनीतिक संबंध-विच्छेद करके कार्यवाही कर सकती है और यदि आवश्यकता हो, तो वायु, जल तथा स्थल सेनाओं का प्रयोग भी कर सकती है।

सुरक्षा-परिषद् की मांग पर और विशेष समझौतों के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के सब सदस्य शान्ति तथा सुरक्षा कायम करने के लिये सैन्य बल देने के लिये बचन बद्ध हैं।

३. आर्थिक और सामाजिक परिषद— इस परिषद् का उद्देश्य संसार में आर्थिक साधनों की प्रचुरता स्थापित करना एवं राष्ट्रों को न्याय परायण बनाना है। यह संयुक्त राष्ट्रों की आर्थिक उन्नति के लिये

कार्य करती है। इसके नीचे अनेक कमीशन काम करते हैं जैसे खाद्य समिति, स्वास्थ्य समिति इत्यादि।

४. संरक्षण परिषद्—जो देश अभी स्वाधीन नहीं हुए हैं, और राष्ट्र संघ की देख भाल में शासित होते हैं, यह संस्था उनकी देख भाल करती है।

५. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्र का प्रधान न्यायालय है। इसका कार्य स्थान हालैण्ड स्थित हेग नगर में है। इस न्यायालय के १५ न्यायाधीश होते हैं जो सुरक्षा-परिषद् और साधारण-सभा द्वारा पृथक-पृथक् रूप से निर्वाचित किये जाते हैं।

न्यायालय का कार्य कानून द्वारा संचालित होता है, जो संयुक्त-राष्ट्र के चार्टर का एक अंग है। संयुक्त राष्ट्र का प्रत्येक सदस्य इस न्यायालय की व्यवस्था का उपयोग कर सकता है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र इस न्यायालय के निर्णय को मानने के लिये वचनबद्ध है।

चार्टर और प्रचलित संधियों के अनुसार जो अन्तर्राष्ट्रीय समझौते होते हैं, यदि उनकी किन्हीं धाराओं के आशय के विषय में विवाद हो तो ऐसे विवादों का निर्णय यही न्यायालय करती है। कानूनी झगड़ों का फैसला करने के अतिरिक्त न्यायालय का एक महत्वपूर्ण कार्य उन कानूनी विषयों के संबंध में परामर्श देना है, जिनके संबंध में साधारण सभा, सुरक्षा परिषद् तथा अन्य विभाग और अन्य संस्थाएं, कानूनी मत जानना चाहें।

६. सचिवालय (सैक्रैटेरियट)—यू० एन० ओ० का दिन प्रति दिन का प्रबंध सचिवालय द्वारा किया जाता है। इसका सबसे बड़ा अधिकारी प्रधान सचिव (सैक्रैटरी जनरल) कहलाता है। उसकी नियुक्ति सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर साधारण सभा द्वारा पाँच वर्ष के लिये की जाती है। उसके आधीन सब राष्ट्रों के अनेक कर्मचारी काम करते हैं। सचिवालय में आजकल लगभग १५,००० व्यक्ति काम करते हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्य

बहुत से लोगों का कहना है कि संयुक्त राष्ट्र संघ उसी प्रकार असफलता को प्राप्त हो रहा है जिस प्रकार उसकी पूर्व संस्था राष्ट्र संघ (लीग ऑफ़ नेशन्स) का अंत हुआ था। राष्ट्र संघ ने आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में समुचित कार्य किया था परन्तु राजनैतिक क्षेत्र में वह संस्था संसार की शान्ति बनाये रखने में पूर्ण रूप से असफल सिद्ध हुई। आज संयुक्त राष्ट्र संघ भी उसी प्रकार कार्य करता हुआ प्रतीत होता है। अमरीका व रूस का शीत युद्ध किसी क्षण भी भीषण युद्ध का रूप धारण कर सकता है। सुरक्षा परिषद की बैठकों में रूस के प्रतिनिधियों ने उस समय तक भाग लेने से इंकार कर दिया है जब तक राष्ट्रवादी चीन के प्रतिनिधि को सुरक्षा कौंसिल से नहीं निकाल दिया जाता। अणु बम समिति किसी प्रकार का भी फैसला करने में असफल सिद्ध हो चुकी है। आज सारा संसार दो परस्पर विरोधी शक्तियों में बंटा हुआ है। उनके बीच से आपस का विश्वास, श्रद्धा व प्रेम के भाव का अन्त हो चुका है। दोनों दल विध्वंसकारी अस्त्र शस्त्र जुटाने में लगे हैं। एक दल अणुबम बनाता है, दूसरा हाईड्रोजन बम। जापान व जर्मनी के साथ अभी तक किसी प्रकार की स्थाई संधियाँ नहीं हुई हैं। कितने ही देशों को राष्ट्र संघ की सदस्यता से वंचित रक्खा जा रहा है। राष्ट्रों का धन जनता की आर्थिक स्थिति सुधारने के कार्यों में व्यय होने के स्थान पर, लड़ाई का सामान जुटाने में व्यय हो रहा है। कोरिया में युद्ध चलरहा है। इन सभी बातों को देख कर आज कितने ही विचारक कहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ अपने उद्देश्य की पूर्ति में असफल सिद्ध हुआ है।

परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य की आलोचना करने वाले लोग चित्र का केवल एक पहलू ही देखते हैं। वह इस संस्था के उन कार्यों की ओर दृष्टिपात नहीं करते जो कार्य उसने अपने कुछ ही वर्षों के जीवन में कर दिखाए हैं। आलोचक भूल जाते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ के कारण ही शीत युद्ध ऊष्ण युद्ध में परिणित होने से वचा है। इसी संस्था के कारण मध्य

पूर्व के देशों में इजराइल राज्य की स्थापना पर अधिक रक्तपात नहीं हुवा। इसी संस्था के प्रतिनिधियों के प्रशंसनीय कार्य से हिंदेशिया के स्वतन्त्र राष्ट्र का शान्तिमय समझौते के साथ जन्म हुआ। इसी संस्था के प्रयत्न से, काश्मीर के प्रश्न पर, भारत और पाकिस्तान के बीच 'युद्ध रोको' प्रस्ताव पास हुआ। इसी संस्था के कारण दक्षिणी अफ्रीका की वर्णभेद नीति की सर्वत्र निंदा की गई। इटली के उपनिवेशों को इसी संस्था के कारण संरक्षण परिषद के सुपुर्द किया गया। बर्लिन के प्रश्न पर भी इसी संस्था के प्रयत्नों के फल-स्वरूप भीषण युद्ध होने से बाल बाल बचा। इसी संस्था के प्रधान सचिव श्री ट्रिग्वे ली द्वारा आज संसार में स्थाई शान्ति स्थापित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इसी संस्था के द्वारा आज कोरिया के युद्ध को दूसरे देशों में फैलने से रोका जा रहा है।

और इन सब बातों के अतिरिक्त वह कार्य जो संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायक संस्थाओं ने पिछले चार या पाँच वर्ष में, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व वैज्ञानिक क्षेत्रों में किया है, अद्वितीय है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ की अनेक संस्थाएं संसार की पीड़ित व त्रस्त जनता की हर प्रकार से सहायता करने के कार्य में लगी हुई हैं। कोई संस्था संसार के रोगियों की सहायता करने में लगी हुई है तो कोई संसार के गरीब व अनाथ बच्चों की सेवा के कार्य में। कोई संस्था शरणार्थियों की देख भाल करती है, कोई संक्रामक रोगों को फैलने से रोकती है। कोई संस्था तपेदिक से बचाव के लिये बी० सी० जी० वैक्सीन बाँटती है, तो कोई लकुए से बचाव के लिये लोहे के फेफड़े। कोई संस्था संसार के पिछड़े हुवे देशों की सहायता के लिये टैकनिकल सहायता का प्रबंध करती है, तो कोई उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करती है। कोई संस्था संसार के व्यापार को बढ़ाने के लिये कार्य करती है, तो कोई विभिन्न देशों को अप्राप्य सिक्का प्रदान करने में सहा-यता देती है। कोई संसार के मजदूरों के अधिकारों की रक्षा करती है, तो कोई समस्त मानव समाज के अधिकारों की घोषणा करती है। कोई सस्था समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता कायम रखने के लिये नियम बनाती है

तो कोई विभिन्न देशों में वैज्ञानिक ज्ञान के प्रचार के लिये कानून बनाती है। इसी प्रकार और भी अनेक अनगिनत क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न सहायक संस्थायें कार्य कर रही हैं ।

यह सच है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता का अन्तिम निश्चय उसके सामाजिक ,आर्थिक व सांस्कृतिक कार्य की दृष्टि से नहीं किया जायगा। उसका निश्चय इस बात से होगा कि वह संस्था राजनैतिक क्षेत्र में संसार की शान्ति बनाये रखने में कहाँ तक सफल सिद्ध होती है । आज राष्ट्रों की गति विधि देखकर यह आशा बहुत कम है कि संयुक्त राष्ट्र संघ संसार में एक तीसरा प्रलयंकारी युद्ध छिड़ने से बचाव कर सकेगी। परन्तु यह निश्चित है कि यदि कोई शक्ति इस दशा में कार्य कर सकती है तथा इस युद्ध के भय को अनिश्चित समय के लिये स्थगित कर सकती है, तो वह शक्ति केवल संयुक्त राष्ट्र संघ की शक्ति है । आज यह संस्था संसार के देशों को इस बात का अवसर प्रदान करती है कि वह अपने विवाद व समस्याएं संसार के प्रतिनिधियों के सम्मुख रक्खें तथा लोक मत को अपने पक्ष में जीतने का प्रयत्न करें । यही एक अवसर युद्ध के भय को स्थगित करने में राम बाण का काम देता है । संयुक्त राष्ट्र संघ वह रंगमंच है जहाँ विश्व की शक्तियाँ अपना दृष्टिकोण संसार के सम्मुख रखती हैं । अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट करने का अवसर प्राप्त करना—यही संसार की शान्ति कायम रखने के लिये सबसे शक्तिशाली उपाय है ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के भविष्य के संबंध में इसलिये हमें अत्यंत निराशा-जनक दृष्टिकोण से विचार नहीं करना चाहिये । यदि हम संसार में विश्व शान्ति के पक्ष में, एक जीवित और जागृत लोकमत का निर्माण करने में सफल हो सके, तो कोई कारण नहीं कि संसार में स्थाई शान्ति स्थापित न हो सके ।

आज आवश्यकता इस बात की है कि संसार के प्रत्येक देश में संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों का प्रचार करने के लिये स्थान स्थान पर संस्थायें

खोली जाँय, जनता को युद्ध के भयंकर परिणामों से अवगत कराया जाय, तथा उत्कट राष्ट्रीयता की भावना के स्थान पर संसार की जनता में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का प्रचार किया जाय ।

भारतवर्ष इस दशा में अत्यंत प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। आज हमारे प्रधान मन्त्री अपनी समस्त शक्ति के साथ इस संस्था की सफलता के लिये कार्य कर रहे हैं। हमारे देश में अनेक स्थानों पर यू० एन० ओ० एसोसियेशन्स खोल दी गई हैं। शेष स्थानों पर भी ऐसी संस्थाओं का एक जाल सा बिछाने का प्रयत्न किया जा रहा है। समस्त देश की यू० एन० ओ० संस्थाओं के कार्य की देख भाल के लिये एक अखिल भारतीय संस्था बना दी गई है। यदि दूसरे देशों में भी इसी प्रकार का कार्य हो सका तो वह दिन दूर नहीं जब हमारी आने वाली संततियाँ युद्ध के भय से सदा के लिये छूटकारा पा सकेंगी ।

उपसंहार

Accused	अभियुक्त
Act (*n.*)	अधिनियम, कानून
Acting (e.g. Chairman)	कार्यकारी
Ad Hoc	तदर्थ
Adjourn	स्थगन, स्थगित करना
Administration	प्रशासन, प्रबंध
Adult suffrage	वयस्क मताधिकार
Advise	मन्त्रणा देना
Agreement	करार
Alien	अन्य देशीय, विदेशी
Allocation	बंटवारा
Allotment	बाँट
Amendment	संशोधन
Annual	वार्षिक
Annulment	रद्द करना
Appeal	अपील
Appointment	नियुक्ति
Arbitration	मध्यस्थ-निर्याण
Arbitrator	मध्यस्थ
Article	अनुच्छेद
Assembly	सभा
Assent	अनुमति
Association	संघ
Attach	कुर्की
Audit	लेखा-परीक्षा
Auditor-General	मह-लेखा-परीक्षक
Autonomous	स्वायत्त
Bankruptcy	दिवाला
Bi-cameral	दो घरा, द्विभवनात्मक

Boundary	सीमा
Bye-election	उप निर्वाचन, उप चुनाव
Casting Vote	निर्णायक मत
Census	जन-गणना
Certificate	प्रमाण पत्र
Chairman	सभापति
Chief Justice	मुख्य न्यायाधिपति
Chief Minister	मुख्य मन्त्री
Citizenship	नागरिकता
Civil	असैनिकता
Commonwealth	राष्ट्र मंडल
Co-operative "	सहयोगात्मक राष्ट्र मंडल
Commerce	वाणिज्य
Committee, select	प्रवर समिति
Concurrent List	समवर्ती सूची
Constituency	निर्वाचन क्षेत्र
Confidence, want of	विश्वास का अभाव
Constituent Assembly.	संविधान सभा
Constitution	संविधान
Contingency Fund	आकस्मिकता निधि
Conviction	दोष सिद्धि
Co-operative society	सहकारी संस्था
Council of Ministers	मन्त्रि परिषद
Council of States	राज्य परिषद
Court, Civil	व्यवहार न्यायालय
Court, Criminal	दंड न्यायालय
Court, District	जिला न्यायालय
Court, High	उच्च न्यायालय
Court, Martial	सेना न्यायालय
Court, Revenue	राजस्व न्यायालय
Court, Supreme	उच्चतम न्यायालय
Declaration	घोषणा
Deputy Chairman	उप सभापति

Deputy President	उप राष्ट्रपति
Deputy Speaker	उपाध्यक्ष
Dis-cretion	स्वविवेक
District Board	जिला मंडली
Domicile	अधिवास
Duty, custom	सीमा शुल्क
Duty, death	मरण शुल्क
Duty, estate	संपत्ति शुल्क
Duty, excise	उत्पादन-शुल्क
Duty-import	आयात शुल्क
Duty-export	निर्यात शुल्क
Efficiency of adm	प्रशासन कार्यक्षमता
Election	निर्वाचन, चुनाव
Election, direct	प्रत्यक्ष-निर्वाचन
Election, general	साधारण निर्वाचन, आम चुनाव
Election, indirect	परोक्ष-निर्वाचन, अप्रत्यक्ष चुनाव
Electoral, roll	निर्वाचक नामावली
Eligible	पात्र होना
Escheat	राजगामी
Exempt	मुक्त
Ex-officio	पदेन
Expenditure	व्यय
Federal, Court	फेडरल न्यायालय
Gazette	सूचना पत्र
Government	(१) सरकार, (२) शासन
Government of State	राज्य सरकार
Government of India	भारत सरकार
Governor	राज्यपाल
House of People	लोक सभा
Impeachment	महाभियोग, सार्वजनिक दोषारोपण
Judiciary	न्याय पालिका
Labour	श्रम
Labour Union	श्रमिक संघ

Land Revenue	भू राजस्व
Law	विधि, कानून
Legislative Assembly	विधान सभा, व्यवस्थापिका सभा
Legislative Council	विधान परिषद्, व्यवस्थापक मंडल
Legislature	विधान मंडल
Legalism	कानूनी पन
Lieutenant Governor	उप राज्य पाल
List	सूची
List concurrent	समवर्ती सूची
List-state	राज्य सूची
List, Union	संघ-सूची
Local Government	स्थानीय शासन
Local Self Government	स्थानीय स्वशासन
Lower House	प्रथम सदन, भिन्न भवन
Major	वयस्क
Majority	बहुमत
Minor	अवयस्क
Minority	अल्प संख्यक वर्ग
Motion for consideration	विचारार्थ प्रस्ताव
Municipal area	नगर क्षेत्र
Municipal Committee	नगर समिति
Municipal Corporation	नगर निगम
Municipality	नगर पालिका
Naturalisation	देसीय करण
Parliament	संसद
President	राष्ट्रपति
Prison	कारावास
Proclamation	घोषणा
Quorum	गण पूर्ति
Reading, first	प्रथम पठन
Reading, second	द्वितीय पठन
Reading, third	तृतीय भवन
Resignation	पद त्याग
Rigidity	जकड़ बन्दी

Rule	नियम
Single Transferable Vote	एकल संक्रमनीय मत
Tax, Income	आय कर
Tax Terminal	सीमा कर
Tax, Export	निर्यात कर

भारत के संबंध में कुछ आँकड़े तथा तथ्य

क्षेत्रफल १२,२०,०९९ वर्ग मील

जन -संख्या ३१८,९१२,५०६

भारत के विभिन्न प्रांतों का क्षेत्रफल तथा जन संख्या

प्रान्त	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	जन संख्या
मद्रास	१२६,१६६	४९,३,४१,८१०
बौम्बे	७६,४४३	२०,८४९,८४०
बंगाल	७२,७४८	२१,२,११,४२७
उत्तर प्रदेश	१०६,२४७	५५,०२०,६१७
पंजाब	३७,०५८	१,२६,१७,१७५
बिहार	६९,७४५	३६,३४०,१५१
मध्य प्रदेश	९८,५७५	१६,८,१३,५८४
आसाम	५०,२९६	७,४७१,५३१
उड़ीसा	३२,१९८	८,७२८,५४४
दिल्ली	५७४	९१७,९३९
अजमेर	२,४००	५८३,६९३

भारतीय रियासतें तथा उनके संबंध में कुछ आँकड़े व तथ्य

रियासती संघ

राज्यसंघ	राजधानी	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	जनसंख्या (लाख)
१. सौराष्ट्र	राजकोट	१७,७२५	२८,८५
२. राजस्थान	जैपुर	१२८,४२४	१३०,८५
३. विंध्य प्रदेश	रींवा	२४,६१०	३५,६९
४. मध्य भारत	ग्वालियर-इन्दोर	४६,३५३	७१,५०
५. पटियाला और पूर्वी पंजाब रियासती संघ	पटियाला	१०,०९९	३४,२४
६. ट्रावनकोर–कोचीन सँघ	ट्रिवेन्ड्रम	९,१५५	७५

केन्द्रीय शासित रियासतें

१. हिमांचल प्रदेश	शिमला	१०,६००	९,३६
२. कच्छ	भुज	८,४६१	५,००
३. बिलासपुर	बिलासपुर	४५३	११०
४. भोपाल	भोपाल	१०,०८८	१३,१३
५. रामपुर	रामपुर	८९४	४,७७
६. कूच बिहार	कूच बिहार	१,३१८	६,४०
७. त्रिपुरा		४,११६	५,१२
८. मनीपुर	मनीपुर	८,६२०	५,१२

अलग रियासतें

१. हैदराबाद	हैदराबाद	८२,३१३	१६३,३८
२. जम्मू और कश्मीर	श्रीनगर	८२,२५८	४०,२१
३. मैसूर	बंगलोर	२९,४५८	७३,२९